नेशनल पब्लिशिंग हाउस
(स्वत्वाधिकारी के० एल० मलिक ऐंड संस प्रा० लि०)
२३, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२

शाखाएं
चौड़ा रास्ता, जयपुर
३४, नेताजी सुभाष मार्ग, इलाहाबाद-३

मूल्य : ९०.००
स्वत्वाधिकारी के० एल० मलिक ऐंड संस प्रा० लि० के लिए नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली-११०००२ द्वारा प्रकाशित / प्रथम संस्करण १९८१ / सरस्वती प्रिंटिंग प्रेस, मौजपुर, दिल्ली-११००५३ द्वारा मुद्रित ।

SATYANARAIN GRANTHAVALI (Complete Works)
Edited by : Dr. Vidyaniwas Mishra, Dr. Govind Rajneesh
Price : Rs. 90.00

॥ आमुख ॥

कविरत्न 'सत्यनारायण ग्रंथावली' प्रकाशित करने की प्रेरणा सम्मान देने का बीडा उठाने वाले आदरणीय प० वनारसीदास चतुर्वेदी ने दी। इस व्याज से एक सहज संस्कारी कवि को आद्योपात पढने का एक वार पुनः अवसर मिला। स्व० सत्यनारायण कविरत्न ने व्रजभाषा के सलोनेपन की और जीवंतता की अभिवृद्धि की, इतना ही अवदान उनको चिरस्थायी कीर्त्ति दे सकता था। पर सबसे अधिक उल्लेखनीय विशेषता उनके कृतित्व की मेरी समझ मे उनकी समसामयिक समस्याओ के प्रति जागरूकता और अपने आसपास के यथार्थ की मार्मिक पहचान है। वे प्यार, भक्ति, उत्साह, करुणा के उद्वेलन को इतने सयम और इतनी गहनता के साथ अपनी रचना मे सभालते है कि अचरज होता है कि छायावाद के साध्य आलोक मे ऐसा स्पष्ट निर्भास, ऐसा स्फटिक-निर्मल प्रभाभास्वर पानी सभव कैसे हुआ। शायद जीवन के गहरे विपाद से हुआ, या उससे भी अधिक कोरे ग्रामनिवासी की भीतरी सच्चाई के कारण हुआ या परंपरा मे पग कर परपरा के पार जाने के विनम्र पर दृढ सकल्प के कारण हुआ। कम आयु मे, जीवन की कठिन विडंबनाओ मे जो भी कृतित्व हमारे सामने है, वह एक पूर्ण और समर्थ युगातिक्रामी व्यक्तित्व का प्रमाण है।

भाषा के स्तर पर विदग्धता और रीतिवद्धता से, नाजुकखयाली से और चमत्कार से व्रजभाषा को मुक्त कर सकना एक असभव कार्य था, विशेष रूप से ऐसे समय जब काव्यभापा के रूप मे खडी वोली उभर चुकी हो। सत्यनारायण जी ने इस कार्य को संभव ही नही कर दिखाया, यह सिद्ध किया कि व्रजभाषा की अपनी जमीन का एक अनोखा और न चुकने वाला आस्वाद है। वह आस्वाद किसी भी काव्यभाषा के लिए ललक की वस्तु है। गद्य की भाषा को (उत्तर रामचरित और मालतीमाधव के अनुवाद की भाषा मे) जो सहज प्रवाह उन्होने दिया है, वह प्रवाह काफी दिनो तक रुधा रहा, आचार्य हजारी-प्रसाद द्विवेदी ने उसे धक्का देकर आगे वढाया और सिद्ध किया कि संस्कृत

का संस्कार ही शब्द की शक्ति पहचनवाता है, वह तद्भव शब्दो की अर्थवत्ता को अधिक मर्मस्पर्शी ढग से उन्मीलित कराता है और तत्सम वोझिलता से मुक्ति की राह दिखलाता है।

कविरत्न की विषयवस्तु भी विशाल परिवेश की आत्मीयता से ओतप्रोत है। प्रकृति को अतरग आलवन के रूप मे जिस सहजता के साथ आचार्य रामचंद्र शुक्ल और सत्यनारायण कविरत्न ने ग्रहण किया है, वह आज के कवियो के लिए भी स्पृहणीय है। यही नही, प्राकृतिक परिवेश को मानवीय जीवन-चक्र की धुरी के रूप मे देखने की गहरी अंतर्दृष्टि भी उनकी क्रातदर्शिता का प्रमाण है। शरद् का एक चित्र देखें :

> वोरत प्रेमपयोनिधि मे ऋतु सारदी भाई दया निज जोरत।
> टोरत फोरत ग्रीषम को वल वारिद को वल तोरत मोरत॥
> लोरत खजन पै सतदेव जु छोरत काँस मे साँस वटोरत।
> चोरत मजु चितै चितचायनि चाँदनी चारु पीयूष निचोरत॥

इसमे शरत् के सात्विक प्यार के पारावार की व्यापकता और सबको आत्मवश करने की क्षमता का चित्र अत्यत मोहक ढग से वर्णित है।

इसके साथ ही राष्ट्रीय, सामाजिक, अतर्राष्ट्रीय और आर्थिक विडंबनाओ पर भी उन्होने बहुत तीखी वेदना के साथ अपने मन की वात कही। इस दृष्टि से वे भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट जैसे अग्रजो की उस परपरा की एक कडी थे, जो जिदादिली के साथ-साथ देश के प्रति और समाज के प्रति दायित्व का पूरा निर्वाह करती थी, वह कविकर्म को राष्ट्रीय कर्त्तव्य का विकल्प नही बनाती थी। हिंदी की विकासयात्रा की विशेषता ही यह रही कि उसका लेखक एक देश को अर्पित था। एक भाषा को अर्पित था, एक भाव को अर्पित था, उसके लिए वाणी विलास नही थी, तप थी, आराधना थी और सपूर्ण साधना थी। वह किसी प्रश्न से कतराता नही था। वुद्धिजीविता का घुन हिंदी लेखक और लेखन को कम लगता है, क्योकि यह लेखक और उसका लेखन नीम की छाया मे अधिक होता है, उस नीम की छाया मे जिसके नीचे इस देश की मातृशक्ति जुडाने के लिए आकर एक घडी वैठती है। कविरत्न आज के अधिसख्य बुद्धिजीवियो की तरह किसी भी प्रश्न से कतराये नही। हिंदू विश्वविद्यालय के लिए अपील उन्होने लिखी, रवि ठाकुर, गाधी जी, तिलक, लाला जी, गोखले का स्तवन उन्होने किया, अग्रेजियत पर चोट उन्होने की, व्रजमडल की दुर्दशा की ओर ध्यान उन्होने खीचा और भारत की स्वाधीनता की आकाक्षा उन्होने मुखरित की।

उनके कृतित्व पर मेरे अध्ययनशील सहयोगी श्री गोविंदप्रसाद शर्मा

रजनीश ने बहुत ही सुचिंतित समीक्षा प्रस्तुत की है, मैं और विस्तार मे नही जाना चाहता। इतना ही निवेदन करना चाहता हू कि यह कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी विद्यापीठ के लिए गौरव की बात है कि स्व० कविरत्न के उदार, भावुक और सवेदनशील कृतित्व को समग्र रूप मे प्रस्तुत करने का उसे अवसर मिला। हमारी यह अपनी अक्षमता थी कि जन्मशती वर्ष मे इसे नही निकाल पाये।

नेशनल पब्लिशिग हाउस के श्री कन्हैयालाल मलिक ने प्रकाशन का भार ले लिया, हम किन शब्दो मे कृतज्ञता व्यक्त करें।

—विद्यानिवास मिश्र

राधाष्टमी, २०३७ विक्रमीय
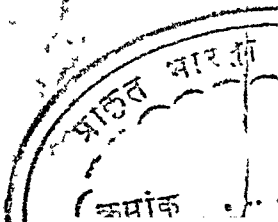
पं० सत्यनारायण 'कविरत्न'

।। भूमिका ।।

अपनी धरती से जुडे हुए कवि के रूप मे सत्यनारायण कविरत्न ने त्रासदी और वैचित्र्य भरे अतर्विरोधो की जिंदगी को जीया था। मात्र आठ वर्ष के रचना-काल मे सृजन-कर्म के प्रति अटूट निष्ठा, प्रतिबद्धता और लोकजीवन से गहन संपृक्ति के कारण वे हिंदी कविता पर गहरा असर छोड गए है।

द्विवेदी युग की ब्रजभाषा की अंतिम पात को अपने जीवंत लेखन से ऊर्जावान बनाये रखने मे सचेष्ट श्री सत्यनारायण कविरत्न का जीवन स्नेह-रिक्त दीपक की कांपती लौ के समान रहा है।

सत्यनारायण कविरत्न की माता तलफो का जन्म अलीगढ की तहसील सिकदराराऊ के जरैरा गाव के सनाढच परिवार मे हुआ था। पद्रह वर्ष की तलफो का विवाह अलीगढ जिले की तहसील इगलास के कचरौली गाव-निवासी श्री गोविंदराम दुबे के साथ हुआ था। वहा उनका नाम रखा गया—रानी सरदार कुवरि। विवाह का सुख तलफो अधिक दिनो तक नही भोग पाईं। पति के निधन के बाद सपत्ति से वचित, वेसहारा और गर्भवती तलफो भटकती हुई, सराय गाव मे बसकर, अपने गरीबी और दु.ख के दिन काटने लगी। यही पर २४ फरवरी, १८८० को सत्यनारायण का जन्म हुआ। कविरत्न की मा पढी-लिखी और 'रामचरितमानस' की अच्छी जानकार थी। वे फीरोजाबाद मे भी कुछ समय रही। उसके बाद मा अपने पुत्र के साथ आगरा से ५ कि० मी० दूर धाधूपुरा के राम मदिर मे बाबा रघुवरदास की शरण मे आ गईं और लडकियो को पढाने-लिखाने का कार्य करने लगी। यही पर मा और बाबा रघुवरदास की स्निग्ध छाया मे बालक सत्यनारायण का लालन-पालन हुआ।

सत्यनारायण की प्रारभिक शिक्षा घर और ताजगंज स्कूल मे हुई। मिढाकुर के टाउन स्कूल से १८९८ ई० मे हिंदी मिडिल, आगरा के मुफीदे आम स्कूल से १९०० ई० मे अग्रेजी मिडिल, सेंट जान्स हाई स्कूल से १९०३ मे एंट्रेस तथा सेट पीटर्स कॉलेज से १९०८ मे एफ० ए० परीक्षा पास की।

सन् १९१० मे बी० ए० की परीक्षा मे बैठे किंतु असफल रहे। इसका कारण कविता के प्रति उनका गहरा रुझान था। उनका समूचा जीवन इतना कवितामय था कि इसके लिए पढाई-लिखाई और परीक्षा की सर्वथा उपेक्षा कर दी। रचनाधर्मिता के प्रति ऐसा अटूट लगाव बहुत कम दिखाई पडता है।

सत्यनारायण ने जीवन की अजीब विसगतियो को भोगा था। १७ वर्ष की आयु मे मातृ-विछोह को सहा। किशोर सत्यनारायण के करुण सवेदन की अभिव्यक्ति इस अवसर पर लिखी गई 'माता-विलाप' नामक कविता मे हुई है। जुलाई, १९१२ को दूसरा वज्राघात हुआ—बाबा रघुवरदास भी गुजर गए।

सत्यनारायण सनातनी थे। सनातन धर्म के प्रचार मे भी काफी समय लगाया था। सत्यनारायण की कविताए सुनकर स्वामी रामतीर्थ बड़े प्रसन्न हुए थे। ये भी उनके रग में ऐसे रगे थे कि पढना-लिखना छोडकर उनके साथ डोलने लगे। उन्ही के लिए 'रामतीर्थाष्टक' लिखा था।

श्वास रोग ने कवि के शेष जीवन को दूभर बना दिया था। इस बीमारी से उन्हे रात-भर नीद नही आती थी। उनकी मानसिक स्थिति का अहसास इस पद से लगता है :

> बस, अब नहिं जाति सही।
> विपुल वेदना विविध भाँति, जो तन मन व्यापि रही॥
> कब लो सहे, अवधि सहिबे की कछु तौ निश्चित कीजै।
> दीनबंधु, यह दीन-दशा लखि, क्यो नहिं हृदय पसीजै॥

कवि का यह आत्म-निवेदन, तुलसीदास के बरतोड़ और बाहुपीड़ा के अवसर पर राम से किये गए आत्मनिवेदन के समान करुणा से आप्लावित है। दरिद्रता, अकेलापन और बीमारी से जूझते सत्यनारायण पारिवारिक दायित्व से विरक्त हो गए थे, किंतु प० पद्मसिह शर्मा और प० ब्रजनाथ शर्मा के दबाव मे आकर उन्होने सहारनपुर की 'मेरी शारदा सदन' नामक सस्था के संस्थापक प० मुकुदनारायण शर्मा की ज्येष्ठ पुत्री सावित्री देवी से ७ फरवरी, १९१६ को विवाह कर लिया। इस विवाह का उनके परिचितो और मित्रो ने विरोध किया था, किंतु अपने सरल और सहज स्वभाव के कारण सत्यनारायण ने उन चेतावनियो पर ध्यान नही दिया जिसका बाद मे गहरा पश्चात्ताप हुआ। विवाह को उन्होने अपनी साहित्यिक मौत कहा था।

यह अनमेल विवाह था। दोनो के रहन-सहन, आचार-विचार और शील-स्वभाव मे पर्याप्त अतर था। विवाह के दूसरे रोज से ही तनाव प्रारभ हो गया। दरिद्रता, अशाति, असतोष, तनाव और द्वद्व ने सत्यनारायण

के जीवन को अभिशप्त बना दिया था। १० अप्रैल, १९१६ को पत्नी के कहने पर उसे उसकी सखी के घर मुरादाबाद पहुचा आए। सत्यनारायण ने लौटने के लिए कई पत्र लिखे किंतु पत्नी नही लौटी। इन पत्रो मे कवि की व्यथा सघन रूप से व्यजित हुई है :

कली री अब तू फूल भई।
मन मधुकर बहु आस लगाए तोसो प्रेम मई॥
× × ×
परेखौ प्रेम किये को आवै।
कहा कहे, मन मूढ बडौ यह, जो तुम्हरे ढिग जावै॥
होती बात हमारे बस की, कबहुँ न लेते नाम।
करतौ चाहे जगत, भले ही कितनौ हूँ बदनाम॥
जो चाहत तुमको निस बासर प्रेम प्रमत्त अपार।
तिनके सग अनोखौ ऐसौ करत आप व्यौहार॥

इस उपालभ मे उसी मन:स्थिति का चित्र है।

पत्रो के माध्यम से एक ओर से अनुनय भरा मनुहार, दूसरी ओर से ठेस भरा तीखा व्यवहार व कठोर शब्दावली का सिलसिला चलता रहा, किंतु पत्नी नही लौटी। 'भयौ क्यो अनचाहत कौ सग' मे उनके जीवन की यह कसक पूरी तरह उभर आई है। जीवन की विषम त्रासदियों और विसंगतियो को भोगते हुए १६ अप्रैल, १९१८ को उनका निधन हो गया। उस समय जब हिंदी कविता को उनसे बहुत अपेक्षाए थी, उनकी सृजनात्मकता पूरे उठान पर थी, असमय मे ही उनका निधन हो गया।

पं० सत्यनारायण का व्यक्तित्व पारदर्शी और जीवन करुणाप्रधान दुखात नाटक था। करुणा के अथाह सागर भवभूति इसीलिए उन्हे प्रिय थे। 'उत्तररामचरित' मे राम का विलाप ही उनके जीवन का करुण क्रंदन बन गया। इसलिए उन्होने 'उत्तररामचरित्रम्' और 'मालती माधवम्' का अनुवाद किया था। उनके जीवन की बुनावट मे उनकी सरलता, निश्छलता और कोमलता का बहुत बडा हाथ है। वे विनय, प्रेम और सज्जनता के मूर्त रूप थे। वेशभूषा मे सीधे-सच्चे भारतीय ग्रामीण लगते थे। दुपल्ली टोपी, वृदावनी बगलबंदी, घुटनो तक धोती, गले मे अगोछा—यही उनका पहनावा था। उनकी सरलता और सादगी एक सीमा तक दैन्य मे बदल गई थी। सहमे और दबे हुए होने मे उनके जीवन की त्रासदी छिपी हुई थी। स्थितियों और विसगतियों ने उन्हे तोडकर रख दिया था। सादगी और भोलेपन को मित्रो, परिचितो और अपरिचितो ने उनकी कमजोरी और हास्य की वस्तु समझा। उनकी ठेठ

ब्रजभाषा, दुपल्ली टोपी और मिर्जई ने कई बार अपमान और ग्लानि की स्थिति मे ला दिया था। इन्दौर मे आठवे हिंदी साहित्य सम्मेलन मे आमन्त्रित होते हुए भी स्वयंसेवको ने उन्हे कई बार दुरदुराया था। उनकी बार-बार की चिरौरी—'दद्दू हमैंऊ घुसि जान देउ, हमऊ देखिगे' पर भी ध्यान नही दिया गया। ऐसे किस्से बहुत हैं। रेल मे घुसने नही दिया तो बोले, 'मिर्जई पहिनबै की जि सजा है।' अग्रेजी पढे-लिखे सत्यनारायण का यह दैन्य अपनी धरती, अपनी बोली और अपनी अस्मिता से जुडा हुआ था। वे भी निजता को खोकर अपना रूपातरण कर सकते थे, किंतु उन्होने ऐसा नही किया।

सत्यनारायण भीतर और बाहर से एक थे। कही दिखावा नही, कही मुखौटा नही। यश और धन की वाछा नही। गरीबी असह्य हुई तो बीस रुपए के वेतन पर माथुर वैश्य पाठशाला और पच्चीस रुपए मासिक पर पीपलमडी के ब्राह्मण स्कूल मे अध्यापकी कर ली। वहा भी मन न रमा तो छोड आए। गरीबी मे जीते हुए भी, हसने-हसाने और गाव वालो के साथ घुल-मिलकर रसिये गाने मे उन्हे अतीव आनद मिलता था। वे जिस कोटि के कवि थे उससे बढकर ऊचे दर्जे के मानव थे।

सत्यनारायण भावुक हृदय के प्रेमी व्यक्ति थे। गामवासी और बेतकल्लुफ होने का उन्हे नाज था :

> जो मोसो हँसि मिले होत मैं तासु निरतर चेरो।
> बस गुन ही गुन निरखत तिह-मधि सरल प्रकृति के प्रेरो ॥
> यह स्वभाव कौ रोग जानिये मेरो बस कछु नाही।
> नित नव विकल रहत याही सो सहृदय बिछुरत माँही ॥
> सदा दारू योपित सम बेबस आज्ञा मुदित प्रमानै।
> कोरो सत्य ग्राम कौ बासी कहा 'तकल्लुफ' जानै ॥

वे कविकर्म से पूरी तरह प्रतिबद्ध और समर्पित थे। अपना परिचय कविता मे और पत्र भी पद्य मे लिखा करते थे। कविता सुनाने का ढग बडा ही ललित और प्रभावी था। उनके रससिक्त कठ से कविताए सुनकर स्वामी रामतीर्थ, गाधी जी और ठाकुर रवीद्रनाथ बडे प्रभावित हुए थे।

कविता के प्रति उनका रुझान बाल्यकाल से था। छात्र-जीवन की सामान्य तुकबदियो से उनकी कविता का क्रमिक विकास हुआ। इतिहास और भूगोल को याद करने के लिए उन्हे पद्यबद्ध कर लेते थे। उनकी प्रारभिक रचनाए बालगीत, स्वागत गीत, अभिनदन, समस्यापूर्त्ति और शृंगारिक पदो के रूप मे मिलती हैं। किसी का अनुरोध टालना उनके लिए असभव था। यह जानकर बराबर लोग किसी न किसी अवसर के उपयुक्त कविता बना देने के लिए उन्हे

बाध्य किया करते थे। २२ अगस्त, १९०३ के 'भारत मित्र' मे उनकी पहली कविता छपी थी जिस पर टिप्पणी करते हुए बालमुकुद गुप्त ने लिखा था—"यह एक बालक की कविता श्रीयुत प० श्रीधरजी पाठक की मार्फत हमारे पास पहुची है। बालक तबियतदार है। यदि अभ्यास करेगा तो भविष्य मे अच्छी कविता कर सकेगा।" आगे चलकर बालक सत्यनारायण ने इसे सत्य कर दिखाया। 'सरस्वती', 'प्रताप', 'स्वदेश-बाधव' और 'चतुर्वेदी' मे इनकी रचनाएं प्रकाशित हुईं।

(१) **हृदय-तरंग**—इनकी कविताओ का सकलन 'हृदय-तरंग' के नाम से हुआ जो कवि की मृत्यु के एक वर्ष बाद १९१९ ई० मे प० बनारसीदास चतुर्वेदी ने नागरी प्रचारिणी सभा, आगरा से प्रकाशित कराया। इसी नाम से कविरत्न ने अपनी कविताओ का सकलन भरतपुर के जगन्नाथ अधिकारी के पास छपने के लिए भेजा था किंतु न जाने किसने 'हृदय-तरंग' को उडा दिया था। उनकी अनेक कोमल रचनाए इसके साथ विलीन हो गईं। 'हृदय-तरग' का दूसरा संस्करण १९४० मे प्रकाशित हुआ। 'हृदय-तरग' मे सर्वाधिक कविताए भक्ति-चेतना की है। कृष्ण, दुर्गा, शिव और हनुमान के प्रति विनय और स्तुति के पदो के साथ 'श्रीकृष्ण जन्माष्टमी' और 'गोवर्धन' जैसी वर्ण्य प्रधान लबी कविताए भी है। भाव-बोध और करुण रस की दृष्टि से उनके उपालंभ के पद बडे ललित, मार्मिक और प्रभावी हैं। उनमे शोक का घनत्व है। भक्ति और लीला के गायक होते हुए भी युग-बोध के प्रति जागरूक रचनाकार थे। उनकी भक्ति-चेतना मे सख्य-भाव और समष्टि-चेतना को प्रमुखता मिली है।

'हृदय-तरंग' का दूसरा प्रमुख स्वर राष्ट्रीय चेतना का है। देश-भक्ति, और मातृभूमि के प्रति भाव-विह्वल श्रद्धाजलिया अर्पित की गई है। इस अश मे रचनात्मक परिपक्वता है। उनका दैन्य निजी न होकर देशपरक है। अपने सामाजिक विचारो मे कवि समग्रत. अभ्युदय का अभिलाषी है। उसकी दृष्टि मे 'भारत वसुधरा' के गिरते हुए गौरव की रक्षा के लिए सकुचित भावना और सभी प्रकार की सकीर्णताओ का त्याग आवश्यक है।

कविरत्न का मन प्रकृति-परिवेश मे भी बहुत रमा है। विशेषकर ग्राम्य-प्रकृति के उन्होने सुदर बिब प्रस्तुत किए है। ऋतुओ को उन्होने एक शक्ति के रूप मे देखा है।

उनकी अधिकाश कविताए समसामयिकता से जुड़ी थी। 'हिंदू विश्वविद्यालय के लिए अपील', अफ्रीका-प्रवासी भारतीयो पर कविता, गाधी और कस्तूरबा के संवाद पर 'पति-पत्नी संवाद', कामागाटामारू जहाज की दुर्घटना पर 'श्री गुरु नानक के यात्री', 'रवीद्र वदना', 'श्री सरोजिनी षटपदी', 'तिलक वंदना', 'श्री गाधी स्तवन', 'श्री गोखले', 'लाला लाजपतराय' और

कुली-प्रथा पर 'दुखियो की पुकार' इसी प्रकार की रचनाएं हैं। सत्यनारायण समकालीन धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक आंदोलनो से जुड़े हुए थे। इनसे सबधित रचनाए उतावली की है।

'हृदय-तरग' की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रचनाएं 'भ्रमर दूत', 'ब्रजभाषा' और 'प्रेमकली' हैं। 'भ्रमर दूत' नददास के 'भवर गीत' की शैली पर लिखा गया अधूरा काव्य है। लेकिन इसके कथ्य और सवेदना सर्वथा नए हैं। गोपियो के विप्रलभ शृगार के स्थान पर माता यशोदा के वियोग वात्सल्य का अंकन हुआ है। माता यशोदा के उद्गारो के माध्यम से कवि ने अपनी राष्ट्रीय चेतना और युग-यथार्थ से गहन संसक्ति को व्यक्त किया है। 'ब्रजभाषा' मे ब्रजभाषा के प्रति अनन्य प्रेम और मार्मिक वेदना व्यक्त हुई है। 'प्रेमकली' मे प्रेम की गूढता और उसका लोकोत्तर रूप व्यक्त हुआ है।

सत्यनारायण की भाषा मे ब्रज के तद्भवीकृत और ठेठ रूप अधिक है। वे लोकजीवन से जीती-जागती भाषा को प्रयुक्त करते है। स्थानीय एव बोलचाल के शब्दों ने उनकी भाषा के लालित्य और प्रेषणीयता मे वृद्धि की है। कविरत्न ने ब्रजभाषा और ब्रजभाषा काव्य को सकीर्ण घेरे से निकालकर लोक-जीवन से सपृक्त किया है।

(२) **होरेशस**—सत्यनारायण कविरत्न की अनुवाद-प्रक्रिया की सबसे बडी विशेषता यह है कि वे मूल भावो की यथासभव रक्षा करते हुए चलते हैं। मैंकाले के खंडकाव्य का यह अनुवाद रोम के वीर युवक होरेशस की वीरता, देशभक्ति, त्याग और सजगता को प्रदर्शित करने के लिए किया है। इसके माध्यम से कवि ने स्वय की राष्ट्रीय चेतना को व्यक्त किया है। इसका प्रकाशन सन् १९१३ मे हुआ था।

(३) **उत्तररामचरित**—भवभूति के लोक-विश्रुत इस नाटक का अनुवाद कवि के जीवनकाल सन् १९१३ मे भारती भवन, फीरोजाबाद से प्रकाशित हुआ था। यह अनुवाद सरस, हृदयग्राही और प्रभावी हुआ है। राम की व्यथा को इसमे पूरी तरह उभारा गया हे। भवभूति के मूल भावो का रूपातर करते हुए इसे स्वतत्र कृति का रूप देने का प्रयास किया गया है। इसका गद्याश खडी बोली मे और पद्याश ब्रजभाषा मे है। समकालीन विद्वानो जैसे पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी और बाबू श्यामसुदरदास द्वारा यह प्रशसित रहा है। भवभूति की कविता का पूरा आनद इस अनुवाद से मिल जाता है।

(४) **मालतीमाधव**—भूमिका से ज्ञात होता है कि भवभूति के इस नाटक का अनुवाद सोमनाथ के 'माधव-विनोद' से प्रेरणा पाकर किया गया था। सन् १९१४ की वसंत ऋतु मे इसे प्रारभ कर ७ फरवरी, १९१८ को पूरा किया गया था। कविरत्न के जीवनकाल में ही इसका प्रकाशन प्रारभ हो गया

था। छह अंक तक आधा ही छप पाया था कि प्लेग के कारण प्रेस बंद हो गया। बाद मे इसका प्रकाशन कविरत्न की मृत्यु के बाद सन् १६१८ मे ही आगरा के साहित्यरत्न कार्यालय से हुआ था। कविरत्न ने अनुवाद मे श्लोको के स्थान पर मधुर सवैये रखे है। सैयद अमीर अली 'मीर' ने इसके रचनात्मक सौदर्य को व्यक्त करते हुए लिखा था :

भारत मानसजा ब्रजभाषा की,
माधुरी जामे रही सरसाई।
भाव ते भाव भरे भवभूति के,
भारतनीति की नीकी निकाई।
ओज प्रसाद-मयी कविता की,
बही सरिता सी सदा सुखदाई।
भाइ है 'मीर' मनै मनमोहिनी,
मालतीमाधव मंजुलताई ।।

इसके अतिरिक्त सत्यनारायण कविरत्न ने 'रघुवंश' और 'मुद्राराक्षस' के कुछ अंश और टेनीसन की 'ईनोक आरडिन' का अनुवाद किया था। उन्होने राजा लक्ष्मणसिंह के द्वारा अनूदित 'शकुतला' नाटक का सशोधन और 'स्वदेश बाधव' के पद्य विभाग का सपादन किया था।

ब्रजभूमि, ब्रजभाषा और कृष्णभक्त कवि का यह रचनात्मक वैभव उनकी कीर्त्ति को अक्षुण्ण बनाए रखने मे समर्थ है। परिस्थितियो से तिल-तिल टूटते कवि का असमय मे निधन नही होता तो वे अपने जीवनानुभवो और सृजनात्मकता से हिंदी कविता को और भी समृद्ध कर जाते।

समकालीन परिवेश

आधुनिक काव्य-चेतना का इतिहास सन् १८५० से माना जाता है। इसी वर्ष आधुनिक काव्य-बोध के सूत्रधार भारतेन्दु हरिश्चंद्र का जन्म हुआ। इस काल तक रीतिकालीन कविता एक प्रकार की जडता और रूढिवादिता के कारण निस्पद और एकरस हो गई थी। इस समय के कवियो की वाणी मौलिक प्रदेय से विहीन होकर बनी-बनाई रूढियो और सरणियो के माध्यम से कुछ चुने हुए लोगो या सामतो के कानो तक पहुच रही थी। आधुनिक काल मे उसे गति मिली। जडता का जाल छिन्न-भिन्न हुआ। कविता के क्षेत्र मे वैचारिक क्राति के साथ-साथ अभिव्यजना-शिल्प मे भी बडा भारी परिवर्तन दिखाई पडा। इस बदलाव की प्रक्रिया को भली भांति हृदयगम करने के लिए उन नवीन परिस्थितियो, शक्तियों, भावो और विचारो को समझना आवश्यक

है, जो इस नयी चेतना को जगाने मे उत्तरदायी रहे हैं।

हिंदी साहित्य के इतिहास मे आधुनिक काल प्रायः अग्रेजी राज्य से संवद्ध किया जाता है। १७०७ ई० मे औरगजेब की मृत्यु के पश्चात् ह्रासोन्मुख मुगल सत्ता को प्रवल झटका देकर अग्रेजी राज्य की स्थापना हुई, जिसने शनैः-शनैः समस्त भारत को अपने शिकजे मे कस लिया। हिंदी काव्य का यह युग रीतिकाल था। जो परपराए और मान्यताए किसी समय सजीव और स्पदन-युक्त थी, वे अव जड हो गई थी, किंतु जीवन-क्रम पर उनका कठोर शासन था। परपरा से प्राप्त आदर्श, विचार और दृष्टिकोण अव भी स्वीकृत थे, किंतु अव उनमे मौलिकता और शक्ति शेप नही रही थी। कोई नया और मौलिक दृष्टिकोण या क्रातिकारी विचार, जो जीवन को नया मोड़ या नयी दिशा दे सके, इस युग मे स्फुरित नही हुआ। दूसरे, इस युग मे रीतिप्रियता ने प्रधानता प्राप्त कर ली थी।

उन्नीसवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे रीतिवद्ध कविता से विचित्र जडता फैल गई थी। जनता और सत्ताधारी के मध्य गहरी खाई खुदी हुई थी। सामाजिक इकाई समाप्त हो रही थी। प्रताडित जनता इसे दैवीय प्रतारणा समझकर भिक्षाजीवी बनी हुई थी। इन परिस्थितियो का प्रतिफलन जीवन-विकलन और सुदृढ रूढिवद्धता मे प्रकट हुआ। सुदूर पश्चिम से आए गौराग वणिको का जाल भारतीयो को कसता गया। मराठा और मुगल साम्राज्य के निश्शेप दीपक इस झझावात के प्रवल झोके का सामना नही कर सके। सामतो ने घुटने टेक दिए। राजाओ ने मुकुट झुका दिए। इस विदेशी सत्ता के विरुद्ध व्यापक आक्रोश और जाग्रति दृष्टिगत हुई। जव सव कुछ खोकर देश ने स्वय को अपने ही घर मे परित्यक्त पाया, तव सार्वजनिक शत्रु की स्वीकृति के साथ देश मे व्यापक वधुत्व का उन्मेष हुआ, जिसने १८५७ के स्वाधीनता-संग्राम को टेक दी। एक महान् और स्वाभिमानी देश के लिए यह सर्वथा उपयुक्त था, किंतु वहुत देर हो चुकी थी। सामती सत्ता के विच्छिन्न होने से सामती काव्य का मेरुदड टूट गया था। फलत काव्य मे नयी धारा चली। पुरानी परिपाटी के लोग भी चले, नवीन परिपाटी भी क्राति लेकर आगे वढी। इस युग के कवि ने परिपाटी-विहित और रूढिग्रस्त कविता छोडकर जगत् को नयी आखों से देखा।

सामाजिक चेतना प्रवुद्ध हुई। नवीन शिक्षा और वैज्ञानिक आविष्कारो के फलस्वरूप विविध प्रकार के आदोलनो से जीवन स्पदित हो उठा। भारतवासी अपना अलसाया हुआ जीवन छोडकर आगे वढे। अग्निशय्या के दहकते अगारो पर वलपूर्वक सती वनाने की प्रथा का कट्टर विरोध हुआ। राजा राममोहन राय ने सती प्रथा के लोमहर्षक दृश्यो को देखकर, उसे अवैध घोपित कराने के लिए आदोलन किया। वाह्याचारो का खडन हुआ। धर्म और दर्शन

के क्षेत्र मे क्रातिकारी आदोलन का सूत्रपात हुआ। राजा राममोहन राय ने विविध धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन किया और उसे पृष्ठभूमि बनाकर ब्राह्म-समाज के रूप मे उन मान्यताओ की प्रतिष्ठा की, जो उनके अनुसार हिंदू धर्म की मूल और विशुद्ध मान्यताएं थी। उनकी प्रेरणा से वैज्ञानिक सभ्यता का स्वीकार आधुनिक भारत की एक प्रमुख विशिष्टता है।

यहां से लेकर सन् १६२० तक ऐसी भूमिका तैयार होती है जो पहले से कही उदार और व्यापक है। इस भूमिका के निर्माण मे केशवचंद्र सेन, दयानद सरस्वती और विवेकानद का विशेष योगदान दिखाई पड़ता है। सेन पश्चिमीकरण पर बल देते थे। दयानंद सरस्वती पश्चिमीकरण का त्याग ही उचित नही समझते थे, अपितु वेदो को सर्वोपरि तथा ईश्वरीय ज्ञान घोषित करते थे। विवेकानद ने वेदात के आध्यात्मिक ज्ञान को पश्चिम मे फैलाकर सिद्ध कर दिया कि भारत पराधीन और व्यक्तित्वहीन राज होते हुए भी आध्यात्मिक दृष्टि से सर्वोपरि है। दूसरी ओर प्रजातंत्र के आदर्श, समानता, बधुत्व और विज्ञान के पाश्चात्य प्रदेय को ग्रहण करने पर बल दिया। इस प्रकार विवेकानद ने ऐसे नये भारत की कल्पना की जिसका स्वरूप पूर्व और पश्चिम के सम्यक् योग से निष्पन्न है।

ये तीनो दृष्टिया सामयिक स्थितियो की मानसिकता व सोच का प्रतिनिधित्व करती हैं। हीनता-बोध से उबरने के लिए ये तीन रास्ते सुझाती थी। हीनता से मुक्ति पाने का एक उपाय यह है कि हीनता-बोध को जगाने वाली शक्ति के समान ही बना जाए। सेन के पश्चिमीकरण के मूल मे यह दृष्टि थी। दूसरा उपाय हीनता-बोध जगाने वाली शक्ति से नितात असपृक्त रहकर अपनी विशिष्ट सत्ता, अप्रतिम शक्ति और क्षमता को सिद्ध किया जाए, इस पर बल देता था। दयानद सरस्वती की यही दृष्टि थी। ये दोनो दृष्टिया आत्मशून्यता और पराङ्मुखता की कमजोरियो को लिए हुई थी। अनुकरण और नकार दोनो ही जीवन के विकास की क्षमता से रहित होते है। तीसरी दृष्टि विवेकानंद की समन्वयवादी दृष्टि थी, जिसमे यथार्थ की स्वीकृति सन्निहित थी। यह दृष्टि समग्र और सार्थक थी। इन दृष्टियो ने भारतीयो को रूढिवाद से स्वतंत्र चितन की ओर अग्रसर किया। हीनताबोध से मुक्ति दिलाकर आत्मविश्वास जगाया और परपरा के आवश्यक रिक्थ को युग के अनुरूप ढाला और ग्राह्य बनाया।

इस जागरण युग मे महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर, स्वामी रामतीर्थ, रामकृष्ण परमहस और थियोसोफिकल सोसाइटी के कार्यकर्ताओ ने भी विचारणाए प्रस्तुत की। शिक्षा के पश्चिमीकरण ने चितन के नये आयामो को खोल दिया। इन सबसे स्वतंत्रता, साहसिकता और नयी उपलब्धियो के लिए सुदृढ आधार-भूमि

तैयार हुई। सामाजिक चेतना और सघटना मे परिवर्तन लक्षित होने लगे। नारी सजग हुई। वाल-विवाह और वृद्ध-विवाह का विरोध हुआ। इस अवधि मे वे उपकरण निर्मित हुए जो हमारी स्वतत्रता की आकाक्षा को आधार प्रदान करते हुए उसकी उपलब्धि का साधन भी बने।

पुनर्जागरण के इस प्रारभिक दौर का प्रभाव भारतेन्दु युगीन कवि-कृतित्व पर भी पडा। भारतेन्दु युग का काव्यफलक अत्यत व्यापक है। एक ओर उसमे भक्तिकालीन और रीतिकालीन काव्य-प्रवृत्तिया मुखरित हुई है तो दूसरी ओर समकालीन परिवेश के प्रति जागरूकता स्पष्ट दिखाई पडती है। राष्ट्रीय चेतना से अनुस्यूत इस कविता ने सामती दरबारो की चहारदीवारी से निकलकर जनजीवन से ससर्ग व्यक्त किया और साथ ही, अपने मूल्यवान अगराग एव आभरणो का तिरस्कार करके खुली हवा मे सास ली। जनमानस मे स्वाभिमान जगाने का इसने महत्त्वपूर्ण कार्य किया। देश-प्रेम की भावना से प्रेरित होकर कभी यह अतीत की महिमा का गुणगान करती है, कभी महान् राष्ट्र के दयनीय पतन पर आसू बहाती है। कभी अतीत से प्रेरणा लेकर पुनः उस गौरव को पाने के लिए आह्वान करती है।

सन् १९०० से १९२० तक हिंदी का द्विवेदी युग है। मर्यादावाद और आदर्शवाद इसके प्रमुख लक्षण हैं। पुनर्जागरण की चेतना इस युग मे प्रबल रूप से दिखाई पडने लगती है। भारतीय सस्कृति और मर्यादा, पाश्चात्य अवाछित तत्त्वो के लिए ढाल सदृश उपयोगी सिद्ध हो रही थी। पाश्चात्य तत्त्वो को औपचारिक रूप से ही स्वीकृत किया गया। भारतीय सस्कृति मे आस्था रखते हुए भी नवीन परिस्थितियो के साथ समायोजन किया गया।

सन् १८८६ मे अखिल भारतीय काग्रेस की स्थापना के साथ ही राजनीतिक चेतना का अभ्युदय होता है। प्रारभ मे यह कुछ मांग पेश करने वाली सस्था थी। १९०५-६ मे बग-आदोलन के माध्यम से इसने सघर्ष का प्रथम स्वाद चखा और स्वदेशी का मत्र सीखा। इस दौरान भारतीय जनता मे आक्रोश धीरे-धीरे सचित हो रहा था। अग्रेजो ने यहा के उद्योग-धंधो की ओर ध्यान न देकर कच्चे माल को लकाशायर और मेनचैस्टर के कारखानो मे भेजना प्रारभ कर दिया और वहा के बने हुए माल की यहा खपत की जा रही थी। देश का धन बाहर जाने से भारत निर्धन हो गया था। निरतर पडने वाले दुर्भिक्षो ने भारतवासियो की कमर तोड दी। भारतीय जनता ने अत्याचारो और विपन्नता का मूल कारण परतंत्रता को माना। फलतः जनता ने स्वतंत्रता की माग की। सयोग से इस जनचेतना को सही दिशा देने के लिए गोपालकृष्ण गोखले तथा बालगगाधर तिलक जैसे मेधावी और कर्मठ नेता मिल गए। 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' की धूम मच गई। देश अपने प्रति

आश्वस्त होकर शासको से औपनिवेशिक स्वतंत्रता की माग करने लगता है। सन् २० के आस-पास देश की प्रतिनिधि राजनीतिक सस्था काग्रेस का अधिनायकत्व युग-पुरुष महात्मा गाधी के हाथो मे आ जाता है। उनकी विलक्षण प्रेरणा से यह सस्था शीघ्र ही एक सुसंगठित और प्रचड राष्ट्रीय अस्त्र बन जाती है, वह अमोघ अस्त्र, जो एक दिन राजनीतिक स्वतत्रता को सिद्ध कर देता है।

भारतेन्दु युगीन कविता जहा मात्र भारत-दुर्दशा पर दु:ख प्रकट करके रह गई थी, वहा द्विवेदीकालीन कविता ने देश की दुर्दशा के चित्रण के साथ-साथ देशवासियो को स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए प्रेरणा दी और उन्हे आत्मोत्सर्ग एवं बलिदान का मार्ग भी दिखाया। द्विवेदी युग के अधिकाश कवियो ने प्रारंभ मे ब्रजभाषा मे काव्य-रचना की, फिर खडी बोली मे काव्य-रचना करने लगे। खडी बोली की खरखराहट के बीच सत्यनारायण कविरत्न, जगन्नाथदास रत्नाकर और वियोगी हरि ऐसे कवि थे जो ब्रज-माधुरी मे आकठ डूबे रहे। पुनर्जागरण काल की काव्य-चेतना का प्रभाव सत्यनारायण कविरत्न के कृतित्व पर पडा।

(३) **रचना-सौंदर्य**—भारतेन्दुयुगीन काव्य-चेतना का प्रतिफलन और परिष्कार द्विवेदीयुगीन कविता मे दिखाई पडता है। सत्यनारायण कविरत्न के काव्य मे परपरा और आधुनिकता का अद्भुत समन्वय मिलता है। एक ओर उनकी भक्ति-चेतना भक्तिकालीन कवियो के समीप है और दूसरी ओर राष्ट्रीय चेतना नितात समकालीन कवियो के समान प्रबल थी। उनकी कविता का प्रारभ सामान्य तुकबदियो से हुआ। प्रारभिक रचनाए बालगीत, स्वागत गीत, अभिनदन, समस्यापूर्त्ति और शृगारिक पदो के रूप मे मिलती है। समस्या पूर्त्ति भारतेन्दु युग की अत्यत लोकप्रिय काव्य-पद्धति थी। काव्य-प्रतिभा और रचनाकौशल परखने के लिए कवि-समाजो और गोष्ठियो मे कठिन से कठिन विषयो पर समस्यापूर्त्ति कराई जाती थी। समस्यापूर्त्ति के लिए प्रेमघन, लछिराम, विजयानद त्रिपाठी, गोविंद गिल्लाभाई, बेनी द्विज, ब्रजचद वल्लभीय आदि कवियो को पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त हुई थी। रीतिकालीन दरबारी सस्कृति की यह देन महावीरप्रसाद द्विवेदी द्वारा 'वाणी की विगर्हणा' कहने पर भी, ब्रजभाषा मे चलती रही। रत्नाकर, कविरत्न, हरिऔध, पूर्ण, सनेही, शकर आदि कवियो ने इस परपरा को बढाया। कानपुर से 'सनेही' द्वारा सपादित सुकवि' और कलकत्ता से रमाकात त्रिपाठी 'प्रकाश' द्वारा सपादित काव्य 'कलाधर' के माध्यम से समस्यापूर्त्तियो का प्रकाशन हुआ। 'काशी-कवि-समाज' मे रत्नाकर और कानपुर के 'रसिक समाज' और उसके दो पत्रो—'रसिक वाटिका' और 'रसिक मित्र' मे राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' इस परपरा को लोकप्रिय बनाते रहे।

द्विवेदीयुगीन समस्यापूर्त्तियो मे रीतिकालीन उक्तिवैचित्र्य, चमत्कार वृत्ति और कल्पना की अतिशयता आदि प्रवृत्तिया मिलती है । सत्यनारायण कविरत्न ने 'विलाई वैठी तप को', 'धोए धोए पातन की वात ही निराली है', 'मेरे दु ख देवा को कलेवा करि कालिका', 'वसत वरस्यो परै', 'चद की ज्यो ज्योति मद परत सी जाति है', 'वृषभानु सुधा नद-नदन के', 'पिचकारी पियारी पै छाडि दई' और 'छतिया फटिगी पै दरार न आई' आदि समस्यापूर्त्तिया लिखी । उनमे सामयिक युग-वोध की अपेक्षा परपरागत भावनाओ की ही अधिक अभिव्यक्ति हुई है ।

सत्यनारायण कविरत्न के काव्य मे राष्ट्रीय चेतना का स्वर सशक्त रूप से उभरा है । उसमे परतत्रता से मुक्ति का सदेश और अतीत का गौरवपूर्ण गान सन्निहित है । देश की विपन्नता, सामाजिक कुरीतियो, रूढ़ियो और आडवरो का स्पष्ट व उग्र स्वर मे वर्णन किया है । स्वदेशी वस्तुओ के उपयोग और विदेशी वस्तुओ के वहिष्कार पर वल दिया है । 'मातृ-वंदना' कविता मे उन्होने राष्ट्रीय प्रेम को अभिव्यक्त करते हुए देश की तत्कालीन स्थिति से क्षुब्ध होकर कहा है :

> सव मिलि पूजिय भारत-माई ।
>
> × × ×
>
> प्रिय-स्वदेश व्यापार अर्थ-जल, सिंचन करहु वनाई ।
> जपहु मुदित मन सत्य मत्र 'वन्देमातरम्' सुहाई ॥
>
> × × ×
>
> वन्दौ भारत-भुवि महतारी ।
> शेष अस्थि पिंजर वस केवल, भययुत चकित विचारी ॥
> रोग अकाल दुकाल सताई जीरन देह दुखारी ।
> मुरझाई माधवी लता सी, जनु पालें की मारी ॥

'मातृभूमि-महिमा', 'वन्देमातरम्', 'मेरी मातृभूमि', 'हिंद वंदना', 'मातृभूमि-प्रेम', 'स्वतत्रते', 'अव उद्धार कैसे हो', 'भारतमाता', 'भगवन् मेरा देश जगाना', 'भारत विलाप', 'शिव-भारत', 'प्रार्थना', और 'करुण क्रदन' मे अतीत का गौरव, वर्तमान की दुर्दशा, परतंत्रता मे मुक्ति, स्वतंत्रता के लिए त्याग और वलिदान के लिए आह्वान किया गया है। आत्मालोचन की प्रवृत्ति भी इन कविताओ मे भरपूर है .

> दोप कहौ किन दीजै जू वीर अपनौ ही दाम खोटौ ।
> जो भारत हो जगत शिरोमणि, वो ही सवन मे छोटौ ॥

वेद पुराण महर्षि रचेजो, बन मे बाँधि लँगोटौ।
प्रकट अश्रद्धा तिनहि दिखावत, लेत चढाय निकोटौ॥

इस संदर्भ मे उन्होने पौराणिक मिथको और ऐतिहासिक कथाओ को भी प्रयुक्त किया है। उनकी राष्ट्रीय चेतना मातृभाषा विषयक प्रबुद्धता मे भी दिखाई देती है। उन्हे यह अहसास था कि मातृभाषा के माध्यम से ही भावात्मक एकता, जातीयता और राष्ट्रीयता की भावना को जगाया जा सकता है। इसलिए उन्होने कहा था :

नागरी पढौ सप्रीति। पालहु निज धर्म रीति।
सकल चलहु स्वकुल रीति। रहहु न मन मारे।

अपनी प्रशस्तियो मे भी उन्होने हिंदी के उपकार की कामना की है :

जैसी करि कृतारथ तुम अग्रेजी भाषा,
तिमि हिन्दी उपकार करहुगे ऐसी आशा।
(कवि रवीद्र के अभिनदन से)

× × ×

मोहन प्यारे तुम सो निसदिन विनय विनीत हमारी।
हिन्दू हिन्दी हिन्द देश के बनहु सत्य हितकारी॥
(गाधी स्तवन)

जातीय चेतना और राष्ट्रीयता का प्रबल रूप सत्यनारायण के 'भ्रमरदूत' और भक्ति-चेतना विषयक कविताओ मे भी व्यक्त हुआ है।

भक्ति-चेतना कविरत्न की रचनाओ का दूसरा प्रमुख स्वर है। उनकी भक्ति-भावना भक्तिकालीन कवियो और भारतेन्दु से साम्य रखती है। भक्तिपरक रचनाओ मे कविरत्न का व्यक्तित्व सरस एव भावुक कवि का है। उनकी धार्मिक भावना आधुनिक-बोध से भी जुडी हुई है। यह वैयक्तिक होते हुए भी समाजोन्मुख है। अपनी जनवादी परपरा मे वह लोक-कल्याण और मानवतावाद से ओत-प्रोत है। कृष्ण, शिव, हनुमान आदि देवी-देवताओ की स्तुतियो और विनय के पदो मे उन्होने परपरागत भक्तिभावना को व्यक्त करते हुए भी उपालभो के माध्यम से नवीन भाव-बोध को प्रमुखता दी है। उनके उपालंभ बडे सरस और शोक के घनत्व को लिए हुए है :

माधव अब न अधिक तरसैये।
जैसी करत सदा सो आगै, वुही दया दरसैये।

× × ×

मोहन अजहुँ दया हिय लावौ।
मौन-मुहर कबलौं टूटैगी, हरे! न और सतावौ॥

'माधव आप सदा के कोरे', 'माधव तुमहूँ भये बेगाने' जैसे उपालंभों में आत्मीयता, हृदय का मान और गहरा अनुताप व्यक्त हुआ है। उनकी भक्ति-पद्धति में सख्य-भाव और समष्टि-चेतना को प्रमुखता मिली है।

कविरत्न का काव्य भावुकतापूर्ण और आडंबर रहित है। उनके काव्य में प्रकृति-परिवेश संवेदनशीलता, विविध रूपात्मकता और स्वतंत्र सत्ता के रूप में व्यक्त हुआ है। प्रकृति वहाँ चमत्कृति का माध्यम नहीं, अपितु सहजता और स्वाभाविकता के रूप में अवतरित हुई है। इस काल के ब्रजभाषा कवियों ने प्रकृति-चित्रण की रूढ़िबद्धता को तोड़ा और ग्राम्य-प्रकृति के सुंदर चित्र प्रस्तुत किए। सत्यनारायण के काव्य में ये चित्र मनोरम हैं। उन्होंने उपेक्षित प्रकृति को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया:

कोऊ सरसों-सुमन फूल जो निरखो बाँधत।
गरियारन गोरिन के संग कोऊ चुहल मचावत॥
बरस दिना की आस पुजावन कनक मिटावन।
नाचि सजाय बजाय लगैं गावन में गावन॥
कहुँ गँवार गम्भीर बसन्ती बसन्त रंगावत।
जो तव स्वच्छ स्वरूप सदा सबके मन भावत॥
उधम उमड्यो परत रच्यो लग तव रंग रागन।
गारी पिचकारी तारिन सों तेरो स्वागत॥

मानवीकरण, प्रतीक-विधान और बिंब-ग्रहण आदि के लिए भी उन्होंने प्रकृति को प्रयुक्त किया है।

समसामयिक प्रसंगों को लेकर कविरत्न ने 'हिंदू विश्वविद्यालय के लिए अपील', गांधी और कस्तूरबा के संवाद पर 'पति-पत्नी संवाद', कामागाटामारू जहाज की दुर्घटना पर 'श्री गुरु नानक के यात्री' और कुली प्रथा पर 'दुखियों की पुकार' कविताएं लिखीं। उनका काव्य युग यथार्थ और सामाजिक चेतना को लिए हुए है। सजग युग-द्रष्टा के रूप में उन्होंने अपने समय की प्रमुख समस्याओं, जैसे राजनीतिक पराधीनता, महंगाई, अकाल, भारतीय धन का विदेश गमन, सामाजिक वैषम्य, धार्मिक रूढ़िवादिता और नैतिक पतन आदि को चित्रित किया। . भेद, जाति भेद और विसंगतियों के प्रति उनके मन में गहरा अनुताप था:

मौज उड़ैं खलनि की, करि मित्र भेद।
मारे फिरें सुजन नित्य उठाइ खेद॥

उत्साह वर्द्धि तिनके चित न सम्हारो।
तौ लौ बताउ जिय में कस धीर धारो॥

युग-चेतना, समकालीन स्थितियो और देश की दुर्दशा के चित्र 'भ्रमर दूत' मे प्रभावी ढग से आए है। यशोदा नारी शिक्षा का समर्थन करते हुए कहती है :

नारी शिक्षा निरादरत जे लोग अनारी।
ते स्वदेस-अवनति प्रचंड-पातक अधिकारी॥
निरखि हाल मेरो प्रथम, लेउ समुझि, सब कोइ।
विद्या-बल लहि मति परम अबला सबला होइ
लखौ अजमाइ कै॥

'भ्रमर दूत' मे राष्ट्रीय भावना की सशक्त व्यंजना हुई है। उसमे आत्मानुभूति का उद्वेग है :

जननी-जन्मभूमि सुनियत स्वर्गहु सो प्यारी।
सो तजि सबरो मोह साँवरे तुमनि बिसारी।
× × ×
भये सकुचित हृदय भीरु अब ऐसे भय मे।
काउ को विश्वास न निज जातीय-उदय मे।
लखियत कोउ रीति न भली, नहि पूरब अनुराग।
अपनी-अपनी ढापुली, अपनो अपनो राग
अलापै जोर सो॥

'भ्रमर दूत' कथ्य की नवीनता को लिए हुए है। इसमे न उद्धव का ब्रज-आगमन होता है और न उद्धव-गोपी सवाद है। इसमे केवल दो पात्र है—यशोदा और भ्रमर। भ्रमर को दिया गया सदेश शोकाकुल मां की वेदना को व्यक्त करता है। कवि ने आधुनिक सदर्भ से जोडकर प्रतीकीकरण भी किया है। ब्रज भारत का प्रतीक है। यशोदा भारतमाता का प्रतिनिधित्व करती है। भ्रमर के प्रति दिए गए उपालभ मे कवि ने वडे कौशल से स्त्री शिक्षा, देशप्रेम, भारतीय सांस्कृतिक गरिमा, ग्राम्य परिवेश की महत्ता के साथ जातीयता, परतंत्रता, अकाल, आर्थिक शोषण की समस्याओ को भी जोड दिया है। कवि का विचार है कि आलस्य, रूढिग्रस्तता और पारस्परिक वैमनस्य के रहते हुए स्वतत्रता मिल नही सकती। इसलिए यशोदा के मुह से कहलवाया है :

वा बिनु ग्वालन को, हित की बात सुनावै।
अरु स्वतत्रता, समता, सहभ्रातृता सिखावै॥

यदपि सकल विधि ये सहत, दारुण अत्याचार ।
पै न कछू मुख सो कहत, कोरे बने गँवार ।।
कोऊ अगुवा नही ।

द्विवेदी युगीन बौद्धिकता, आदर्शवाद और नैतिकता सत्यनारायण के 'भ्रमरदूत' मे पूरी तरह उभरे हैं । यद्यपि उनकी कुछ रचनाओ मे द्विवेदी-युगीन उपदेशमूलकता और मर्यादावादी आग्रह उभर कर आया है किंतु अपने हृदय की सरसता और सवेदनशीलता से वे कथ्य को प्रभावी बनाने मे सफल हो जाते हैं । 'भ्रमरदूत' इसी दृष्टि से उनकी विशिष्ट रचना है । उसमे नूतन एव मौलिक उद्भावनाओ को स्थान दिया गया है । शैली नंददास के 'भँवर-गीत' का अनुगमन करती है ।

'भ्रमरदूत' के समान 'ब्रजभाषा' और 'प्रेमकली' उनकी लबी कविताएं हैं । कविरत्न ने 'प्रेमकली को 'प्रेम का स्वरूप', 'प्रेम का आखर' और 'सबद' कहकर प्रेम के सामान्य स्तर से विश्वबधुत्व तक उसका प्रसार दिखाया है । 'प्रेमकली' मे शृगार के मासल रूप की अपेक्षा स्वस्थ प्रेम का चित्रण है । उनके 'श्री राधामाधव विलास' मे भी राधामाधव की प्रणयकेलि का चित्रण संयमित और मर्यादित है । पुनर्जागरण की वैचारिक क्राति से प्रभावित होकर सत्यनारायण ने नारी विषयक रूढियो को तोडने मे तत्परता दिखाई है । 'प्रेमकली' के चित्रण मे लोकरीतियो की सुदर अभिव्यंजना है । इस प्रकार सत्यनारायण कविरत्न ने प्रेम के युग-सापेक्ष एव नवीन रूप को व्यंजित किया है । वह एक सार्वभौम और मगलकारी शक्ति के रूप मे आया है ।

सत्यनारायण कविरत्न का ब्रजभाषा, ब्रजपति और ब्रजभूमि से अनन्य प्रेम था । इदौर के पहले साहित्य सम्मेलन के अवसर पर वहा की काली मिट्टी देखकर उन्होने कहा था, "या माटी को तो हमारे कन्हैया न खाते ।" पंचम हिंदी सम्मेलन के अवसर पर पढी गई कविता 'श्री ब्रजभाषा' उनकी श्रेष्ठ रचना है । अपनी काव्य-भाषा के प्रति ऐसी निष्ठा, अपूर्व लगाव और प्रतिबद्धता अन्य कवियो मे बहुत कम दिखाई पडती है—

सजन सरस घनश्याम अब, दीजै रस बरसाय ।
जासो ब्रज-भाषा-लता, हरी-भरी लहराय ।।

× × ×

बरनन को करि सकत भला तिह भाषा-कोटी ।
मचलि मचलि जामे माँगी हरि माखन रोटी ।।

× × ×

बंग और महाराष्ट्र सुभग गुजरात देस मे।
अटक-कटक पर्य्यन्त कहिय भारत असेस में ।।
एक राष्ट्रभाषा की त्रुटि जो पूरत आई।
इतने दिन सो करति रही तुम्हरी सेवकाई ।।

× × ×

क्यो जासो मन फिरचौ कृपा करि कछुक जतावौ।
बृथा आतमा या ब्रजभाषा की न सतावौ ।।

सभा-सम्मेलनो मे कष्ट उठाकर सम्मिलित होने का उनका उद्देश्य था—"मै तो ब्रजभाषा की पुकार लै कै जरूर जाऊंगो, और कछु नायं तो ब्रजभाषा सुरसरी की हिलोर में सबको भिजाय तो आऊगो।" ब्रजभाषा से यह प्रवल अनुराग, हारी हुई बाजी को आखिरी बार सभालने का प्रयास-भर था और सत्यनारायण हारे हुए घायल सेनापति की तरह उसकी ध्वजा को ऊपर उठाये हुए थे।

सत्यनारायण कविरत्न ने लोगों की मांग पर भरती की रचनाएं भी लिखी। उनकी रचनाओ मे कुछ अश 'फेक' है। प्रशस्तिया, तुकबंदिया और कुछ इतिवृत्तात्मक कविताएं इसी कोटि की है। इनमे कवि की स्वयंस्फूर्त प्रतिभा का संस्पर्श नही है।

उनके काव्य मे परपरागत ब्रजभाषा न होकर, बोलचाल की जीवत भाषा है। बहुत से स्थानीय मुहावरो, शब्दो और रूपो का उन्होने सौष्ठवपूर्ण प्रयोग करके काव्य-भाषा के क्षेत्र मे अपनी अलग पहचान बनाई है। इसके लिए एक दृष्टात पर्याप्त होगा ·

माधव तुमहुँ भयँ बेसाख।
वुही ढाक के तीन पात है, करौ क्यो न कोउ लाख ।।
भक्त अभक्त एक से निरखत, कहा होत गुन गाये।
जैसी खीर खवाये तुमको वैसोहि सीग दिखाये ।।
सबै धान बाईस पसेरी, नित तोलन सो काम।
बलिहारी, नहिं विदित तुम्हे कछु ऊँच नीच कौ नाम ।।
बे-पेंदी के लोटा के सम, तव मति गति दरसावै।
यह कछु को कछु काज करत मे, तुमहिं लाज नहिं आवै ।।

उनका रूप-बंध भी वैविध्यपूर्ण है। रसिया, पद, छप्पय, कुडलिया, अष्टक, षट्पदी, दोहा, शोकगीत और गजल आदि प्राचीन-नवीन रचना-पद्धतियों का उन्होने प्रयोग किया है। उन्होने मध्ययुगीन भक्ति और शृगार परंपराओं को नये भाव-बोध से संपन्न किया है। कृष्णभक्ति और कृष्णलीला के गायक होते

हुए भी वे युग-चेतना के प्रति पर्याप्त जागरूक थे। ग्राम्य प्रकृति के विविध चित्रों का उन्होने उन्मुक्त चित्रण किया है। उन्होने व्रजभाषा और व्रजभाषा काव्य को उसके सकीर्ण वृत्त से बाहर निकालकर जनजीवन से जोडा। उनकी भाषा मे साहित्यिक सौंदर्य के साथ लोक-चेतना की भी रक्षा हुई है। अपने रूप-निर्माण की इस प्रक्रिया मे कविरत्न का व्रजभाषा काव्य सहज ही सरस और प्रेषणीय वन गया है।

'सत्यनारायण ग्रथावली' मे कविरत्न की प्रकाशित और अप्रकाशित रचनाओ को विविध स्रोतो से उपलब्ध करके सपादित किया गया है। इसमे ऐसी अनेक रचनाए हैं जो उनके 'हृदय-तरग' मे नही थी। 'हृदय-तरग' के दोनो सस्करणो के पाठ शुद्ध नही थे। वहुत कमिया और भूलें थी। मुद्रण भी दोषपूर्ण हुआ था। इन दोषो का परिहार करके शुद्ध पाठ प्रस्तुत करने की चेष्टा 'ग्रथावली' मे की गई है। व्रज की प्रकृति, उसके औकारांत रूप, उकार वहुला प्रकृति, तिर्यक सर्वनामो के रूप, अनुतान, ध्वनि-भेद, परसर्गों और उपसर्गों के प्रयोग, वोलचाल और लिखने की भिन्नता, वर्तमानकालिक और भूतकालिक कृदतो और अनुनासिकता का पूरा ध्यान रखा गया है, फिर भी अपनी भाषिक सरचना मे सत्यनारायण कविरत्न ने काफी छूट ली है, इसलिए भाषावैज्ञानिक चौखटे मे उसे अटाना, फिर कमियो को छाराकर वीनना वेमानी है। उनकी भाषा का माधुर्य, लोच और लालित्य इतना खिचाव भरा है कि वाकी चीजें स्वतः ही गौण हो जाती हैं।

पं० सत्यनारायण शर्मा कविरत्न की कविताओ के दौर से गुजरना मेरे लिए सुखद अनुभव रहा है। तीस वर्ष पूर्व सत्यनारायण कविरत्न पर इतना प्रभावी सस्मरण पढा था कि अरसे के वाद भी सत्यनारायण ज़ेहन से नही उतरे थे। हिंदी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार और विद्यापीठ के निदेशक पं० विद्यानिवास मिश्र ने सितवर '७८ मे जव यह काम सौंपा तो अच्छा ही लगा। रचनाए पढकर कवि-व्यक्तित्व और काव्य-व्यक्तित्व की अनेक पर्तें खुलती चली गईं और कवि के जीवन और साहित्य की त्रासदी से अजीव रिश्ता कायम होता चला गया। श्रद्धेय पं० विद्यानिवास जी की प्रेरणा न होती तो ग्रथावली का पूरा होना असभव था।

वकील प० पद्मसिह शर्मा—सत्यनारायण स्मृति के 'मसीहा'—पं० वनारसीदास चतुर्वेदी इस वृद्धावस्था मे भी सत्यनारायण की स्मृति के लिए कितने चिंतित थे, इसका अहसास उनके पत्रो से होता है। उन्होंने सलाह, प्रेरणा और सामग्री दी, इसके लिए हिंदी के इस वृद्ध सत के प्रति श्रद्धावनत हूं।

अपनी वढ़ती उम्र और दमा के भरपूर असर के वावजूद श्रद्धेय डॉ० सत्येन्द्र

ने कुछ कविताओ के संपादन मे सहयोग दिया, दिशा दी; इसके लिए कृतज्ञ हूं।

विद्यापीठ मे सत्यनारायण जन्मशती श्री डोरीलाल अग्रवाल की अध्यक्षता मे मनाई गई। वे सत्यनारायण से आत्मीयता का अनुभव करते रहे है। इसका प्रमाण है 'अमर उजाला' का 'सत्यनारायण अक'। इसके लिए मैं उनका आभार व्यक्त करता हू। 'कलाकुज' के सत्यनारायण 'छविरत्न' ने कविरत्न की छवि को अपने कैमरा मे बाधकर, चित्र सुलभ कराया, इसके लिए वे साधुवाद के पात्र है।

पांडुलिपि तैयार करने मे मेरे शोध-स्नातको—श्री कृष्णगोपाल कपूर, श्री देवराज, श्री ठाकुरदास शर्मा 'दिनकर', कु० नीलम और श्रीमती राजकुमारी ने सहयोग दिया, इसके लिए वे स्नेह और धन्यवाद के पात्र है।

—गोविंद रजनीश

२० नवंबर, १९८०

प्रथम खंड
(मौलिक रचनाएँ)

हृदय-तरंग

दरसत चचल चित हरत, परसत भरत उमग ।
बरसत रस मज्जन करत, सरसत हृदय तरंग ।।

भक्ति-चेतना

[१]

श्री जगदीश

कोरौ प्रभो ! न यो टरकावौ, वैसे सवके ईस ।।
बहुत दिना मे खबर लई है, अव तो रस बरसावौ ।
सत्य सरसता कौ नित नूतन, सवको स्वाद चखावौ ।।

[२]

मगलाचरण

तिहारौ को पावै प्रभु पार ।
बिपुल सृष्टि नित नव विचित्र के चित्रकार आधार ।।
मकरी के सम जगत-जाल यहि, सृजत और बिस्तारत ।
कौतुक ही मे हरत ताहि पुनि, वेद पुरान उचारत ।।
जग मे तुम औ, तुममे सव जग, 'वासुदेव' अभिराम ।।
सकल रग तन बसत आप के, याही सो घनश्याम ।।
परम पुरुष तुम प्रकृति-नटी सँग, लीला रचत अपार ।
जग व्यापन सो विष्णु कहावत, अचरज तउ अविकार ।।
जितने जात समीप, दूर अति होत जात तव ज्ञान ।
'सत्य' क्षितिज सम तरसावत नित विश्वरूप भगवान ।।

—जनवरी १९१७

[३]

निरखत जित तित ही तुम व्यापक ।
भुविसो नभ लो प्रति पदार्थ, तव कार्य कुसलता ज्ञापक ।।
सन्ध्या प्रात रैन दिन षटऋतु क्रम सो सब चुपचाप ।
आवत जात जगत अभिनय थल अविकल अपने आप ।।
गिरि उत्तग शृंग नभ चुम्बत प्रकृति मनोहर वेश ।
हिम मण्डित रविकर रजित नित करत उमग अशेष ।।

शस्य श्याम अभिराम छेत्र चहुँ सजल सरित, सर पावन।
मलयज सीतल हीतल सुखप्रद धीर समीर सुहावन॥
सुभग स्वच्छ स्वच्छन्द द्रुमावलि नम्र-लता मृदु-काया।
अचरज सरसावत, हरसावत, दरसावत तव माया॥
रवि शशि आदि दारुयोषित सम, करत स्वकाज निरन्तर।
अद्भुत अमित परत नहिं तामे तिल भरि हू कौ अन्तर॥
अकथ प्रदर्शन-पुण्य-पंक्ति मे, नित नव नाचनहारे।
विहँसत अधर प्रमोद चमत्कृत चचल चारु सितारे॥
जगमगात प्रतिपल मुख मण्डल अनुपम परम पुनीत।
गावत सत अव्यक्त सुध्वनि सो विश्वरूप तव गीत॥

—पौष स० १९७३

[४]

को गुन अगम यह तव पावै।
विश्वरूप अद्भुत अगाध अति, अनुपम किमि कहि जावै॥
रोम रोम ब्रह्माण्ड ग्रथित रवि, अनगिन ग्रह ससि तारे।
भ्रमत धुरी अपनी अपनी पै, निसि दिन न्यारे न्यारे॥
घूमत सकल चक्रमण्डल मे, करत निरन्तर ज्योती।
इक आकरसन शक्ति डोरि मे, मनहुँ पिरोये मोती॥
फूल भरी, मनहरी, हरी सिर सारी रसा विराजै।
उडुगन रुचिर नभस्थल प्रतिकृति प्रिय तिहि मधि जनु भ्राजै॥
कबहुँ सघन घन नित नूतन तन, धावत द्रुत दरसावत।
विद्युत् दमकत तिन ललाट सौं श्रम सीकर बरसावत॥
मदमाती रसवती सरित कहूँ रसनिधि अङ्क मिलाई।
प्रकृति-रम्य-पुनि ऋतु परिवर्तन चहुँदिसि छवि छिटकाई॥
होत विज्ञ वाचाल मूक, नखि गति रहस्य-रस-राँची।
भगवान 'नेति नेति' तव कीरति लसै अखिल जग साँची॥

—अक्तूबर १९१६

[५]

विनय

मगलमय सुनियै इतनी विनय हमारी।
कीजै निज अनुपम दया, भक्त-भय-हारी॥

यह जासों जग-बिद्रोह अनल बुझि जावै ।
सुख-शान्ति-मधुर-फल यह मानव कुल पावै ।।
सतपथ मे नहिं दुर्नीति प्रपंच अड़ावै ।
सबके उर समता-भाव पवित्र समावै ।।
होय न वसुधा पै भार, पाप कौ भारी ।
कीजै निज अनुपम दया भक्त-भय-हारी ।।१।।

स्वारथ और स्वेच्छाचार यहाँ सो भागैं ।
सुचि नवजीवन की जोति हृदय मे जागे ।।
प्रिय बन्धु परस्पर पुण्य-प्रेम मे पागे ।
नित समाचार ब्यवहार करन मे लागे ।।
निज देश दशा को समझे, लोग अनारी ।
कीजै निज अनुपम दया भक्त-भय-हारी ।।२।।

आतम गौरव कौ भाव जगत बिस्तारै ।
चहुँ सुमति प्रभा प्रगटाइ कुमति को टारै ।।
शुभ भव्य भविष्यत-आशा जिय मे धारै ।
प्रिय हिन्द-देश हिन्दी-भाषा उद्धारै ।।
घर-घर नहिं छावै बैर-बदरिया कारी ।
कीजै निज अनुपम दया भक्त-भय-हारी ।।३।।

अपनी पूँजी से हम, ब्यौपार बढावै ।
उपयोगी देशी सकल पदार्थ बनावै ।।
उनही को वर्ते रुचि से रुचिर कहावै ।
लखि और न कोऊ भृकुटी बृथा चढावै ।।
बस हो कबहुँ न यहाँ, किसान दुखारी ।
कीजै निज अनुपम दया भक्त-भय हारी ।।४।।

लरिबे को यहँ के पुत्र बिदेसहि जावे ।
रन सौ मुख मोरि न कुलहिँ कलङ्क लगावे ।।
जग-रिपु-दल वल हनि सकल न्याय दरसावे ।।
नव भारत कीरति लता बिमल लहरावे ।।
भुवि वोर जाँय जासो उनपै वलिहारी ।
कीजै निज अनुपम दया भक्त-भय-हारी ।।५।।

हो उज्ज्वल उच्च उदार मजु अभिलाखे ।
कबहूँ नहिँ अपनी हम मर्यादा नाखें ।।

सज धज सब देसी वही पुरानी राखैं।
सुन्दर सुराज को स्वाद निरन्तर चाखैं॥
नस नस नव-जागृति-जोति सत्य सचारी।
कीजै निज अनुपम दया भक्त-भय हारी॥६॥

[६]

१. अव्यक्त अद्भुत अजेय अनन्त नाम।
आनन्द कन्द जु अलौकिक पुण्य-ग्राम॥
विज्ञान-पुंज करुणा-रस प्रेम-धाम।
लीजो सप्रेम इत हेरि मम प्रणाम॥

२. क्यो नाथ बात जु कहा, कछुइ बतावौ।
दु.खार्त्त-भारत-विथा मन जो न लावौ॥
दै धीर, जासु सब पीर न क्यो नसावौ।
कोरे कृपालु जग-जीवन के कहावौ॥

३. कैसे करी प्रवल ग्राह-ग्रस्यौ उवारयौ।
कैसे जु द्रौपद-सुचीरहि कौ सम्हारयौ॥
कैसे वता उ प्रहलाद-कलेश टारयौ।
कैसे निकृष्ट नर नीच निपाद तारयौ॥

४. साँची, कहौ, यदि सबै, तब ये कथाएँ।
तो क्यो, हरी, हरत ना यहँ की विथाएँ॥
टेरै, तऊ सुनत नाँहि विपत्ति भारी।
दीयौ स्वभाव दुख-हारन का विसारी॥

५. भेज्यौ कहूँ प्रतिनिधी* प्रिय पुत्र आप।
मेटे जहाँ जनन के त्रय ताप पाप॥
ह्वै भक्त प्रेम बस भारत भूमि भारे।
देवेश आपहि यहाँ कृपया पधारे॥

६. सो ही निवाही निज नेह, यहाँ कहा ये।
प्लेगादि रोग दुर्भिक्ष महा पठाये॥

* इस देश की भूमि पवित्र कहे जाने का यह भी एक कारण है कि भगवान कही अपने लडके को भेजते हैं और कही अपने दूतो से ही काम लेते है, परतु इस देश मे आप स्वय अवतीर्ण होकर लीला करते हैं।

आछो निबाह् ब्रजराज गुपाल कीयौ।
पूर्णेन्दु-प्रेम अपने महँ दोष दीयौ॥

७. माता पिता सुहृद और सुबन्धु जाकौ।
तू ही विज्ञान मय तर्क वितर्क जाकौ॥
जाकौ कला कलित कौशल तू सदा कौ।
यौं तासु त्याग कहु नैम प्रभो! कहाँ कौ॥

८. क्यो जगत कौ प्रथम भूषण ये बनायौ?
ऐसौ उठाय पुनि नाथ! जु क्यो गिरायौ?
आपुहिं लगाय तरु काटत कौन ताकौ?
तू ही प्रभो! सकल जानत भेद जाकौ।

[७]

१. जय-जय बिपति-बिभजन माधव जन-मन-रजन प्यारे।
सौख्य-साज-साजन नित प्रियतम लाज निबाहन हारे॥
दीन-दरिद-दुख दारुन दारन बारन-तारन स्वामी।
बार न लावत, आवत सुन जन-टेर गरुड के गामी[1]॥

२. जग-मय तुम अरु तुम-मय यह जग, पावन, घट घट बासी।
बर बिनोद बरसावन भावन बासुदेव अबिनासी॥
विश्व विपुल यह नाटक-शाला रग-बिरगी भावै।
तव गुन नाद-निनाद-बाद्य प्रिय 'नेति-नेति' श्रुति गावै॥

३ मनमोहन विद्या-प्रकाश चहुँ सोहत सुखद ललामा।
जो दरसावत खेल सपूरन पूरन जन-मन-कामा॥
पूरब ऋषि-मुनि सबके पूरब नान्दी पाठ उचारै।
मंजु-मधुर बानी सौ नित नव मगल वर विस्तारै॥

४. अव्यय अखिल अनूप अलौकिक लीलामय करतारा।
जग-नाटक सकेत-सूत्र कर तुम ही सूत्तर-धारा॥
हम सब प्रानी नाट्य पात्र है पुनि पुनि या मधि आवै।
जब जब जीवन खलति[2] जवनिका निज-निज कर्म[3] दिखावैं॥

५. भाग्य-डोरि तव[4] हाथ अगोचर तुमहिं सकल आधारा।
यह कछु होत दृष्टिगोचर जो प्रभु[5] माया-कृत सारा॥

१ स्वामी, २ उठति, ३ खेल, ४ प्रभु, ५ तव।

तुम ही सो यह प्रकटि तुमहिं मे विश्व[1] विलय ह्वै जावै।
टूटत घट, जिमि जल-अन्तरगत-विम्वसूर्य मे धावै॥

६. तुमहिं जगत के ज्ञान-प्रभाकर, निरत अमल गुण धामा।
करत प्रफुल्लित परसि मृदुल कर हृदय-कमल अभिरामा॥
अति अगाध गम्भीर आप कौ महिमा-पारावारा।
परमित गुन परमित मति के हम, का विधि पावै पारा॥

७. जासौ वनहिं स्वधर्म-परायन इती कृपा प्रभु कीजै।
उचित और अनुचित मे अन्तर करन विशद[2] वुधि दीजै॥
तव पद-पदमन निरत रहै रत,[3] यह चित-पटपद चचल।
करहु प्रदान यही वर माँगत 'सत्य' पसार सुअचल॥

—११ १०-१९१२

[८]

प्रार्थना

दया ऐसी कीजै भगवान।
जासो हिन्दू जाति करै सव प्रेम-गग असनान॥
सीतल रस परसत वस याको हीतल ताप विनासै।
हरै सघन-कलि-कलुप आवरन पावन भाव विकासै॥
जव जातीय-अभ्युदय-सूरज प्रतिभा-प्रभा जगावै।
निज कर चचल तार-तरगनि छेडि हृदय लहरावै॥
तव हिन्दी भापा मे हम सव मिलि भैरवी अलापै।
चरचे कर्म योग चन्दन की तिलक अनुपम दापै॥
विलसे मोद लसें नित नव से आत्म-भाव सचारै।
धर्म-ध्वजा गहि जगत मनोहर सत शिक्षा विस्तारै॥

[९]

कमल नयन, भुजँग शयन, सुजन अभयकारी।
करुणामय दीन वन्धु, पावन प्रिय प्रेम-सिन्धु,
भक्तन-मन-मोद-भरन, सतत सौख्यकारी॥
असरन जन निरत सरन, वारिद दुख द्वद्व[4] दरन,
मजुल मर्याद थाप, सुभ स्फूर्तिकारी॥

१ विस्व, २ विसद ३ नित, ४ दुन्द।

जग-जागृति मूल आप, उन्नति करि हरत ताप।
रचि-रचि साधन अनूप, प्रबल शक्ति धारी ।।
सव विधि तुम पितुस्वरूप, अखिल विश्व-भव्य भूप।
तजिकै सब भेद भाय, जग के उपकारी ।।
जागै अरु जगमगाय, नव जीवन सत्य पाय।
सकल भारतीय जाति, विनय ये हमारी ।।

—चैत्र, स० १९७२

[१०]

शिव महिम्न स्तोत्र

पावन परम तव महिमा को पारावार,
अगम, गमार कोउ पार यदि पावै ना।
आचरज कहा क्योंकि ब्रह्मादिक हू की गिरा,
थिरकि तुम्हार गुन गान गन गावै ना।
निज निज मति अनुसार जो करी जुहार,
सकल सफल कछु दूषन दिखावै ना।
शंकर ! विनय मम कवित विभूषन तौ,
सत्य जग अपवाद औगुन जनावै ना ॥१॥

वानी मन गम्य का को नाहिं आप सो इतर,
पचभूत जन्य यह सकल ससार है।
किन्तु मजु मृदु तव सुजस मरम अति,
मन बच करम अगोचर अपार है।
वेद भेद जानै बिन विपुल चकित चित,
निहँचे सकत कर तासु ना अधार है।
कौन सो वरनि जाइ, कौन विधि गुन्यो जाइ,
अकथित जग जासु विषय प्रकार है ॥२॥

सोभित सुछन्द-लरी भूषित पियूष भरी,
कोमल अमल कल चारु रस-सानी है।
शम्भु जू हरै न औ करै न आचरज तव,
मन सुर गुरु बानी जगत बखानी है।
आप गुन सागर नै नागर सकल विधि,
बूतौ न हृदय मम निहँचे समानी है।

मनमथ-मथन तो गुन को कथन करि,
वानी होइ पावन सुप्रिय, जिय ठानी है ।।३।।

तो विरद वर्ननीय तीन वेद सो वरद,
जग को जो थिति लय पालन करन है।
वैभव लसत तव सत रज तम मय,
त्रिवरग दैन दुख द्वन्द्व कौ दरन है।
मन्दमति कोऊ कलपित कहि जाहि,
पहरावत प्रचुर मिथ्या दोप आभरन है।
सभव न दोष तव ऐश्वरज निरमल,
पै सोई अभागो निज सुकृत हरन है ।।४।।

कहाँ कौन तन सो, उपाइ कहौ किन सो,
सृजत किन कारन सो विधि क्यो अनन्त लोक।
ऐसी कुतरक तव पूरन विभव मधि,
करत अजान जडमति नित अघ ओक।
अमित अखण्ड तव अचल प्रभाव प्रभो,
ताकर प्रवाह कौ सकत कोऊ कैसे रोक।
सामा लोक-सृजनु की चाहिये न कछु तहाँ,
केवल प्रताप वल विरचै सर्वै अटोक ।।५।।

अवयव सहित भू आदि जो है लोक सव,
ते है का स्वय उतपति-वान मानियै।
मानि लेहिं यदि यह तऊ विन करता के,
सभव न जग सृष्टि विधि अनुमानियै।
अथवा अनीस निरमित जे भुवन सव,
कौन कौन सामग्री समैटि तहँ आनियै।
जासो जग-करन तिहारे हीन में जो जन,
सशय करत ताहि मतिमन्द जानियै ।।६।।

वेद न्याय साख्य शास्त्र पुनि शैव वैष्णव ये,
पाँचो मत मन भिन्न भिन्न रुच भावती।
किन्तु तुम सवके हो एक पूज्य परिणाम,
प्रेम धाम भजि तोहि तरक विलावती।
ज्ञान-तत रसवत राखतु महि अनन्त,
तुममे सकल मति मग नित धावती।

जैसे न्यारी न्यारी नदी सरल कुटिल पथ-
गामिनि मुदित अन्त सिन्धु मे समावती ॥७॥

भूतनाथ ! अति बूढौ वरद पर सुब्याल,
अगिन वभूत दण्ड औ कपाल भ्राजही।
मन्त्रविद ! तन्त्र उपकरन तिहारै यह,
किन्तु देत जग कों विभूति अनायास ही।
भोगो क्यो न अपु तुम समरथवान है कै,
सब ते बडौ ही जग आचरज है यही।
आतम रमत परमातम तिन्है विषम,
विषै मृगतृष्णा नाँहि भूलि के भ्रमावही ॥८॥

कोऊ कोऊ मतिवान कहत जगहि ध्रुव,
कोऊ कोऊ अध्रुव ही मानि कै बखानै है।
चल औ अचल जाहि अपर बतावत है,
किन्तु वे प्रमान सब दुविधा समानै है।
याही चला-चली भ्रम पूरित विषय मधि,
थभित अचम्भित सो लज्जा उर आनै है।
किन्तु ढीठ वकवादी बानी तव रस-सानी,
स्तुति करत अति मोद मन मानै है ॥९॥

लखन तिहारे वर वैभव कौ आदि अन्त,
यत्न सो विरचि हरि सुरग पताल गये।
तेज वायु-पुज युत रावरौ स्वरूप लखि,
बिन ओर छोर लहि मन विस्मित भये।
पुनि दोउ बैठि, उर तुर्महिं मनाइ निज,
विनय करन लागे पूरे प्रेम सो छये।
विफल कभू ना होति गिरीश तिहारी सेवा,
शका श्रम दूर कर दरस तिन्है दये ॥१०॥

दस भाल जो पुरारि बिन पुरुषारथहि,
रिपुन हराइ जीत्यौ त्रिभुवन आप है।
मारि सुरासुर वस कीन अति दीन करि,
छायौ लोक लोकनु अपार तेज ताप है।
समर-सुजारी परबत धारि भुज निज,
अभय प्रभाव पूरयौ प्रगट सदाप है।

यह भाल-कंज-माल सो सप्रेम जास कृत,
तव पद पकज सुपूजन प्रताप है ॥११॥

प्रवल प्रचड तप करन के कारन सो,
भुजन कौ पुज अति घोर वल पायौ है।
आपके समेत हर आपकौ सुवासथल,
कलित कैलास इन सहज उठायौ है।
एते पै जो रावन कौ कछु न बडाई भई,
लोक परलोक जास अपजस छायौ है।
हेतु यह, वढि नीच सज्जन दया कौ पाइ,
इतराइ मन नित औछौ ही कहायौ है ॥१२॥

अग मे अनग छार सुठि भाल वाल-चन्द,
सोहत जयति गग-धार रस-भीनौ है।
ऐसौ रूप ध्याइ पद पूजन प्रताप पाइ,
त्रिभुवन वानासुर वस कर लीनौ है।
अचरज कहा यदि सुन्दर पुरन्दर की,
पदवी को प्रगट निरादर जो कीनौ है।
चामदेव रावरे चरन जिन सीस नायौ,
नेह सो मुदित तिन सरवस दीनौ है ॥१३॥

कचन कुधर रई औ वासुकी की नेती गहि,
सुरासुर दोऊ जव सिन्धु लागे मथने।
प्रगटयौ प्रचड रूप प्रवल हलाहल जो,
ताकै तेज तीछन के मारै लागे जरने।
असमै प्रलय गुनि व्याकुल विपुल जिय,
जीव आस तजि तव पास लागे भजने।
ता छिन अकोप धारयौ कालकूट कठ निज,
नीलमनि लखि ओप ताकी लागे लजने ॥१४॥

जाकै सर पैने लगि त्रिभुवन-वासिन के,
तन-मन वेधि निज करत प्रवल पीर।
साधारन देव जान तुम पै सो कदरप,
सदरप वार कियौ मानि अपने को वीर।
तासु मान मद मथ सहज त्रिलोचन जू,
मदन वनायौ साँचो छार करि ता सरीर।

बसी की हँसी करै सो आपुही मरत मूढ,
बहुत यही है जासो सीख सीतल समीर ॥१५॥

ताण्डव करत शिव जब जग रच्छन को,
पदन की धमक पताल धरा धसि जात।
ऊपर को तुग भुज परिध घुमावत मे,
विष्णुपद प्रबल नखत टलमल जात।
सीस जटा लटनि सबद सटकारे सुनि,
थिरकि थिरकि बेर बेर नाक रहि जात।
टेढी खीर प्रभुता तिहारी है प्रभो परम,
तरल तरग तास काइ पै न जानी जात ॥१६॥

तारागन फेन-जुत-सलिल-प्रवाह सुठि,
विस्तरित व्योम व्यापि जो अथाह छायौ है।
आप सीस पर गवरीस सोई राजत है,
ओस कन जिमि कज दल मे सुहायौ है।
पै उतेक बन बन्यौ पारावार ककन सो,
दीपाकार जगत चहूँधा घेरि आयौ है।
जासन करन जोग अनमित दिव्य तव,
दीरघ अमित तन जन मन भायौ है ॥१७॥

धरा कौ बनाइ रथ, सूर चन्द्र चक्र जुग,
चतुर विरंचि निज सारथी रच्यौ विचारि।
हिमवत परवत चाप पै चढाइ इन,
परित्यचा निज चक्रपानि चड को सम्हारि।
तिनुका समान अति तुच्छ त्रिपुरासुर पै,
चढ्यौ कोऊ कहत वृथा ही एतौ ठाठ धारि।
कुमति न जानत कि शिव स्व-अमोघ-बल,
लीला ही दिखायौ सरसायौ जग मे पसारि ॥१८॥

पूजन चरन तव गुन-ग्राम घनश्याम,
सहस कमल लै कनक थारी धरै आन।
आसन पै ज्यो ही अरचन चरचन बैठे,
घट्यौ एक कोकनद अवरेख भक्तिमान।
ताही छिन नैन कंज कर-कज सो निकारि,
कज-नैन पूरन सहस किये मोद मान।

राखत कुचक्र सो सुदरसन चक्र सम,
सोई भक्ति त्रयलोक निरत विराजमान ॥१९॥

यज्ञफल-दैन, मैन रिपु आपही को एक,
जान जन वेदनि भरोसे कर्म को करैं।
क्रिया-रूप यज्ञ जब पूरन विमल होत,
आपुही तुम्हारौ रूप विस्वरूप सचरैं।
'करम ही देत फल' कोऊ जो कहै कदापि,
करम पुरुष बिन सभव न ये परैं।
जासो नाना अभिमत जगत मे दैनहार,
शकर उदार नित्त पीर भीर को हरैं ॥२०॥

क्रिया-दक्ष दक्ष प्रजापति सो चतुर चारु,
स्वामी देह धारिन को जैसो यजमान है।
गुनी मुनी मजुल बनाये जहाँ आचारज,
सभासद सुभग स्वयम्भू के समान है।
तौहू अति आचरज धीर वीर भद्रवीर,
भग कियौ मख लूटि सकल सामान है।
यज्ञ-फल-देन-हारे आदर तिहारे बिन,
होत सब जग कर्म विफल प्रमान है ॥२१॥

काम-वस विधि निज दुहिता पिछार धायौ,
मृगी बनि भाजी ये ही भाजे मृग-रूप धार।
लखिके अनीति नाथ ! कर लै कोदड सर,
मारन मृगहि लागे करि धर्म को विचार।
तबैं उर हारि झकमारि भाज्यौ प्रजानाथ,
व्याकुल विपन्न भयभीत स्वर्ग के मँझार।
धनुवान आपके सजन रखवारी हेत,
देत दुरजन को बडी ही कडी दुतकार ॥२२॥

छार कियौ मदन अतन तुम, पुनि आधौ,
अतनहि तन दै स्ववपु मे लियौ मिलाइ।
रूप-मतवारी प्यारी तव लखि निज मन,
विभचारी ब्रह्मचारी हर को लियौ दृढाइ।
क्यो तो मार छार कियौ पुनि क्यो उधार कियौ,
रीझि किमि ताको आधे तन मे लियौ समाइ।

भोरी भारी जाया महामाया यह आप ही की,
अगम अपार तव महिमा न जानी जाइ ॥२३॥

तन मे चिता की भस्म कठ मुडन की माल,
भूषन भुजंग साजि मजुल बनायौ है।
सग मे वैताल प्रेत दै दै झनकीली ताल,
समसान क्रीडाथल असुच सुहायौ है।
निपट अमगल के साजे साज बाज सबै,
तो हू भूत-भावन स्वरूप मनभायौ है।
मगल को सागर मुदागर भगत हेतु,
ध्याये तै अनन्द कन्द नित वेद गायौ है ॥२४॥

प्रान-पौन रोकि चित चंचल ठैराइ ठीक,
अकथ अचल तत्त्व जोगी जाहि ध्यावै है।
छकै रोम-रोम ता अनन्द सो प्रसन्न मुख,
नैन निरमल नेह नीर मे डुबावै है।
भक्ति सुधासार उर वसुधा बहाइ निज,
जन्म जाल जोनि पाप-पुज बिनसावै है।
मोक्षप्रद सोई तव दिव्य रूप रावरौ है,
पाइ जा दरस जग जिय हुलसावै है ॥२५॥

रवि ससि वायु नीर अग्नि अवनी अकास—
आदि जड चेतन जो वस्तु दरसात है।
ते सबै प्रकासमान आप रूप ही सो ईस,
परिपक्व मतिमान मन की ये बात है।
कह्यौ करौ कोउ भिन्न भिन्न भाँति सो बनाइ,
इन ओर ध्यान कोर हमरी न जात है।
दीसत जगत को पदारथ न हमै कोऊ,
जामे तव अरथ स्वरूप न सुहात है ॥२६॥

अक्षर अ-कार आदि वरन सपूरन जो,
स्वरित उदात्त अनुदात्त मे समानौ है।
सुरग महीतल पताल तल व्यापि रह्यौ,
विधि हरि रुद्र रूप जा स्वरूप सानौ है।
निर्गुन निरविकार निखिल निरजन जे,
जनमन रजन तुरीय तव वानौ है।

पृथक पृथक ताहि गहत मिलत पुनि,
करत प्रणव सोई तव गुन गानौ है ॥२७॥

'भव' सो सृजत भव 'शर्व' सो नसत ताहि,
'रुद्र' सो रुदन तुम ठानत अपार हौ।
पालन को 'पशुपति' औ 'सह महान' सन
परम विशिष्ट तत्त्वमूल के अधार हौ।
उग्र सो सरोस बनि दुष्ट दल घालत हौ,
वैभव 'ईशान' सो वढावत अछार हौ।
'भीम' सो भयकर विदित आठ नाम धारि,
मन अभिराम छित शकर ! उदार हौ ॥२८॥

दूरि हू सो दूरि जो नगीच है नगीच हू के,
लघु सो अतीव लघु सूछम अकाम है।
महत महत हू सो वाल युव वृद्ध वैस,
धरत निरत गुनग्राम छविधाम है।
तत्त्वमसि रूप त्रिनयन किरपा-अयन,
व्यापक सकल थल सोहत ललाम है।
अछदम पावन सुहावन सकल विधि,
मृत्युञ्जय पूज्य पद पदम प्रनाम है ॥२९॥

जगत उदयकाल वैभव को जाल छाड,
रजोगुन-पुज-जुत भव को नमो नम ।
खेल मात्र ताहि संहरत रोस सो भरत,
तमोगुन के निकुज हर को नमो नम. ।
मनोहारी भारी जग जन-मन-सुखकारी,
सतोगुन गुजधारी मृड को नमो नम ।
भोगत परम पद अमद रहत नित,
तीनो गुन सो विलग शिव को नमो नम. ॥३०॥

कहाँ ये अचेत चेत राग द्वेप मोह सन्यौ,
जडता विवस क्लेस भोगत असेस है ।
कहाँ तेरौ गुन सो परै मे महिमा मरम,
परम अथाह परवाह रस देस है ।
जे हिमैं विचारि भीत कम्पित चकित मन,
तव गुन हेरत प्रवीनता न लेस है ।

भक्ति शक्ति मोहि दीनी वाक्यपुष्पमाल सन,
पुजवाये तव पद पदम विसेस है ॥३१॥
कज्जल पहार डारि जल-निधि वारि बीच,
घोर घारि[1] मजु मसि भाजन भराइ लै ।
रुचिर सँवारि सुठि विस्तरित अचला के,
खोलि खालि परत सु पत्तिरा सजाइ लै ।
सुन्दर पुरन्दर के नन्दन सुकानन सो,
पारिजात की उपार लेखनी बनाइ लै ।
लहि एती सम्पदा सदा ही लिखै सारदा जो,
गाइ लै न तव गुन पार को न पाइ लै ॥३२॥
पुष्पदन्त विरचित हर महिमा की गाथ,
हरत सदा जो जन मन कौ विषाद है ।
पढत सनेह, मोद भरत, करत सुख,
विहरत हृदय पसारत प्रह्लाद है ।
जितने शिवस्तोत्र सब मे सिरोमनि जे,
गुनिगन स्वीकृत विषय निरवाद है ।
ताकौ सत्यनारायण द्वारा सुठि सम्पादित,
मजु मन हरन विसद अनुवाद है ॥३३॥

[११]

शिव ताण्डव स्तोत्र

जटा अरण्य ते झरी सुगग-वारि-धार सो ।
पवित्र कण्ठ साजि जो भुजग तुग हार सो ॥
डमड्-डमड् डमन्निनाद जास डामरु करै ।
वही गिरीश नाचि नाचि मोद मो हियै भरै ॥१॥

जटानि की सटानि माहिं गग भूलती भ्रमै ।
लता-तरग-तोय तास जास माथ मे रमै ॥
प्रज्वाल ज्वाल जास भाल मे धगद् धगद् दहै ।
किशोर-चन्द्र-चूड मे सनेह मो सदा रहै ॥२॥

वॅध्यो सप्रेम जो सदा गिरीन्द्रजा-विलास को ।
सुनैन तास पेखि कै प्रसन्न जीय जास को ॥
कृपा-कटाक्ष-कोर जास, घोर आपदा हरै ।
वही दिगम्बरी स्वरूप मो विनोद को करै ॥३॥

1 घोरि ।

ब्रह्मचारिनी, वीनधारिनी, दयामयी शुभ-दैनी ।
नवल कमलदल आसन राजत, नवल कमल दल नैनी ॥

जगमगात मंजुल मुखमंडल, जगत पुनीत प्रकासा ।
जासों विविध अविद्या तम को होत तुरन्त विनासा ॥

ऐसा वर दे शक्ति मुक्ति दे, अहो शारदे माई ।
करत विनय तुमसो हम सब यह स्वीकृत करु हरसाई ॥

तुम ही हो मा ! सकल भाँति सो, या भारत की आशा ।
प्रगटे हृदय भाव कहु कैसे बिन बानी बिन भाषा ॥

जासो भारति ! भारत-जन की रसना सदा विराजी ।
ऐसै दिये बिसारि देवि ! क्यो ? मुदित दया निज साजी ॥

जग के और और देसनि हित जैसी तुम सुखदाता ।
जानि स्वजन भारत हूँ को तिमि द्रवहु भारती माता ॥

जब लौ भारत देश विश्व मे जीवित नित मन भावै ।
तब लौ नाम भारती अविचल अजर अमर छवि पावै ॥

आवहु आवहु शीघ्र शारदे ! वृथा विलम्ब न कीजै ।
या भारत की दीन दशा लखि क्यो नहिं हीय पसीजै ॥

बिगर्‌यौ कछु न यहाँ सुनि अजहूँ, हरहु हियौ अँधियारौ ।
स्वागत-स्वागत जननि तिहारौ पुन निज भवन सँवारौ ॥

सहृदय सुभग सरसता सबके हृदय माँहि सरसावौ ।
सुमति-प्रभाकर की पुनीत प्रिय सुखद प्रभा परसावौ ॥

हृदय हृदय मधि होई प्रफुल्लित नवल कली अभिलाखै ।
मन मिलिन्द नित गुंज गुंज कर निज अभिमत रस चाखै ॥

नित जातीय समुन्नति हित मे सकल सुजन अनुरागे ।
भेदभाव तजि निरखे शोभा निज निज निद्रा त्यागे ॥

कार्य्य कुशल हो सकल भाँति हम निज कर्त्तव्य विचारे ।
वर्तें प्रेम परस्पर सबसो प्रेम भाव संचारे ॥

परम सौख्यप्रद होइ देश यह ऐसी सुदया कीजै ।
तुव चरनन मे निरत रहे मन 'सत्य' रुचिर वर दीजै ॥

—वैशाख सं० १९७४

[१३]

प्रार्थना

जयति जयति जननी ।
अमल कमल-दल-वासिनि, वैभव विपुल विलासिनी ।
नितनव-कला-विकासिनि, मुद मंगलकरनी ॥

भुवन विदित गुनरासिनि, सु-मधुर मजुल भासिनि ।
निज जन हृदयोल्लासिनि, श्रुति पुरान बरनी ॥

दारिद दुख दल नासिनि, उर उत्साह प्रकासिनि ।
शान्ति सतत अभिलासिनि, त्रिभुवन मन हरनी ॥

[१४]

जय जय जयति शक्ति महारानी ।
तारा तरणि तारणी माया नारायणी भवानी ॥

दुर्गति हारिनि दुरित निवारिनि जग जन अक्षर-आसे ।
लोक-पालिनी सौख्य शालिनी कृत-वर-विजय-विकासे ॥

कान्ति, कीर्त्ति, धृति, मेधा तुष्टी पुष्टि दया रुचि रूपे ।
शन्ति क्षान्ति, ऋधि सिद्धि शुद्धि सत श्रद्धा मुक्ति अनूपे ॥

सत रज तम त्रय गुन सो भूषित अजरे अजे अनन्ते ।
जग अगोचरे शिवे सनातनि ब्रह्म-विभूति अचिन्ते ॥

तव पद प्रेम विरत यह भारत परम दीन, बल नाहीं ।
मणि बिन फणि, जल-हीन मीन सम अति निस्प्रभ जग माँही ॥

सहज सदय तुम जननि सदा की, याको अस वर दीजै ।
जगमगाय जासो नव जीवन यहि मधि, रिपु दल छीजै ॥

मानव-उचित-आतम-गौरव सो यासु हृदय लहरावै ।
पालै नित कर्त्तव्य सत्य यह निज अभिमत फल पावै ॥

[१५]

श्री गंगा स्तुति

जयति जयति जननी—
प्रभु-पद-पद्म प्रभासिनि, ब्रह्म-कमडल वासिनि,
शकर-सुयश विकासिनि, कलि-कलमष-हरनी ॥१॥

प्रकृति छटा सरसावनि वर विनोद वरसावनि।
सुर नर मुनि हरसावनि, मुद मंगल करनी ॥२॥

सहृदय हृदय विहारिनि धर्म प्रभा विस्तारिनि।
निज-जन दुरित निवारिनि, नित तारनि तरनी ॥३॥

हिम-पट जवै उघारति, अनुपम शोभा धारति,
भारत-भूमि उधारति, सुन्दर सुख भरनी ॥४॥

मधुर पियूष लजामिनि, सघन-महीधर-दामिनि;
मंजुल मनोभिरामिनि, दारिद-दुःख-दरनी ॥५॥

शेष महेश विशारद, शुक सनकादिक शारद,
सत्य-सुखद-नित नारद, कीर्त्ति कथा बरनी ॥६॥

[१६]

मङ्गलाचरण

सकल जगत की पूज्य आशप्रद प्रभा प्रकासिनि।
दुःख पाश उन्मुक्त करनि आनन्द विकासिनि।
जगमगात चहुँ दिव्य तेज खल पुंज विदारिनि।
ब्रह्मचारिनी भक्त तारिनी भव भय हारिनि॥
नभ जल थल चर अरु अचर में अखिल व्यापिनी तव गती।
नित होउ हमनु पैं सदय सत स्वयम् शक्ति श्री भगवती॥

—आश्विन, सं० १९७२

[१७]

समुदित जिनके होत, अतुल छवि लगी प्रदरसन।
संत जन नयन चकोर चारु चित लागैं हरसन॥
नव पल्लव-सम्पत्ति धारि फूले चहुँ द्रुमगन।
जानि समय अनुकूल प्रकृति विहँसी मन ही मन॥
द्रुत दूर होत जिहि दरस सों निशा निराशा-विपुल भय।
अस सदा सुदृढ रक्षा करैं श्री कृष्णचन्द्र पूरण उदय॥

—भाद्रपद, सं० १९७४

[१८]

मृदुल-मृदुल जो मंजु फुहारें सुखप्रद बरसत।
श्रम सीकर वर विमल वसीकर आनन सरसत।

मेघ मुरज ठनकावत पिक मृदु मुरलि बजावन ।
सिखी नचावत भावत मन उमग उपजावत ।।
कृत रास रुचिर जन मन हरन तडित पीत पट तन धरै ।
श्री प्रकृति-प्रभा घनश्याम अस नित नव सत मगल करै ।।

—श्रावण, सं० १९७२

[१९]

परम पिशाची प्रकृति हिरणकश्यप सहारन ।
निरुत्साह घन-खम्भ विदारन धृति बल धारन ।
नवजीवन सचारन पावन प्रेम प्रचारन ।
सत प्रहलाद उधारन तारन विपति निवारन ।।
नित कुत्सित रीति जु होलिका, दग्ध ताहि कर मुद भरै ।
अस श्री नरसिंह वसंत प्रभु सकल भाँति मगल करै ।।

—चैत्र, सं० १९७३

[२०]

जो श्रुति-सुपथ-प्रदर्शक, भारत-धर्म-उजागर ।
चित्ताकर्षक धीर वीर, अनुपम नयनागर ।
पुरुषोत्तम आदर्श मात-पितु आज्ञाकारी ।
तजी लोकमत हेत सुतिय सिय सी सुकुमारी ।।
भुवि-विदित आर्य अनुकूल सत, मर्यादा थापित करन ।
जग-जगमगात-जय देहिं श्री रामचन्द्र असरन सरन ।।

कार्तिक, स० १९७४

[२१]

श्री महावीराष्टक

जयति जयति बल अप्रमेय, दानव-दल-गजन ।
जयति जयति श्री आजनेय जग जन मन रजन ।
जयति कौशलाधीश-दूत-पुगव अति पावन ।
जय उत्साह अकूत कीश यूथप मन भावन ।।
जय जयति अभजन सम प्रबल प्रतिथल निज सचार कर ।
जय कलित कुडलाकार कृत शीर्ष बलित लागूल धर ।।१।।

जय केशरी-कुमार सतत निसकाम सहायक।
महावीर रघुवीर राम के साँचे पायक।
जय लछिमन प्रिय प्रान उवारक जग उपकारक।
कठिन धर्म सकट मे आरज कुल उद्धारक ॥
जय कार्य परायन सकल विधि अविचल प्रन अनुपम अमद।
नित कृत पारायन सुभग सुचि भक्ति भाव विद्या विसद ॥२॥

जय असोक वन जाय सीय उर सोक निवारक।
जय त्रिलोक मधि रामचन्द्र कीरति विस्तारक।
जय समाज साम्राज्य नीति के विज्ञ विलच्छन।
जय दशकधर-मान-मथन कर बुद्धि विचच्छन ॥
जय जय कपि-कुल-आनन्द करन लाँघि अतुल जल निधि गहन।
जय जयति विभीषन-मन-हरन कृत-सुवरन-लङ्का-दहन ॥३॥

जयति जितेन्द्रिय वीर ब्रह्मचारी जयनेमी।
जय गद्गद प्रेमाश्रु बहावन पावन प्रेमी।
जयति कर्मयोगी थिर-चित धृत धीरज प्रति पल।
जयति निराशा उदधि उच्च आशा प्रकाश-थल ॥
जय जयति निराश्रय श्रयद नित सब प्रकार तारन तरन।
जय अखिल आर्य इतिहास की मर्यादा पुष्टीकरन ॥४॥

जय अगर्व अपु, तवहुँ दनुज दल गर्व प्रहारी।
जयति रुद्र अवतार किंतु तव प्रकृति पियारी।
जगमगात तव तेज जगत जग अजहु विराजत।
सुयश प्रभाकर प्रभा निरन्तर त्रिभुवन भ्राजत ॥
जय राम नाम पकज प्रथित प्रिय पराग लोभी भ्रमर।
जय निसङ्क सद्गुन ग्रथित भक्तमाल सुम्मेरुवर ॥५॥

जयति साम सॉगीत गीत के सुन्दर गायक।
सत आचार विचार सुदृढ श्रुति सेतु विधायक।
जय प्रभु कारज अचल भार मन मुदित उठावन।
मन वच क्रम सो सकल भाँति करि पूरन लावन ॥
वरु कोटि विघन वाधा परै करतव पथ मे तउ अभय।
जय यत्नशील सब स्वार्थ तजि करन हेतु प्रभु अभ्युदय ॥६॥

किटिकिटाय निज दष्ट्र भीम मूरति जव धारत।
हाँक सग 'श्रीराम जानकी जय' उच्चारत।

अट्टहास युत प्रबल चरन धरि धरनिहिं चाँपत।
कसमसात कूरम सहसानन दिग्गज काँपत।।
सुनि गगनभेदनी रन भयद कपि गर्जनि तर्जनि विकट।
जिय संक खात घननाद से सिथिल होत उद्भट सुभट।।७।।

विजय मिलत दुर्बल जन हूँ को निश्चय रन मे।
भूत प्रेत बाधा करि सकैं न बाधा मन मे।
ग्रह गृहीत भयभीत हृदय उल्लास विकासै।
विफल यतन अरि होत राज सत्कार प्रकासै।।
सत डरत दुष्ट दल बरु प्रबल सकल रोग जग के जरत।
जब दास दुख द्रुत द्रवित चित दयादृष्टि मारुति करत।।८।।

—२०-११-१९१३

[२२]

श्री दुर्गा लहरी

श्री देव्यास्तुति

नमस्ते धीरूपे अगति गति रूपे अकपटी।
प्रिये आत्मा रूपे चिरथिर स्वरूपे चटपटी।
मनोहारी प्यारी कटि कलितसारी जु लपटी।
जुहै ग्रस्ता व्याधी जग तिनहिं मृत्युजय बटी।।१।।

रसीली सावित्री परम चसकीली सुखमयी।
भवानी कल्यानी सब हित सुधानी छबिछयी।
अनन्ते आधारे तव गुण पसारे गुणमयी।
वरे हस्तावीणे अति अमल नारायणि नयी।।२।।

अनौखी नौका तू भव उदधि सो पार करनी।
अपर्णे बाराही सकल भय की तू सु हरनी।
महाविद्ये सौम्ये प्रकट सबको माँ निडरनी।
मृडानी सर्वानी शिव-प्रणय-पात्री शिखरनी।।३।।

अहा पैनी छैनी त्रय तपनि की मा अति भली।
दया दैनी नैनी कमल पिक बैनी नव कली।
सबै गर्दे मर्दे असुर असि लै मातु मचली।
स्वधे स्वाहे लक्ष्मी दुखदरनि हेमाचल-लली।।४।।

तुही मूर्त्तं देवी मन सुमन तो मो गुहि रहे।
तुही सर्वे ज्योती सब थल प्रकाशा तव अहे।
कराला जो व्याला-दुख गरुड रूपे गहति हो।
महा ज्वाला-माले, भव जनित व्याधी दहति हो ॥५॥

सती मुख्ये तू ही रविकर जु शका निकर को।
हिमाजा ईशानी हिमकर अशान्ती प्रसर को।
तुही है चैतन्ये जग-जडहि चैतन्य करनी।
सदाचारे श्रेष्ठे श्रुतिविदित-आभा-प्रसरनी ॥६॥

कराले पिंगाक्षी जव विपतीहर्त्री सुखकरा।
प्रशस्ते सौन्दर्य्ये खलदल दलन्ती दुख हरा।
प्रवीणे त्रैगुण्ये रुचिरमति कल्याण करणी।
सितांगे पिंगाक्षी परम रसिका नील वरणी ॥७॥

शिवानी रुद्राणी भुवन-त्रय रानी भगवती।
गुणागारे सारे अगम जु अपारे बलवती।
मृगेन्द्रारूढे माँ सकल विधि गूढ़ा तव गती।
नहीं पावै ध्यावै नित गुन जु गावै बहुमती ॥८॥

अशेषा शेषा के फन मुरक तें भार-धरती।
पतालै सो जाती धसि प्रलय की वह्नि वरती।
सबै वेदाकारा नसि धरमधारा न भरती।
प्रचण्डी चण्डी जो न खल दल सो युद्ध करती ॥९॥

कहाँ लो हौं गाऊँ तव यश जु चारयौ दिशि छयौ।
लखी तेरी माया प्रचलित तितै ही जित गयौ।
भयी सर्वे रूपा जगत सब देवी तुव-मयौ।
नमो शान्ताकारा सब तजि पदाश्रा तव लयौ ॥१०॥

सुबाल्यावस्था मे निरत रत क्रीडा यह रह्यौ।
युवावस्था मे माँ मद-मदन पीडा नित दह्यौ।
भयै वृद्धा चेष्टा प्रगट जग धन्धा रचि करै।
न कीयौ मा तेरौ भजन कछु यो ही पचि मरै ॥११॥

न जान्यौ आचारा जठर भरिबौ ही नित पढ़ै।
विचारा जे खोटे सब विधि बुरे ते चित चढ़ै।
न ज्ञाना ध्याना, माँ, गुण कथन तेरौ नहिं बन्यौ।
न चर्चा अर्चा ही नहिं सुरस प्रीती तव सन्यौ ॥१२॥

कियै स्नाना ना परि सलिल तो पै न थरप्यौ।
सु नैवेद्यं पुष्प भगति मह तोको न अरप्यौ।
दयाव्धे वात्सल्ये तरल जग-धारा प्रवल है।
परी नौका, बल्ली कर गहहु, तेरौ ही बल है ॥१३॥

बडौ रागी द्वेषी पद कमल तेरै नहि लग्यौ।
सुशीले श्री गर्भे कबहुँ तव पूजा नहि पग्यौ।
नयी बाला देखी तिनहि हित सारे जग खग्यौ।
जहाँ देखी भक्ती तव चरण ह्वाँ सो डरि भग्यौ ॥१४॥

दिन जा सो ध्याना-रवि, जननि तेरौ विसरिगौ।
तभी सो अज्ञाना-घन तम चहूँगा बगरिगौ।
फिरै मारे मारे सत पथ न कोऊ अनुसरै।
मिलै कैसे माता विन चरण तेरे उर धरै ॥१५॥

अपर्णे अव्यक्ते परम शिव प्यारी अभय दै।
सहस्राक्षी कृष्णे जगतमयि तू ही विजय दै।
तिहारी ही दुर्गे शरणागत ह्वै के अब परचौ।
करौ रक्षा पूर्णे नित रहत ध्याना तव धरचौ ॥१६॥

भुजँगा ससारा विष विषय भारी जु उगिलै।
डस्यौ जानै ऐसौ मन शरण नाही कहुँ मिलै।
करौ यत्रा मत्रा स्वपद-हित जासो यह किलै।
शिवे याकी तृष्णा-द्रुम गहि पछारौ नहि हिलै ॥१७॥

अहौ माँ ये लोका स्वपन इव निद्रे लखतु है।
विपैले जे काजा ततफल फणिन्द्रे महतु है।
खुलै आँखै हाथै मलत कछु नाही लहतु है।
बता इच्छे तेरे पद पदम क्यो न गहतु है ॥१८॥

जगज्जाला पूर्यौ मन मृग इतै आड जु फँस्यौ।
विषै की ताँती सो सुदृढ करि माता यह गस्यौ।
महा चिन्ता ज्वाला-ज्वलित नहि शान्ती जल पियै।
सुवर्णे हा माये तव प्रणयहीना किम जियै ॥१९॥

तरी मोहा घाटी तरुणि-कुच-ऊँचे गिरन की।
दुराशा शाखा पै नट इव कला खा फिरन की।
सुराराध्ये ये मो हृदयकपि की है नटखटी।
स्वभक्ती मे याको गहि करु अधीना शिव नटी ॥२०॥

बड़ी मैं अज्ञानी सकल अघखानी उर वसी।
रहै मो सर्वज्ञे विषय अभिलाषा अनघ सी।
सदा ये बुद्धी माँ बसति जग मिथ्या रंग रँगी।
हृदै हा मेरे में तव चरण प्रीती नहिं जगी॥२१॥

त्रियाब्धी सौन्दर्य्य जल अति अगाधा जहँ भर्‍यौ।
अयं चेतो मत्स भ्रमत भ्रम माँही तहँ पर्‍यौ।
स्तनौ तुम्बी युक्ता अलकमय जाला पुरि रह्यौ।
करौ रक्षा व्याधा मनसिज शिवे चाहत गह्यौ॥२२॥

मठारैंगे मोपै हँस हँस कहैंगे "बड कच्यौ"।
"जु पै भारी रोयौ निज विपति भारा नहिं पच्यौ।
"स्व माता सो ऐसो अनुचित कह्यौ न कछु जँच्यौ"।
कहौ कोऊ कैसो अव जननि तेरे रँग रच्यौ॥२३॥

प्रिये कृष्ण-प्राणे रुकमिणी सनाढ्ये सरस्वती।
सती भामे वृन्दे गिरमणि सती औ जयवती।
विशालाक्षी देवी कर कमल माये जनकजे।
सुवीर श्रीकण्ठे चहुँ विजय तेरे पद भजे॥२४॥

अहो माँ सृष्टी को सृजि थित विनासा करति तू।
महामाये दाये सकल मन भाये भरति तू।
ध्रुवे श्री कैवल्ये सुखकरणि श्री शकर प्रियै।
अमोली दै नित्ये निज चरण भक्ती मम हियै॥२५॥

लगे तो पूजा मे रहत नहिं दूजा चहत है।
मुनी ज्ञानी ध्यानी सकल जन मानी कहत हैं।
असारी ससारी मद-अनल मे जे दहत है।
तवाध्री ध्याये सो परमपद माता लहत है॥२६॥

प्रसन्ने श्री दुर्गे नव पुहुप माला उर लसै।
दिपै टीका नीका मिलत फल जी का जव हँसै।
यही माँगो तेरी भय हरणि मूर्ती मन वसै।
नमो ह्री सर्वेशे नित चहत गायौ तव जसै॥२७॥

गुणातीते सीते निरमल अमी ते सुगति दै।
हरा वाधे राधे करु सुख अगाधे सुमति दै।
करै विद्याभ्यासा नित कवि विलासा सुरति दै।
अचिन्त्ये पद्मस्थे पद पदम की माँ सु-रति दै॥२८॥

न जानौ मैं रीती प्रबल कविता के करन की।
न ऐसी मो प्रीती जप तप सु-नेमा-धरन की।
क्षमा कीजौ दीजौ सुबुधि जग-धारा तरन मे।
रखौ सत्यनारायण नित स्वकीया शरन मे ॥२९॥

असख्या तो नामा निखिल जग मे को गिनि सकै ?
अनेका तो रूपा चतुर नर को जो भनि सकै ?
जबै न छोटे से सर जलहि पारा करि सकौ।
कथ पारावारा तव गुण अपारा तरि सकौ ॥३०॥

उपजाति वृत्तम्

भूतेग जिश्नू नित ध्यान ध्यावै।
विरचि विश्नू नव गान गावै।
वे हू न पावै जब देवि सारा।
भला लहूँ मै कस तोर पारा।
मेरी जु है पद्य सुपद्म माला।
गुही त्वदीय गुण सो रसाला।
स्वीकार याको करि चन्द्रकान्ते।
स्वभक्ति दीजै मम हीय शान्ते ॥

कृष्णाषाढ जु सप्तमी, मगल मगल वारु।
शशि रस ग्रह हरि मिल विमल, सम्वत विक्रम चारु।
गहरी रस अपवर्ग दा, दुर्गा लहरी नाम।
जासु कृपा पूरण भई, ता कहँ करहुँ प्रणाम ॥

शिखरिणी इव अति मधुर कहि, छन्द शिखरिणी जास।
बाँचत बाँचत मो उरहि, माता करहु प्रकास ॥

भक्ति भरी रचना करी, विदित न पिङ्गल नेम।
भूल चूक क्षमियौ सुजन, राखि हृदय मे प्रेम ॥

—७-७-१९०४

[२३]

श्री कृष्ण-जन्माष्टमी

था इक दिन, जब नृपति-नीति से कस डिगा था।
आर्य-प्रजा पर करने अत्याचार लगा था।
कोई धर्माचरण नही होने पाता था।
सुख से कोई कभी नही सोने पाता था ॥

निश्चिन्त मनाते थे मुदित आनँदमगल नित्य खल।
अति दुख उठाते थे दुमह, देश-भक्त सज्जन सकल ॥

वढा यथेच्छाचार लगे जब दुष्ट सतानै।
किंकर्त्तव्य-विमूढ सुजन मन मे दहलानै।
दुख का सुनने वाला जब नृप को नहिं पाया।
एक प्राण हो प्रभु से सबनै ध्यान लगाया ॥
पर वेचैनी वढती गई सब ही को प्रत्येक छिन।
गए इस विधि भादो मास के जैसे तैसे सात दिन ॥

आधी राति अखड सघन छाई अँधियारी।
घिरी हुई सब ओर घटा काली कजरारी।
कभी-कभी जब वादल पानी वरसाते थे।
टपका कर निज अश्रु वेदना दरसाते थे ॥
चलकर पल-पल चचल विपुल इधर उधर चमके चपल।
अति घवडा अत्याचार से जैसे हो कोई विकल ॥

विविध तरगाकुल यमुना यद्यपि आती थी।
उमडा कर निज हृदय दुख को प्रगटाती थी।
मनो सोच जल मे डूवी वहती जाती थी।
कभी भँवर-भ्रम मे पड़ तट से टकराती थी।
वस जान आर्य-गौरव गया सुधि-बुधि-तज वन सोगिनी।
रज तन लपेट रमने लगी मानहुँ कोई जोगिनी ॥

रहा सदा से यही हिंदुओ का दृढ निश्चय।
जहाँ धर्म-विश्वास, वास वहाँ करती है जय।
धर्म भाव को मिथिल जगत मे जब पाते है।
लेकर हरि अवतार उसे रखने आते है ॥
जब जाना श्री देवेश ने भक्त जनो को विपद्मय।
झट दिव्य देवकी-गर्भ से किया सदय अपना उदय ॥

कृष्णचन्द्र ने चन्द्र सदृश हो उदित सुहावन।
छिटका कर निज कीर्ति चन्द्रिका जग मनभावन।
न्याय-पक्ष ले दुष्ट जनो का दल वल मारा।
कर सज्जन उद्धार भूमि का भार उतारा ॥
निज भक्तो को सर्वत्र ही किया छकित वरसा अमी।
इससे ही हुई प्रसिद्ध जग सुखद कृष्ण-जन्माष्टमी ॥

अर्जुन को गीतोपदेश देकर मन भाया।
निर्भय होना कृष्ण देव ने हमे सिखाया।
भाई का भी अत्याचार बुरा बतलाया।
उचित आत्मगौरव रखना यह हमे जताया॥
जब आवै सन्मुख स्वत्व का प्रश्न जगत भर मे कही।
वहाँ आत्म शक्ति का काम है दाँत दिखाने का नही॥

पुरुषोत्तम के गुण उनमे पाये जाते है।
इससे उनका यश जग मे सारे गाते है।
वीरो का पूजन ही उर दृढ कर सकता है।
नवजीवन जागृति नस-नस मे भर सकता है॥
इसलिए मनाना चाहिए यह धर्मोत्सव नेम से।
निज भेद-भाव को भूल कर सबको सच्चे प्रेम से॥

[२४]

गोबर्धन

सकल नन्द उपनन्द गोप जैसे जुरि आयै।
परम चपल घनश्याम सबै यो कहि समझायै।
'मानत क्यो तुम इन्द्र, न जाने कहँ कौ को है।
पूजौ मिलि गिरिराज सुलभ जग जन मन मोहै'॥
जहँ नित प्रमुदित गो-कुल चरत सतत हरत त्रय ताप घन।
सब हुलसत सुनि जिनको कथन जय जय जय अस गिरिधरन॥१॥

सुनी खबर यह इन्द्र कोप करि ब्रज पै आयौ।
सहस मूसलाधार मेह बानै बरसायौ।
भरै सरित सर सकल सलिल वसुधा पै छायौ।
डूबन लागै नगर, भयौ डर, ब्रज घबरायौ।
हरि ढिग हेरत टेरत गये कहियै कीजै का जतन।
जिन धीर बँधायौ सकल विधि जय जय जय अस गिरिधरन॥२॥

देखे आरत जबै पुकारत सब ब्रजवासी।
आश्वासन दै सबनि कियौ कौतुक अविनासी।
गयै गिरिराज समीप अचक ही नख पै धारयौ।
सात दिना औ राति तनिक हू नाहिं उतारयौ॥
सब गोप ग्वाल गोपी गऊ बाल बच्छ रच्छा करन।
जो करत पच्छ निज वचन की जय जय जय अस गिरिधरन॥३॥

देखौ गिरिनख धरे साँवरी सूरति सोहत।
नटवर वरही-पख-मुकुट की लटक विमोहत।
अधर-अधर धर वसी करहिं चलाय वजावत।
विमल वसीकर श्रम सीकर छवि सो मन भावत॥
श्रुति मकराकृत कुण्डल कलित ललित वलित वनमाल तन।
जिन कर्‌यौ सुदृढ कटि पीत पट जय जय जय अस गिरिधरन॥४॥

इत उत मे उपनन्द नन्द सिर पागहिं वाँधै।
सग बाल गोपाल लकुट निज धरि धरि काँधै।
करि-करि ऊँचौ तिनहिं सहारौ गिरहिं लगावत।
कवहुँ महरि करि महरि श्याम की भुज को दावत॥
घवराति मनावति ईश को कवहुँ जोरि दोऊ करन।
जन दृग चकोर मुख-चन्द्र जिन जय जय जय अस गिरिधरन॥५॥

कर मे इन्द्र निवास खास कर शैल सँवार्‌यौ।
यो सव ताकौ भार देवनायक पै डार्‌यौ।
सहि न सक्यौ सो भार भयातुर झटपट धायौ।
गिर्‌यौ कृष्ण-पग आय टेरि-मय रुदन सुनायौ॥
सुनि क्रन्दन तिहृ करुणा भर्‌यौ हँसि हँसि ता की भय हरन।
जो नद नँदन नित सरल चित जय जय जय अस गिरिधरन॥६॥

वज्रपाणि हरि नें भुज गही वज्री समझायौ।
गऊ रूप धरनी अस तिह सम्वन्ध वतायौ।
सुखद परस्पर दोउनि की सुखमा जग छाई।
करियौ रस वरसाय रसा की सदा सहाई॥
यह भुवि तेरी प्रिय आभरन अरु तू है जाकौ आभरन।
यहि सुनत इन्द्र विनवन लग्यौ जय जय जय अस गिरिधरन॥७॥

नित्य पराई पूजा के गाढे वन्धन सो।
नन्दादिक जो गोप वँधे दृढतर वहु दिन सो।
नसि तिन घन तम भ्रम, प्रतिभा विद्युत लहराई।
दियौ आत्म-गौरव कौ जिनको स्वाद चखाई।
नवजीवन ज्योति जगाय के जो जग कौ तारन तरन।
नित असरन कौ जो सत सरन जय जय जय अस गिरिधरन॥८॥

जय जय त्रिभुवन नाथ जयति जय गर्व-प्रहारी।
जय जय मगल करन कृष्ण वाँके गिरधारी।

माया बस जन जगत अन्य रूपन मे राँचै।
किन्तु अनूपम त्रिभुवन मोहन तुम ही साँचै ॥
नित मुद मगलमय बिनय प्रद सब प्रकार जिनकै चरन।
जो ब्रज के सुखदायक परम जय जय जय अस गिरिधरन ॥६॥

[२५]

टेर

चलियौ श्याम बायगी मेरै विषय ब्याल ने काट्यौ हो।
बिषम ब्याध बिष चढत, न उतरत जात न हा! यह डाट्यौ हो।
मत्र नेह पढि क्यो न हटावत अब हूँ यह नहिं हाट्यौ हो।
बाँधहु बाँध तगा ऐसे को ज्ञान भक्ति जो बाट्यौ हो।
नैक अबेर न श्यामा के हित मेरी ही बेर क्यो नाट्यौ हो ॥

कारण हूँ तो बताय दै राजा का मो सो मन फाट्यौ हो।
भ्राता माता पिता प्रिय दारा एक तुही मै छाँट्यौ हो ॥

प्रेम पियूष प्रवाह प्रवाहहु जाको चाहत चाट्यौ हो।
बेर बेर प्रभु सत्यनारायण टेर टेर बल घाट्यौ हो ॥

—१०-३-०४

[२६]

भजन

हित करिकै नेह निभैयौ, घट घट के अन्तरजामी ॥

जब गजराज ग्राह ने घेर्यौ, हारि हियै प्रभु तुमको टेर्यौ।
केवल दया धारि नहिं हेर्यौ, आये गरुड के गामी ॥

दोपदि कौरव बीच पुकारी, हाय! नाथ मम होत उघारी।
चीर राखि तुम लियौ उबारी, किरपा सिन्धु अकामी ॥

ध्रुव जी अरु प्रहलाद पियारे, ब्याध निषाद निकृष्ट उधारे।
गणिका अजामिलादिक तारे, तारे पतित अति नामी ॥

पतित विख्यात स्वामि! मोहि जानौ, अपने सम अपरहि नहिं मानौ।
सत्यनारायण पार लगावौ, नाथ नमामि नमामी ॥

—२७-५-०३

[२७]

विश्वरूप-दर्शन

(भगवद्‌गीता के आधार पर अ० ११, श्लोक १५-२५)

देह तव मधि, देव ! देखौ पूर्णता सो आज।
अखिल विश्व विशाल के बहु विविध जीव समाज ।।
सुर, ईस कमलासन विराजत जगत-पितु सतभाय ।
ऋषि, मुनी, अरु तक्षकादिक, दिव्य फनि समुदाय ।।१।।

अगणित भुजा अरु उदर आनन, नयन जास अनूप ।
अस आपकौ मैं लखहुँ, पूरन चहुँ अनन्त स्वरूप ।।
दीसै न जाकें, आदि मध्य ऽरु अन्त को कहु लेश ।
अस विस्व-व्यापक रूप देखौं नाथ तव विश्वेश ।।२।।

चमकत मुकट सिर, कर गदा, अरु चक्र आभावान ।
चहुँ ओर सो, जनु तेज की जगमगत ज्योति प्रधान ।।
ज्वाल किम्वा सूर्य की द्युति अप्रमेय लखाय ।
देखहुँ दरस तव जो कठिनता सन निहारयौ जाय ।।३।।

तुमहि अक्षर ब्रह्म पूरन वेदितव्य विचित्र ।
तुमहि जग के परम आश्रय एकमात्र, पवित्र ।।
तुमहि अव्यय नित सनातन-धर्म के प्रतिपाल ।
मेरे मते तुमही सनातन पुरुष सद-गुन-माल ।।४।।

उतपत्ति-थिति-लय रहित तुमही अमित बल के ऐन ।
बाहु अगनित लसत तव, रजनीस सूरज नैन ।।
तेजमय तव मुख लखौ तनु दीप्त अनिलाकार ।
कढि किरन जिह की चहुँ तपावत जगत को अनिवार ।।५।।

आकाश, भुवि, यह लखत जेतिक अन्तरिक्ष अपार ।
सब दिसिनि मे बस इक तुम्हारे तेज को विसतार ।।
तव उग्र अदभुत रूप लखि, भयभीत अति घबरात ।
पावत विथा तिहुँ लोक के भगवन सबै दरसात ।।६।।

सकल देव-समूह आवत तो शरण मे नाथ ।
आ॰त पुकारत, कोउ तुमको समय जोरत हाथ ।।
स्वस्तियन-युत बहु प्रकारन सिद्ध-ऋषि-मुनि-वृन्द ।
करत अब अभ्यर्थना सब गाइ प्रस्तुति छन्द ।।७।।

रुद्र, वसु, आदित्य, विश्वदेव, साध्य, समीर।
अश्विनी युग्मज, पितर, गन्धर्व, यक्ष, सुवीर ॥
असुर, सिद्ध-समूह जेतिक जगत माँहि लखात।
सबहिं के सब तुमहिं हेरत परम अचरज खात ॥८॥

अगनित दृगानन धरत जो अरु उदर जासु अनेक।
भुज, पद, महाबाहो ! न जाकै ज्ञाति मोहि कितेक ॥
अजित परम अस रूप तव बहु डाढ सन विकराल।
लखि लोक सब, मै हूँ तथा, पावत विथा यहि काल ॥९॥

आकाश-चुम्बत जगमगत द्युति वरन् वरनाकार।
विवृत आनन, नयन दीरघ, तेजयुक्त अपार ॥
अस लखि तुमहिं मम हृदय चचल लहत भारी पीर।
शान्ति गई कितको न जाने, छाँडि मोहि अधीर ॥१०॥

बहु डाढ सन विकराल प्रलयानल प्रबल अनुहारि।
आनन अनेकनि अति भयकर अब त्वदीय निहारि ॥
दिसि-भूल सौ सुधि बुधि हिरानी हृदय धरकत आज।
देवेश होहु प्रसन्न, जग के आदि अरु अधिराज ॥११॥

[२८]

भक्त की भावना

क्यो मन ऐसौ होत अधीर—
परम पिता जो जनप्रतिपालक उनको तेरी पीर।
कर्मवीर बन अरे बावरे। या जीवन-रन माहि—
अपने आप बँध्यौ बन्धन मे ज्यो पिंजर मे कीर।
जगत जगत, तेरे सोवन को अब यह अवसर नाहि—
हस बुद्धि सो बिलग करहु नित हित, अनहित पयनीर।
है उद्देश आत्म-शासन तव देखि हृदय के बीच—
जग के जानै तू गरीब है वैसे साँचौ मीर।
किं-कर्त्तव्य-विमूढ चेत-हत फँस्यौ मोह की कीच—
करि विश्वास सत्य करुणामय अवसि हरहिं तव भीर ॥

[२६]

पद

मन मूरख क्यो नहिं मानै ।।
अन्ध जगत धन्ध फँस्यौ तू अपनी तानै ।
जग असार है मृग-तृष्णावत जाको क्यो नहिं जानै ।।
कुल की कानि लगै अति प्यारी धरि उपदेश न कानै ।
ज्ञान को सोटा हिय की कुडी प्रेम भग क्यो न छानै ।।
भूलत भ्रमत न जानत तू कछु विरथा निज हठ ठानै ।
माया वस ह्वै फिरै दिवानौ कछु को कछू बखानै ।।
साँची वात कहत जो कोऊ लरत अधिक रिस सानै ।
सत्यनारायण "मैं, तू" तजिकर करु गोविन्द गुन गानै ।।

[३०]

पियारी तेरे गौने के दिन रहे चार ।
प्रणव शब्द की वेदि भाल पर, ज्ञान सुअजन डार ।
भौंह धनुष चख वाण चढा कर, काम क्रोध मद मार ।।
निर्भयता सिन्दूर माँग, कच भक्ति फुलेल सँवार ।
अकपट आँगी झटपट पहनौ, त्यागौ सब जजार ।।
सयम नियम वाँधि कटि किंकणि, जो सब विधि सुखकार ।
कपट पटन को खोलि सखी री सत्य घाघरो धार ।।
ओढो सुरँग सील की चादर बाँधि सनेह इजार ।
श्याम-नाम पाजेव बीछिया पहनु, उठै झनकार ।।
गुडियाँ जगत-धध की तजिकै डारि प्रेममय हार ।
सत्यनारायण मिलौ पिया हरि दोऊ भुजा पसार ।।

[३१]

जगत मे को ऐसी गुणवान—
लटि लटि देह झाँझरी सी ह्वै, लखी परै पियरान ।
केकी केका कोयल कूक की हूक उठै हियरान ।।
निमिष निमिष मोहि विष सम लागत कल न परत जियरान ।
सुधि तौ छीन लई मति काऊ, बुद्धि लगी सियरान ।।
सत्यनारायण नन्द नँदन कहँ लाय करै नियरान ।

[३२]

हे घनश्याम ! कहाँ घनश्याम ।
रज मँडराति चरण-रज कित सो शीश धरैं अठ जाम ॥
स्वेत पटल लै घन, कहँ त्यागी सुरभी सुखद ललाम ।
मोरनि-घोर सोर चहुँ सुनियत, मोर मुकट किह ठाम ॥
गरजत पुनि पुनि, कहाँ बतावौ मुरली मृदु सुर-धाम ।
तड़पावत हौ तडिर्ताहि छिन छिन, पीताम्बर नहिं नाम ॥
बरसा वारि, नेह चितवनि कित जो दायिनि बिसराम ।
सत्य आज प्रियतमहिं मिलावौ, जिय भरि पकरहुँ पाम ॥

[३३]

सँवलिया परत न तो बिन चैन ।
नैन लगे जा छिन से तोसो तबसो लगत न नैन ॥
मधुर बैन सुनि तव मनमोहन नैंक सुहात न बैन ।
तव प्रभु कुटिल सैन के सन्मुख कर का सकै दुख सैन ॥
साथिन भैन हँसति दै तारी पै मोहि तिनकी भै न ।
सत्यनारायण क्यो तरसावत आइ मिलौ सुख दैन ॥

[३४]

राम नाम

मंगलकरन कलिमल को हरनहार,
पावन को पावन सुहावन ललाम है ।
ब्रह्मपद पावन को जो कोऊ पथिक वर,
ताको मग टोसा प्रान पोसा सुखधाम है ॥
कविवर बैन बिसराम ऐन एक चारु,
जगत सजन जन जीवन मुदाम है ।
धरम-बिटप बीज सतत तिहारौ लसै,
भूति प्रद मग अभिराम राम नाम है ॥

[३५]

द्रोपदी की पुकार

जगत मे को साँचौ श्रीमान ?
सिंह घिरी गैया डकरावै, आन रखावै प्रान ।
खैचत चीर दुसासन पापी छाँडि के सभ्य कलान ॥

शशि कुल गौरव धरा धाम पै सदा रह्यौ विमलान।
हाय कलंकित ह्वैगो दैकें दुःख निवल अवलान॥

पारथ को पुरुषारथ थाक्यौ, धरम-सुवन गुण खान।
बैठे-बैठे धरनि कुरेदहिं देखत मनहुँ अप्रान॥

भीम गदा डारी भूमी पर लरत न कवहुँ अघान।
नकुल और सहदेव नाथ मम ह्वै रहै जान अजान॥

दानी कर्ण द्रोण गुरु आदिक सव की वुद्धि सिरान।
अन्धौ हीयैं हूँ को अन्धौ कठपुतरी उनमान॥

भीसम पिता आदि वहु वैठे मौन रहै सव ठान।
नीचै पलक हाय सव डारे हारि गये हियरान॥

निमिष निमिष मोहि विष सम लागत कल जु परत जियरान।
पाप चन्द्र लखि विदुर कज मन लागि उठ्यौ मुरझान॥

शकुनि सुरापी मुदित कमोदिनि समयौ निज पहचान।
कौरव अधम परे मम पीछे राखहु पत भगवान॥

छाये स्वामि ! आप किन देशन जो कछु ध्यान धरा न।
लाज जहाज आज डूवत है फेरि लिये कित कान॥

कहाँ गये भक्तन हितकारी दासि करै गुनगान।
पतितन-पावन पाहि प्रभो कटि पहरे पट पियरान॥

पत गये नाथ कहा करिहौ तुम आइकै मो नियरान।
जन मन रंजन श्याम उवारौ सत्यनारायण आन॥

—१६-५-०३

[३६]

अहो श्याम सुन्दर कहँ ? प्यारे ! लकुट मुरलिया वारे।
मोर मुकुट झख कुंडल धारै, मो मन मोहन हारे॥

सव गुण आगर जय नटनागर, कटि कसि पीत पिछौरी।
खेलत लौनी आँख मिचौनी, ग्वाल संग मे दौरी॥

दाँव स्थान कपट कर छूवत, झगडत लिपटत पियारे।
भाजि भाजि कर सीग दिखावत, कवहुँ विरावन वारे॥

छकि कर चुल्लू छाछि नित नये गोपिन नाच दिखावै।
"मैया टेरहि त्यागहु त्यागहु", दै धोखौ कढि आवै॥

उपालम्भ

[१]

माधव आप सदा के कोरे।
दीन दुखी जो तुमको यांचत सो दानिनु के भोरे ॥
किंतु बात यह, तुव स्वभाव वे नैकहु जानत नाहीं।
सुनि सुनि सुयस रावरो तुव ढिग आवन को ललचाहीं ॥
नाम धरैं तुमको जगमोहन ! मोह न तुमको आवै।
करुणानिधि तुव हृदय न एकहु करुणा बुन्द समावै ॥
लेत एक को देत दूसरेहि दानी बनि जग माहीं।
ऐसी हेर फेर नित नूतन लाग्यो रहत सदाहीं ॥
भाँति भाँति के गोपिन के जो तुम प्रभु चीर चुरायै।
अति उदारता सो लै वे ही द्रोपदि को पकरायै ॥
रतनाकर को मथत सुधा को कलस आप जो पायो।
मन्द मन्द मुसकात मनोहर सो देवन को प्यायो ॥
मत्त गयन्द कुवलया के जो खेल प्राण हर लीनैं।
बडी दया दरसाइ दयानिधि सो गजेन्द्र को दीनैं ॥
करि के निधन बालि रावण को राजपाट जो आयो।
तहँ सुग्रीव विभीषण को करि अति अहसान बिठायो ॥
पुंडरीक को सर्वनास करि माल मता जो लीयो।
ताको विप्र सुदामा के सिर कर सनेह मढि दीयो ॥
ऐसी 'तूमा पलटी' के गुन 'नेति नेति' श्रुति गावै।
सेस महेस सुरेस गनेसहु सहसा पार न पावै ॥
इत माया अगाध सागर तुम डोवहु भारत नैया।
रचि महाभारत कहूँ लरावत अपु मे भैया भैया ॥
या कारन जग मे प्रसिद्ध अति 'निबटी रकम' कहाओ।
'बडे बडे तुम मठा धुँवारे' क्यो साँची खुलवाओ ॥

—ज्येष्ठ, सं० १९७२

[२]

माधव अब न अधिक तरसैये।
जैसी करत सदा सो आगै, वुही दया दरसैये॥
मानि लेउ, हम कूर, कुढगी कपटी कुटिल गँवार।
कैसे असरन-सरन कहौ तुम जन के तारनहार॥
तुम्हरे अछत तीन तेरह यह देस दसा दरसावै।
पै तुमको यहि जनम धरे की तनकहु लाज न आवै॥
आरत तुमहि पुकारत हम सब सुनत न त्रिभुवन राई।
अँगुरी डारि कान मे बैठे धरि ऐसी निठुराई॥
अजहुँ प्रार्थना यही आपसो अपनो विरुद सँवारौ।
सत्य दीन दुखियन की विपता आतुर आइ निवारौ॥
—आषाढ, सं० १९७२

[३]

माधव तुमहुँ भयै बेसाख।
वुही ढाक के तीन पात है, करौ क्यो न कोउ लाख॥
भक्त अभक्त एक से निरखत, कहा होत गुन गाये।
जैसो खीर खवाये तुमको वैसोहि सीग दिखाये॥
सबै धान बाईस पसेरी, नित तोलन सो काम।
बलिहारी, नहि विदित तुम्हे कछु ऊँच नीच कौ नाम॥
बे-पैदी के लोटा के सम, तव मति गति दरसावै।
यह कछु को कछु काज करत मे, तुमहि लाज नहि आवै॥
जगत पिता कहवाय, भयै अब ऐसे तुम वेपीर।
दिन दिन दुगुन बढावत जो नित द्रोह-द्रोपदी-चीर॥
जुगकर जोरि प्रार्थना ये ही निज माया धरि राखौ।
सत्य दीन दुखियनु के हित को सदय हृदय अभिलाखौ॥
—चैत्र, स० १९७३

[४]

मोहन अजहुँ दया हिय लावौ।
मौन-मुहर कबलो टूटैगी, हरे! न और सतावौ॥
खबर बसन्तहु की कछु तुमको, विरुद बानि बिसराई।
ऐसी फूल रही सरसो सी, तव नयनन मे छाई॥

अचल भयै सव अचल, देखियें सरि से अश्रु वहावें।
सूरज पियरे परै, मोह वस, चिन्तित दौरे जावें॥
द्रुम तक हू के दृग नव किसलय रोइ भयै अरुणारे।
दारुण देश दशा लखि वौरे ये रसाल चहुँ सारे॥
अवला लता कलेवर कोमल कम्पित भय दरसावें।
लम्वी लेत उसास जानियै, जवै हृदय लहरावें॥
कारी कोयल कूक कलाकल यदपि गुहार मचावत।
चहुँ अरण्य-रोदन सम सुनियत कछु न प्रभाव जनावत॥
लखियत ना सद्भाव कमल अव कुसुमित मानस माही।
कोरी प्रकृति-छटा वस सुन्दर तथा रही कछु नाही॥
जन्म-भूमि निज जानि, साँवरे, याकौ हित अभिलाखौ।
अर्ध दग्ध जडदशा वीच अव अधिक न याको राखौ॥

—फाल्गुन, सं० १९७२

[५]

मोहन ! कव लौ मौन गहौगे।
निज आँखिनु पै धरे ठीकुरी, कितने और रहौगे ?
तुम देखत-भारत, मानव कुल आकुल छिन-छिन छीजै।
कहा भयौ पासान हृदय तव, जो नहिं तनिक पसीजै॥
'रसना' नाम भयौ अव साँचौ, टेरत टेरत हारे।
छुटयौ न तउ तव हृदय-कृष्णपन, दृगसो चलै पनारे॥
विपति-ग्राह ने ग्रस्यौ विश्व-गज, होन चहत अनहोनी।
ऐसे समय, साँवरे, सूझी तुमको आँखमिचौनी॥
भुवन विदित निज सत गुन तुमने, कहौ कहाँ विसरायै।
रह्यौ स्वभाव यही जो, तौ क्यो करुणासिन्धु कहायै॥

—वैशाख, सं० १९७२

[६]

अव न सतावौ !
करुणाघन इन नयनन सो, द्वै वुँदियाँ तौ टपकावौ॥
सारे जग सो अधिक, कियौ का, ऐसौ हमने पाप।
नित नव दई निर्दई वनि, जो देत हमैं सन्ताप॥
साँची तुमहिं सुनावत जो हम, चौंकत सकल समाज।
अपनी जाँघ उघारे उघरति, वस अपनी ही लाज॥

तुम आछे हम बुरे सही बस, हमरौ ही अपराध ।
करनौ हो सो अजहूँ कोजै, लीजै पुण्य अगाध ॥
होरी सी, जातीय प्रेम की फूँकि, न धूरि उडावौ ।
जुग कर जोरि यही सत माँगत अलग न और लगावौ ॥

—२६-२-१९१८

[७]

उठौ, अब सोय चुके प्रभु जागौ ।
नयन खोलि या जग पालन मे करुणा करि अनुरागौ ॥
अबके जो दृग मीच लियै तुम सेस-सयन के माही ।
अतिशयोक्ति नहिं, साँच मानियै, सेस रहै जग नाही ॥
अधिक रुधिर-रजित-वसुधा अब नाथ न देखी जाती ।
लेउ समेटि अपनी लीला चहुँ दिसि भय दरसाती ॥
सहसन विधवा अरु अनाथ को रुदन सुन्यौ नहिं जावै ।
पै तव हृदय, न जाने क्यो, अब दया न भगवन् ! आवै ॥

—कार्तिक, सं० १९७२

[८]

भयौ क्यो अनचाहत कौ सग ।
सब जग के तुम दीपक मोहन, प्रेमी हमहुँ पतग ।
लखि तव दीपति-देह-शिखा मे निरत विरह-लौ लागी ।
खिचति आप सो आप उतहिं, यह ऐसी प्रकृति अभागी।
यदपि सनेहभरी तव बतियाँ, तउ अचरज की बात
योग वियोग दोउन मे इकसम नित्य जरावत गात
जब जब लखत, तबहिं तव चरनन, वारत तन-मन-प्रान।
जासो अधिक कहा, तुम निरदय, चाहत प्रेम प्रमान ।
सतत घुरावत ऐसौ निज तन, अन्तर तनिक न भावत ।
निराकार ह्वै जात यहाँ लो, तउ जन को तरसावत ।
यह स्वभाव को रोग तिहारौ हिय आकुल पुलकावै ।
सत्य बतावहु, का इन बातनि, हाथ तिहारै आवै ॥

—आषाढ, स० १९७३

[९]

परेखौ प्रेम किये को आवै ।
कहा कहे, मन मूढ बडौ यह, जो तुम्हरे ढिग जावै ॥

होती बात हमारे वस की, कवहुँ न लेते नाम।
करतौ चाहे जगत, भले ही कितनौ हूँ वदनाम ॥
जो चाहत तुमको निस वासर प्रेम प्रमत्त अपार।
तिनके सग, अनोखौ ऐसौ करत आप व्यौहार ॥
सुनत रहै जो मुख अनेक सो, अनुभव मे अव आई।
"ऊँची वडी दुकान तिहारी फीकी वनै मिठाई ॥"
तन मन धन सर्वस्व निछावर करे जो तुम्हरै हेत।
तिनके वँट निर्दयता ऐसी, कैसे दया निकेत ॥
चितवत जे चकोर से, तुमको लखि पावत आनन्द।
तिन को तुम नित नये जरावत भले भयै व्रजचन्द ॥
व्याध गीध गज अरु निषाद से पतितन को तुम तारचौ।
भुवन-विदित वर विमल आर्य कुल हमने कहा विगारचौ ॥
वेद पुरान तुम्हारे जस के, नभ मे महल वनावत।
पै वैसे गुन, छिमा कीजिए, तुम मे एक न पावत ॥
सोवत सुखद शेप-शय्या पै, करत प्रमोद अशेष।
जिए मरै वरु कोउ जगत मे चाहै रहै न शेप ॥
उठौ देव, अव या भारत को खोलि युगल दृग देखौ।
जासो सत्य वने सब कारज, करै न कोउ परेखौ ॥

—सं० १९७२

[१०]

वस, अब नहिं जाति सही।
विपुल वेदना विविध भाँति, जो तन मन व्यापि रही ॥
कवलो सहे, अवधि सहिवे की कछु तौ निश्चित कीजै।
दीनवन्धु, यह दीन-दशा लखि, क्यो नहिं हृदय पसीजै ॥
वारन दुख-टारन तारन मे प्रभु तुम वार न लायै।
फिर क्यो करुणा करत स्वजन पै करुणानिधि अलसायै ॥
यदि जो कर्म-यातना भोगत, तुम्हरै हूँ अनुगामी।
तौ करि कृपा वतायौ चहियतु, तुम काहे के स्वामी ॥
अथवा विरद-वानि अपनी कछु, कै तुमने तजि दीनी।
या कारण, हम सम अनाथ की, नाथ न जो सुधि लीनी ॥
वेद वदत गावत पुरान सब, तुम त्रय ताप नसावत।
शरणागत की पीर तनिक हूँ तुम्हे तीर सम लागत ॥

हम से शरणापन्न दुखी को, जानै क्यो बिसरायौ।
शरणागत-वत्सल सत योही कोरौ नाम धरायौ ॥

[११]

पालागन करजोरी, नाथ ऐसी खेलौ न होरी।
गरब गुमान गुलाल जगत मे कैसौ मगन उड़ायौ।
घन अज्ञान अबीर छयौ चहुँ तासो कछु न लखायौ।
करौ यह क्यो बरजोरी ॥१॥

अहौ कुरीति कुकुमा की अब क्यो प्रभु मूँठि चलावौ।
भरि पाखड प्रबल पिचकारी रंग जंग बरसावौ।
कलह की केसर घोरी ॥२॥

दई मोह माजूम निरदई भ्रम की भाँग खवाई।
हरी 'हरी' सुधि बुधि जग ही की 'भड़ुआ भगति' मचाई।
लाज की गागरि फोरी ॥३॥

अपनी-अपनी ढपली पर अब रसिया बहुत गवायै।
चेत करौ नहि तो पछितैहो कौन नसा मधि छायै।
लिये सत कीरति कोरी ॥४॥

प्रकृति-परिवेश

वह मुरली अधरान की, वह चितवन की कोर।
सघन कुंज की वह छटा, अरु वह यमुन हिलोर ॥
पीत पटी लिपटाय कें, लै लकुटी अभिराम।
बसहु मन्द मुसिक्याय उर, सगुण रूप घनश्याम ॥
कियौ गीत यह आज नाथ तेरै ही अरपन।
तव गुण-रज सो माँजि प्रकृति को साँचौ दरपन ॥

[१]

प्रातःश्री

जय जय जग आश रूप, ऊषे प्रतिभा अनूप।
जागृतिमय पुण्य प्रभा प्रिय प्रकाशिनी ॥
सीतल सुरभित समीर सरल सुमति सुखद धीर।
वर वहाय मृदुल-मृदुल मुद-विकासिनी ॥
हृदय-कमल-कोष अमल समुदित दल नवल नवल।
कोमल कर रुचिर खोलि रुचि विलासिनी ॥
द्विजगन करि-करि कलोल गावत श्रुति सुखद लोल।
बोलति सुर सरस मनहुँ मंजु-भासिनी ॥
नव द्रुम पल्लव डुलाय सुमन-सुमन रज बिछाय।
स्वागत तव रचति प्रकृति पुण्य-रासिनी।
मधुप चारु चरितवान विद्या-मधु करत पान।
ठौर-ठौर गुंजि तिन त्रिताप-नासिनी।
आतम-विस्मृति कराल फैलत जब तिमिर जाल।
करति ज्ञान-सूर्य-उदय जग विभासिनी।
सुवरन रंजित सुरंग रम्य परम प्रेम-संग।
हिम अचल शीशधारि सदभिलासिनी ॥
सहृदय सन्तापहारि भारत आरत निहारि।
ओस-अश्रु सजल युगल दृग अकासिनी ॥

अस सुर मुनि सुजन सेवि प्रातः श्री सत्यदेवि ।
दया द्रवित अति पुनीत हृदय-वासिनी ॥

[२]

बसन्त

सौख्य सुधा सरसाइयै, सुभग सुलभ रसवन्त ।
वर विनोद बरसाइयै, बसुधा बिपिन बसन्त ॥१॥

दस दिसि दुति दरसाइयै, सजि सुरभित सुठि साज ।
जग प्रिय हिय हरसाइयै रति रसाल ऋतुराज ॥२॥

अमित अनारन अम्बन, अमल असोक अपार ।
वकुल कदम्ब कदम्बन, पुनि पलास परिवार ॥३॥

जहँ कोकिल कल बोलत, ठौर-ठौर स्वच्छन्द ।
गुजत षटपद डोलत, पद-पद पी मकरन्द ॥४॥

जयति मधुर मन मोहन, जयति प्रकृति शृंगार ।
सुन्दर सब विधि सोहन, कीजिय विपुल विहार ॥५॥

नित नव निरमल निरखौ, रमि सुरम्यता कुज ।
पुनि पुनि प्रमुदित परखौ, पूरन प्रियता पुज ॥६॥

—२६-११-१९०९

[३]

मृदु मंजु रसाल मनोहर मजरी मोर पखा सिर पै लहरै ।
अलबेलि नबेलिन बेलिनु मे नवजीवन जोति छटा छहरै ॥
पिक भृग सुगुज सोई मुरली सरसो सुभ पीतपटा फहरै ।
रसवत विनोद अनंत भरै ब्रजराज बसन्त हियै बिहरै ॥

[४]

ऋतुराज आज कैसा प्यारा बसन्त आया ।
जिसका प्रभाव पावन सारे जहाँ मे छाया ॥
कैसे रसाल बौरे मृदुमजरी सजा के ।
फैली सुगन्ध सौधी भौरो का मन लुभाया ॥
कलरव कलाप कोमल करती है कोकिलाये ।
अलिपुज ने मनोहर निज गुज-गान गाया ॥

देखो विचित्र शोभा सरसो दिखा रही है।
सुन्दर सुवर्ण रजित क्या दृश्य जी को भाया ॥
फूले है द्रुम रगीले लतिकाये लहलहाती।
सबने ही अपने-अपने उत्साह को दिखाया ॥
ऐसा सुराज पाके हे हिन्द के सपूतो।
प्रफुलित हो काम कीजै प्रकृती ने ये बताया ॥
भारत वसुन्धरा का गौरव जो गिर रहा है।
यदि चाहते हो प्यारे फिर से उसे उठाया ॥
तो पुत्र पुत्रियो को शिक्षा अभी से दीजै।
है सत्य मत्र ये ही ऋषियो ने जो सिखाया ॥

[५]

बसन्त-स्वागत

जय बसन्त रसवन्त सकल-सुख-सदन सुहावन।
मुनि-मन-मोहन भुवन तीन जिय-प्रेम गुहावन ॥
जय सुन्दर-स्वच्छन्द-भाव-भय हिय प्रति परसन।
जय नन्दन-वन-सुरभित-सुखद-समीरन सरसन ॥
जय मधुमातें मधुप भीर को चहुँ दिसि छोरन।
ललित लतान वितानन मे द्रुति दलहिं विथोरन ॥
जय अनूप आनन्द अमित अति अटल प्रदरसन।
जय रस रंग-तरग वेलि अलवेलिन बरसन ॥
करिबे स्वागत आप हरन-त्रयताप सकल थल।
जड जगम जग-जीव जनो जाग्यो जीवन-जल ॥१०॥

जो तरु विथित-वियोग सदा दरसन तव चाहत।
नौचि नौचि कच-पातनि अश्रु प्रवाह प्रवाहत ॥
देखहु किशलय नही, आँखि अति अरुण भई तिन।
रोवत रोवत हाय ! थके, अब टेर सुनौ किन ?
तुम्हरि दिसिहि निहारि पुलकि तन, पात हिलावत।
कर सो मानहुँ मिलन तुमहिं निज ओर बुलावत ॥
बौरे नही रसाल वनै बौरे तव कारन।
बलिहारी तव नेह-नियम निठुराई धारन !

तुम सौ कठिन कठोर और जग दूसर दीख न !
साँचो किय निज नाम 'पञ्चशर को शर तीखन' ॥२०॥

तौहू मृदुल स्वभाव धारि जो प्रेमिन भावत ।
करनौ वाकी ओर जाहि सो प्रेम लगावत ॥
लखि तुम्हरे पद-कज रज सब भूलि भूलि तन ।
साजि साजि सग ललित लहलही लौनी लतिकन ॥
भाँति भाँति के विटप-पटनि सजि वे ही आवत ।
कोऊ फल कोऊ फूल मुदित मन भेटहिं लावत ॥
'जयति' परसपर कहत पसारत आपनि डारन ।
मनहु मत्त मन मिल्लन मित्र कर कर गर डारन ॥
आवहु आवहु वेगि अहो ऋतुगन के नरपति ।
तरुवृन्दनि को लखहु आप शोभा की सम्पति ॥३०॥

वह देखौ नव कली भली निज मुखहि निकारति ।
लगि लगि वात-प्रभात गात अलसात सम्हारति ॥
प्रथम समागम-समर जीति मुख मुदित दिखावति ।
लहकि लहकि जनु स्वाद लैन को भाव बतावति ॥
मुखहि मोरि जमुहाति भरी तन अतन उमगन ।
जोम-जुवानी जगै चहत रस-रंग-तरंगन ॥
वह देखौ अलि पुज कली कल कुज गुँजारत ।
मानहु मोहन मनहि मदन को मत्र उचारत ॥
ठौर ठौर मधु-अन्ध भयौ वह देखौ झूमत ।
कबहूँ जापर वापर यो सबही पर घूमत ॥४०॥

सुन्यौ प्रथम रस रास रच्यौ श्रीपति हम कानन ।
गूँज्यौ वृन्दा बिपिन मुरलिधर-मुरली तानन ॥
कटि पीताम्वर मटकनि-गति जन मनहि चुरावन ।
चुम्बन करि भरि अग वियोगिनि-जीय जुरावन ॥
रच्यौ रास यहि भाँति नृत्य करि सग छबीलिनि ।
परम प्रेम परिपूर्ण अग रस रंग रगीलिनि ॥
वह देख्यौ हम आज रास-रस-रहस रग मनु ।
मधुर ललित अति निपट प्रकृति कौ जो निभंग तनु ॥

वित तौ प्यारी कृष्ण, कृष्ण इत अली विराजत।
पीत पटी वित कसी, पीत इत रेख सुभ्राजत ॥५०॥

गोपिकानि के सग वितै वनवारी आवन।
वनवारी नव कली सग इत पटपद धावन ॥
वित व्रजवाला मुग्ध-करनि मुरली ध्वनि सोहनि।
इतहु नेह नद द्रवत अली गुजारे विमोहनि ॥
चित सो चुम्वन करत अग भर कलिका भेंटत।
करि वियोग मे योग दुसह-दुख-दाहनि मेटत ॥
उत वनमाली रसहिं लैत गहि गोपि निकुजन।
वनमाली अलि इतहु छकत रस-कलिका पुजन ॥
झपट लिपट उत गोपिनि-मुख राजत श्रम सीकर।
ओस विन्दु इत कली पखुरी रलत वसीकर ॥६०॥

अधर अधर-रस पियौ श्याम उत मे गोपिन कहँ।
पीवत मधुप पराग इतै प्रस्फुटित कलिन महँ ॥
जय पद पद पर परम प्राकृतिक प्रेमहि पीवन।
जोवन ज्योति जगावन जय जीवन जगजीवन ॥
फूलत कच-कचनार अपार अनार हजारन।
किंशुक जाल तमाल विसाल रसाल-पसारन ॥
वह देखौ कुल-वकुल घिरचौ जो आकुल मधुपन।
चोरत चहुँधा चित्त निचोरत चारु मधुरपन ॥
कहूँ पटल के पुहुप चटकि चटकत चित चायन।
बौरे आनँद मनहुँ प्रेम घोरे मन भायन ॥७०॥

जगत जननि कौ महा अमंगल मूल लजावन।
मानहुँ सव जग-वन्दन वन्दन-वार लजावन ॥
मुकुलित अम्व कदम्व कदम्वनि पै कलकूजत।
'केहू केहू' मोर अलापत आशा पूजत ॥
अवरेखहु निज स्वच्छ छटा जमुना-जल-कूलन।
सटकि कुज वन सघन घटा नव फूलै फूलन ॥
द्रुम डारनि कै बीच चपल-चहचही चुहूकनि।
कोयल-कीर-कपोत-कलित कल कठ कुहूकनि ॥

मानहुँ करि श्रुति-पाठ धरम की ध्वजा उडावत ।
'हे भारत अब उठौ तजौ आलस' समझावत ॥८०॥

ये सुबोल द्विज अपर डहडही डारन बोलत ।
करसायल मन-हरनि हरनि सँग इत उत डोलत ॥
दुबरी गहि मुख तृनहि सुरभि चहुँ दिसि जहँ जोवति ॥
श्री गोविन्द गुपाल कृष्ण सुधि करि जनु रोवति ॥
बछरा अलप अजान ब्यार भरि थरकत फरकत ।
लभरत झिझकत बिझुकत कुदकत फुँदकत बबकत ॥
देखहु यमुना पुलिन सुलभ शोभित रेती-छबि ।
चिलकति झलकति मनहुँ कान्ति प्रगटी खेती फबि ॥
किम्बा परम पवित्र रची वेदी मन भावनि ।
तीन लोक छबि सची मनहु आनन्द दृढावनि ॥९०॥

ललकि हिलौरे खात कलिन्दी रस सरसावति ।
नीलाम्बर तनु धारि कृष्ण मिलिबैं जनु धावति ॥
भरैं सरोवर स्वच्छ नील जल नलिन रहै खिलि ।
सारस हंस चकोर घोर सब सोर करैं मिलि ॥
जुही गन्धि सो पुही चुई परिमल शुचि धावति ।
पुहुप धूल धूसरित हीय सब सूल नसावति ॥
हरी घास सो घिरे तुग टीले नभ चुम्बत ।
तिन मे सीधी सरल सरग दिसि डगर उलम्बत ॥
जबसो बहरैं लहरैं छहरैं तेरी समुदित ।
बिन कारण नहिं ज्ञात आप आपहि सो प्रमुदित ॥१००॥

कोऊ सरसो-सुमन फूल जौ सिर सो बाँधत ।
गरियारन गोरिन के सँग कौऊ चुहल मचावत ॥
बरस दिना की आस पुजामन कसक मिटामन ।
नाचि सजाय बजाय लगैं गामन मे गामन ॥
कहुँ गँवार गम्भीर बसन्ती बसन रँगावत ।
जो तव स्वच्छ स्वरूप सदा सबके मन भावत ॥
ऊधम उमड्यौ परत रँग्यौ जग तव रस रागत ।
गारी पिचकारी तारिन सो तेरौ स्वागत ॥

कोऊ बावरे भयँ गुलालहिं मगन उड़ावत।
करि फगुवारन लाल गीत फागुन के गावत ॥११०॥

हुरिहारनि की धूम और रगरेलनि पेलनि।
देखहु तिनकी अहा खेल खेलनि झकझेलनि॥
मोद उदधि की लहरि सबन उन्मत्त बनावति।
तोरि लाज कुल दृढ पुल को जनु उमगति आवति॥
सीत और भयभीत कबहुँ पावसहि नचावत।
ग्रीसम के गहि केस स्वेद उर मे छलकावत॥
सीतल मन्द सुगध सनी नित वायु बहावत।
याही सो तू साँच माँच 'ऋतुराज' कहावत॥
भारत आरत ताकी करक करेजा करकत।
पहुँच्यौ दशा वसन्त कहाँ सो ररकत ररकत ॥१२०॥

ऋतु-सुमौलिमनि अहो! यहाँ के हरहु त्रितापन।
प्रेमवन्त! गुनवन्त! करहु सुख-शान्ति सुथापन॥
हमहूँ एक गमार गाम-रस-पुलकित तन मन।
जासो हमरौ कह्यौ सुन्यौ छमियौ सव भगवन!
महिमा अपरमपार पार को पावत पूरन।
सत्य वर्ननातीत गीत तव करत सुपूरन॥

[६]

ग्रीष्म-गरिमा

कँपत चर अचर सकल लखि याहि, प्रभो परताप के धाम।
शीत-मद-हरन सरन-प्रद पाहि तिहारे चरण कमल परनाम॥
प्रेमवस प्राणिनु के पुलकाय, शिशिर के शीतहिं दियौ भगाय।
हमारी करिकें परम सहाय, सतावत सोई तुम अब हाय!!
सकल ससार विकल बेहाल, कष्ट कछु कहत न बनें असीम।
सहन कर सकत न तुम्हरी ज्वाल, द्रवहु भूतेश भयकर भीम॥
विवस नर नारी चहुँ चिल्लात, जबै फटकारत झाँक विशाल।
विकल बहु विलपि दिलपि विल्लात, "हाय यह खायें लेति कराल"॥
देखि तव दारुण दुपहर दर्श, छाँह हू तकत छाँह के हेत।
हिय न आकर्षत कितहू, हर्ष लता वनिता कविता नहिं देत॥

पसीना पोंछत वारहिंवार, पसीजत तौऊ सारे अग ।
कलित कुम्हिलात हियौ को हाट, उडत सव मुखमडल को रग ॥
हरति तव ज्वाल रसाल-रस आय, सरित सरवर सव सूखै जात ।
बात बस बारि वहत, भय पाय मनहुँ तिन थर-थर काँपत गात ॥
तपनि सो सुधिवुधि तजि कहुँ जाय, मोर जब पैठत पाँख पसारि ।
दुरत ता नीचे विषधर आय, विकल प्राणनि कौ मोह विसारि ॥
घाम के मारै अति घबराय, फिरत मारै चहुँ जीवन काज ।
एक थल अपनौ वैर विहाय, नीर ढिग पीवत मृग मृगराज ॥
लार टपकति जाकी अकुलात, स्वान अति हाँपत जीभ निकारि ।
बिलाई कढि समीप सो जात, तऊ नहिं बोलत ताहि निहारि ॥
तरणि कौ तापत तरुण प्रताप, विबस तरुणी-गन तजि सकोच ।
निबारति वसन आप सो आप, नही कुछ अनघेरिन कौ सोच ॥
उतै सो इत, इत सो उत जात, निरखि निरसात सुहात न ठाम ।
कृपा तो चिपचिपात सब गात, न पावत छिनक कहूँ विश्राम ॥
चूम मुख दिना गयै द्वै चार, प्यार करि पावति परम प्रमोद ।
मात सोइ तव बस सकल बिसार, उतारति निज बालक को गोद ॥
राह चलिवौ नहिं तनिक सुहाय, मचकि मसका तव मारे देत ।
पथिक पछी पादपतर धाय, लेत सीरके तब आवत चेत ॥
तपत रवि सहस किरन बिकराल, चील्ह चीहरत गगन मडराय ।
भभकि भुव उगिलत दावा ज्वाल, लूअ की लपट झकौरा खाय ॥
महिष सूकर गन तालन जाहिं, न्हात लोरत अति हिय हरसात ।
कीच सनि मुदित महामन माहिं, मनहुँ तन लगि चन्दन सरसात ॥
जबै अटकत आपस मे बस, द्रोह दावानल पटकत आय ।
खटकि चटकत करिवे निज ध्वंस, नसत पलभर मे बैर बिसाय ॥
सदा अपनी धुन मे दरसाय, पायके कहूँ जलाशय तीर ।
उडति बैठति पुनि उडि-उडि जाय, विकल अति मधुमाखिन की भीर ॥
करति ना कोकिल निज कल गान, गुजन सो सूनी कुज ।
परत पदतर पजरत पापान, जरत परसत पिपीलिका पुज ॥
ताप वस है अत्यन्त अधीर, कहूँ कुलिलत नहिं वछरा गाय ।
द्रुमन तर पी प्याऊ कौ नीर, फिरत जिय-जरनि तऊ ना जाय ॥
रेत सो बाहिर भुरसत पाम तजत डरपत छिन भर को घाम ।
प्रवल धमका की पारत घाम, परै छाती नहिं करिवै काम ॥

निरुद्यम निस्सहाय अतिदीन, निवल सहि सकत न तेरी ज्वाल ।
उपासे प्यासे बसन विहीन, लगत जल प्रान तजत ततकाल ।।
मित्र को तपत देखि असहाय, लुकन नीचे तुमसो डरि हीय ।
हिमालय हिम जव जाति पराय, जगत करुणा न तऊ तव जीय ।।
यदपि पीवत जन कृत्रिम तोय, प्यास प्रवला तौऊ नहिं जाय ।
कठ की शीतलता गई खोय, रह्यौ रसना मे रस ना हाय ।।
करत छिरकाव न पूरत आस, गरम निकसत धरती सो भाप ।
चमेली पटल पुहुप नित पास, तऊ तव अटल रूप सो ताप ।।
लगी खस टटियाँ छिरकी जात, खिचत खस पखा तिनकै सग ।
नैक नौकर के झौखा खात, घुसत तुम वहाँ वडे वेढग ।।
कवहुँ चन्दन घिसि धारत अग, करत सेवन उसीर करपूर ।
वगीचन वागन घोटत भग, तवहुँ नहिं होय शान्ति भरपूर ।।
सेत कारी पीरी अरु लाल, लाइ कै तुम आँधी परचण्ड ।।
उखारत जर सो वृक्ष विशाल, गिरावत तिनकौ गर्व अखण्ड ।।
गगन मे गगन रही अति छाय, लखत नहिं नील वरन आकास ।
दुरत निकरत पुनि पुनि दुरिजाय, नखत दल करत न प्रवल प्रकास ।।
सुधाकर सुधा करनि फैलाइ, करति कछु मटमैली सी जोति ।
यदपि नैनन को अति सुखदाइ, तऊ मनचीती तृप्ति न होति ।।
कछुक जव रजनी होत व्यतीत, अटनि पै लै सितार मिरदंग ।
गवावत गावत सुन्दर गीत, भग तऊ करत सवै तुम रग ।।
स्वदेशी मलमल मल-मल धोय, सदली ताको सुघर रँगाय ।
पहरि ताकी धोती तिय कोय, रमत परि तबहुँ न कष्ट नसाय ।।
उठें खटिया सो नित परभात, व्यारिहू सीरी-सीरी खात ।
उमस सो तवहूँ सिर चकरात, सोचियै पढन लिखन फिर वात ।।
न भावत असन वसन वन बाग, अलप घर घरनी सो अनुराग ।
खुले तव पाइ अनुग्रह भाग, कमायौ सेतमेत वैराग ।।
प्रफुल्लित सवरे आक जवास, जरै तन हरे हरे पटसाज ।
तुम्हें कुसुमाजलि सहित हुलास, देत स्वीकार करौ महाराज ।।
विनय हमरी अव दौउ कर जोरि, नाथ हम निरपराध निर्दोष ।
सत्य पुनि कहत निहोरि निहोरि, तजहु निज महाप्रलय कर रोष ।
भेटि पावस सनेह सरसाउ, सघन घनश्याम छटा दरसाउ ।
जगत को जनि ऐसौ तरसाउ, सरस हिय रस वरसा बरसाउ ।।

[७]

घन विनय

घनश्याम रस बरसाना ।
नूतन जलधर नयन सुखद तन रुचिर छटा दरसाना ।
पुनि पुनि परम पुनीत प्राकृतिक प्रेम प्रभा परसाना ।।
पुण्य पियासे कृषक हृदय मे सुख तरग सरसाना ।
तरसा चुकै इन्हे तुम इतना, अधिक न अब तरसाना ।।

[८]

वर्षा विनोद

प्रिय सावन घन आयँ, दरसत जाय ।
मुदित सुरेस पठायँ, बरसत जाय ।।
कृषकन के मन भारी हरसत जाय ।
आक जवास अनारी, तरसत जाय ।।

[९]

बदरवा दल पुनि-पुनि घिरि आवै ।
जानि मनुज-कुल-हीन दशा को नयन नीर टपकावै ।।
जो ध्वनि करत बिथित ह्वै कबहूँ करुणा-रुदन सुनावै ।
निरख रुधिर रंजित बसुधा को, बिपुल हृदय बिलखावै ।।
भयँ बावरे से सुधि बुधि तजि, नभ पथरा बरसावै ।
घन मुख शोक कालिमा छाई, बिकल इतै उत धावै ।।
भरै वायु के जोर सोर मे कैसो रोर मचावै ।
सत्य सहानुभूति जग जन सो जानि परै दरसावै ।।

[१०]

पावस

जे का पावस सरस सुहावनि ?
अमित अलौकिक है गति जाकी, कछु की कछु दरसावनि ।
घर-घर वैर बदरिया छाई, ऐक्य दिनेश दुरावनि ।।
तृष्णा तरल तड़ित लपकति अति, झपकति हिय डरपावनि ।
निरुत्साह घनघोर नगारै, क्रोध अँधरिया छावनि ।।

जगदम्भी जुगुनू छिन भगुर, प्रभा प्रगटि चमकावनि।
चकित मृगी स्वदेश-बान्धव रति, नय गभित बिउरावनि॥
काम बूँद उपकार धरा पैं, लहि पपरा निरचावनि।
उत्साहुकुर लहलहातु ना, स्वारथ गजल गिरावनि॥
लोक वेद कुलरीति कियारी, ताको काटि वहावनि।
देश हितैषी हरी वनस्पति, ताहि मरोव गगावनि॥
ललित तरुन तरु आकनि पौरुप, पात निपात करावनि।
छटपटाति खल आशा नदियनु, नित नढ़ाय बौरावनि॥
उष्ण परोदय कसक पारि निज जगत जीय घबरावनि।
नित विदेश व्यापार कलापी, कलुपित मन हरपावनि॥
कूकत कोयल शिल्प चहूँधा, धीर न ताहि धरावनि।
विना लाभ बकवादी दादुर, चहुँ टर टर टर्रावनि॥
मधु-मुख उर-विप बीर बहूटी, भल-भल थन्नन दिखावनि।
कडखा कडे वचन गावन की प्रथा पुज अधिकावनि॥
कविता स्वाँति पिपासा व्याकुल, कवि पपिया अकुलावनि।
दीन दशा कासो जिह कहियत, विविध भाव उपजावनि॥
जय घनश्याम श्यामता धारनि, नित ललाम मन भावनि।
नूतन तन धरि प्रेम पयोधरि, बरबस मन सरसावनि॥
शान्त होहु पुरवहु अभिलापा, नेह नवल उनरावनि।
सत्य सतत बस यही प्रार्थना, स्वीकृत करु प्रमुदावनि॥

—अगस्त, १९०८

[११]

पावस प्रमोद

जय जग-जीवन जलद नवल-कुलहा-उलहावन।
विश्व वाटिका विमल बेलि बन वारि वहावन॥
जीवन दै वन वनसपती मे जीवन लावन।
गरु ग्रीपमपन-दरप दलन, मन मोद मनावन॥
जय मनभावन विपत-नसावन सुख सरसावन।
सावन को जग ठेलि केलि जल चहुँ बरसावन॥
जय घनश्याम ललाम प्रेम रस उरहि दृढ़ावन।
फूल भरी वसुधा सिर सारी हरी उढावन॥

बाँधि मण्डलाकार पुरन्दर कों धनु पावन।
तरजि दिखावन गरजि, लरजि मन भय उपजावन ॥१०॥

सनकावन गन पवन, ज्योति जुगनू चमकावन।
ठनकावन घन सघन, दामिनी दुति दमकावन ॥
पठइ सदा धाराधर धावन कृषी जुतावन।
घोर घमण्ड सुनावन बलकर अनल बुतावन ॥
निज सुखमा दरसावन, गावन मनहिं लगावन।
सीर समीर रसावन, अग उमग जगावन ॥
तापन-सतत सतावन, कृषकन जीय जुरावन।
अतुलित जोम जतावन युवजन हीय चुरावन ॥
झर लावन बुदबुदा उठावन भुवि लरजावन।
अगनित अमित अनूप कीट-कुल-वल सरजावन ॥२०॥

चेतन और अचेतन सबके हिय लहरावन।
जयति पुलकि पग धारि पीर हरि धीर धरावन ॥
ठौर ठौर बग-पाँति-सोहनी सरन सजावन।
बीर वहूटी बिपुल गोल गुलगुली भजावन ॥
छावन दादुर-दल द्रुमदल पलपल खरकावन।
बिथित बियोगिनि सोगिनि हिय पिय बिन धरकावन ॥
जारि जवासे जोर जचावन मोर नचावन।
करखा धूम रचावन बरखा धूम मचावन ॥
कारी कारी अँधियारी भारी झपकावन।
टप टप टपका टपका घर बागन टपकावन ॥३०॥

उमगावन सरसरित उमँग उल्लास गुँजावन।
पपियन प्यास बुझावन जग की आस पुजावन ॥
जयति नवेली अलबेली झूला झुलवावन।
मधुर मनोरजन कजरी-धुनि कलित सुनावन ॥
शोक समूह भुलावन जय छिति-छटा गुहावन।
बादर बलहिं बुलावन पावस परम सुहावन ॥
जो वसुधा को सुधा सुखद, दुख दारिद खोवन।
ता निज जीवन को जग-जीवन चहियतु जीवन ॥

त्ता सो निज तन जन-मन रोचन सशय मोचन।
पेखहु भरि-भरि लोचन तजि सव सोच सकोचन ॥४०॥

अद्‌भुत आभावंत अग अति अमल अखण्डत।
घुमडि घुमडि घन घनौ घूम घिरि घोर घमण्डत॥
कारैं कजरारैं मतवारैं धुरवा धावत।
सुख सरसावत हिय हरसावत जल बरसावत॥
उछरि उछरि जल-छाल-छिरकि छिति छर-रर छमकति।
चचल चपला चमचमाति चहुँधा चलि चमकति॥
मनु यह पटिया परी माँग इंगुर की राजत।
छाँह तमालन श्याम, श्याम संग श्यामा भ्राजत॥
घर कोठनि की तरकनि दरकनि माँटी सरकनि।
देखहु तिनकी अर-रर-रर ऊपर सो ररकनि ॥५०॥

खाय चोट फन पलटि सम्हरि रिसकरि सुकारत।
लपलपाय जुग जीभ फनी 'फूँ फूँ' फुकारत॥
चलै पनारैं झपटि दाल तिनकी दुरि अधवर।
लै लै झोका पौन खाति झोका अति सुन्दर॥
हाथ हाथ मे डारि-डारि लरिका हँसि खिलकत।
कुदकि कलिन्दी कूल कहूँ क्रीड़ा करि किलकत॥
देखहु ग्वार गँवार घेरि गैयन कहुँ मटकत।
झपटत झटकत पटकत सटकत लपटत रपटत॥
लखत खरी बस-करी जुआनी चूवत नस-नस।
हृदय हरी यहि घरी भरी उनमत्त नवल रस ॥६०॥

यमुना ढरकि करारनि दै दै ढका ढहावति।
प्रेम-पगी रज-रगी लखहु जनु झूमत आवति॥
चपल लहरि चित चोर चलावत चारु भँवरजल।
तर~ त्रिवली तर मनहुँ लसत गम्भीर नाभि थल॥
'५ वेग सो चरचराय तरु चर-रर चरकत।
इत उत झोका खात डार तिन अधवर लटकत॥
गिरत आप सो आप पात अति सानुराग मन।
उतावरे दिसि भूलि भजत तव लैन आगमन॥

इत उत करवट लेत बियोगी पर न कितहु कल ।
सीरे भरत उसास बास कोमल कोयन जल ॥७०॥

लखि तव शोभा जपत यही नित नूतन तन धर ।
हाय पयोधर ! हाय पयोधर !! हाय पयोधर !!!
मेह थमत चुहकार चहचही करत चाव चित ।
फरफराय निज परन फिरत पछीगन प्रमुदित ॥
धोये धोये पात तरुन के हरसावत मन ।
नैक झकोरत डार झरत अनगिनत अम्बुकन ॥
घन बूँदन सन सजल थलन उपजत बुदबुद गन ।
रेख वर्तुलाकार बनति तिनके चहुँ ओरन ॥
बढि-बढि अपने आप नसति जल मे ताकी गति ।
जिमि निरधन हिय आस उठति बढि-बढि पुनि बिनसत ॥८०॥

सुखद सुरीलौ गामन मे ललना गन गामन ।
भरि उछाह घर सो तिन आमन झूलन जामन ॥
पवन उडत उर के पट को झटपटहिं सम्हारन ।
मजुल लोल. कलोलनि बोलन बिबिध मल्हारन ॥
एक एक को पकरि बुलावन कर गहि लावन ।
जोराबरी चलावन झूला झमकि झुलावन ॥
मधुर मिसिमिसी सो मचकी दै जाहि हिलावन ।
'राखौ, मेरी सोह, मरी' कहि तास रखावन ॥
ग्रीषम गयौ पराइ सकल थल सोहत सीतल ।
देत लैन नहिं चैन रैन तऊ मसक-दस-दल ॥९०॥

काटत सोवत जनन अभय करि निज-निज गरजन ।
जिमि नृप मुँह लगि, देव प्रजा को अति दुख दुरजन ॥
जरत दीपकहिं देखि, जरन जावत पतग गन ।
देत प्रेम-पन परिचय ता सग, होमि होमि तन ॥
सती रीति अब उठी सभ्य देशन मे या खन ।
लाज न, जब तब राजपुत्तिका पजरत लाखन ॥
कबहुँ दुरत घन पटल कबहुँ निकरत पुनि ता सन ।
बिमल उजास अकास चन्द्रमा करत प्रकास न ॥

झिल्लिन की झनकार झुण्ड झट झट झन झनकत ।
प्रकृति देवि के कडे छडे मानहु छन छनकत ॥१००॥

मंजु मँजीरनि के वजाय कौउ साज सजावत ।
कै वरदानी रानी वानी वीन वजावत ॥
इमली नीम फरास आम अमरूद अनारन ।
पीपर ताल करील वेरि कीकर कचनारन ॥
वर सीसम सिरसादि विटप करि तव रस सेवन ।
नयो जनम लहि तुमहिं देत आसीस मुदित मन ॥
ज्वारि वाजरा मका अरहरि मूँग मोठ वन ।
ग्वारि कागुनी तिल रमास नव-उरद हरत मन ॥
झिलमिलात जल वूंद पात पातनि पै भावत ।
हरी मन हरी 'चरी' भरी सौन्दर्य्य सुहावत ॥११०॥

कच्चै पक्कै फल आम वोझ सो आम झुकावत ।
सतपुरुषन कें विभव आय जस नवनि जनावत ॥
पटकी परति वहार लदी जामुन जामुन तर ।
भारत 'जम्बू द्वीप' कहावत जनु जिनही पर ॥
मन मयूर को करसत दरसत वरसत वादल ।
तरसत तरुनि नवेलिनि वेलिनि फुरत नवल दल ॥
कमल केतकी जुही कुटज केसर प्रिय प्रफुलित ।
कुसुमित कलित कदम्व करत वन उपवन सुरभित ॥
कोयल करत किलोल ललित रूखन चहुँ लखि-लखि ।
मन्द-मन्द चलि मधुप पियत मकरन्दहि चखि-चखि ॥१२०॥

रमत निरत जव रसिक मालती मंजु कलिकन ।
धरत श्याम तन सेत वरन अवरन तिन रज सनि ॥
कुल कलापि कमनीय केलिकल कुंज कलापत ।
प्यासो पुनि-पुनि 'पीय पीय' पपिया परलापत ॥
अपनी दिसिहिं, पयोधि ! चितव चातक की चितवनि ।
टेरनि 'पिय पिय' रटि-रटि ढेरनि दुख विन वितवनि ॥
रसना मे रस नाहिं तऊ चिल्लात न चूकत ।
वीर धीर गम्भीर भाँति यह कहि मनु कूकत ॥

"जाओ पाओ कहूँ कहूँ कैसऊ कौऊ जन।
मेरी तौ अब डोरि लगी तोही सो हे घन ॥१३०॥

देते झकोरा कहा झकोरा खात सनेहन।
मेह! जाउ बरु देह, जाँउ जाचन पर-गेहन॥
बरु बल बरखा उपल मरोरहु मेरी पाँखन।
तौऊ निहचल चाह चित्त मे स्वाँती चाखन॥
चाहैं सब थल भरैं सिन्धु सर सरितन के जल।
अमर मूरि मेरी सुखदायनि स्वाँती केवल॥
बेर-बेर तव जाँच प्रेम मे टाँच न लावति।
पैनी पट पर पै हू पैनी साँच कहावति॥
परम नरम मम हृदय देखि तोहि सरम न आवत।
जारे बजमारे! पपिया को का अजमावत" ॥१४०॥

प्रेम बिबस, लखि देर, रोस सो घन बिदारकर।
प्रिय पकेरुह पाँति प्रफुल्लित करन प्रभाकर॥
मृग करसायल करनि मचक-मय घाम निकारत।
अचक सघन घनश्याम छाँह गहि ताहि निवारत॥
घास परस्पर बढी लखहु निज अग लपेटति।
मनु बियोग सो बिथित सहेली भुजभरि भेटति॥
अथवा बार सँवार प्रकृति कटि पर सटकावति।
ललकि-ललकि लहराय लचकि लचि लट लटकावति॥
दिशा मजी, रज दबी, हरित रँग सुन्दर बरसत।
मनहर मजुल दृश्य दूर दूरन लो दरसत ॥१५०॥

बरन-बरन के बादर सो कहुँ परति फवार अति।
भीनी भीनी गन्ध गहति बर वहति पवन गति॥
देखहु मनहु प्रसन्न ललित मृग छौननि आनन।
डोलनि तिनकी कानन, करि ऊपर को कानन॥
रज बिहीन पतरी लतिकन को देखहु लहकन।
घूँघट पट सो मुख निकारि चाहत जनु चहकन॥
झरत द्रुमन सो सुमन सौरभित डारनि हलि-हलि।
मनहुँ देत बनथली तोहि स्वागत-पुष्पाजलि॥

निरखि चहूँ छवि पुज लगत जनु यह मनभावन।
कुज विहारी कुजन सो कढि चाहत आवन ॥१६०॥

परम नीक रमनीक सुखद नित नव मगल प्रद।
अमित अमल प्राकृतिक छटा सो प्रमुदित गद्गद ॥
सजल सफल अति सरल सकल सुर नर मुनि मोहति।
कलित ललित तृन हरित सकुलित वसुधा सोहति ॥
खेचर भूचर जलचर तृण तरु सवके गातन।
उठति अमन्द तरग हृदय आनन्द समात न ॥
गान तान रस सान जान जिय जनु जग जाचन।
प्रकृति कामिनी तन उघारि चाहति चहुँ नाचन ॥
तेरी सुन्दरताई भाई जो सवके मन।
मुख सो वरनि न जाई छाई सामी नैनन ॥१७०॥

यद्यपि कवियन गाई पाई ताकी थाह न।
मनही मनहिं समाई आई नहिं अवगाहन ॥
रह्यौ अछूतौ गुनि गन हूँ सो जव तव गुन घन।
कहा हमारै वूतौ देखहुँ जासो गुनि मन ॥
तउ तव सोभा-सुखद बिसद-सुठि पद-मय दरपन।
करत सत्यनारायण जन तुम्हरै ही अरपन ॥१७६॥

[१२]
शरद

वोरत प्रेम-पयोनिधि मे ऋतु शारदी आई दया निज जोरत।
टोरत फोरत ग्रीषम कौ वल वारिद को वल तोरत मोरत ॥
लोरत खजन पै सतदेव जु छोरत काँस मे साँस वटोरत।
चोरत मजु चितै चित-चायनि चाँदनी चारु पीयूष निचोरत ॥

[१३]

आऔ लखै छवि शरद की, करि दूरि सशय भूरि।
मिलि लेहिं स्वागत तास, जास उजास चहुँधा पूरि ॥
नहिं प्रात वात समात अग, उमंग हिय अधिकाय।
जलजात-पातनि कोर हिम जलकीय चचल आय ॥

मालती सौरभ चमेली छिटकि कलिकनि पास।
नदि कूल फूले लखि परत बहु स्वेत-स्वेत जु कॉस ॥
जहँ कंज बिकसत, कुमुद बहु, अरु केतकी कल कुज।
गुज कर रस लेत, दीसत रसिक षटपद पुज ॥
तरु डार नभन विहार, सुठि सुचिताय युत सब गाय।
देखि तिन आकार, सुनि चहकार, चित हुलसाय ॥
पिय पीय पपिहा करि रह्यौ, अस कहँ मिलै जल-स्वाँति।
उन्नत मुखहिं करि व्योम दिशि नहिं लखति मोरन पाँति ॥
गरद बिन छित, शालि सोहत जरद बहु लहराय।
पंकहु नसानी, शंक का की ? चलहिं सब इतराँय ॥
नील निर्मल नभ लसै निशिनाथ मंजु प्रकास।
सुन्दर सरोवर सलिल मे, ता सुघर छाया-भास ॥
चारु चमकनि चाँदनी चूनर धरै छवि जाल।
माधुर्य मय शशि जासु मुख उडुगन सुमौक्तिक माल ॥
नील उत्पल चारु-चख औ चपल लहरी सैन।
मानहुँ चलावति मोहिवे युव जन उरहि सुख दैन ॥
सारस सरस नव गान मनु कटि किंकिणी सरसाय।
रव मत्त वाल मराल नूपुर कलित ध्वनि जनु छाय ॥
कुसुम कुसुमित काँस के मधु हास शोभा पाय।
ऋतु-शारदी किधौ कामिनी-कमनीय यह दरसाय ॥
'सतदेव' प्रेमिन प्रेम वस टरकाय पावस धाय।
सज्जन दरद-दारक प्रियै ! आयौ शरद सुखदाय ॥

[१४]

हेमंत

सुदर शोभित सुखद शरद हेमन्तहिं भेटी आय।
जैसे वालक देखि माय को गिरै गोद मे धाय ॥
जानि परै जमुना जल पैठत, पैर गयै कटि दूर।
'सी सी' करत किनारे आवें, जाडा है भरपूर ॥१॥

पहले से नहिं कमल खिले अब, निशि मे परै तुषार।
स्वच्छ-सेत-हिमयुक्त हिमाचल दर्शन योग बहार ॥
सूरज भयौ छपा—कर जानौ धूप गई पतराय।
मनहुँ शीत भयभीत याहि लखि वारिद लेय छिपाय ॥२॥

हरित खेतमय गाँवन भीतर हिम कण भीगी दूव ।
मटर फली अरु कोमल मूली मीठी लागै खूव ॥
ज्वार, वाजरा, मूँग, मसीना, मोठ, रमास गुवार ।
सन, तिल आदिक, अरहर तजि, सब कटि आयै घर द्वार ॥३॥

'रवी' जहाँ सीची जावै, तहँ गेहूँ जौ लहराय ।
सरसो सुमन प्रफुल्लित सोहै, अलि माला मँडराय ॥
प्रकृति दुकूल हरा धारण कर, आनन अपना खोल ।
हाव-भाव मानहुँ वतलावै ठाडी करै कलोल ॥४॥

वारहा खोदत श्रमी कृषक वर जल नहिं कहुँ कढि जाय ।
खुरपी और फामडा कर गहि क्यारी कार्टहि घाय ॥
चरसा गहै 'राम आये' कहि गाय गीत ग्रामीन ।
जीवन हेत देत खेतन कहँ जीवन नित्य नवीन ॥५॥

सीर समीर तीर सम लागत, करत करेजे पीर ।
दिन छीजत, रजनी वाढति जिमि द्रुपदसुता को चीर ॥
धुँआ न चैन लैन छिन देवै अश्रु बहावै नैन ।
छाती तले अँगीठी सुलगै ताहि उठावै पै, न ॥६॥

ज्वाला तापि, दुलाई ओढै रहै धूप मे जाय ।
चाय भरा सुविशाला प्याला पीवै हिय हरषाय ॥
साल दुसाला धारै निसदिन, गरम मसाला खात ।
सीत कसाला भाला उर मे लगै न पाला जात ॥७॥

मृगमदादि सौरभ सुखकारक सेवन करै सुहाय ।
भोजन समय कम्प तऊ होवै हाथ जाहिं ठिठुराय ॥
पान खाँय डिविया भर भर कें तवहुँ न कष्ट नसाय ।
वाला हियै लगायै विन कव सीत कसाला जाय ॥८॥

जोगी जती सती संन्यासी कुछ का कुछ रहै गाय ।
भाडादार भृत्य माया का नहिं जाडा यह भाय ॥
धीरज तकिया देकर प्यारे ओढि रजाई ज्ञान ।
रमण कीजियै सदग्रन्थन मे शान्ति स्त्री मान ॥९॥

जावै युवक पाठशाला जव पहन कोट पतलून ।
मोजे डाट वूँट खटकावत सीत लगै तउ दूब ॥
'पैड्रो' अथवा और 'सेगरेट' 'सेफ मैच' से बाल ।
इंजन का सा धुँआ उडावै तो भी बुरा हवाल ॥१०॥

जर-जर देह, दीन जन दुखित, कँपकँपात बिलखात।
हाट-बाट अरु घाट-घाट पर माँगत खात लखात॥
"अब की कठिन प्राण रक्षा है" कहि कहि के यह बात।
बड़े कसाई, अति दुखदाई, जाड़े से इठि जात॥११॥

निस्सहाय निर्बल इन आरत भारतवासिन ओर।
देश हितैषी धनी धार्मिक फेरौ लोचन कोर॥
हे हेमन्त हिमाचल वासी! अधिक रुष्ट जनि देहु।
विनय सत्यनारायण की यह इतनी तुम सुनि लेहु॥१२॥

[१५]
सरिता

कहौ मोहि समुझाय सरित तुम सुन्दर।
बहत कहाँ ते बारि तुम्हारौ झर झर॥
कहौ कहाँ को प्रिये घूमती डोलै।
ऐसी क्यो शोकित चलै और अति होलै॥

जन्मभूमि मेरी है शैल।
पालनहार बूँद अपरैल॥
सोता बना हिंडोला मोर।
आच्छादित बन पुष्पन जोर॥
भगी वहाँ से मै इक बारा।
होकर हठी बौडहा नारा॥
वा दिन मैने करी किलोल।
खेली भूधर नीचै डोल॥

हरित उपज के तीर बीच मम नीर सुहावन।
लैत झकोरे जाय प्रसूनो पर मनभावन॥
मुझे मनौ सुन्दर अधरो से लगै बुलानै।
पुष्पित सुघर अपार अपनि क्यारिन महँ आनै॥

पर वह भडकीले दृश्य हाय सब बीते।
अब चंचल तरल तरंग बहे मम रीते॥
और परै सिन्धु के बैन कान मे आकर।
होगा अब मेरा अंत वही पर जाकर॥

राष्ट्रीय चेतना

[१]

मातृभूमि-महिमा

हमारा प्यारा हिन्दुस्तान ।
नयन का तारा हिन्दुस्तान ॥
वो ही बस घनश्याम की, स्वाँति बूंद रस-ऐन ।
चाहे उसको ही विकल, हम पपिया दिन-रैन ॥
चैन बस देवै उसका गान ॥
वो ही रस का सार है, निरमल नित्य नवीन ।
प्रकृति मधुर सुन्दर सरल, हम हैं उसकी मीन ॥
दीन का वह जीवन धन-प्रान ॥

[२]

वन्देमातरम्

बन्दौ मातृभूमि मन-भावनि ।
जासु विमल जल मृदु फल बल प्रद,
मलयज सीर समीर सुहावनि ।
कलित ललित सकुलित नवल तृन,
चमत्कार निज चहुँ चमकावनि ॥

अति रमनीक नीक सुठि उज्जल,
चारु चाँदनी चटक लजावनि ।
अकथ अमित कुसुमित द्रुम दल-सी,
प्रकृति प्रमोद प्रेम सरसावनि ॥

मजु हासिनी मधुर भासिनी,
सुख-विकासिनी, वरदा पावनि ।
तीस कोटि मुख अट्टहास करि,
दुरजन-हिय अति भय उपजावनि ॥

साठि कोटि भुज गहि असि तीखी,
तरलित द्युति दस दिसि दमकावनि ।
को कहि सकत तोहि अबला माँ !
तू सबला रिपु-जिय धरकावनि ॥

निज भुज-बल खल-दल संहारनि,
जन तारनि, कलि-कलुष नसावनि ।
परम ज्ञान युत धरम-मरम सब,
करम तु ही, जनमन पुलकावनि ॥

बाहु शक्ति, उर भक्ति तुही,
तन प्राण पुण्यमय ज्योति जगावनि ।
दुरगा तुही बसति प्रति घट-मठ,
दस आयुध धरि धीर धरावनि ॥

कमला, अमल कमल दल वासिनि,
वानी, विद्यावर बरसावनि ।
अजर अतोल लोल सुखमासनी,
अमर अमोल दृश्य दरसावनि ॥

सोहनि श्यामल सरल उर्वरा,
विश्वविमोहिनी, हिय हरसावनि ।
आरज-धरनि, भरनि पोषणि जग,
सतनारायण—आस पुजावनि ॥

—१-४-१६०५

[३]

जय जय सुधि निरत लेवि, अमल सकल जगत-सेवि ।
भारत-भुवि जननि देवि, जन उधारिणी ॥१॥

सुन्दर सुख-प्रद सुहात, जातरूप रूप जात ।
देखि दुरत हू दुरात, दरिद दारिणी ॥२॥

तीस कोटि जयति गुज, मगलमय रूप-पुज ।
विहरत जग-उर निकुज, कान्ति कारिणी ॥३॥

दरसत आमोदकन्द, सरसत सुखमा अनन्द ।
बरसत नित रस अनन्द, कष्ट टारिणी ॥४॥

दमनि सोग-रोग भीर, शमनि प्रबल पाप पीर।
रमनि जननि धीर वीर, जय प्रसारिणी ॥५॥

नित धरि उज्जल प्रकास, दीपत तव दुति-उजास।
करि विनोद कौ विकास, हृदय हारिणी ॥६॥

सजल, सकल सरल अम्ब, सदय हृदय बिन विलम्ब।
जप-तप धरमावलम्ब, ब्रह्मचारिणी ॥७॥

षट ऋतु वर विमल पाय, शस्य श्यामला सुहाय।
लहरति नित जगमगाय, दुख विदारिणी ॥८॥

मलयज मजुल अतोल, पवन क्रोड लै अमोल।
करि-करि क्रीडा कलोल, रुज प्रहारिणी ॥९॥

रविकर सज्जित सँवारि, चिर तुषार क्रीट धारि।
विलसति सन्ताप हारि, वुधि सुधारिणी ॥१०॥

असरन कर सदा सरनि, निरखत हिय मोद भरनि।
तारा त्रयताप हरनि, तरणि तारिणी ॥११॥

विदित सुभग श्रुति पुरान, सुर मुनि नर धरत ध्यान।
पद-पद प्राकृतिक प्रान-पूर्ति पारिणी ॥१२॥

भजनि कलि कलुष मूल, गंजनि भव व्याधि शूल।
रंजनि जनमन सफूल, शोक वारिणी ॥१३॥

वीरोचित रखन मान, मैंटति खल दल निसान।
कोमल कर लै कृपान, रिपु सँहारिणी ॥१४॥

करुणामयि विगति छद्म, वसुधा मधि सुधा सद्म।
आरज थल अमल पद्म, धूरि धारिणी ॥१५॥

मधुर-मधुर मुसिकिरात, हरष हीय ना समात।
टपकत प्रेमाश्रु जात, भय निवारिणी ॥१६॥

नय मारग मुदित गवनि, शोभा सुख सिद्धि सवनि।
श्रीपति अवतार अवनि, श्रुति विचारिणी ॥१७॥

दयादृष्टि हेरि हेरि, कमले कर कंज फेरि।
काटहु सव बिपति बेरि, शुभ-प्रचारिणी ॥१८॥

विद्या वर विनय ऐनि, ललित मृदुल मधुर वैनि।
सत्य देवि ज्ञान दैनि, काज सारिणी ॥१९॥

मात लई शरण तोर, करिकै इत कृपा कोर।
हरति ताप क्यों न मोर, हिय विहारिणी ॥२०॥

—२१-३-१९०७

[४]

मेरी मातृभूमि

पावन परम जहाँ की, मंजुल माहात्म्य-धारा।
पहले ही पहले देखा, जिसने प्रभात प्यारा॥
सुरलोक से भी अनुपम, ऋषियो ने जिसको गाया।
देवेश को जहाँ पर, अवतार लैना भाया॥
वह मातृभूमि मेरी, वह पितृभूमि मेरी॥१॥

ऊँचा ललाट जिसका, हिम-गिरि चमक रहा है।
सुबरन किरीट जिस पर, आदित्य रख रहा है॥
साक्षात् शिव की सूरत, जो सब प्रकार उज्ज्वल।
बहता है जिसके सिर से, गगा का नीर निरमल॥
वह मातृभूमि मेरी, वह पितृभूमि मेरी॥२॥

सर्वोपकार जिसके, जीवन का व्रत रहा है।
प्रकृती पुनीत जिसकी, निरभय मृदुल महा है॥
जहाँ शान्ति अपना करतब करना न चूकती थी।
कोमल-कलाप-कोकिल कमनीय कूकती थी॥
वह मातृभूमि मेरी, वह पितृभूमि मेरी॥३॥

वह वीरता का वैभव, छाया जहाँ घना था।
छिटका हुआ जहाँ पर, विद्या का चाँदना था॥
पूरी हुई सदा से, जहँ धर्म की पिपासा।
सत्संस्कृत पियारी, जहँ की थी मातृभाषा॥
वह मातृभूमि मेरी, वह पितृभूमि मेरी॥४॥

[५]

हिन्द वन्दना

जय-जय अनादि अनमधि अनन्त,
जय-जय जग-वन विकसत बसन्त।
जय-जय अच्युत अनवधि अधार,
जय-जय जग-नाटक सूत्रधार॥

जय-जय सुन्दर सुखमा रसाल,
जय-जय शरणागत प्रणतपाल।
जय-जय धुरीण धृति धर्म-ऐन,
जय-जय जगदीनहिं दान दैन ।।

जय-जय जगनन्दन पारिजात,
जय-जय दश-दिश वन्दन प्रभात।
जय-जय थल श्यामा-श्याम-केलि,
जय-जय सुखधामा प्रेम-वेलि ।।

जय-जय जग प्रचुर पुनीतकाय,
जय-जय अमान नित मान पाय।
जय-जय विनोद सुरसरी श्रोत,
जय-जय श्रीधर विद्युत उदोत ।।

जय-जय अथाह सत्यानुराग,
जय-जय प्रवाह पूरण प्रयाग।
जय-जय चचल मन नहिं घरीक,
जय-जय प्रभु चरणन चचरीक ।।

जय-जय अकाम नित न्याय धाम,
जय-जय जगकर शोभाभिराम।
जय-जय दयार्द्र प्रेमाश्रु पूर।
जय-जय क्रूरन सग नित अक्रूर ।।

जय-जय प्रधान सब गुण निधान।
जय-जय प्रवीण मगलविधान ।।

जय-जय पतिव्रता पुण्य-पाँति।
जय-जय अकलंक समस्त भाँति ।।

जय-जय परिपूरण ब्रह्मनिष्ठ।
जय-जय भवरुज चूरण वलिष्ठ ।।

जय-जय अभीष्ट आनन्दकन्द।
जय-जय उल्लास-अमन्द-चन्द ।।

जय-जय मंजुल जग-हृदय-माल।
जय-जय जगमग जग ज्योति-जाल ।।

जय-जय मनमोहन सौम्यरूप।
जय-जय कछु कोह न, विश्व भूप ॥

जय-जय जग उज्जल नवल रत्न।
जय-जय उदार साधन प्रयत्न ॥

जय-जय निश्चल निष्कपट नेम।
जय-जय दम्पति अति शुद्ध प्रेम ॥

जय-जय सुन्दर सद्धर्म-सार।
जय-जय जग सतगुरु सब प्रकार ॥

जय-जय अव्यक्त अविचल सुधार।
जय-जय वसुधा मधि सुधा धार ॥

जय-जय सुखमय सानन्द सद्म।
जय-जय प्रमोद-प्रस्फुटित पद्म ॥

जय-जय ललाट हिम शैल-शृंग।
जय-जय मधु लोलुप मुकट भृंग ॥

जय-जय चिन्तामणि चन्द्रकान्ति।
जय-जय प्रशस्त पावन प्रशान्ति ॥

जय-जय कलकंठनिनादगान।
जय-जय द्विज-गौ-पालक-महान ॥

जय-जय सुकलाधर धरा-इन्दु।
जय-जय पद-पद पीयूष बिन्दु ॥

जय-जय कल कान्ति कला कलोल।
जय-जय अमोल अति ललित लोल ॥

जय-जय अद्भुत आभा अखड।
जय-जय मरकतमणि-मार्त्तण्ड ॥

जय-जय वसुन्धरा-छवि अछुद्र।
जय-जय जग-वाछा-सरि-समुद्र ॥

जय-जय महर्षि-यशनिचय-थम्ब।
जय-जय समस्त जगतावलम्ब ॥

जय-जय प्रताप प्रगटत प्रदीप।
जय-जय महि मडल मख-महीप ॥

जय-जय अभिमत-प्रद-कामधेनु ।
जय-जय जग-मृग-मन हरन वेनु ॥

जय-जय करुणा कमनीय कुज ।
जय-जय प्रिय पावन प्रनय पुज ॥

जय-जय रसिया हिय सरल शान्त ।
जय-जय जग-रुचि-कामिनी-कान्त ॥

जय-जय राखत निज वचन टेक ।
जय-जय त्यागत नहिं धर्म्म एक ॥

जय-जय हिय कोमल वल अमेय ।
जय-जय निर्भय भीषण अजेय ॥

जय-जय निशक निर्द्वन्द्व वीर ।
जय-जय ध्रुवसम ध्रुव अचल धीर ॥

जय-जय रिपुरण नहिं पीठ दैन ।
जय-जय धनेश मदलेश, पै, न ॥

जय-जय पराक्रमी मनहु जिष्णु ।
जय-जय साधारण मन सहिष्णु ॥

जय-जय गुण गण गौरव असीम ।
जय-जय कराल सग्राम भीम ॥

जय-जय जय-ककन कर विशाल ।
जय-जय प्रगल्भ रण शत्रुसाल ॥

जय-जय प्रण पूरण भरत खण्ड ।
जय-जय अरिदल नाशन प्रचण्ड ॥

जय-जय खल गजन विदित जगत ।
जय-जय मन रजन राज-भक्त ॥

जय-जय त्रिभुवन विख्यात देश ।
जय-जय अपूर्व अतुलित अशेष ॥

जय-जय नित निरमल नर-निकुज ।
जय-जय पपिया 'पिय-पिया' गुज ॥

जय-जय आरज-कुल-कीर्त्ति-केतु ।
जय-जय अनगढ दृढ वेद-सेतु ॥

जय-जय जग जीवन जन अनन्य ।
जय-जय धीरज धन धन्य धन्य ।।

जय-जय अनभव अमलारविन्द ।
जय-जय सदैव सतदेव हिन्द ।।

[६]

मातृ-वन्दना

सब मिलि पूजिय भारत-माई ।
भुवि विश्रुत, सद्वीर-प्रसूता, सरल सदय सुखदाई ।।

वाकी निर्मल कीर्त्ति-कौमुदी, छिटकी चहूँ दिसि छाई ।
कलित केन्द्र आरज-निवास की, वेद पुरानन गाई ।।

आर्य-अनार्य सरस चाखत जिह, प्रेम-भाव रुचि राई ।
अस जननी-पूजन हित धावहु, बेला जनि कढि जाई ।।

सुभट सपूत, अकूत साहसी, आरजपूत कहाई ।
मातृभक्त सुप्रसिद्ध जगत मधि, प्रिय प्रताप प्रगटाई ।।

क्यो न जगत अब वीर केसरी, बैठे अस अलसाई ।
ऐक्य नखनि सो द्रोह-गयन्दहि भल विदारि रिसियाई ।।

चकित भयाकुल भारत-भुवि की, नासि सकल दुचिताई ।
विरचि आत्म-अवलम्बन-आसन मा को तहँ पधराई ।।

साजि स्वधर्म मुकुट तिह सिर पर दृढता चौर डुलाई ।
ईश-भक्ति की छत्र-छाँह करि, तजि निज कुमति कमाई ।।

विजय वैजयन्ती गर डारहु, प्रेम प्रसून गुहाई ।
अनुभव अमल आरती कीजै मजुल हिय हरषाई ।।

प्रिय-स्वदेश व्यापार-अर्घ-जल, सिंचन करहु बनाई ।
जपहु मुदित मन सत्य मत्र 'बन्देमातरम्' सुहाई ।।

[७]

बन्दौ भारत-भुवि महतारी ।
शेष अस्थि-पिंजर बस केवल, भय-युत चकित बिचारी ।।

रोग अकाल दुकाल सताई जीरन देह दुखारी ।
मुरझाई माधवी लता सी, जनु पाले की मारी ।।

गहरे उष्ण उसाँस भरति जो, नित नव विपति निहारी।
धूल-धूसरित जाकी झलके अलकें स्वेत उघारी॥

अञ्चल फटे लटे तन ठाडी, सुधि बुधि सकल विसारी।
तदुपरि देश विदेश पुत्र दुख, चिन्ता-व्याकुल भारी॥

सोच-विचार पगी निसिवासर मन-मलीन हिय हारी।
करत सहानुभूति नहिं कोऊ, यासो जगत मझारी॥

निरालम्ब, धरि हाथ चिबुक पै नयन वहावत वारी।
श्रीपति जन्मभूमि ह्वै कवहूँ, जो श्रीहीन भिखारी॥

अन्नपूरणा तौऊ बिथित अति, अन्न दीनता धारी।
शस्य श्यामला वनी बनी सम, जो नीरस भयकारी॥

बरनी स्वर्गहुँ सो जो अनुपम, अव मसान अनुहारी।
विस्तारित नित-नित अति आरत, दशा सकै न उचारी॥

'अवला' नाम कियौ जग साँचो जग मे सकल प्रकारी।
तीस कोटि सुत अछत दुखी तऊ, कैसी गति ससारी॥

जात लाज व्रजराज राखियै, याकी कृष्ण मुरारी।
सत्यदेव! अव अधिक न या पै, विपदा जाति सहारी॥

[८]

जय-जय भारत मातु मही।
द्रोण भीम भीषम की जननी, जग मधि पूज्य रही॥

जाके भव्य विशाल भाल पै, हिम मय मुकुट विराजै।
सुवरण जोति-जाल निज कर सो, तिह शोभा रवि साजै॥

श्रवत जासु प्रेमाश्रु पुज सो, गग-यमुन को वारी।
पद-पकज प्रक्षालत जलनिधि, नित निज भाग सँवारी॥

चारु चरण नख कान्ति जासु लहि यहि जग प्रतिभा भासै।
विविध कला कमनीय कुशलता अपनी मजु प्रकासै॥

स्वर्गादपि गरीयसी अनुपम अम्ब, विलम्ब न कीजै।
प्रिय स्वदेश-अभिमान, मात, सत ज्ञान अभय जय दीजै॥

—२६-२-१९१८

[९]

मातृभूमि-प्रेम

करहु मन मातृभूमि अनुराग।
जगत जगत बस तुमही सोवत, नैन खोलि अब जाग॥

करनौ काज करन सो सीखौ, कोरी गिटपिट त्याग।
जो परदेश-वस्तु छिन-भंगुर तिन पर डारहु आग॥

निज कर रची वस्तु सेवहु नित तजि मत्सर मदराग।
चलहि अधिक दिन जो करि देखहु कमती लागहि लाग॥

हो स्वदेश भ्रातन को पालन जासौ का बड भाग।
मतवारै मधुकर बनि चाखहु नागर मधुर पराग॥

श्रद्धा सज्जी लै निज उर सो धोय द्वेष के दाग।
भ्रातृ-प्रेम की लै पिचकारी चहुँदिस प्रमुदित भाग॥

घोरि एकता-रंग परस्पर खेलहु हिलमिल फाग।
सत्य ढोल-ढप लैकै रागहु निज उन्नति को राग॥

—फरवरी, १९०६

[१०]

आइयै सुजन पियारै।
करचौ यथार्थ स्वयश चरितारथ, जो यहँ सदय पधारै॥

उच्च-उदार-भाव-मंदिर यह श्रुति-पंचामृत पीजै।
भेद भाव तजि एक प्राण सो मातृ-वन्दना कीजै॥

या कारन पूर्वज ऋषियनु की कीर्त्तिलता लहराई।
सुमन सुमन विकसत चहुँ निकसत सौरभ सब जग छाई॥

तिन सुन्दर गौरव रक्षा को, का यह समुचित नाही।
रहै चिरस्थित यह विद्यालय अनुपम भारत माही॥

यह जीवन संग्राम जानयै, जो प्रयत्न दरसावै।
करै प्रमाणित बली भली विधि या महि सो जय पावै॥

या सो तन मन धन हू अरपन करि, विद्योन्नति कीजै।
मग दुरलभ नरजीवन को फल सत्य सुखद अब लीजै॥

[११]

स्वतंत्रते !

जय जय जय स्वतन्त्रते प्यारी ।
तुव गति, नर मति समझ सकत नहिं, अखिल लोक तैं न्यारी ।।

जो जन अरपत निज तन मन धन सकल तिहारै कारन ।
औरहु दूरि क्षितिज सम, तासो भजत लगावै वार न ।।

विविध भाँति के लालच दै दै, निज जन मन ललचावै ।
ललकत गहन जवै मन वांछित, ताहि तुरत हटावै ।।

तेरे अग्नि-कुड मे, सहसनु काटि स्वशीस चढायौ ।
किन्तु रही मुसकात विमोहनि, नेक मोह नहिं आयौ ।।

यह सब कौतुक कला रचन मे, तोहि स्वाद कहा आवै ।
निज अनुमोदित सत्य-मार्ग, किन सत्वर जगहिं दिखावै ।।

—जनवरी, १९१४

[१२]

अब उद्धार कैसे हो ?

लगी दिन रात है चिन्ता, कि अब उद्धार कैसे हो ?
पडी मझधार मे भगवन् ! ये नैया पार कैसे हो ?
चलै आँधी निराशा की न सूझै अपना वेगाना ।
खिवैया चौकडी भूले प्रभो ! निस्तार कैसे हो ?
नदी जीवन समर की है विजय उद्देश जिसका तट ।
पहुँच उस तक, अविद्या का ये हलका भार कैसे हो ?
भयानक भ्रम भँवर मे पड, गई सब मान-मर्यादा ।
हुए मदमत्त स्वारथ मे सुमति सचार कैसे हो ?
सभी कर्त्तव्य बिसराये न निश्चय आत्मशक्ती पर ।
भला फिर सत विचारो का अभय उद्गार कैसे हो ?

[१३]

भारत माता

लीजियै सुधि मेरी ।
कहाँ कृष्ण करुणानिधि केशव गाय सिंह ने घेरी ।।

सब प्रकार असहाय, हाय मैं, जग कहाय तव चेरी।
चढ़ा सभ्यता शिखिर कहौ कहाँ नाथ दै गैरी॥

आर्य रत्नगर्भा यह निष्प्रभ दारिद दीन घनैरी।
"स्वर्गादपि गरीयसी" अब पद दलित भस्म की ढेरी॥

रसना नाम करति निज साँचौ, ज्यो-ज्यो आरत टेरी।
जब जब भार परचौ प्रभु तब, सब विधि भू-विपति निवेरी॥

सो निज बानी कहाँ बिसराई, किह कारन यह देरी।
बिगरें काज गाइ है को सत कीरति कीरति तेरी॥

[१४]

भगवन्! मेरा देश जगाना।
स्वतंत्रता के उसी स्वर्ग मे, जहाँ क्लेश नही पाना॥

सचै जहाँ मन को निर्भय हो ऊँचा शीश उठाना।
मिलै बिना कुछ भेद-भाव के सबको ज्ञान-खजाना॥

तंग घरेलू दीवारो का बुना न ताना-बाना।
इसीलिए बच पाया जहाँ का पृथक्-पृथक् हो जाना॥

सदा सत्य की गहराई से शब्द मात्र का आना।
पूरणता की ओर यत्न का जहाँ भुजा फैलाना॥

विमल विवेक सुलभ स्रोते का जो रसपूर्ण सुहाना।
रूढ़ि भयानक मरुस्थली मे जहाँ नही छिप जाना॥

जहाँ उदारशील भावो का भावै नित अपनाना।
सच्चे कर्मयोग मे प्रतिजन सीखै चित्त लगाना॥

[१५]

भारत-विलाप

बूडत राखि लयौ गज को,
हनि ग्राह, सनेह के साज सँजोयै।
नाम "हरी" के पुकारत ही,
तुम जाय सबै दुख कटक खोयै॥

दीन-दशा लखि के भरि आवत,
आँसुन सो नित नैनन कोय।
भारत आरत आपको हाय!
कहाँ इतने करुणानिधि सोयै ॥१॥

विश्व शिरोमणि भारत जो,
वह दीन मलीन अरु हीन भयौ यै।
प्लेग अकाल दुकाल को कष्ट,
न जात दयानिधि हाय सह्यौ यै॥
सभ्य समाज चल्यौ अगुआ बनि,
वो ही पिछार निहार रह्यौ यै।
मीचि कै आँखि प्रलै-सुख-नीद,
कहाँ करुणानिधि डाटि कै सोयै ॥२॥

कोमल जो नव फूल खिलै,
हिय बेधि विधे! दुख-तार पिरोयै।
देश दरिद्र दुखी फिर हू,
तुम ताहू पै कौन नसा महि भोयै॥
विप्र सुदामा को हेरि, इतो,
अपनौ जन जानि, दयानिधि रोयै।
भारत गारत हेरि, किते,
करुणा तजि कै करुणानिधि सोयै ॥३॥

नामहि लेत धुरू प्रहलादऽरू,
द्रोपदी के दुख धाय के धोयै।
वेद पुराण पुकारत, तारत,
टारत भक्त-त्रितापनि जोयै॥
टेरत आरत गारत भारत
"माधव माधव" अश्रु बिगोयै।
नाम धराय लयौ करुणानिधि,
भाजि कहाँ करुणानिधि सोयै ॥४॥

लीजियै चीर हृदै यहि को
लखि लीजियै बीज सनेह के बोयै।
जाऊ बढे कोऊ काऊसी बातन,
नेह के पथ अगार रह्यौ यै॥

प्रेम के फद फँस्यौ तव नाथ
सिरै सबरै जग सकट ढोयै।
भूलिके भारत के हिय-सूल
कहाँ करुणा-वरुणालय सोयै ॥५॥

टेरत टेरत हाय! हरै!
रस ना रसना मधि आज रह्यौ यै।
कातर कंठ बनै न गुहारत
कष्ट कठोर न जात कह्यौ यै॥
जा ही सो हे शरणागत-वत्सल
भारत आसरौ आप लयौ यै।
तानि पितम्बर पाँयन लो
भरि नीद कहाँ करुणानिधि सोयै ॥६॥

काहू की बेर नृसिह बराह
ऽरू बामन रूप हँसे मधुरोयै।
काहू की बेर को राम हरी
घनश्याम जू लै अवतार सँजोयै॥
काहू की बेर उघारेहि पाँयन
आतुर भाजि, सबै दुख खोयै।
भारत बेर अबेर करी तुम,
हाय, कहाँ! करुणानिधि सोयै ॥७॥

रैन दिना कल नाहि परै
अजहूँ तुम केशव नीद मे भोयै।
दु.ख के जालहि 'लेहु समेट',
जो भारत मे चहुँ ओर बिछौ यै॥
जोरि निहोर कहे सतदेव!
दया करि नाथ जू! टेर सुनौ यै।
काहे के हो करुणानिधि जू,
जब कानन दै अँगुरी तुम सोयै ॥८॥

—जून, १९०५

शिव-भारत

पूरब पच्छिम घाट चरण मुद मगल-कारी ।
विन्ध्याचल कटि देश, नाभि साँभर दुख-हारी ।।

उर सम्मिलित-प्रदेश बग राजस्थल भावत ।
मुख-मडल कशमीर, ग्रीव पंजाव सुहावत ।।

तपत भानु-नवकिरण-माल सुभ सुभग विराजत ।
हेम वरण हिम चन्द्रभाल धवलागिरि भ्राजत ।।

सघन तरुन की अवलि जटिल अति जटा सँवारत ।
हिम-मय स्वेत सुरग सकल भव ताप निवारत ।।

व्रह्म, श्याम अरु यवन देश युग भुजा पसारत ।
मार-उछाहहिं मारि क्रोध परलय परचारत ।।

हिमगिरि सिर सो गंग पुण्य परवाह प्रवाहत ।
सत्यदेव अस शिव-भारत सो आनँद चाहत ।।

—२३-५-१९०३
प्रकाशन-काल—मार्च, १९०६

[१७]

प्रार्थना

सुनहु सुनहु मन लगाय । कहत दोऊ भुज उठाय ।
देखहु जनि भूलि जाय । भारत जन सारै ।।

निरभय धरि उर उमग । मिलहु एक हृदय सग ।
रँगहु सकल प्रेम रग । है कै मतवारै ।।

तोरहु निज बैर जाल । चलहु प्रथम जनन चाल ।
व्यर्थ होहु क्यो विहाल । आरज – कुल – वारै ।।

सवरौ आलस निवार । त्यागहु इन्द्रिय-विहार ।
देश को करहु उधार । वनत अव सँवारै ।।

नागरी पढौ सप्रीति । पालहु निज धर्म नीति ।
सकल चलहु स्वकुल रीति । रहहु न मन मारै ।।

देश को दृढहु व्यापार । सम्पदा यही अधार ।
जासो आनँद अपार । अवसि होहिं भारै ।।

ज्ञान शिल्प को बढ़ाय। रचहु ताहि मन दृढ़ाय।
सहस जनि तजहु भाय। रहहु धीर धारैं॥

जो स्वदेश के पदार्थ। मोल लेहु सो यथार्थ।
धरहु स्वप्रण मनहु पार्थ। होहु जनि दुखारैं॥

वृद्ध संस्कृत सुहाय। सेवहु नित चित्त लाय।
जासो संशय नसाय। बर्सहि सब सुखारैं॥

जगहु जगहु देश भ्रात। लखहु दिवस चढत जात।
उभयौ कब को प्रभात। नयन ना उघारैं॥

निरमल उर करि उदार। कलह फूट निज बिसार।
भ्रातृ प्रेम करि प्रचार। लूटहु जस भारैं॥

जरमन इंगलैण्ड देश। फ्रान्स अमेरिका विशेष।
देश पश्चिमी अदेश। देत यह पियारैं॥

होवहु जनि प्रिय अधीर। धारहु हिय माँहि धीर।
हरि है सब पीर भीर। मोर मुकुट वारैं॥

भारत तव भक्त नाथ। बिलपत मानहुँ अनाथ।
सत्यदेव! करि सनाथ। द्रवहु अब मुरारैं॥

[१८]

करुण क्रन्दन

कौनैं सुनाऊँ अपनौ दुख हाय जाई।
ना तात मात प्रिय भ्रात परैं लखाई॥
डारी अपार ममता तजि मित्र सारी।
कोऊ न आवत ढिगैं, लखि के दुखारी॥१॥

कोऊ दिना वह रह्यौ जग भूप सारैं।
आयैं सभीत पद-सेवन दर्प मारैं॥
नायैं स्वक्रीट रुख देखत जा अगारी।
सोई सदैव अब दीन, दया भिखारी॥२॥

उच्चाति-उच्च पद जास सदा सुहायौ।
गम्भीर धीर अति वीर समस्त गायौ॥
नीचेहु बैठन कहूँ तिहि ठौर नाही।
अत्यन्त भीरु बनि रोवत जीय माही॥३॥

जाग्यौ जहाँ सुभग सुन्दर साम-गान।
चर्चा चली विमल सोचत शास्त्र-ज्ञान ।।
गावैं तहाँ बटु सदा गनिका-कहानी।
झूँठी कथानि रुचि राखत मोद-मानी ।।४।।

श्री श्री कणाद शुक जैमिनि व्यास शिष्ठ।
दाता दधीच भृगु गौतम औ वशिष्ठ ।।
ब्रह्मण्य देव कपिलादिक जो अमानी।
हा ! हा ! ! पवित्र तिनकी सुकथा भुलानी ।।५।।

स्वच्छन्द संस्कृत करयौ जहँ पै विकास।
छायौ समस्त जग उज्जलता-उजास ।।
ताको विहाय जु असंस्कृत अन्य भाषा।
देखें पढे तब बढै कस हीय आशा ।।६।।

सर्वत्र दीपत रहै जहँ अग्निकुण्ड।
सम्मान संग बहु दान दियँ वितुण्ड ।।
दीसैं तहाँ चिलम चुर्ट विराजमान।
कल्यान-यान सम पावन पीकदान ।।७।।

हर्षैं जहाँ सकल सज्जन दर्श पाइ।
भारी विचार "ढिग नीच न बैठि जाइ" ।।
जी सो तहाँ लखत वार-वधूनि चित्र।
तिनकें गहै चरण बात बड़ी विचित्र ।।८।।

जाकी कृपा बस बंध्यौ दृढ़ राम-सेतु।
कल्याण-दा कल प्रदर्शनि-कीर्ति-केतु ।।
प्राणातिरिक्त सम शिल्प-कला पियारी।
कोऊ न लेइ सुधि डोलति हाय मारी ।।९।।

जो भ्रातृ भक्ति यहँ की चहुँ ओर छाई।
विद्रोह नासनि विकासनि सन्मिताई ।।
ताको निकारि सँगमत्सर आइ भारै।
घोरै विरोध बल सो अपने नगारैं ।।१०।।

जा धर्म के जपत, पाप त्रिताप नासै।
सद्भाव प्रेम हिय मे रुचि सो प्रकासै ।।
दुर्भाग्य सो अपन सद्गुण हाय भूल।
सो धर्म भौ कलह क्रोध विरोध-मूल ।।११।।

जो कोऊ देशहित बात कहूँ चलावै।
विक्षिप्त सर्वमत मे नित सो कहावै॥
बाकी भई कुमति, वा तिन बुद्धि बक्र।
जानी न जाइ कछुरे कलि-काल-चक्र॥१२॥

जो शीलता रुज-विदारणि शील-ऐनी।
कृष्ण-प्रिया जगत-मा कृषि-शक्ति-दैनी॥
ता धेनु-प्राण हित एक छदाम माही।
चाहै लुटै स्वधन नित्य कुमार्ग नाही॥१३॥

को कोऊ सज्जन कहूँ त्रुटि को सुधारै।
तौ फेरि औ नरनि की लखियै वहारै॥
कोरी प्रलाप बकबादि वहाइ धारै।
आलोचना करत द्वेष निकारि डारै॥१४॥

विप्रावतस वटु-वृन्द कहूँ पढै ना।
रक्षा जु क्षत्रि-कुल हू तिनकी करै ना॥
नि.शास्त्र शस्त्र बल आज अतीव दीन।
जैसे मणी बिन फणी, जल हीन मीन॥१५॥

मौजे उडे खलनि की, करि मित्र भेद।
मारे फिरै सुजन, नित्य उठाइ खेद॥
उत्साह वर्द्धि तिनके चित ना सम्हारौ।
तौलौ बताउ जिय मे केस धीर धारौ॥१६॥

सीता सती गुणवती सत शील धामा।
दुर्गावती कुलवती युवती ललामा॥
झाँसी भुवाल-पतिनी अति वीर बामा।
लेवै न हाय! तिनको कहुँ कोऊ नामा॥१७॥

'जोनार्क' शुद्ध गुनगान सबै उचारै।
पै हाय! यो कबहु ना हिय मे विचारै॥
कैसै हमार गृह होवहि ऐस कन्या।
जासो लसै विमल भारतभूमि धन्या॥१८॥

जानै कहा अपढ बालन को पढावै।
देशोपकार तिनके उर न दृढावै॥
काटै विमूढ मम उन्नति-मूल हाय।
दुर्दैव-राज! तुम सो न कछू बसाय॥१९॥

चाहै परै अपन पै विपता अपार।
चूकार ना करत, 'शासक के अगार॥
काँपै विपन्न अति, सूझत ना उपाऊ।
सम्पूर्ण मानत भयंकर ताहि हाऊ॥२०॥

सन्मान्य कारुणिक शासन मजु पाइ।
हा हा सकै रुदन आरत ना सुनाइ॥
सन्तान ऐस अति दुर्बल-चित्त जाकी।
लीजै विचारि कुदशा निज हीय ताकी॥२१॥

मीठी वनी, चसकदार, वडी रसीली।
स्वादिष्ट, ना तनक हू करुई कसीली॥
सो खाँड त्यागि, नित खाड वनी विदेशी।
लीलै, स्वधर्महि तिलाजलि दै विशेषी॥२२॥

चाहै नसै, पलक मे धन को वहाय।
धारै प्रदेश कर वस्तुनि पूर्ण चाय॥
डारै स्वदेशज पदार्थ परै, हटाय।
का पाप पाइ पलटी मति हाय-हाय॥२३॥

व्यापार जो सत सहायक प्राण प्यारौ।
जाको रह्यौ परम मोहि सदा सहारौ॥
ताकी कथा अकथ आज कही न जाती।
हा हा अभाग, मम फाटत जो न छाती॥२४॥

गावै निपोलियन वीर गुणानुवाद।
पै ना करै स्वकुदशा पर हा विषाद॥
सिवराज नाम कहुँ पूरव पुण्य पाई।
देखौ अरे निकर के मुख सो न जाई!!'२५॥

देशाभिमानहिं समोद पयोधि वोरी।
फेरचौ समेटि चित सेवन-वृत्ति ओरी॥
खोयौ स्वजीवन बिना कछु नाम काम।
स्वातत्र-प्रेम तजि हाय भयै गुलाम॥२६॥

ना कोऊ व्याप्त सव ठौर स्वदेश-भाषा।
यो सोचि होत जिय मे अति ही निराशा॥
मो नाम-राशिनी प्रकाशिनि शुद्ध भावै।
हिंदी प्रचारि अब ये त्रुटि को मिटावै॥२७॥

कार्थेज रोम शुचि ग्रीस ऽरु मिश्र देश।
जापान शुभ्र-गुण जापत जो विशेष।।
"कैसे भयै अवनि पै सब सो महान"।
ना देहि सो तनक हू इत ओर ध्यान।।२८।।

एलेल० बी० निपुण प्लीडर विज्ञ बी० ए०।
एमे प्रसिद्ध धनवन्त समोद हीए।।
काग्रेस जात प्रति वर्ष छटा प्रकासी।
पै ना कछू सुनत निर्धन ग्रामवासी।।२६।।

का वे नही बसत भारतवर्ष माहि?
किम्बा कछू सुनन कों तिन सत्व नाहि?
छायै जहाँ अस अपार कठोर नेम।
कैसे वढे कहहु तत्र स्वदेश-प्रेम?।।३०।।

शकर, कुमारिल, जु आदि स्वधर्मधार।
कीन्हो स्वदेशहित-पालन को प्रचार।।
कर्त्तव्य धर्म श्रुति ज्ञान बिना गमार।
सन्यासि-भीर अब हाय समाज-भार।।३१।।

पाण्डित्यपूर्ण सुधुरन्धर ज्ञानवान।
सत्-शीलवान जिन राखत सर्वमान।।
ऐसे अनेक जन काल-कराल-ग्रास।
हा! हा! भयै, कस न होहु कहौ हताश।।३२।।

जो तीर्थ जाइ तहँ पै बसिवौ बिचारौ।
जीर्णातिजीर्ण मठ बैठि, जहाँ निहारौ।।
ताकौ "गिरै न कहुँ ऊपर" सोचि त्यागौ।
लै शीघ्र प्राण अपने भयभीत भागौ।।३३।।

कैसी करूँ, कह करूँ, कित ओर जाऊँ।
सूझै न ठौर, जित आश्रय नैक पाऊँ।।
लम्बी वडी अति, बिथा कबलौ सुनाऊँ।
जासो स्वचित्त हरि-चिन्तन मे लगाऊँ।।३४।।

माधुर्य्य माल मनमोहन शक्ति जाल।
भक्तार्त्ति-भीर-भय भजन सर्व काल।।
पद्मापती प्रणतपालक प्रेम पुज।
आनन्द-कन्द करुणा-कर कान्ति-कुज।।३५।।

संसार सुन्दरपनौ सवरौ सकेलि।
जाकी रची मधुर मूरति प्रेम-वलि।।
निश्चिन्त्य, तास तुम देखत जात प्रान।
शोकार्त्त कौन कटु भारत के समान!!!३६।।

जाकी चढी विभव-गौरव-दिव्य-गाथ।
आश्चर्य-युक्त जग सोचत नाइ माथ।।
ताकी गिरी दुखभरी कुदशा निहारी।
जागी दया न तव जीय कहा विचारी।।३७।।

लागै न तोहि दुख टारत नैक देरी।
प्रह्लाद औ गज पुरान कथा घनेरी।।
पै हाय आज तव आलस छोर नाही।
प्यारी स्वजन्म शुचि-भारत-भूमि माही।।३८।।

साँचो मदीय दुख, हीय निजै प्रमानी।
दारिद्र-सिन्धु मधि डूवत मोहि जानी।।
आवौ हरी, यहि घरी सुधि धाइ लीजै।
पाषाण जीय तव क्यो न प्रभो! पसीजै।।३९।।

मेरे सुधार अनुरक्त जितैक भक्त।
सत्पुत्र और शुभ चिन्तक वीच जक्त।।
तिनको सदा सबल निर्भय नाथ कीजै।
शोकाऽब्धि सो मम उधारन शक्ति दीजै।।४०।।

—नवम्बर, १९०७

[१९]

उद्बोधन

क्या करि कृपा प्रेम पूरित हो,
विनय हमारी पढियेगा?
वीर धीर वन साहस कर,
क्या उन्नति गिरि पै चढियेगा?
जगता है सव जगत, जातियाँ—
उठ-उठ देखौ खडी हुईं।
भ्रातृ सनेह परम पुरुषारथ,
स्वावलम्व से जडी हुई।।

कलह, कुरीति, द्वेष उन्नति-रिपु,
तिनके सम्मुख अडी हुई।
जीति दीनता को निर्भै हो,
यश फैलाकर बडी हुईं॥
पडे रहौगे यो ही, या जगि,
झपट अगाडी बढियेगा।
क्या विनय हमारी पढ़ियेगा? १॥

कैसा था बर बिभव तुम्हारा,
जय-प्रताप से बना हुआ।
बिमल वीर रस से मतवाला,
बिपुल जोम से तना हुआ॥
किन्तु न्याय, निष्ठा और करुणा,
कोमलता से सना हुआ।
कभी न उलटा वचन सर्वदा,
अपने प्राण से भना हुआ॥
कहौ, करौगे ऐसा, या बस,
कोरी बाते गढियेगा।
क्या विनय हमारी पढियेगा? २॥

आँख उठा कर देखौ दो टुक,
कुछ का कुछ अब रंग हुआ।
पुरुषारथ और ब्रह्मचर्य,
खोने से यह क्या ढग हुआ॥
मान और मर्यादा-व्रत सब,
झूँठ बोलकर भग हुआ।
चालीस सेरे बने आलसी,
अच्छा सग कुसग हुआ॥
पडे रहौगे यो ही या कुछ,
यत्न अगाड़ी करियेगा।
क्या विनय हमारी पढ़ियेगा? ३॥

सब दानो मे उत्तम विद्यादान,
मुनी बतलाते थे।

गुरुकुल ऋषिकुल खोल,
आप छात्रो को मुदित पढाते थे ॥
घर घर से चदा लेकर,
नहिं ऐश आराम उडाते थे ।
जिससे हो अस्तित्व जाति-
जीवन का, वही सिखाते थे ॥
क्या विद्यालय खोल देश की,
अमित अविद्या हरियेगा ।
क्या विनय हमारी पढियेगा ?४॥

मित्र ज्ञान को दवा सघन घन,
भ्रम का सचमुच वास हुआ ।
कोरी आत्मश्लाघा के वश,
विकट विरोध विकास हुआ ॥
कहाँ तुम्हारा प्रेम ? देश के
गौरव का कहाँ ह्रास हुआ ?
कौन पाप के वदले मे सर्वत्र
सुमति का नाश हुआ ।।।
पडे मरहटी किस घिस-घिस मे
जोम पकड के उठियेगा ॥
क्या विनय हमारी पढियेगा ?५॥

वात बनाना त्याग, बनाना
काम नियम निर्मल गहियैं ।
देश काल अनुसार सफलता
करने को सवकी सहियैं ॥
अवसर पाकर कभी न चूकौ,
स्वतन्त्र सम्मति भी कहियैं ।
हो स्वदेश का भला,
चिन्तवन यही सदा मन मे चहियैं ॥
उठौ फड़ाके से क्या अव भी,
चुपकी साधि अकड़ियेगा ।
क्या विनय हमारी पढियेगा ॥६॥

[२०]

नवयुवक चेतावनी

देश के कोमल-हृदय कुमार,
सरल सहृदयता के अवतार।
तुम्ही हो ऋषियो की सन्तान,
आर्य्य जन जीवन, धन अरु प्रान।
भारती गुण गौरव अभिमान,
कीजिये मातृभूमि उद्धार ॥१॥ देश के कोमल-हृदय कुमार।

प्रवल पुनि सज्जनता के सद्म,
प्रेम-पद्माकर के प्रिय पद्म,
सदय सुन्दर सब भाँति अछद्म,
कीजिये नवजीवन संचार ॥२॥ देश के कोमल-हृदय कुमार।

सभ्यता के शुचि आदि स्वरूप,
मनोरंजन प्रतिभा के भूप,
विमल मति पावन परम अनूप,
कीजिये भ्रातृ प्रेम विस्तार ॥३॥ देश के कोमल-हृदय कुमार।

लीजियै ब्रह्मचर्य्य का नेम,
पालियै अखिल विश्व का प्रेम,
परस्पर होवे जिससे क्षेम,
कीजियै हिन्दी सत्य प्रचार ॥४॥ देश के कोमल-हृदय कुमार।

[२१]

चेतावनी

उठौ उठौ हो भारत सोइए ना।
सोइए ना मुख जोइए ना ॥
वीति गई जो ताहि बिसारौ।
व्यर्थ समय निज खोइए ना ॥

देखहु उठि परदेशनि-उन्नति।
आलस वीजनि बोइए ना ॥

कटि कसि करौ देश-उद्धारहि।
मौज मनोजन भोइए ना ॥
पश्चिमीय विद्या-जुगनू की।
देखि प्रभा प्रिय मोहिए ना ॥

लखि निज ओर चेत करि चित मे ।
साहसहीन जु होइए ना ॥

नैन खोलि चलि प्राण पियारे ।
बाट रसातल टोहिए ना ॥
घाती घात लगे चहुँ ओरन ।
झूँठ और साँच समोइए ना ॥

सत्यनारायण बोझिल कामरि ।
जाको और भिजोइए ना ॥

[२२]

गारत भारत

दोष कहौ किन दीजै जू वीर अपनौ ही दाम खोटौ ।
जो भारत हो जगत शिरोमणि, वो ही सबन मे छोटौ ॥
वेद पुराण महर्षि रचे जो, बन मे बाँधि लँगोटौ ।
प्रकट अश्रद्धा तिनहिं दिखावत, लेत चढ़ाय नकोटौ ॥
पढत बिरानी भाषा चित दै, हाय सस्कृत टोटौ !
दृष्टि करत व्यापार दया पर, जात जितहिं तित पोटौ ॥
विप्र उदर लगि निशि दिन चाहै फिरै हाथ गहि लोटौ ।
आरत सुरभी-नाद क्षत्रिकुल सुनै जु लोटौ इ लोटौ ॥
बढिकै वैश्य आज मन ठानत "गऊ विप्र देऊ सोटौ" ।
निपट मूढ मति, पढव न कोऊ विज्ञ पुरुष को ढोटौ ॥
करत कुकर्म्म निशक चित ह्वै जोरि गँवार सँहोटौ ।
कृष्ण मूर्ति तजि लेत बावरै वार वधू को फोटौ ॥
जो जन देश हितैषी तिन चित खावहि चिन्ता झोटौ ।
सत्यनारायण अबहूँ चेतौ जात अरे गर घोटौ ॥

—६-७-०४

[२३]

वीरो अवसर आज वीरता दिखलाने का ।
इस कैसर को उचित पाठ के सिखलाने का ॥
एक बार हिन्दू प्रताप जग चमकाने का ।
मति के अन्धे दुष्ट दलो को धमकाने का ॥
बस निष्प्रभ होते ही इसे किसका जीवन है यहाँ ।
यदि जीता है इंगलैड तो चिन्ता जीने की कहाँ ॥

आयाम

[१]

श्री ब्रजभाषा

सजन सरस घनश्याम अब, दीजै रस बरसाय।
जासो ब्रज-भाषा-लता, हरी भरी लहराय॥

॥ श्री हरिः ॥

भुवन विदित यह यदपि चारु भारत भुवि पावन।
पै रसपूर्न कमंडल ब्रजमंडल मनभावन॥

परम पुण्यमय प्रकृति छटा यहँ बिधि बिथुराई।
जग सुर मुनि नर मजु जासु जानत सुघराई॥

जिह प्रभाव बस नित नूतन जलधर शोभाधरि।
सफल काम अभिराम सघन घनश्याम आपु हरि॥

श्रीपति पदपंकज रज परसत जो पुनीत अति।
आइ जहाँ आनन्द करति अनुभव सहृदय मति॥

जुगल चरन अरविन्द ध्यान मकरन्दपान हित।
मुनि मन मुदित मिलिन्द निरन्तर बिरमत जहँ नित॥

तहँ सुचि सरल सुभाव रुचिर गुनगन के रासी।
भोरे भारे बसत नेह बिकसत ब्रजवासी॥

जिनके उच्च-उदारभाव-गिरिसो जग आसा।
जननी तारनि तरनि कलिन्दिनि यह ब्रजभासा॥

जासु सरस निरमल जगजीवन जीवन माही।
लखियत उज्जल सूर चद की नित परछाही॥

जिन प्रकास सो औरु प्रकासित सुन्दर लहरी।
नित्त नवल रसभरी मनहरी विलसत गहरी॥

जिह आश्रय लहि कलिमल हर तुलसी सौरभ यस।
मंजु मधुर मृदु सरस सुगम सुचि हरिजन-सरवस॥

केशव अरु मतिराम बिहारी देव अनूपम।
हरिश्चन्द्र से जासु कूल कुसुमित रसालद्रुम॥

अष्टछाप अनुपम कदम्ब अघ-ओक-निकन्दन।
मुकुलित प्रेमाकुलित सुखद सुरभित जगवन्दन॥

तुरत सकल भय हरनि आर्य जागृति जयसानी।
जन मन निज वस करनि लसति पिकभूपन वानी॥

विविध रग रजित मनरजन सुखमा आकर।
सुचि सुगधि के सदम खिले अगनित पदमाकर॥

जिन पराग सो चौकि भ्रमत उत्सुकता प्रेरे।
रहसि रहसि रसखान रसिक अलिगुज घनेरे॥

वरन वरन मे मोहन की प्रतिमूर्ति विराजत।
अक्षर आभा जासु अलौकिक अद्भुत भ्राजत॥

सुरपद वरन सुभाव विविध रसमय अति उत्तम।
शुद्ध संस्कृत सुखद आत्मजा अभिनव अनुपम॥

देस काल अनुसार भाव निज व्यक्त करन मे।
मजु मनोहर भापा या सम कोउ न जग मे॥

ईश्वर मानव प्रेम दोउ इकसग सिखावति।
उज्ज्वल श्यामलधार जुगल यो जोरि मिलावति॥

भेदभाव तजिवे की प्रतिभा जब रस ऐनी।
योग गहत तिनसो तव सुन्दर वहत त्रिवेनी॥

करी जाय यदि जासु परीच्छा सविधि यथारथ।
याही मे सव जग को स्वारथ अरु परमारथ॥

वरनन को करि सकत भला तिह भापा-कोटी।
मचलि मचलि जामे माँगी हरि माखन रोटी॥

जाकौ सो रस अवगाहत जाही मे आवै।
कैसोइ गुनवान थाह जाकी नहिं पावै॥

रह्यौ यही अबसेस एक आरज जीवन धन।
चिन्तनीय यह विषय तुमनु सो सब सज्जनगन॥

बंग और महाराष्ट्र सुभग गुजरात देस मे।
अटक-कटक पर्य्यन्त कहिय भारत असेस मे॥

एक राष्ट्रभाषा की त्रुटि जो पूरत आई।
इतने दिन सो करति रही तुम्हरी सेवकाई॥

सत समरथ कवियनु की कविता प्रमान जामे।
निरखहु नयन उघारि कहाँ लो सबनु गिनामे॥

इक दिन जो माधुर्य्य कान्तिमय सुखद सुहाई।
मंजु मनोहर मूरति जाकी जग जिय भाई॥

देखत तुम निश्चिन्त जात ताके अब प्राना।
अभागिनी शोकार्त्त कहहु को तासु समाना ?

लिखन रह्यौ इक ओर तासु पढिबौ हू त्याग्यौ।
मातासो मुख मोरि कहाँ तुव मन अनुराग्यौ॥

शुभ राष्ट्रीय विचारनु को जब पुण्य प्रचारा।
कैसो याकै सग कियौ तुमने उपकारा!!!

रह्यौ बनावन याहि राष्ट्रभाषा इक ओरी।
उलटौ जासु अनिष्ट करन लागै बरजोरी॥

या जीवन संग्राम माहिं पावत सहाय सब।
नाम लैन हू तज्यौ किन्तु तुमने याकौ अब॥

क्यो जासो मन फिरचौ कृपा करि कछुक जतावौ।
वृथा आतमा या ब्रजभाषा की न सतावौ॥

जिनके तुम बस परै अहहिं ते सकल बिमाता।
ब्रजभाषा ही शुद्ध सस्कृत साँची माता॥

मातृ हृदय को प्रेम मातृ हृद ही मे आवै।
ताकौ पावन स्वाद बिमाता कबहूँ न पावै॥

टपकावति प्रेमाश्रु पुलकि तन पूत प्रेम सों।
भरि भरि देखत नैन तुमहिं जो नित्य नैम सो॥

तिह दिस चितवत नाहिं कहाँ की नीति तिहारी।
पुण्य प्रकृति तजि प्रतिकृति ताकी लगति पियारी॥

काज न जब कछु करत शिथिलता तन मे व्यापत।
यही सोचि जननी ब्रजभाषा निसिदिन काँपत॥

सुत सेवा हित तासु रुचिर रुचि रहत सदा ही।
जनमे पूत कुपूत कुमाता माता नाही॥

जाय कहाँ अब, बनहि तुम्हे यहि पालै पोसै।
याको बल याको जीवन सब आप भरोसै॥

निरालम्ब यह अम्ब याहि अवलम्बनु दीजै।
तनसो मनसो धनसो याकी रच्छा कीजै॥

यही रहति जननी की केवल नित अभिलाषा।
सफल होहि तुव सबै उच्च उन्नतप्रिय आशा॥

सकल ओर अभ्युदय सूर्य की किरन प्रकासै।
नसहि अविद्या रैनि ज्ञान-नय-कमल विकासै॥

जागृति त्रिविध बयारि बसन्ती नित सरसावै।
निरमल पर-उपकार हृदय मधि लहरि सुहावै॥

सोहैं सुजन रसाल प्रेम मंजरि चहुँ छायैं।
निज भाषा रुचि लता अक लहि परम सुहायैं॥

कवि कोयल सत्काव्य कूक अपनी उच्चारैं।
गुनि गुनगाहक रसिक भ्रमर मजुल गुजारैं॥

जगमगाय जातीय प्रेम, सुधरै चरित्र बल।
सबके हो आदर्श उच्च उत्तम अरु उज्ज्वल॥

विद्या विनय विवेक प्रकृति छवि मनहिं लुभावै।
दुख को हो बस अन्त, देस भारत सुख पावै॥

× × ×

परब्रह्म परमातम घट घट अन्तरजामी।
पूरहि यह अभिलास सत्यनारायण स्वामी॥

प्रेमकली

गोपनीय रस रहै पुरातन प्रथा भली है ।
याही सो अधखिली रही यह प्रेमकली है ।।
—११-८-६५ वि०

मंजु मनोरम मधुर रस सुठि रस-कुसुमाकर ।
'प्रेम' सबद अति अद्भुत अमल अलौकिक आखर ।।
करत रुचिर रचना विरचि जिनकी सुखकारी ।
भयै होयगे अवसि परम कृतकृत्य सुखारी ।।

अगम अगाध अपार सबदमय पारावारा ।
मनु मथि जग हित सुधा कलस बिधि सदय निकारा ।।
बसीकरन मुदभरन ओघ अघ दरन सदा के ।
अकथित अमित प्रभावभरे मनुमन्तर बाँके ।।

कै साहित्य-रतन-गरभा के उर उजियारे ।
निरत जतन करि सुवरन दोऊ रतन निकारे ।।
खरी खिली कै उर उपवन मे अति अलवेली ।
सुरभित सुख-प्रद सरस चुभीली चारु चमेली ।।

किधौ प्रकाश प्रकास-थम्भ को ललाम अविचल ।
जगत उदधि मधि भ्रमत पोत-मन-विसराम् स्थल ।।
कै ग्रीसम त्रयताप प्रबल परिताप नसावन ।
ललित कलित कसमीर सैल सुखमा सरसावन ।।

किधौ भेद-पाषान-भेदि नित द्रवत सुधा कौ ।
बहित हिलोरति बोरति सुरसरि हिय वसुधा कौं ।।
जगत हृदय तरु विमल बढावन किधौ निकाई ।
ललकि लहलही ललित लता लौनी लिपटाई ।।

मिलनि सतपुरा बिछुरनि बिन्ध्याचल मधि सोहति ।
नेह-निरमदा नदि निरमल चलिकैं मन मोहति[1] ।।
भक्ति पीन हरिभक्त मीन जीवन हित जीवन ।
स्वाँति बिन्दु कै बिरह बिथित जन पपियन पीवन ।।

१. अथवा—विन्धय बिरह सतपुरा असाहस गिर मधि सोहत ।
नेह निरमदा नद निरमल सुर मुनि मन मोहत ।।

किधौं विरच-वनमाली लहि उर लहरि रसाला।
प्रेम-तार निरमयौ गुहन मन सुमननु माला॥
सतत अपरमित गुन-गन पूरित प्रेम प्रथाएँ।
सकत न जाकी थाइ नेम परिमित गुन थाएँ॥

रस रतनाकर प्रेम रतन मन जबहिं समायैं।
बनत लाज कुल कान काँच करसों छिटकायैं॥
मंजुल उर नभ होत प्रेम मय मित्र प्रकासा।
विलसत लखि नहिं परत नियम खद्योत विकासा॥

जा सन उत्तेजित ह्वै नर स्वधर्म अनुरागत।
नित स्वदेश हित प्रमुदित निज तन तृन सम त्यागत॥
उदाहरन वहु मिलत अनुकरन जोग करन के।
निरखहु नयन उघारि चरित वर वरन-वग्न के॥

जा बस निरगुन निराकार अज अलख निरंजन।
बनत सगुन साकार करत निज जन मनरंजन॥
त्रिविध ताप बहु बिथा भरयौ जग लवन समुद सम।
तास ऊपर गत प्रेम मधुर जल स्रोत अनूपम॥

हृदय पटल सो उमगि-उमगि नित आपुहिं आपा।
परम प्रफुल्लित करत हरत भव-भय-सन्तापा॥
हरि-रति-रस सरवस जिनकी नस-नस मे व्यापक॥
सो दुरमति गति लोपी गोपी प्रेमाध्यापक॥

कोऊ बौरा कहत मगन मन प्रेमी जन को।
अहोभाग्य जो लहत प्रेम मय बौरापन को॥
जासु पाइ परसाद लहत जीवन फल नीकें।
चाखत अनुपम अमित स्वाद आनन्द अमी के॥

बरबस खैंचत जगत मनहिं जो नित सटकीली।
जगत चित्त चुम्बक सनेह चुम्बक चटकीली[1]॥
अति करकस अति कठिन लोह मन कैसोऊ दरसै।
सहजहिं सुवरन होत प्रेम पारस के परसैं॥

1 अथवा—बरबस खैंचत जगत मनहिं जो नित्त पियारौ।
जगत चित्त चुम्बक सनेह चुम्बक मतवारौ॥

होत न सोभा कतहुँ नेह सो सूने उर की।
स्वीकृत होइ न सनद कबहुँ जो बिना मुहर की।।
विविध भावना परिधि केन्द्र वस एक प्रेम है।
मिलत जहाँ सब आय निरत सुठि एक नेम है।।

त्रयतापित उर लहलहात नन्दन सम सुन्दर।
प्रकृति वसुमती जबै अधिवसत प्रेम पुरन्दर।।
निरत विचारन जोग रुचिर उपदेस यही उर।
परमेसुरमय प्रेम प्रेममय नित परमेसुर।।

प्रकृति तामरस लसत विविध रस थलनि मनोहर।
परि अनुपम छवि धरत भरत जब प्रेम सरोवर।।
अस्तु सकल ससार पदारथ जहँ बहु दरसत।
वस्तु यही है जासो मन मनको आकरसत।।

त्रिभुवन पावन परम मजु भावन सनेह रस।
विपुल भाँति के धरत आभरन स्वभावना बस।।
करनफूल नथ खौरि आदि जिमि रूपक जानौ।
सब मे सुबरन एक बरन मनहरन समानौ।।

मणिमय दीपक दिव्य प्रभाकर परम सुहाई।
बरन-बरन के काँच लेत पै तिहि अपनाई।।
मन्द-मन्द ज्यो बहत पवन पावन मलयज कुल।
गहत सुवास कुवास परसि थल मजु अमजुल।।

अटल छटा परिपूर्न पटल को पुहुप पियारौ।
पै कटक बस गहन अकंटक नाहिं सुखारौ।।
प्रेम परम सुच सरस सुखद सुखमामय पग-पग।
पै कराल करवाल धार सम सहज प्रेम मग।।

प्रेम ऽरु प्रन सम्बन्ध परसपर आनँद राँचौ।
होत न प्रन सो हीन कबहुँ जो प्रेमी साँचौ।।
को लघु को दीरघ प्रेमिनु मे रहत निरन्तर।
प्रेम परन अन्तर सौ लखियत तिनकौ अन्तर।।

नेह वसत उर, नसत सकल मल मोह विताना।
पिघल जात पाषान जीय नवनीत समाना।।
करन प्रेम को बसीकरन अच्युत आराधन।
चहियतु अविघन अवसि सघन साहस मय साधन।।

भुवन विदित अभिराम अचल निष्काम तासु गति ।
प्रथित पुरातन प्रचुर पुण्यमय प्रिय प्रन कीरति ।।
वरु तन सुन्दर सगुन सरल सब भाँति अनूनी ।
दीपसिखा सम करत प्रकास न सनेह सूनी ।।

ज्यो-ज्यो अविकल तपत जपत प्रिय गुन पल-पल मे ।
त्यो-त्यो निखरत सनेह सुवरन विरह-अनल मे ।।
प्रेम पयोनिधि धसि अवगाहत हिय हरसावै ।
किन्तु विरह-वडवानल सो अति सो घवरावै ।।

कहन सहज परि गहन प्रेम-पथ निवहन सहज न ।
भ्रमत भरति जग विषम विषय विप भोइ मनुज मन ।।
वँटत जहाँ मन विविध विषय सन मुनियनु गाई ।
यह स्वाभाविक वात परति सव मे कठिनाई ।।

सहज सरल यह सुलभ सत्य नहि दुरयौ काहु सन ।
फिर क्यो कवियनु कियौ विथामय याको वरनन ।।
साँची कहनावति "जाकै नहि फटै विवाई ।
समझ सकत सो किमि प्रकार कहु पीर पराई" ।।

प्रेम योग को होत जवै कछु काल व्यतिक्रम ।
डूवत विकल वियोग वावरी जन मन सभ्रम ।।
जव साधारन कारन जग जन मत श्रम पाई ।
कहा आचरज परै प्रेम पथ मे कठिनाई ।।

कहौ कहाँ को न्याउ निरन्तर अन्तर करिवौ ।
जहाँ कठिनता परै तासु मग पाँउ न धरिवौ ।।
बिपुल दूर सौ परमानत अस कायरताई ।
'अपने मुख मे ग्रास विना कर उठै न जाई' ।।

जासौ अभिमत मिलै अवसि चहियतु सो धारौ ।
स्वय मनुज निज भाग अभाग सँवारन हारौ ।।
वरु जहाज डिगमिगे वात वस विचलन छिन को ।
लखियत नित ध्रुव भास सुई उत्तर दच्छिन को ।।

तथा जगत व्यवहार करत लहि विथा झकोरे ।
प्रेम दिसा सौ निरत निरन्तर मनहि न मोरै ।।
दुविधा हू मे नित चहियतु सनेह प्रानी मे ।
तजत न निजगुन इकछिन ज्यो चकमक पानी मे ।।

प्रेम देव हू यदि उमंग मे अपु चितु लावै ।
निजगुन पारावार बरनि तऊ पार न पावै ।।
खिलत अमल कल कमलकली सु-पराग नसतु है ।
पुनि ता हित अनुराग अली-उर नाहि बसतु है ।।

प्रेम पुहुप उघरत प्रियतम रज रहस पराने ।
मोद भरत आदरत न तिहि रस-भेद-सयाने ।।
नेह निकाई अप्रगट रस महिमा अधिकाई ।
जग जिय भाई कवियनु गुनियनु मुनिमन भाई ।।

उठति भावना बिबिध अनूपम जिन रुचि राई ।
को नर ऐसौ अधम सकै जो तिन बिसराई ।।
अमित राग अनुराग कला कविता मनमोहनि ।
लहरि उठति स्वच्छन्द सुखद सुन्दर सुठि सोहनि ।।

नैननि भरि इक बेर जबै कहुँ लखत सनेही ।
होत प्रफुल्लित रोम-रोम आनँद सो देही ।।
सहस नैन ह्वै लखत तऊ नित दरसन भूखै ।
बैन-सुधा-सर न्हात गात तउ लागत सूखै ।।

जो आँखिन की ओट कहूँ ह्वै जाय पियारौ ।
व्यापति नस-नस बिरह बनत तन सुधि मतवारौ ।।
दिव्य प्रभा पूरन पल-पल चचल नभ तारे ।
निकसत चमकत दुरत कबहुँ करि निज उजियारे ।।

चारु चाँदनी बिलसत मे उमगति नित छाती ।
लसत नखत नभ जनु प्रिय पाती तन पुलकाती ।।
चहचहात पछीगन जनु कोऊ राग अलापत ।
सनसनात चलि पवन मनहु प्रियतम सुधि लावत ।।

सुनत कान दै ताहि जानि सन्देश सुहावन ।
पठवत कबहुँ मराल मधुप धाराधर धावन ।।
तरु तन लगि अलबेलि वेलि लचि लचि लहराती ।
बिरही दुख सो दुखी मनहु विह्वल बिलखाती ।।

गिरत सुमन गन कबहुँ पवन सन सुन्दर दरसत ।
लसत यही जनु अश्रु बिन्दु तिन कर बहु बरसत ।।
जे असोक के बिटप लगत तेऊ सोकाकुल ।
सन्तापित तन लखियत सकल चराचर कौ कुल ।।

अखिल जगत की जननि प्रकृति दारुण दुख छैनी।
नाना दृश्य दिखाइ देति धीरज सुख ऐनी॥
सकल विश्व आमोद पुज उर कुज पूर्ण भरि।
विरह जनित जो कष्ट तासु तुलना न सकै करि॥

कठिन लभ्य आनन्दकन्द इक ओर प्रेम पद।
अपर ओर अति सहज स्वार्थमग मदमय दुखप्रद॥
खुले जुगल मग चलौ चलावहु जहँ जिय भावै।
निज निज रुचि अनुसार जीव जग सुख-दुख पावै॥

चित्र विचित्र पवित्र प्रेम प्रन कर मन भावन।
सुनत परम रस ऐन बैन पपिया के पावन॥
तृन समूह नहिं गिनत सकल निज तन मन धन है।
पूरन प्रेमी परमाश्रय पपिया को प्रन है॥

प्रेम प्रथा अनुकरन जोग थिर चित चातक की।
जिहि सुनि छाती परै न तन प्रवसन पातक की॥
कैसो जाकर अहा अटल अविचल अद्भुत प्रन।
भरे सरित सर समुद तऊ नित याचत जो घन॥

भूरि उपल वरु परहिं धूरि उडियत पाँखन की।
तव हू निहचल चाह चित्त स्वाँती चाखन की॥
पूरन प्रेमिनि मीन जगत जाकी रति जानी।
प्रानहीन, पै उर रस प्रीति न तासु सिरानी॥

विसम विसैलो जब रिस कर निज डॉकहि मारै।
परम कठिन सो कठिन सहज ही दारु बिदारै॥
सो पटपद गदगद उर निरविस सरस सदाँही।
मुदित पदम मुख कढि न सकै गुजत तिहि माँही॥

निरख्यौ प्रेम प्रभाव पूरि रह्यौ जग जीवन मे।
लगु जासो मन मन्द सुरस छकि-छकि पीवन मे॥
यही जगत मे जनम धरन को सुन्दर फल है।
जा विन जीवन धरम करम चतुरई विफल है॥

यह जग के कछु अपढ पसुन की प्रेम कहानी।
मोद मई छवि छई प्रकट नहिं जाइ बखानी॥
जहँ विसेस विद्वान सभ्य नर जाति सुहावन।
प्रेम-प्रथा विस्तरित विमल चहियत तहँ पावन॥

विषम विषय विष सरिस कठिन हिम रासि सतायैं।
रहत न प्रेम प्रसून प्रफुल्लित बिन कुम्हिलायैं॥
करत सग पय जलहि, रग निज दिय रस भीनौ।
बारि-बारि निज तन सनेह को परिचय दीनौ॥

'मै तौ' सो मुख मोरि नेह निधि जब अस पावै।
को नर ऐसौ उदासीन जो नहि हुलसावै॥
यदि कोऊ चाहत निरमल नेह रसायन पारौ।
बिरह ताप सो जात चपल चित पारद मारौ॥

प्रकट बर्ननातीत सकल जग जीय समानी।
प्रीति रहस रस रीति-मूर परतीति प्रमानी॥
जहॉ पुहुप की बास तहॉ मधुकर गुजारै।
जहॉ प्रेमरस आस रसिक अपु तहॉ पधारै॥

घुरत घुरत जब जुग मन गुन की गॉठ हिरावै।
अद्वितीय सुखप्रद सुभाव सो प्रेम सुहावै॥
जबै हृदय मे प्रेमचाट चटपटी जगति है।
तजति भजति उर ऑट बार ना तनक लगति है॥

श्रम औ निज कर्त्तव्य धार मुद मगल दैनी।
जब सनेह सरसुती मिलत तब वहत त्रिबैनी॥
यही कसौटी बिस्व मॉहि जन मनहि कसन की।
यह ही सॉची बस्तु आतमबल दैन असन की॥

जगत मनहि बॉधन हित यह ही नरम श्रृंखला।
यही मदन-मोहन मोहन की सोहन सु-कला॥
यह अकरसनि सकति भगति जो कोऊ धारै।
निज नैनन सो स्वय ब्रह्मपद पदम निहारै॥

रस-सरसावत छवि दरसावत हिय हरसावत।
बर बिनोद बरसावत प्रियतम पद परसावत॥
सुलभ सफलता द्वार देस सेवक गुनियनि को।
सुधाधार साहित्य मधुव्रत सत कवियनि को॥

बिरह ताप सतापित जन को सुखद रसायन।
हारे मन को सहसबाहु साहस बरदायन॥
अटल मुक्ति सोपान मोक्ष के अभिलासी को।
अभिमत सुफल प्रदान जनम के हत आसी को॥

मुनियनि को पद-पद सुखप्रद वर बिसद बिरागा।
हरिजन षटपद को श्रीपति पद पदम परागा॥
अगम अनिरवचनीय परै जासो कुछ बस ना।
बरनत रस रमनीय रहत रसना मे रस ना॥

अचला अवसि रतनगर्भा वसुमती सुहावति।
किन्तु प्रेमरस रती धारि यह 'रसा' कहावति॥
प्रीति रहस रस रीति जगत जो उर न भरैगी।
तरसावत मन रसा रसातल गवन करैगी॥

सहज नहिं कछु काज नेह जलनिधि अवगाहन।
थाह लैन जो गयै मिली जग तिनकी थाह न॥
जड जगम जग जीव जाहि निज-निज उर जानत।
एक यही आचरज सकत नहिं ताहि बखानत॥

जानत सब कछु प्रेम-स्वाद मुख बरनि न आवत।
यदपि परम वाचाल मूक बनि भाव जनावत॥
विद्या बस तत्वनि के भेद प्रभेद बतायै।
गूंगे को गुर खाय जगत बैठ्यौ सिर नायै॥

देखहु दै मन करि उमग उपदेश असेसनि।
मनन करहु विद्वान-विपुल-उज्जल उपदेसनि॥
उलटा पलटी करहु निखिल जग की सब भाषा।
मिलहि न परि कहूँ एक 'प्रेम' पूरी परिभाषा॥

स्वय सिखाय न सकै सारदा याकी पाटी।
परम विलच्छन स्वच्छ प्रेम पूरित परिपाटी॥
गोपनीय रस रहै पुरातन प्रथा भली है।
याही सो अधखिली रही यह प्रेमकली है॥

[३]

भ्रमर-दूत

वचन-हीन ये दीन गऊ दुख सो दिन बितवत।
दरस लालसा लगी चकितचित इत उत चितवत॥
एक सग तिनको तजत, अलि कहियौ ए लाल!
क्यो न हीय निज तुम लजत, जग कहाय गोपाल
मोह ऐसौ तज्यौ॥

—सत्यनारायण

श्री राधा वर निज जन-बाधा-सकल-नसावन ।
जाकौ ब्रज मनभानव, जो ब्रज कौ मनभावन ।
रसिक-सिरोमनि मन हरन, निरमल नेह निकुंज ।
मोद भरन उर सुख करन, अविचल आनँद पुंज
रँगीलो साँवरौ ॥१॥

कंस-मारि भूभार-उतारन खल दल तारन ।
विस्तारन विज्ञान विमल श्रुति-सेतु-सँवारन ।
जन-मन-रंजन सोहना, गुन-आगर चितचोर ।
भव भय-भंजन मोहना, नागर नन्द-किसोर
गयौ जब द्वारिका ॥२॥

बिलखाती, सनेह पुलकाती, जसुमति माई ।
श्याम-बिरह-अकुलाती, पाती कबहुँ न पाई ।
जिय प्रिय हरि-दरसन बिना, छिन-छिन परम अधीर ।
सोचति मोचति निसि दिना, निसरत नैननु नीर
बिकल कल ना हियै ॥३॥

पावन सावन मास नई उनई घन पाँती ।
मुनि मन-भाई छई रसमई मंजुल काँती ॥
सोहत सुन्दर चहुँ सजल, सरिता पोखर ताल ।
लोल लोल तहँ अति अमल, दादुर बोल रसाल
छटा चूई परै ॥४॥

अलबेली कहुँ बेलि, द्रुमन सो लिपटि सुहाई ।
धोयैं धोयैं पातन की अनुपम कमनाई ।
चातक चलि कोयल ललित बोलत मधुरै बोल ।
कूकि कूकि केकी कलित, कुंजनु करत कलोल
निरखि घन की छटा ॥५॥

इन्द्र धनुष और इन्द्रबधूटिन की सुचि सोभा ।
को जग जनम्यौ मनुज, जास मन निरखि न लोभा ।
प्रिय पावन पावस लहरि, लहलहात चहूँ ओर ।
छाई छवि छिति पै छिहरि ताको ओर न छोर
लसै मन मोहनी ॥६॥

कहूँ बालिका-पुज कुज लखि परियत पावन ।
सुख सरसावन सरल सुहावन हिय सरसावन ।
कोकिल-कठ-लजावनी, मन भावनी अपार ।
भ्रातृ-प्रेम-सरसावनी, रागत मजु मल्हार
हिंडोलनि झूलती ।।७।।

बालवृन्द हरसत उर-दरसत चहुँ चलि आवै ।
मधुर मधुर मुसकाइ रहस बतियाँ बतरावै ।
तरुवर डार हलावही, 'धौरी' 'धूमरि' टेरि ।
सुन्दर राग अलापही, भौंरा चकई फेरि
विविध क्रीडा करै ।।८।।

लखि यह सुखमा-जाल लाल-निज-बिन नँदरानी ।
हरि सुधि उमडी घुमडी तन उर अति अकुलानी ।
सुधि बुधि तजि माथौ पकरि, करि करि सोच अपार ।
दृग जल मिस मानहुँ निकरि, वही विरह की धार
कृष्ण रटना लगी ।।९।।

कृष्ण-विरह की बेलि नई ता उर हरियाई ।
सोचन अश्रु विमोचन दोऊ दलबल अधिकाई ।
पाइ प्रेम रस बढि गई, तन तरु लिपटी धाइ ।
फैल फूटि चहुँधा छई, बिथा न बरनी जाइ
अकथ ताकी कथा ।।१०।।

कहति विकल मन महरि कहाँ हरि ढूँढन जाऊँ ।
कब गहि लालन ललकत-मन गहि हृदय लगाऊँ ।
सीरी कब छाती करो, कब सुत दरसन पाऊँ ।
कबै मोद निज मन भरौ, किहि कर धाइ पठाऊँ
सदेसौ श्याम पै ।।११।।

पढी न अक्षर एक, ज्ञान सपने ना पायौ ।
दूध दही चारत मे सबरौ जनम गमायौ ।
मात पिता बैरी भये, शिक्षा दई न मोहि ।
सबरे दिन यो ही गयै, कहा कहे ते होहि
मर्नहि मन मे रही ।।१२।।

सुनी गरग सो अनसूया की पुण्य कहानी।
सीता सती पुनीता की सुठि कथा पुरानी।
विषद-ब्रह्मविद्या-पगी मैत्रेयी तिय रत्न।
शास्त्र-पारगी गारगी, मन्दालसा सयत्न
पढी सब की सबै ॥१३॥

निज-निज जनम धरन को फल उनने ही पायौ।
अविचल अभिमत सकल भाँति सुन्दर अपनायौ।
उदाहरनि उज्जल दयौ, जग की तियनि अनूप।
पावन जस दस-दिसि छयौ, उनको सुकृति-सरूप
पाइ विद्या बलै ॥१४॥

नारी शिक्षा निरादरत जे लोग अनारी।
ते स्वदेस-अबनति प्रचड-पातक अधिकारी।
निरखि हाल मेरौ प्रथम, लेऊ समझि, सब कोइ।
विद्या बल लहि मति परम अबला सबला होइ
लखौ अजमाइ के ॥१५॥

कौनै भेजौ दूत, पूत सो बिथा सुनावै।
बातन मे बहलाइ, जाइ ताको यहँ लावै।
त्याग मधुपुरी सो गयौ, छाँडि सबन को साथ।
सात समुन्दर पै भयौ, दूर द्वारिकानाथ
जाइगौ को उहाँ ॥१६॥

नास जाइ अक्रूर क्रूर तेरौ बजमारे।
बातन मे दै सबनि लै गयौ प्रान हमारे।
क्यो न दिखावत लाइ कोऊ, सूरति ललित ललाम।
कहँ मूरति रमनीय दोऊ, श्याम और बलराम
रही अकुलाइ मै ॥१७॥

अति उदास बिन आस, सबै-तन-सुरति भुलानी।
पूत प्रेम सो भरी परम दरसन ललचानी।
बिलपति कलपति अति जबै, लखि जननी निज श्याम।
भगत-भगत आये तबै, भाये मन अभिराम
भ्रमर के रूप मे ॥१८॥

ठिठक्यौ, अटक्यौ भ्रमर देखि जसुमति महारानी।
निज-दुख सो अति-दुखी ताहि मन मे अनुमानी।
तिहि दिसि चितवत चकित-चित, सजल जुगल भरि नैन।
हरि-वियोग-कातर अमित, आरत गद्गद बैन
कहन तासो लगी ॥१९॥

'तेरौ तन घनश्याम श्याम घनश्याम उतै सुनि।
तेरी गुजन सुरलि मधुप, उत मधुर मुरलि धुनि।
पीत रेख तव कटि बसत, उत पीताम्बर चारु।
विपिन-विहारी दोऊ लसत, एक रूप सिंगारु
जुगल रस के चखा ॥२०॥

'याही कारन निज प्यारे ढिग तोहि पठाऊँ।
कहियौ वासो बिथा सबै जो अबै सुनाऊँ।
जैयौ पटपद 'धाय के, करि निज कृपा विसेस।
लैयौ काज बनाय के, दै मो यह सन्देस
मिदोसौ लौटियौ ॥२१॥

'जननी जन्मभूमि सुनियत स्वर्गहु सो प्यारी।
सो तजि सबरौ मोह साँवरे तुमनि विसारी।
का तुम्हरी गति मति भई, जो ऐसौ वरताव।
किधौ नीति वदली नई, ताकौ परचौ प्रभाव
कुटिल विष को भरचौ ॥२२॥

'माखन कर पौछन सो चिक्कन चारु सुहावत।
निधुवन श्याम तमाल रह्यौ जो हिय हरसावत।
लागत ताके लखन सो, मति, चलि वाकी ओर।
वात लगावत सखन सो आवत नन्द किशोर
कितहुँ सो भाजिके ॥२३॥

वुही कालिन्दी-फूल कदम्बन के वन छाये।
'वरन वरन के लता-भवन मन हरन सुहाये।
वुही कुन्द की कुज ये, परम-प्रमोद-समाज।
पै मुकुन्द बिन त्रिस-मये, सारे सुखमा साज
चित्त वाही धरचौ ॥२४॥

[1] अथवा—झूमत लतिका भवन वने वहु वरन सुहाये।

'लगत पलास उदास, शोक मे अशोक भारी।
बौरे बने रसाल, माधवी लता दुखारी।
तजि-तजि निज प्रफुलित पनौ, बिरह-बिथित अकुलात।
जड़ हू ह्वै चेतन मनौ, दीन मलीन लखात
एक माधौ विना ॥२५॥

'नित नूतन तृन डारि सघन बसीवट छैयाँ।
फेरि-फेरि कर-कमल, चराई जो हरि गैयाँ।
ते तित सुधि अति ही करत, सब तन रही झुराय।
नयन स्रवत जल, नहिं चरत, व्याकुल उदर अघाय
उठायै म्हौ फिरे ॥२६॥

'वचनहीन ये दीन गऊ दुख सो दिन बितवत।
दरस-लालसा लगी चकित-चित इत-उत चितवत।
एक सग तिनको तजत, अलि कहियौ, ए लाल।
क्यो न हीय निज तुम लजत, जग कहाय गोपाल
मोह ऐसौ तज्यौ ॥२७॥

'नील-कमल-दल-श्याम जासु तन सुन्दर सोहै।
नीलाम्बर वसनाभिराम विद्युत मन मोहै।
भ्रम मे परि घनश्याम के, लखि घन श्याम अगार।
नाचि-नाचि व्रजधाम के, कूकत मोर अपार
भरे आनन्द मे ॥२८॥

'यहँ को नवनीत मिल्यौ मिसरी अति उत्तम।
भला सकै मिलि कहाँ सहर मे सद याकै सम।
रहै यही लालौ अजहुँ, काढत यहि जब भोर।
भूखौ रहत न होइ कहुँ, मेरौ माखन चोर
बँध्यौ निज टेव को ॥२९॥

'वा विनु को ग्वालनु को हित की बात सुझावै।
अरु स्वतन्त्रता, समता, सहभ्रातृता सिखावै।
यदपि सकल विधि ये सहत, दारुण अत्याचार।
पै न कछू मुख सो कहत, कोरे बने गँवार
कोऊ अगुआ नही ॥३०॥

'भये सकुचित-हृदय भीरु अब ऐसै भय मे'[1]।
काऊ को विश्वास न निज-जातीय-उदय मे।
लखियत कोऊ रीति न भली, नहिं पूरब अनुराग।
अपनी अपनी ढापुली, अपनौ अपनौ राग
अलापैं जोर सो ॥३१॥

'नहिं देशीय भेष भावनु की आशा कोऊ।
लखियत जो व्रजभाषा, जाति हिरानी सोऊ।
आस्तिक बुधि बन्धनन से, बिगरी सब मरजाद।
सब कोऊ के हिय बसै, न्यारे न्यारे स्वाद
अनोखे ढंग के ॥३२॥

'वेलि नवेली अलवेली दोऊ नम्र सुहावैं।
तिनके कोमल सरल भाव को सब यस गावैं।
अबकी गोपी मदभरी, अधर चलैं इतराय'।
चार दिना की छोहरी, गई ऐसी गरवाय
जहाँ देखौ तहाँ ॥३३॥

'गोवरधन कर-कमल धरि जो इन्द्र लजायौ।
तुम बिन सो तिहि को बदलौ अब चहत चुकायौ।
नहिं बरसावत सघन अब, नियमपूर्वक नीर।
जासो गो-कुल होत सब, दिन-दिन परम अधीर
न्यार सपनौ भयौ ॥३४॥

'गोरी को गोरे लागत जग अति ही प्यारे।
मो कारी को कारे तुम नयननु के तारे।
उनको तौ ससार है, मो दुखिया को कौन।
कहियै, कहा विचार है, जो तुम साधी मौन
बने अपस्वार्थी ॥३५॥

'पहले को सो अब न तिहारौ यह वृन्दावन।
याकै चारो ओर भयै बहुबिधि परिवर्तन।
बने खेत चौरस नये, काटि घने बन पुज।
देखन को बस रहि गयै, निधुबन सेवा-कुज
कहाँ चरिहैं गऊ ॥३६॥

1 अथवा—आतम-विस्मृत भयै व्यक्तिगत स्वार्थ हृदय मे।

'पहली सी नहिं' या यमुना हू मे गहराई।
जल को थल, अरु थल को जल अब परत लखाई।
कालीदह कौ ठौर जहँ, चमकत उज्जल रेत।
काछी माली करत तहँ, अपने-अपने खेत।
घिरैं झाँऊनि सो ॥३७॥

'नित नव परत अकाल काल को चलत चक्र चहुँ।
जीवन को आनन्द न देख्यौ जात यहाँ कहुँ।
बढ्यौ यथेच्छाचार-कृत जहँ देखौ तहँ राज।
होत जात दुर्बल विकृत दिन-दिन आर्य समाज
दिनन के फेर सो ॥३८॥

'जे तजि मातृभूमि सो ममता, होत प्रवासी।
तिन्हे बिदेसी तंग करत दैं विपदा खासी।
नहिं आयैं-निरदय दई, आयैं-गौरव जाय।
साँप छछूंदर गति भई, मन ही मन अकुलाय
रहैं सब के सबैं ॥३९॥

'टिमिटिमाति जातीय-जोति जो दीप-शिखा सी।
लगत बाहिरी ब्यारि बुझन चाहत अबला सी।
शेष न रह्यौ सनेह कौ, काहू हिय मे लेस।
कासो कहियै गेह कौ देसहि मे परदेस
भयौ अब जानियै' ॥४०॥

(अपूर्ण)

प्रशस्ति

[१]

श्रीरामतीर्थाष्टक

जय जय ब्रह्मानन्द-मगन जन-मन हरसावन।
जय अमन्द सुन्दर सनेह रस सुठि सरसावन।
जय विशुद्ध वेदान्त 'व्यास' नय मग दरसावन।
जय सिद्धान्त उजास 'राम बरसा' बरसावन।
जय पुलकित तन पावन परम, प्रफुलित प्रिय प्रेमायतन।
जय जग दुरलभ आचार्य वर, आर्य्य रत्न-गर्भा-रतन ।।१।।

जय तपचर्या-उदाहरण मनहरन जु अनुपम।
जय नित नवल उमंग भरन युवकन हिय उत्तम।
जय उदार पर-हित-सुधार-रत भारत प्रियतम।
जय जिय जाननहार राउ अरु रंक एक सम।
जय वर विराग अनुराग प्रद, गदगद हिय सत सहृदवर।
जय पद पद पर स्वातंत्र्य प्रिय, विसद प्रेम-पंकज-भ्रमर ।।२।।

जय पंजाब मराल बाल गुन मंजु माल धर।
जयति स्वप्रन-प्रतिपाल सुमति-गति-रुचि रसाल वर।
जय विनोद-व्रत-विमल सुधाकर-कर उज्जल तर।
जय स्वजन्म वसुधा सेवा-रत निरत निरन्तर।
जय भव-भय दारुन दुख हरन भेद हरन तारन तरन।
जय पूरन मृदु स्वर सो 'प्रणव' उच्चारन धारन करन ।।३।।

जय कुभाव-कुल-कदन सरलता-सदन सुहावन।
चारु बदन मन मदन मदन मोहन मन भावन।
जय अगाध रस रङ्गी गङ्गी सङ्गी पावन।
ब्रज-ब्रजभाषा भक्त भक्ति रस रुचिर रसावन।
जय जग कलोल कर लोल अति गोल चन्द प्रियतम परम।
धृति धरम प्रभाकर नरम हिय हारन भव भय भरम तम ॥४॥

जय प्रन-प्रनय दृढावन दृढतर छोह छुडावन।
आरज-सुयस बढावन वैदिक ध्वजा उडावन।
जय विदेश विद्वान चकित चंचल चित चोरन।
नित अशेष उपदेश प्रचुर पीयूष निचोरन।
भुवि विश्रुत विविध प्रमान जुत दै दै श्रुति परिचय प्रबल।
जय जयकुमार जय पान जिय भारत रति राची नवल ॥५॥

विशद उपनिषद पदम 'अलिफ' षटपद गुजारन।
सुघर स्वच्छ स्वच्छन्द साधु उद्देश सँवारन।
सलभ सुजान अमान मनोविज्ञान उधारन।
भारत-दशा सुधारन सब तन मन धन वारन।
जय मन्द-मन्द आनन्द-रस-पारायण पपिया अमद।
जय निरत आत्म-रत सतत सत, सतनारायण हिय सुखद ॥६॥

यह आतम अज अगम अमर अनुपम अरु अक्षय।
तजि यासो सम्बन्ध प्रकृति मे प्रकृति होति लय।
यो विचारि उर मरम प्रबल प्रगटत इमि निश्चय।
रामतीर्थ भारतमय भारत रामतीर्थमय।
कहा मिलन-बिछुरन जबै तुम हममे हम तुममे बसत।
बस विमल ब्रह्म वैभव विपुल विश्व-व्याप्त केवल लसत ॥७॥

जब लौ देश हितैषिन को भारत मे आदर।
जब लौ भुवि अखण्ड शकर वेदान्त उजागर।
जब लौ सुभग स्वदेश भक्ति निश्शेष बसति मन।
जब लौ जगमग जगत जगत जगमगत प्रेमपन।
तब लौ निस्सशय रहहि, रामतीर्थ कीरति अमल।
नित अंकित प्रति उर अटल पै, अजर अमर अविचल अटल ॥८॥

[२]

श्री गांधी-स्तव

(१)

जय-जय सदगुन सदन अखिल भारत के प्यारे।
जय जगमधि अनवधि कीरति कल विमल उज्यारे।
जयति भुवन-विख्यात सहन-प्रतिरोध सुमूरति।
सज्जन सम भ्रातृत्व शांति की सुखमय सूरति।
जय कर्मवीर त्यागी परम आत्म-त्यागि-विकास-कर।
जय यस-सुगंधि-वितरन करन गांधी मोहनदास वर॥

(२)

जय परकाज निवाहन कृत वन्दी गृह पावन।
किन्तु मुदित मन वही भाव मंजुल मनभावन।
मातृभक्त जातीय भाव-रक्षण के नेमी।
हिन्दी हिन्दू हिन्द देश के साँचे प्रेमी।
निज रिपुहू को अपराध नित छमत न कछु शंका धरत।
नव नवनीत समान अस मृदुल भाव जग-हिय हरत॥

(३)

जयति तनय अरु दार सकल परिवार मोह तजि।
एकहि व्रत पावन साधारन ताहि रहै भजि।
जय स्वकार्य तत्परता-रत अरु सहनशील अति।
उदाहरन करतव्य-परायनता के शुचमति।
जय देशभक्ति-आदर्श प्रिय शुद्ध चरित अनुपम अमल।
जय जय जातीय तडाग के अभिनव अति कोमल कमल॥

(४)

जय विपत्ति में धैर्य्य धरन अविकल अविचल मन।
दृढ व्रत शुच निष्कपट दीन दुखियन आस्वासन।
जय निस्स्वारथ दिव्य जोति पावन उज्जलतर।
परमारथ प्रिय प्रेम-वलि अलवेलि मनोहर।
तुमसे वस तुमही लसत और कहा कहि चित भरै।
सिवराज प्रताप ऽरु मेजिनी किन-किन सो तुलना करै॥

(५)

एक ओर अन्याय, स्वार्थ की चिन्ता बाढी।
अत्याचार अपार घृणित निर्दयता ठाढी।
अपर ओर मनुष्यत्व स्वत्व की मूरति निर्मल।
कोमल अति कमनीय किन्तु प्रतिपल प्रण अविचल।
यहि देवासुर सग्राम मे विदित जगत की नीति है।
बस किंकर्तव्य विमूढ बहु भूलि परस्पर प्रीति है।।

(६)

अपुहिं सारथी बने कमलदल आयत लोचन।
अरजुन सो बतरात विहँसि त्रयताप-बिमोचन।
धीरज सब विधि देत यही पुनि-पुनि समझावत।
दैन्य पलायन एकहु ना मोहि रन मे भावत।
इक निमितमात्र है तू अहो क्यो निज चित विस्मय धरै।
गोपालकृष्ण मोहन मदन सो तुम्हार रक्षा करै।।

(७)

यहि अवसर जो दियौ आत्मबल को तुम परिचय।
लची निरकुश शक्ति भई मुदमई सत्य जय।
जननी जन्मभूमि भाषा यह आज यथारथ।
पूत सपूत आप जैसो लहि परम कृतारथ।
लखि मोहन मुखचंद तव याके हृदय उमंग है।
त्रयतापहरत मन मुद भरत लहरत भाव तरग है।।

(८)

निज कोमल वाणी सो हिन्दू जाति जगावौ।
नवजीवन यहि नीरस मानस मे उमगावौ।
अब या हिन्दी को सिर निर्भय उच्च उठावौ।
सुभग सुमन याके पद पदमनु चारु चढावौ।
यह नम्र निवेदन आप सो जिनको प्रेम अनन्य है।
ह्वै न्यौछावर तव चरनु पै हम जीवनधन• धन्य है।।

रवीन्द्र वन्दना

जय-जय कवि कुल तिलक भारती देवि उपासक ।
रुचिर रम्य सद्भाव सुभग कर निकर प्रकासक ।
जय-जय भारत-कीर्ति धवल धुज जग फहरावन ।
विद्युत इव जातीय प्रेम नस-नस लहरावन ।
जय विश्वविदित विजयी प्रमुख सौम्य मूर्ति तव लसत नित ।
जिहि लखि-लखि प्रचुर विदेश जन होत नेह नत चकित चित ॥१॥

जय-जय सहृदय सदय सुहृद नय नागर नीके ।
विमल बोल अनमोल चखावन हार अमी के ।
सुखद 'ब्रह्मविद्यालय' 'शातिनिकेतन' थापक ।
पुण्य प्रभा प्रतिभा के पूरक प्रियतम ज्ञापक ।
जय जयति वग साहित्य के उन्नत कर अनुपम अमल ।
निज कविता कर विस्तारि वर विकसावन जन हिय कमल ॥२॥

सदशिक्षा आराधन 'साधन' गुन गन आगर ।
योगी उपयोगी कारज कृत सुफल उजागर ।
विशद विवेक विकास प्रकाश करत अति सुन्दर ।
महामहिम भुवि कोविद उर अधिवसत पुरन्दर ।
यासो मजु 'रवीन्द' तव नाम सुभग सार्थक मधुर ।
जग अवके अखिल कवीन मे लसत आप परवीन धुर ॥३॥

जैसी करी कृतारथ तुम अँगरेज़ी भाषा ।
तिमि हिन्दी उपकार करहुगे ऐसी आशा ।
एक भाव सो रवि ज्यो वस्तुनि वृद्धि प्रदायक ।
वरसत सरसत इन्द्र सकल थल त्यो सुग्नायक ।
'रवि' 'इन्द्र' मिलै दोउ एक जहँ, तऊ अचरज कैसो अहै ।
यह प्यासी हिन्दी चातकी तव रस को तरसत रहै ॥४॥

धन्य-धन्य वह पुण्य भूमि जिन तुम उपजायै ।
धन्य-धन्य वह निरमल कुल तुमसे सुत जायै ।
धन्य आगरा नगर जहाँ शुभ चरन पधारै ।
धन्य-धन्य हमहूँ सव दरसन पाइ तिहारै ।
अस देहिं दिव्य 'देवेन्द्र' वर करहु देश-सेवा भली ।
यह अर्पित तव कर-कमल मे सत्य सुमन गीताजली ॥५॥

[४]

श्री तिलक वन्दना

जय जय जय द्विजराज देश के साँचे नायक।
यदपि प्रभासत वक्र, सुधा नवजीवन दायक।
दृग चकोर आराध्य राष्ट्र-नभ-प्रतिभा भाषा।
बन्दनीय विस्तार विशारद ज्योत्स्ना आशा।
जय चित पावन सद्भाव सो जग शुभचिन्तक प्रतिपलक।
शिव-भारत-भाल-विशाल के लोकमान्य अनुपम तिलक॥

देश-भक्ति - स्वर्गीय गग-आघात - तीव्रतर।
गगाधर सम सह्यौ अटल मन तुम गगाधर।
नित स्वदेश हित निर्भय निर्भ्रम नीति प्रकाशक।
जय स्वराज्य सयुक्त-शक्ति के पुण्य उपासक।
जय आत्म-त्याग अनुराग के उज्ज्वल उच्च उदाहरन।
जय शिव-संकल्प स्वरूप शुभ एक मात्र तारन-तरन॥

कर्मयोग आचार्य्य आर्य आदर्श उजागर।
निर्मल न्याय निकुज पुज करुणा के सागर।
सुदृढ सिंहगढ के सजीव-ध्वज-धर्म धुरधर।
अद्भुत अनुकरणीय प्रेम के प्रकृत पुरन्दर।
प्राणोपम राष्ट्र प्रतापवर, अघ त्रिताप हर सुरसरी।
जय जन-सत्ता के छत्रपति महाराष्ट्र कुल-केसरी॥

मर्यादा-पूरण स्वतत्रता-प्रियता प्यारी।
प्रकृति मधुर मृदु मजु सरलता देखि तिहारी।
रोम-रोम कृत-कृत्य भयौ यह जन्म कृतारथ।
तव दर्शन करि लोचन पायौ लाहु यथारथ।
चित होत परम गद्गद मुदित जबै विचार कृत्य तुव।
जय जीवन-जग-जहाज के जगमगात जातीय ध्रुव॥

धन्य-धन्य यह देश जहाँ तुम देश भक्त अस।
जननी जन्मभूमि तन मन धन जीवन सर्वस।
धन्य आगरा नगर धन्य यहँ के बासी जन।
चरण कमल तव दरसि परसि भयै जो पुनीत मन।
सत विनय यही जगदीश सों होय मनोरथ तव सफल।
हम हिन्दी पावे विश्व मे स्वत्व मानवोचित सकल॥

[५]

श्री गोखले

परम पूज्य सतकर्म-निष्ठ नय-नीति सुनागर।
अति उदार चित नित नव ज्ञान प्रकास उजागर।
जासु वचन बरषा सो नवल हृदय लहरायें।
आक जवास क्रूर जन पजरे मनहिं लजायें।
शिक्षा अनिवार्य प्रचार-हित कृत प्रयत्न पुरुषार्थ पर।
निस्पृह नि स्वारथ द्विज कमल हम-वस-अवतस वर ॥१॥

श्री रानाडे शिक्षा की प्रिय प्रतिमा निरमल।
भारतीय-जातीय-समिति-कर प्रभा समुज्ज्वल।
सदा रह्यौ दुरभेद्य प्रबल जाको यह निश्चय।
भारत नित ईश्वरमय ईश्वर नित भारतमय।
यो देशभक्ति हरिभक्ति मे रुचि अभिन्नता चारु तर।
गोपालकृष्ण सत्कथन सो नाम रुचिर चरितार्थ कर ॥२॥

कुली-प्रथा उच्छिन्न करन जिन गवित प्रकामी।
जाके अमित कृतज्ञ प्रवासी भारतवासी।
नित प्यारे स्वदेश हित कृत तन मन धन अरपन।
आत्मत्याग आदर्श दूरदर्शी अविचल प्रन।
जिह प्रतिभा गुन शासक सजग शासित समयोचित फले।
जग विदित कर्मयोगी सदय सहृदय श्रीयुत गोखले ॥३॥

अब सो अन्तर्धान भयै पौरुष विकास मे।
जिमि प्रभात की प्रभा मिलै पूरन प्रकाश मे।
जननि जन्म भुवि गोद यदपि तिन देह सिरानी।
गूँजति उर नभ अजहुँ दिव्य वह विद्युत वानी।
सम्भव इन घन असुआन सन नेह-लता विस्तीर्ण हो।
अभिनव प्रसून सन्ताप हर महाप्राण अवतीर्ण हो ॥४॥

नही गोखले जगत जगत आदर्श पियारौ।
भारत जग जीवन जहाज हित ध्रुव को तारौ।
स्वत्व और अस्तित्व काज जब करत समर हम।
उत्साहित सो करत देत आदेश अनूपम।
निज स्वारथ भेद बिसराय सब मिलियै करि स्वविरोध-इति।
विधि वद्ध समुन्नत कीजियै भारतीय सेवक-समिति ॥५॥

अब तौ हिन्दू सकल भेद बन्धन निरवारौ।
विपति जनित निज विषम बेदना बिपुल विचारौ।
यदि तुम थापन चहत गोखले कीर्तिस्मारक।
साँचे मन सो तो शिक्षा के बनौ प्रचारक।
जिहि लहि चहुँ भारत युवक नवजीवन जागृति सचरै।
उर अविकल धीरज धारि दृढ सत्य देश-सेवा करै ।।६।।

[६]

श्री सरोजनी-षटपदी

जय जय सहृदय सदय सुहृद कवि गुन गन आगरि।
नव नागरि प्रिय परम गोखले कीर्ति उजागरि।
कोमल कवित कलाप अलापिनि नित नव नीकी।
लोल बोल अनमोल चखावन हारि अमी की।
जय भेद भाव के हरन को सुकृत सुदृढ सकल्प वर।
चित चकिन करनि मुद भरनि नित निज दिखाइ प्रतिभा प्रखर ।।१।।

आरज सुजस सुगध सुहावन विपुल विकासिनि।
विहँसत अधर सुदल सो अनुपम छटा प्रकासिनि।
नव जातीय सरोवर की सुखमा सरसावनि।
प्रेम प्रस्फुटित पुण्य प्रभा प्यारी दरसावनि।
नित मन बच क्रम सो रुचिर तर नूतन भाव प्रयोजनी।
प्रिय यथार्थ चरितार्थ तव यासो नाम 'सरोजनी' ।।२।।

लखि तव प्रफुल्लित दरस हमारो होत सुनिश्चय।
दुख की बीती रैनि उदित अब सूर्य अभ्युदय।
कर्म भीरु उल्लूक लुकन अब लगै अभागे।
देशभक्त वर भ्रमर भ्रमत गुजारन लागे।
श्रुति मधुर मुदित द्विज गान को छाइ रह्यौ उत्कर्ष है।
अभिनव आभा सो पूर्ण यह देखहु भारतवर्ष है ।।३।।

निरुत्साह हेमन्त और पतझर के मारै।
सके न कछु करि बिबस यहाँ के लोग बिचारै।
असन वसन विन कम्पत तन अरु अस्फुट भाषा।
किन्तु जियावति तिन्है एक बस प्यारी आशा।
ऐसे जीवन-सग्राम मे होवहि वाछित काज है।
क्योकि सुखद आवन चहत श्री ऋतुराज स्वराज है ।।४।।

भारतीय कोकिल प्रियतम निज कूक सुनावौ।
या स्वदेश मे नवजीवन सचार करावौ।
वहुत दिन के सुसुप्त को करुणामयी जगावौ।
कल कोमल रसाल वाणी सो याहि उठावौ।
जासो यहि आर्यावर्त को नष्ट होइ सन्ताप है।
जग जगमगाय नवजोति सो अनुपम प्रवल प्रताप है ॥५॥

धन्य-धन्य वह पुण्यभूमि जिन तुम उपजाईं।
धन्य-धन्य वह कुल जिन तुम सी महिला पाईं।
धन्य आगरा नगर जहाँ शुभचरन पधारे।
धन्य-धन्य हमहूँ सब दरसन पाइ तिहारे।
सत् विनय प्रवाहित कीजिए देश-प्रेम-रस की नदी।
वस अर्पित यह तव क्रोड मे श्री सरोजनी-पटपदी ॥६॥

[७]

लाला लाजपतिराय

जय निशक निकलक-पूर्ण भारत शशाक वर।
जय नीतिज्ञ सुजान वीर गभीर धीर वर।
जय परीक्षित सुवरण सुन्दर सुलभ सुहावन।
सकल गुप्त मन सुमन प्रेम गुन गहन गुहावन।
अग्रवाल-प्रिय अग्रवाल सौरभ सरसावन।
कार्य शक्तिमयि देशभक्ति रस चहुँ वरसावन।
परम पुण्य मति पूर्ण आप यश सो अनुरागत।
प्रियतम लाजपतिराय सुखद सब विधि तव स्वागत ॥

स्फुट कविताएँ

दोहे

[१]

हरी कंचुकी जरद कुच, अलसानी तिय भोर।
मनहुँ चन्द बदरी छिप्यौ, निकसत आवै कोर॥

[२]

आवौ बैठो हँसौ प्रिय, जासो बढै उछाह।
हम पागल प्रेमीनि को, और चाहियै काह॥१॥
करम धरम नित नैम को, सब विधि देख्यौ तार।
पै असार संसार मे, एक प्रेम ही सार॥२॥
चित चिन्ता तजि डारिके, भार जगत के नेम।
रे मन श्यामा श्याम की, शरण गहौ करि प्रेम॥३॥

[३]

पपिहा पंचपदी

घन गरजत तरजत परम, करि करि कोप अपार।
करत पयोधर को तबहुँ, चातक चतुर पियार॥१॥
तरसावै, वर स्वाँतिजल, बरसावै मुद धाम।
प्रेमी चातक हृदय को, किन्तु प्रेम सो काम॥२॥
घन उमडत घुमडत घनौ, करत घमड महान।
प्रेमी पपिया बापुरौ, करै कौन पै मान॥३॥

डरपावत डारत उपल, धारत चपल प्रकाश।
प्रेमी पपिया के हृदय, तऊ न टूटति आश ॥४॥

चाहे कैसे हू परै, विघन और प्रतिवन्ध।
घन अरु चातक को सदा, अजर अमर सम्वन्ध ॥५॥

[४]

श्री राधा माधव विलास

श्री राधापति माधव, श्री सीतापति धीर।
मत्स आदि अवतार नित, नमौ, हरहु भवपीर ॥१॥

रेवति प्रिय मूसल हली, वली श्री वलराम।
वन्दौ जग व्यापक सकल, कृष्णाग्रज सुखधाम ॥२॥

भव वाधा गाधा हरन, राधा राधापीय।
दुख दरिद दरि, विस्तरहु, मंगल मेरे हीय ॥३॥

श्री राधा वृषभानुजा, कृष्ण प्रिया हरि शक्ति।
देहु अचल निज पदन की, परम पावनी भक्ति ॥४॥

मकराकृत कुडल श्रवन, पीत वसन तन ईश।
सहित राधिका मो हृदय, वास करौ गोपीश ॥५॥

क्यो पीवहि मो चरण रस, मुनी पियूष विहाय।
यह जानन वालक हरी, चूंसत स्वपद अघाय ॥६॥

चन्द्र कमल को जगत मे, अनुचित वैर कहात।
या सो हरि निज पद कमल, विधुमुख हेत लखात ॥७॥

"करौ जगत पावन सकल", सोचि जनौ मन एह।
यदपि निपट निर्गुण तदपि, धरत सगुण हरि देह ॥८॥

यदपि समल यमलारजुन, लह्यौ मुनी को श्राप।
परसि कृष्ण ऊखल वँध्यो, सुरगहि गये सदाप ॥९॥

"अरे कृष्ण दधि-मथनिया, क्यो डारत कर, तात ?"
"चैंटी जो जामैं गिरी, तिनहिं निकारन, मात !" ॥१०॥

पीत वसन घनश्याम तन, ऐसौ शोभित होत।
मनहुँ सघन घनश्याम मे, दामिनि दमक उदोत ॥११॥

राधे प्रफुलित कंज सम, तव आनन रस ऐन।
ता पराग लोभी भ्रमर, हरि गूँजत दिन रैन ॥१२॥

सोहत राधा-चन्द्र-मुख, किरण हँसी मृदु कोर ।
लागत जनु घनश्याम कें, सखि, थिर नयन चकोर ॥१३॥

धनि राधे तव मुख कमल, विकसत परम सुहात ।
जा मधु के लालच मधुप, हरि इत आवत जात ॥१४॥

मृगमद टीकौ दिपत शुभ, नीकौ राधा भाल ।
जनु राजत शशि मधि सुभग, निरभय सूरज बाल ॥१५॥

लरकत रुचिर बुलाक सो, वदन प्रभा सरसाय ।
मनहुँ मजु निरमल लसत अस, बुध विनु मडल जाय ॥१६॥

नील वसन मधि लसत अस, राधा मुख अभिराम ।
मनहुँ घिरचौ चहुँ शरद शशि, नूतन घन घनश्याम ॥१७॥

लसत वदन सुख सदन करि, इत उत कारे वार ।
तम विदारि मानहु भयौ, उदय शशि सुखकार ॥१८॥

दसन पाँति भागीरथी, भानुसुता भ्रू-कोर ।
अधर सरसुती सो मिल्यौ, तीर्थराज मुख तोर ॥१९॥

नासा तर रसधर अधर, आभाधर सरसात ।
बिध्यौ कनक के तार मे, मनु मानिक दरसात ॥२०॥

मनहुँ सुधाकर शशि, करन-क्षयी रोग को नास ।
कल कपोल मिस देह द्वै, धारि करतु नित वास ॥२१॥

कजन, खजन, मिरग, झख, मदगजन छवि दैन ।
लसत मैन मद ऐन से, राधे तेरै नैन ॥२२॥

कारे बार नितम्ब लो, लहरि छटा सरसात ।
शशि मुख अधरामृत पियन, जनु पन्नग गन जात ॥२३॥

निज कर सो बैनी गुहति, गहि इत उत कच चीर ।
मनु पकज बैठि लसति, भ्रमरावलि की भीर ॥२४॥

कल कपोल सो लट लटकिनि, युगल कुचन पै भाति ।
सटकारी नागिन मनौ, शशि तजि मेरुहिं जाति ॥२५॥

कचन वढाय सनेह सो, बाँधति तिन दृढ तीय ।
कठिन निरदई तनक तव, नाहिं पसीजत हीय ॥२६॥

गुहे मालती सुमन सो, सोहत कारे वार ।
मनहुँ सघन घनश्याम मे, सेत बकन की धार ॥२७॥

पीत वसन तन, मुरलि कर, कहत मनोहर बात ।
मन्द मन्द पग धरत सो, को सखि श्यामल गात ॥२८॥

अरी मुरलिया तैं करयौ, कौन कठिन तप वीर ।
जो पीवति हरि-अधर-रस, नासत भव भय पीर ॥२९॥

वृन्दावन चल राधिका, वेग वेग धरि पाय ।
गावत मुरलीधर सुखद, मुरली मधुर बजाय ॥३०॥

जमुना कूल कदम्ब तर, ठाडौ प्रेम प्रमत्त ।
हरि बजाय मुरली मधुर, हरत गोपिकन चित्त ॥३१॥

वृक्ष वल्लरी कुज मे, विविध विहगन सग ।
विहरत हरि वृन्दा विपिन, उमगति उरहि उमग ॥३२॥

चुवन करि पर पुरुष मुख,, मुरलि तऊ नादान ।
अपनै को वशज कहति, महा मोद मद मान ॥३३॥

रे अशोक लखि सुमन क्यों, गर्व करै मन माँहि ।
कहा तिया की लात कौ तो को सुमिरन नाँहि ॥३४॥

विलसति यद्यपि चहचही, चहुँ दिसि पादप माल ।
तदपि सरस कोयल हृदय, भावत एक रसाल ॥३५॥

"मम मन सम नहिं काहु मन" यही हृदय मे धारि ।
दरसावत दाडिम मनो, अपनौ हीय विदारि ॥३६॥

री कोयल जनि मौन गहु, बोलहु बोल रसाल ।
न तौ जानि है तोहि सब, बैठ्यौ काग रसाल ॥३७॥

क्यो करीर विरवन बसत, कीर छाँडि निज धीर ।
विरमहु जाय रसाल जहँ, विहरत त्रिविध समीर ॥३८॥

कुसुमित वेलि नवेलि चहुँ, करत मधुप मृदु गान ।
मदन सताई मानिनी, छाँडत अपनौ मान ॥३९॥

नूतन मृदु मधु वल्लरी, ऋतु-पति आगम पाय ।
लाल नवल दल वसन सजि, मनौ वधू दरसाय ॥४०॥

कोकिल कल कूजन कलित, मनहुँ सुधारस सान ।
बिना पिया परि सखि ! सकल, दुख दै जारत प्रान ॥४१॥

का सखि ! तहँ फूले न वन, करत न कोकिल कूक ।
नहिं आवत पिय हेतु का, होत हृदय मे हूक ॥४२॥

तरुण तरणि तापित सरप, छाया सुख को पाय।
सोवत केकी पख तर, निज भय मरन विहाय ॥४३॥

तजि निज बैर, मृगेन्द्र मृग, गज कपि शूकर भीर।
दावानल की ताप सो, आवत पीवन नीर ॥४४॥

जय जग जीवन जीवनहि, देहु तनक बरसाय।
कहा होय फिरि चेति के, जब चातक मर जाय ॥४५॥

कूप सरित सागर सलिल, यदपि जगत दरसात।
तबहु न चातक की तृषा, बिना जलद जल जात ॥४६॥

घन बरसत नाचत शिखी, फुरत लतनि दल सैन।
चातक का पातक कियौ, तव मुख नीर परै न ॥४७॥

धिक नीरद ! चातक तृषा, तो पै पूर न होहि।
धिक चातक परलापि जो, पुनि पुनि जाचत तोहि ॥४८॥

यदपि लह्यौ बक ! हँस को, सेत रूप तन माँहि।
छीर नीर न्यारौ करन, तोऊ समरथ नाहिं ॥४९॥

सोहत हरि गोपीन सँग, रास करत जा काल।
मानहुँ मोती माल मधि, नीलम लसत बिशाल ॥५०॥

मृगमद गरवहु जानि जनि, मोर सुगध सुहात।
तुम किरात के बान सो, मरवायौ निज तात ॥५१॥

"प्यारौ रवि नीचे गिरत, कवहुँ देखहूँ मै न।"
मन मलीन यो कमलिनी, मीचत स्वकमल नैन ॥५२॥

नाथ विरह सहिहौ सकल, देहु लुकुजन लाय।
जासो, तन को अतन के, शर सो सको बचाय ॥५३॥

बाहिर भीतर क्रूर सब, करत करम नित क्रूर।
दूर तऊ दुख दैन को, कहत याहि अक्रूर ॥५४॥

कहा करौ कहँ जाऊँ सखि, कैसे बिलापौ वीर।
विरह अनल सो दग्ध हिय, कहौ काहि निज पीर ॥५५॥

पद हू मे कॉटौ लग्यौ, करत विकल दै पीर।
जा जन कै हिरदय छिद्यौ ताकौ कल कस बीर ॥५६॥

सुमरत सुमरत नाथ को, कठिन शोक को सूल।
टूक टूक हीयौ करै, अजहूँ सालत हूल ॥५७॥

गई रैनि आयँ न पिय, सखि ! मम जीवन प्रान।
विरह आगि सो चहक कें, प्रान करत प्रस्थान ॥५८॥
कहु रे कागा परम प्रिय, प्रिय आवन की बात।
तिन आयँ हौ देउँगी तोहि दूध अरु भात ॥५६॥
माधव तेरे विरह मे, तज्यौ सकल निज वेश।
नीर भरे ताके नयन, धूरि धूसरित केश ॥६०॥

[५]

सवैया

रत्न खर्चा कुच पै हरी कचुकी सावन-कारी-घटा सी सुहावै।
चन्द ज्यो पीत उरोज लसै सतदेव चकोर हियै नित भावै॥
ऐडाई लै भामिनि सोय उठी जव जौवन रग तरग दिखावै।
वारिद सो दुवकी निकरी जनु चन्द्रकला त्रयताप नसावै॥

[६]

समस्या पूर्त्ति

माखन चुरायौ दधि लूटि खायौ अब,
छै दिन सो कान्ह बाँधे लागे निज टपको।
आजहुँ न भर्यौ पेट उनको बताऔ ऊधौ,
कूवरी को राखि चाहे दूसरी को लपको।
मधुपुरी जाय नित मौज हू उडावे आप,
देत सिख गोपिन "करौ री तुम जप को"।
जनम सो जानत, दुर्यौ न कछु सत्यदेव,
नौ सै मूसे खाय के विलाई बैठी तप को॥
—६-७-०५

[७]

पौन की सनक, घन सघन ठनक चारु,
चचला चिलकि सतदेव चहुँ चाली है।
वादर की कडी झडी लागी चहुँ ओरनु सो,
वोलत पपैया पीउ पीउ प्रण पाली है।
आतुर सो दादुर उछरि दुर दुर देत,
दीरघ अवाज वाज गाज मतवाली है।
सीतल प्रभात वात खात हरखात गात,
धोए धोए पातन की वात ही निराली है॥

[८]

नैन विकराल लाल रसना दसन दोऊ,
दैत्य दल दलन औ दुष्टन की घालिका।
सबै देव मडल मुनीश शशि नावैं तोहि,
कठ मे बिराजै महा रुडन की मालिका॥
दोष दुख खडन को, बिघन निकन्दन को,
नवौ निधि नाथ तेरैं भक्तन की पालिका।
देव सुखदायक सत्यदेव शरण तेरी,
मेरे दुख देवा को कलेवा करि कालिका॥

[९]

फूल रही केतकी कतार की कतार अरु,
गुजरत मधुकर पुज दरस्यौ परै।
अम्बन अनारन कदम्बन को रग देख,
कोकिला कलाप सुनि सुख सरस्यौ परै॥
सीतल सुगन्ध मन्द मृदुल पवन अति,
ललित विटप लखि मन हरस्यौ परै।
बसन ते बासन ते सुबन सुबासन तें,
वेहड ते बन ते बसत बरस्यौ परै॥

[१०]

सहज सहेलिन सो हँस हंस प्यारी वह,
घूँघट सो मुँह काढि बतराति जात है।
लक लचकति अति कुच मचकति मजु,
बनी है सुढार अरु रग बरसात है॥
जघन सुढाली अरु चल मतवाली पुनि,
पैंजनी पगन झनकार सरसात है।
भासत सो प्यारी ऐसी जानि परै सत्यदेव,
चन्द की ज्यो ज्योति मन्द परत सी जाति है॥

[११]

सुखकारक, दारक दारिद के,
औ निवारक जो भव फन्दन के।
छल-छारक जारक जालन के,
पुनि टारक जो दुख द्वन्दन के॥

भय हारक कारक काज सबै,
सुप्रसारक प्रेम के वन्धन के।
रहु रे मन तू पद-पकज मे,
वृषभान-सुता नँद-नन्दन के ॥

[१२]

सहग्वालनि के मिलि कें जुलि कें,
अति खाय मजूम जो धूम छई।
लखि आवति कीरति जा मग मे,
शुभ मूंठी गुलाल की हाथ नई ॥
पुनि घाल दई तिनकें मुख पै,
सतदेव कसै कटि प्रेम मई।
कहि होरी है, होरी है, होरी है जू,
पिचकारी पियारी पै छाँडि दई ॥

[१३]

रीति की वातन प्रीति की वात,
प्रतीत की बात न वातन पाई।
ज्ञान सुहाय न चाय न चित्त मे,
ना दुख पाय सहै कठिनाई ॥
पीय हा पीय पुकारत है हिय,
पापी सतापी रह्यौ नहि जाई।
सत्य जू, हा, हरि कें विछुरे,
छतियाँ फटिगी पै दरार न आई ॥

[१४]

झूमत ज्यो मतवारो मतग,
सो प्रेम की वेलि को होय न चेरो।
ज्ञान की आकुस मानत ना,
मन-मोह-कुपथ सो जात न फेरो ॥
'सत्य' जितै ही तितै चलि जात है,
ठीक न ठाक कछू यही केरो।
कै करुणा करि वाँह गहो,
कि कहो करुणानिधि नाम न मेरो ॥

[१५]

रे अलि एतौ सँदेश कहौ,
मन-मोहन सो हमरौ मन भायौ।
नेह रच्यौ प्रथमैं हमसो,
सतदेव जू बात लगाय रिझायौ ॥
बावर बौरी हमे कही क्यों न,
जे ऊधो के हाथन सों समुझायौ।
गोपिका छाँडि अनाथ इतै तऊ,
"गोपिकानाथ" क्यो नाम धरायौ ॥

[१६]

दासी सबै जु हरी-पद-कंज की,
ज्ञान कों गान लगै तब फीकौ।
ऊधो क्यो याहि हमैं समझाय कै,
लैंहु सिरै निज लीलि को टीकौ ॥
रैंन दिना कल ना सतदेव जू,
भेजो न श्याम जरावन जी कौ।
धीरज देवौ रह्यौ इक ओर,
वियोग मे योग करावत नीकौ ॥

[१७]

कोऊ करौ वदनाम जू मोहि,
भयौ मन ये घनश्याम कों चेरौ।
सत्य निहारि हँस्यो जव सो,
तव सो ही कछू मो पै मतरु फेरौ ॥
टोह मे लाग्यौ रहै निसि बासर,
पाग्यौ सदा तिह जोह घनेरौ।
प्रेम को साज सजाय लियौ,
तब लाज सो काज कहा अब मेरौ ॥

[१८]

चित्त फँस्यौ मन-मोहन मे,
चाहे कोऊ कछू हिरदे में धरचौ करौ।

सत्य जू गाँव के सारे हँसौं,
चहुँधा चलि क्यो न चवाऊ करयौ करौ ॥

भार में जाऊ मरी कुल कानि,
अरौस परौस कें लोग लरयौ करौ।
प्रेम को ताज धरयौ सिर पै,
भलें लाज निगोडी पै गाज परयौ करौ।

[१९]

कैसे करो, मग चालत में,
ये निपूतो कुनूपुर आँगुरी चाँपै।
सत्य जू आगें धरो परैं पीछे,
जु हाय परी कहा वीजुरी पाँपै ॥

व्यारि उड्यौ यह अचल बावरौ,
चचल चौकि दृगंचल टाँपै।
गेहरी गेहारी वीर घसौं, किमि,
देहरी चाढत देहरी काँपै ॥

[२०]

रानी सवै तुम लोकन की,
करु वेग कृपा जगदम्व भवानी।
वानी तें कारज सर्व करयौ,
धरयौ रूप यहाँ जन के हित आनी ॥

आनि मेरे त्रैताप हरौ,
सतदेव सवै सुख सम्पति सानी।
सानी सदा स्वरूप सदा रस की,
वुधि शुद्ध करौ दुर्गे महारानी ॥

[२१]

एक हू वार अरी वृज नागरि धारि दया किन कंठ लगावै।
चारु चरित्रन हू ते रिझाय जिवायकै क्यो न वडो यश पावै ॥

और न चाहत मैं कछु री सतदेव जू एक यही चित भावै।
प्यारी प्रवीन सनेह सो हेरि कै कठ लगौ तन ताप नसावै ॥

[२२]

जायँ कहाँ तोहि ढूँढे प्रिये,
अब धीरज हू हम बाँह् बिसारी।
रैंनि दिना कल नाहिं परै,
सतदेव जू नैनन सों बहै बारी।।

घोर-घमंड-घने-घन की सुनी,
सोच यही नित हीय मझारी।
पुण्य पुरातन प्रेम की प्रेरणा,
हाय! कितै गई प्राण पियारी?

[२३]

तव कीर्त्ति-मरालिनि सिन्धुहि जाई,
तहाँ बडवानल सो चकराई।
निज ताप निवारन ऊपर कों,
घबराइ सुधाकर ओर सिधाई।।

पुनि मानि कलंकित सोऊ तज्यौ,
खिसियाइ बढी धुनि घोर मचाई।
उच्चिटायैं सुधाकन जो पर झारि,
भयै सब तारे अकास मे जाईं।।

[२४]

निज स्वारथ को बस ध्यान जिन्है,
परमारथ ओर न दृष्टि भई।
निज कोरे महागुन गायौ करैं,
चलै बेढंग चाल बिरोध-मई।।

यदि कोऊ कहै हित की न सुनैं,
नहिं जानत जागृति-जोति-नई।
मिल जो नहिं सत्य प्रयत्न करै,
उन लोगनि जाति बिगारि दई।।

या परम संकट समय मे वर देहु यह सव भय भगै।
वस न्याय के ही पक्ष मे मति गति हमारी नित लगै।
वर वृटिश को साम्राज्य यह सव भाँति सो रक्षित रहै।
निरदय नृशस महा निरंकुश रिपु पराजय को लहै ॥४॥

शुभ राजभक्ति स्वदेश पावन प्रेम प्रति उर मे वसै।
भारत-प्रताप अखड की यश-कौमुदी जग मे लसै।
नित नव विजय धुज अभय भारत वीर धीर उड़ावही।
ससार के जन सकल निरमल तिन सुकीरति गावही ॥५॥

[३०]

विजय वन्दना

भारत जन सकल, देव! नित्य ये मनावै ॥

सजि जो गये वीर वेश, रिपु सो लरिवै विदेश,
सकुशल सव विजय पाइ, वन्धु लौटि आवै ॥

आर्ज शिरोमणि स्वरूप, श्री पचम जार्ज भूप,
"मेरी" महारानि युक्त, अमित आयु पावै ॥

अपने सव मित्र सग, गरजे घन जीति जंग,
राजभक्त-मन-मयूर, कीर्ति गान गावै ॥

विलसै यहँ शान्ति आय, मुदमंगल जगमगाय,
सुन्दर निज देश प्रेम, भ्रातृ भाव भावै ॥

जग मे भारत प्रताप, चमकै नसि तिमिर-ताप,
सत्य अभ्युदय तरंगन, निरमल लहरावै ॥

ता० ४-३-१६

[३१]

कलदार कल्पतरु

भज कलदारं भज कलदार कलदार भज मूढ़मते।

खेलत वितै दई लरिकाई।
तरुण भयै तरुणी मन भाई।
वृद्ध वयसि मति गति वौराई।
विपति हरनि सम्पत्ति न कमाई ॥—भज०

शिल्पकला अभ्यास न भायौ।
व्यापारहि ना चित्त लगायौ।
हितू धनी कोऊ काम न आयौ।
नाहक बातन जनम गमायौ।।—भज०

कोरी भक्ति ऽरु कोरौ ज्ञाना।
कोरौ कविता-शक्ति महाना।
कोरे कठ कुरान पुराना।
बिना रुपैया नहिं सम्माना।।—भज०

केवल धनी सकल गुन आगर।
सभा समिति मधि पूर्ण उजागर।
चंचल चतुर चमत्कृत सुन्दर।
मनु वसुन्धरा प्रकट पुरन्दर।।—भज०

जा हित जग नर पढै पढावे।
तान सुरीली चहुँ दिसि गावे।
देश विदेश कुदक कर जावे।
पै मन मे सन्तोष न पावे।।—भज०

धन हित रूप कुरूप बनावे।
धन हित तन मे भस्म रमावे।।
धन हित लम्बी जटा रखावे।
धन हित पीरै बसन रँगावे।।—भज०

ये ही सबके प्रान बचावै।
दारुण दु:ख दरिद्र भगावै।।
बाको तू विदेश टरकावै।
रे मतिमन्द न लज्जा आवै।।—भज०

ये ही सुहृद बन्धु प्रिय चाकर।
ये ही कर्म्म धर्म को आकर।।
याके बिन सब निपट अनारी।
बात न पूछे प्राण पियारी।।—भज०

ये ही उन्नति शिखर चढावै।
ये ही शान्ताकार बनावै।।
ये ही बिपता बिकट नसावै।
ये ही जग मे पाँय पुजावै।।—भज०

तनय कहै यह पिता हमारा।
सन्यौ सनेह सकल परिवारा ।।
जा विन मित्रहु आँख चुरावै।
सत्वर आनन निरखि दुरावै ।।—भज०

जग अथाह रत्नाकर भारी।
माया सीप समिति हिय हारी ।।
परत स्वाति उत्साह अपारा।
प्रगटहिं मुक्ता-अविष्कारा ।।—भज०

—जनवरी, १६०८

[३२]

टका-महिमा

करि मन टका राम कों ध्यान।
जगत वीच इक कर्म्म टका है टका ही राखै मान ।।
टका धर्म्म सव प्राणि मात्र को जीवन टका वखान।
टका विना टकटकी लगायै कछु न परत पहचान ।।
टका मसालौ भंग मँगावै राजी हो चित छान।
टका रहित राजा चकरावै प्रजा करहि दुख गान ।।
रोग शत्रु अरु क्षुधा विपति को टका जु मित्र समान।
टका तें गर्व टका ही तें आदर टका तें निर्भय प्रान ।।
विना टका सव कोरी खट-खट व्यर्थ सु जीवन जान।
टका हितैषी हित यह पद किय सत्यदेव निर्वान ।।

[३३]

समालोचना

"प्रिय प्रवास" लखा प्रिय आपका,
सरस, ओजमयी, कविता पढी।
मन प्रसन्न पुनीत महा हुआ,
हृदय मे गुण श्रीपति के लिखे ।।
कही यशोदा प्रिय पुत्र प्रेम मे,
अगाध करुणा उर मे जगा रही।
तथैव सतप्त कही कलापती,
वियोग-दावानल-दग्ध राधिका ।।

सहृदय मृदुभाषी, गोप गोपी सभी है,
पुलकित चित होता, देख उनकी दशा को।
ऋतु-वरणन शैली, सोहनी स्वच्छ प्यारी,
अनगिन उपमाये, एक से एक आला ।।

यदपि पुरुष माना ग्रन्थ मे कृष्ण को है,
पर प्रतिपद डूबा भक्ति-मन्दाकिनी मे।
सुजन यदि पढेगे प्रेम से लीन होके,
कलमल हर सच्चा मोद पूरा मिलैगा ।।

[३४]

गिरिजा-सिन्धुजा सम्वाद

सिन्धु-सुता इक दिना सिधाई श्री गिरि सुता दुवारै।
विघ्न-विदारण मातु कहाँ ? यह भाख्यौ लागि किवारै ।।
कष्ट-निवारन मगल-करनी जाके सब गुन गावै।
मेरे द्वार पास तिहि कारण विघन रहन नहि पावै ।।
कहाँ भिखारी गयौ यहाँ ते करै जो तुव प्रतिपालौ ?
होगौ वहाँ जाय किन देखौ बलि पै परचौ कसालौ ।।
गरल-अहारी कहाँ ? बताऔ लेहुँ आप सो लेखौ।
बार बार का पूँछति मोको जाय पूतना देखौ ।।
बहुरि पियारी मोहि बताऔ भुजँग-नाह परवीनौ ?
देखहु जाय शेष-शय्या पर जहाँ शयन तिन कीनौ ।।
कहाँ पशुपती मोहि दिखाऔ ? गोकुल डगर पधारी।
शैलपती कहँ ? कर मे धारै गोबरधनहिं निहारी ।।
सत्यनारायण हँसि कें कमला भीतर चरण पधारै।
अस आमोद प्रमोद दोऊ को हमरै शोक निवारै ।।

—२०-५-०३

[३५]

हिन्दू विश्वविद्यालय के लिए अपील

स्वागत यह सुख समय पुण्यमय, जो उछाह अति पागै।
आरज विविध कला कौशल कल भल विद्या अनुरागै ।।
पर-उपकार सुव्रत सुचि दीक्षित परम प्रेम रँग राचै।
जननी जन्मभूमि के नित सब बिधि सेवक साँचै ।।

तजि सुख दुख को ध्यान मान बिन हिन्दुन को सिरताजा।
परमोदार पुण्य मूरति श्री दरभगा-महाराजा॥

सरल हृदय सहृदय सुख पोहन अखिल दुरित दल दूपन।
श्री सद्गुन गन सदन मदन मोहन मालवि कुल-भूपन॥

तन सो धन सो मन वच क्रम सो जो आरज हितकारी।
स्वर्गादपि गरीयसी जिनकी भारत मातु पियारी॥

रचन भारती भवन बनावन अथवा जन मन भावन।
विश्वविदित हिन्दू-विद्यालय हिन्दू-गुन प्रगटावन॥

प्रान्त-प्रान्त अरु नगर-नगर सो धनी गुनी जन भेंटत।
वित अनुसार प्रजा का राजा सव सों दान समेटत॥

पालन निज कर्त्तव्य, आश करि, अति उमग सो छायै।
सव प्रकार प्रिय पूज्य अतिथि ये नगर आपके आयै॥

उपजे या कुल शिव दधीच हरिचन्द आदि से दानी।
भुव विश्रुत मोरध्वज नृप से जग जिन कहति कहानी॥

ता आरज हिन्दू-कुल के तुम पूत सपूत कहाओ।
उचित समय यह उचित भाँति सो निज कर्त्तव्य निभाओ॥

ध्यान-पूर्वक यदि सोचो तो जो तुम याहि यथारथ।
याही मे तुव सव विधि स्वारथ याही मे परमारथ॥

ऋषि-मुनि की सन्तान उठौ अव देखौ भयौ सवेरौ।
अपनी दशा मिलाय और जातिन सो जग मे हेरौ॥

सभ्य समाज सिरोमनि पहिले रह्यौ आपको भारत।
विद्या विन जल-हीन मीन सम वही हाय अति आरत॥

प्रकृति-प्रसाद सुलभ सव याको पै विद्या-वल नाही।
चितवत जासो औरन को मुख, दुख भोगत जगमाँही॥

जा कारन निज वृद्ध भारती माँ की सेवा कीजै।
तन मन धन सो याहि पुष्ट करि जग दुर्लभ यश लीजै॥

ये सुन्दर आदर्श विराजत प्रियतम इनहिं निहारौ।
सव को जो प्रिय काज ताहि सव पूरन भाँति सँवारौ॥

कृपा कटाच्छ-कोरही सो जो सारि सकत सब काजा।
अहो भाग्य प्रिय वन्धु तिहारै द्वार पधारै राजा॥

हिन्दू जाति भलाई के हित भूपति घर-घर जावे।
उज्ज्वल कर्मयोग को ऐसो उदाहरण कहँ पावे ॥

भारत को सौभाग्य-सूर्य्य वह निरखहु चिलकत आवत।
नसि अज्ञान सघन तम रासहि ज्ञान उजास जगावत ॥

जहाँ स्वय सम्राट जार्ज पचम विद्या के प्रेमी।
का तुम कियौ प्रजा बनि उनकी जो न होहु अस नेमी ॥

वही सकल यह देस सुहावन पावन गुन-गन आलय।
वही गगन-चुम्बित भारत को उज्ज्वल उच्च हिमालय ॥

गंगा यमुना वही वही पूर्वज ऋषि मुनि के नामा।
धर्म-धीरता दान-वीरता वही अटल अभिरामा ॥

पै कछु को तुम कछु देखियत निज-निज धुनि मे फूले।
रैनि अविद्या अँधियारी मे प्रियपूर्वज पथ भूले ॥

चेत-हेत तुम्हरे ही यह सब रच्यौ अमित आयोजन।
जानहु निज कर्त्तव्य सकल तुम याकौ यही प्रयोजन ॥

कठिन परीक्षा समय आज है हिन्दू जाति तिहारौ।
कहँ लो या मे चहिय सफलता उर निज तनिक विचारौ ॥

शत्रु-मित्र सब ठाढै देखत चलत तिहारी स्वासा।
किंतु जबै लो स्वासा तब लो तुव जीवन की आसा ॥

वरणाश्रम अरु जाति-पाँति को भेद सकल विसराई।
हिन्दु-विश्वविद्यालय की तुम सब मिलि करहु सहाई ॥

निज भविष्य की भाग्य-डोरि अपने ही कर मे धारहु।
चाहे तुमहि सँवारहि याको चाहे तुमहिं बिगारहु ॥

अर्थ धर्म अरु काम मोक्ष को शिक्षा अनुपम द्वारा।
जाही सो जग आत्मशक्ति की जगमग ज्योति अपारा ॥

जामे सब सजोग देहु मिल यहि सो त्यागि विवादा।
हिन्दू-हिन्दी-हिन्द देश की जो चाहौ मर्यादा ॥

प्रति पद पावन हिय-हरसावन भावन परम पियारै।
मजु मनोहर मधुर मालवी भारत मुख उजियारै ॥

धर्म धैर्य अवतार नृपतिवर दरभगा भुवपाला।
ब्रिटिश मान्य अरु नित स्वदेश हित अनुपम दीनदयाला ॥

जासो ये पाहुने हमारे निज श्रम को फल चाखें ।
पूरन होय सकल विधि सो तिन उत्तम हिय अभिलाषें ।।

सकल ओर 'अभ्युदय' सूर्य की किरन माल परकासें ।
हृदय सरस सर ओज भरें नित मोद सरोज निकासें ।।

जिमि वसन्त के राज मुदित मन वृच्छावलि चहुँ फूलें ।
नेह निरन्तर मगन रहैं सब निज पतझड दुख भूलें ।।

तिमि सुठि सुजन रसाल फरें मृदु मजु मंजरी छावें ।
उपकृत मधुप रसिक गुजारत तिनकौ सुयश सुनावें ।।

ए द्विद्या रुचि लता लहलही तिन हिय सो लिपटावें ।
दान सुफल भारनि सो लचि लचि भाव विनीत जनावें ।।

लहि आश्रय डहडही डार जो देशभक्त पिक बोलें ।
धर्म कर्म उपदेश ध्वनी करि प्यारी करहि कलोलें ।।

निरमल पर उपकार तरगनि तरल तरग सुहावें ।
विद्या विनय विवेक प्रकृति छवि निज वैभव अधिकावें ।।

सुन्दर ज्ञान प्रभाव वहुरि जिय मे आनद जगावें ।
दुख को हो वस अत सवै विधि शोभा मनहि लुभावें ।।

परमपिता जगदीश बनावौ हमहिं स्वधर्म-परायण ।
यही सदा माँगत विनवत प्रभु तुम सो सत्यनारायण ।।

[३६]

अफ्रीका-प्रवासी भारतीय

तुव जस विमल कहाँ लो गावें ।
जव जव आवति सुरति तिहारी नयन नीर भरि आवें ।।

वहु वरसनु सो कठिन जतन करि-यदि किंचित नहिं भूलौ—
यह भारत-जातीय-समिति जो कर न सकी अजहू लौं ।।

सो निज भेद-भाव तजि, आरज जनजीवन धन प्यारी ।
देश धरम मर्यादा थापी, तुम सव जन हितकारी ।।

हिन्दू और अहिन्दू अन्तर, यदि वे भारतवासी ।
मेटि मुदित तजि स्वार्थ सकल विधि तुम निज सुमति प्रकासी ।।

सहनशक्ति अरु स्वावलम्ब को उदाहरन दरसायौ ।
लखि तुव आतम-त्याग मनोहर सब ससार लजायौ ।।

अन्य कठोर जाति इक ऊपर दूजे देस बिरानौ।
सकल भाँति असहाय तऊ तुव धीरज नाहिं हिरानौ॥
तन मन धन सरबस सुत दारा सबकों मोह बिहायौ।
केवल भारत जन नैसर्गिक सत्व सुभग अपनायौ॥
तप्तस्वर्ण सम जगमगात नित राखत दृढ विश्वासा।
श्री नारायण पूर्ण करैं तुम प्रेम-भरी प्रिय आसा॥

[३७]

पति-पत्नी सवाद

(१)

नाथ! अब चलियै अपने देश।
देख यहाँ की क्रूर नीति को होता हृदय कलेश॥
निभ सकता नहिं यहाँ हमारा पति पत्नी सम्बन्ध।
बच्चो के भी वारिस बनने मे पडता प्रतिबन्ध॥
प्यारे! बस हो चुका तुम्हारा काम, न करिये देर।
कौन सुनेगा, किससे कहिये, छाया अति अन्धेर॥

(२)

प्रिये! यह कापुरुषो का काम।
अभी चलें, पर स्वबान्धवो का होगा क्या परिणाम?
कहाँ जायँगे करेंगे कैसे वे निष्क्रिय प्रतिरोध?
राजनीति का जिन्है न प्यारी, हाय! जरा भी बोध॥
यही रहैंगे निज स्वत्वो के लिए करेंगे युद्ध।
चाहे प्राण रहौ या जाओ सोचेंगे न विरुद्ध॥
जननी जन्मभूमि का भारी चलने मे अपमान।
ऐसे अत्याचारो से क्या खो दैं अपनी आन?
कठिन परीक्षा समय हमारा उचित न करना भूल।
इसमें जय होते ही होगा हमे दैव अनुकूल॥
सदा सत्य की जय होती है यह निश्चय विश्वास।
पूरा होगा निर्भय रहियै, मत हूजियै निरास॥
भूल व्यक्तिगत बिथा, जानि के इसे देश का काज।
जगदीश्वर सब भला करेंगे, वही रखेंगे लाज॥

[३८]

करुणा-क्रन्दन

रे हतभागी भारत देश।
कितना और अधिक बाकी है सहना तुझे कलेश॥

सोचा था जब यहाँ नृपतिमणि पंचम जार्ज पधारैं।
धन्य आज से हुए परम हम जागे भाग हमारैं॥

स्वीकृत किया हमे श्रीमुख से अपनी प्रजा पियारी।
शिक्षा का उत्साह दिलाया दी आशायें सारी॥

ब्रिटिश-सुराज मात्र की जैसे और प्रजा सुख पावैं।
वैसा ही अधिकार कदाचित हमको भी मिल जावैं॥

वर्ण-भेद का नही लगेगा अब से कोई रोग।
विमल नागरिक स्वत्व प्राप्त कर भोगेंगे सुख-भोग॥

ब्रिटिश-पाणि-पल्लव-छाया मे जी चाहे जहँ जावैं।
वहु दिन नत निज सिर ऊँचा कर फिर इक बार उठावैं॥

निरपराध हमको यदि कोई अब से कही सतावैं।
तो उसके निरदय पजो से 'ग्रेट ब्रिटेन' बचावैं॥

इन आशाओ के सपनो ने जैसे जी बहलाया।
कान पकड 'कैनेडा' के लोगो ने हमैं जगाया॥

जग को जो आश्रय देते थे सहकर भी दुख सारे।
फिरैं निराश्रय उन ऋषियो के सुत यों मारे-मारे॥

होता अगर हमारे सिर पर कोई हितू हमारा।
रक्खा रह जाता बस घर मे यह कानून तुम्हारा॥

जहाँ जाँय तहँ बडी घृणा से बल से जाँय निकाले।
प्रजा भूप निर्बल ऐसे की कहलाते हम काले॥

काले है सन्देह नही हम किन्तु हृदय के गोरे।
उच्च उदार सभ्य भावो से है नहिं बिलकुल कोरे॥

जब जब जन्म देइ जगदीश्वर तब तब हम हो काले।
उन गोरो से सदा बचावैं जो स्वारथ मतवाले॥

ऐरे गैरे पचकल्यानी चले हिन्द मे आते।
हम आरत भारतवासी कहिं पैर न रखने पाते॥

इस जहाज के लौटाने मे हमै न कुछ संकोच।
पर इंगलैड कलंकित होगा यही हृदय मे सोच ॥

जो इस तरह तरह दे देगा सम्मुख नही अड़ेगा।
तो प्रचड सब रोष सिंह का जग मे सिथिल पडेगा ॥

होते हुए नाथ के सिर पर हिन्दी जाति अनाथ।
करैं सहानुभूति नहिं कोई भुवि पर इसके साथ ॥

रहना या मरना है इसको कठिन प्रश्न ये भारी।
एक इसी के सुलझाने से सुलझे उलझन सारी ॥

ऐसा क्यो कमजोर बनाया हमको निरदय दैव।
जो इस भाँति भोगना पडता हमको दु.ख सदैव ॥

कठिन परीक्षा समय हमारा आगे नही टलेगा।
बिना जाँच मे पूरा उतरैं अब नहिं काम चलेगा ॥

"दैव सहाय उसे देता है जो निज करै सहाय"।
इसमे रख विश्वास हमैं भी करना उचित उपाय ॥

तकते हुए पराये मुख को अब तक बहु दुख भोगा।
अब से मारग सुगम आप ही अपना करना होगा ॥

कुछ चिन्ता नहिं जो विपदा ने इतना हमै सताया।
जगमगाय उतना ही सुबरन जितना जाय तपाया ॥

एकप्राण हो उच्च स्वर से यदि हम रुदन सुनावैं।
सोते हुए शेष-शायी भी जगकर दौडे आवैं ॥

उनसे ही कहना यथार्थ है वे सच्चे महाराज।
अपनी जन्मभूमि का हमको जान रखेंगे लाज ॥

"श्री गुरु नानक के यात्री"

[३९]

दुखियों की पुकार

जगत मे किसे हमारी पीर।
लज्जा शोक घृणा से निशिदिन बहै नयन से नीर ॥

जो स्वारथ के कारण अन्धे उनकी कुछ न कहानी।
हाँ ! सो गये भारतवासी भी जो स्वदेश-अभिमानी ॥

शत्रु मित्र सब खडे देखते अतिशय हमें दुखारी।
हुआ बडा अपमान यहाँ पर मनुष्यता का भारी॥

मिटी गुलामी प्रथा जगत से जिसकी सुदया पाई।
उसी ब्रिटिन की प्रजा मुफ्त मे ऐसी जाइ सताई॥

× × ×

जहाँ हुई दमयन्ती सीता सावित्री-सी नारी।
पुण्य-सद्मिनी प्रेम-पद्मिनी आर्य्य मुखोज्ज्वल कारी॥

अबला निकट द्रौपदी ने भी रक्खा मान जहाँ का।
दृढता के वश कोई कर सका उसका बाल न बाँका॥

तहँ की पावन ललनाओ को दुष्ट बनावें दारा।
कहाँ सदय गोपाल कृष्ण प्रिय अनुपम मित्र हमारा॥

जो इस दुश्शासन के निरदय कर से हमें बचावै।
जाती हुई लाजपति को जो सकरुण हृदय रखावै॥

किसे सुनावें ? कौन सुनेगा ? फूट-फूट हम रोये।
सद्‌गुण सदान मदनमोहन मोह न तुमको कह सोये॥

आत्म-मान का महल जगत मे दृग पसार कर देखा।
नाथवान हम हा ! अनाथ सम जी मे यही परेखा॥

यह भारत मानापमान का प्रश्न उपस्थित भारी।
इसके सुलझाने मे चाहिये शक्ति लगाना सारी॥

× × ×

पता नही सरकार करै क्यो जान बूझ आना-कानी।
प्यारे हिन्दू और मुसलमा ईसाई हिन्दुस्तानी॥

क्या बूढे क्या बडे मर्द क्या औरत क्या प्यारे बच्चे।
जिनको अपना देश पियारा दयावान हैं जो सच्चे॥

जिनके उर मनुष्यता देवी की पावन मूरति प्यारी।
प्रथा, सोचियै कैसी है यह क्रूर लोम हर्षणकारी॥

जो अपने निष्ठुर कामो से निष्ठुरता के कतरैं कान।
बोल गई "ची" हृदय-हीनता लख कै हृदय-हीन सामान॥

इज्जत जो सर्वस्व हमारी वह भी लुटती जाती है।
होती शर्म देख शर्मिन्दा तुम्हे शर्म नही आती है॥

कहते छाती फटती है तुम बने हुए ऐसे अनजान ।
तुम्हे न करुणा आती सुनकर भ्राताओ का कष्ट महान ।।

बहिन तुम्हारी बेबस होकर निज मर्यादा खोती है ।
हाय परम असहाय विचारी बिलख-बिलख कर रोती है ।।

जो भविष्य की उज्ज्वलकारी छोटी-छोटी है सन्तान ।
"नही कही की रही" कीजिए इससे विपदा का अनुमान ।।

तन मन धन सर्वस्व निछावर इनके दुख पर कर दीजै ।
एक प्राण हो एक कठ से इसका आन्दोलन कीजै ।।

जिससे मिट जावै यह जड से घृणित प्रथा सत्यानासी ।
तभी कहाओगे इस जग मे तुम सच्चे भारतवासी ।।

चिरंजीव एण्डूज हमारे सरोजिनी पोलक मतिमान ।
जिनकी करुणामयी कथा सुन द्रवता है कठोर पाषान ।।

× × ×

इज्जत से भी रुपया पैसा अगर बडा सरकार ।
निडर कहै हम इस विचार को तो शतश. धिक्कार ।।

ऋषियो के कुलीन पूतो को कुली बनाया जाता है ।
रण मे उन्हे भेजते आगा-पीछा सोचा जाता है ।।

विमल हमारी राजभक्ति जो चली सदा से आई है ।
कैसी अच्छी कदर हुई बस इसके लिए बधाई है ।।

खोकर मान प्रान का रखना पल भर को भी जहँ दुशवार ।
कौन सहेगा पाँच साल तक ऐसा भीषण अत्याचार !!

हमसे तो गुलाम ही अच्छा जिसका होता एक हुजूर ।
ऐरे-गैरे पचकल्यानी के चगुल से रहता दूर ।।

भरा हुआ है अनन्त सागर उसमे हमे डुबा दीजै ।
तोपो के मुहरो से हमको विना उज्र उडवा दीजै ।।

चाहे जैसी नृशसता भी अपने हाथो से कीजै ।
कुली-प्रथा का किन्तु अन्त कर उभय लोक मे यश लीजै ।।

नहिँ उलाहना अगर किया नहि जो कोई पूरा वादा ।
जाती हुई बचा लीजै इस आर्य्य जाति की मर्यादा ।।

तीस कोटि के दड मुड का जो तुमने पाया अधिकार ।
होगे प्रभु के अवसि सामने बुरे भले के जिम्मेदार ।।

अनुचित दया न हमको चहिए, चहिए केवल न्याय उदार।
उसकी ही हम भीख माँगते सविनय तुमसे बारम्बार॥

कबर किसी की मे नहिं सोना राजा को, जानै ससार।
पक्षपात को छोड न्याय का करना चहिये पुण्य प्रचार॥

ब्रिटेन! तुम्हारी न्याय-नीति मे है हमको अतिशय विश्वास।
गौरव निज प्राचीन सोचकर कीजै अब तो पूरी आस॥

न हो आपका नाम कलकित, रक्षा भी हो सभी प्रकार।
सत्य दीन दुखियो की बस है हाथ जोडकर यही पुकार॥

—३ मार्च, १९१७

[४०]

श्री राधावर प्रेम-मूर्ति-जन-वत्सल ललित ललामा।
बिगत छद्म सुख-सद्म सकल बिधि तव पद पद्म प्रनामा॥
जन-मन-रंजन खल-दल-गजन भंजन हित भूभारा।
पुनि बन्दौ भारतभुवि जहँ प्रभु स्वयं लियौ अवतारा॥
श्रीपति-जन्म-स्थान शातिमय वेद वितान पुराना।
गुन मडित पडित रत्ननि को जाकौ कोश महाना॥
नसी यदपि जो नासवान छिनभगुर जिह प्रभुताई।
तदपि विमल विलसति जाकै हिय प्रणव वेद निपुनाई॥
अटल भारती-प्रभा-प्रभाकर जा भुव परम प्रकासा।
का आश्चर्य तहाँ वन्धुवर मन-पकज करहिं विकासा?
ज्ञानवान साहित्य-तत्त्वविद सुभग सरल हिय सुन्दर।
क्यो न होहिं तहाँ भारतेन्दु सम पूरण प्रेम धुरधर॥
तिन कीरति की चारुचन्द्रिका-चुम्बन को चित भावै।
जनु हिन्दी-साहित्य-रसिक-उरउदधि उमगत आवै॥
वा साहित्य-सरोज - मधुर - मधु - चाखन को ललचायै।
अलवेले अलि-वृन्द चहूँ दिसि सो मानो घिरि आयै॥
सरस प्रेमघन-स्वाँति-बूँद के पीवन कौ मतवारै।
'हिन्दी' 'हिन्दी' रटत सबै ये सज्जन यहाँ पधारै॥
जननी-जन्मभूमि भाषा के जे अविचल अनुरागी।
तिन दरसन लहि चरन-परसि हमहूँ अतिशय बडभागी॥

बड़े भाग सो आज जुरयौ यह सम्मेलन मनभावन।
समयोचित सुप्रयागराज मे पुण्य-हृदय-पुलकावन ॥

बृद्ध नागरी-भक्त-भक्ति की लता लहलही प्यारी।
जाकर जनु यह स्वच्छ पुष्प है सरस सुलभ उपकारी ॥

अथवा हिन्दी-दुख-दलन को बालकृष्ण को रूपा।
मंजुल मधुर मनमोहन अति सोहन नवल स्वरूपा ॥

'हिन्दी' 'हिन्दू' हृदय भाव के ऐक्य रसहिं बरसावन।
मुरझाई साहित्य-बेलि-हित यह धाराधार पावन ॥

जाके दरसन को हमरौ मन सदा रहत अनुरागत।
अस नित नव साहित्य-देह धर करत तिहारौ स्वागत ॥

हे गोविन्द! प्रेमघन! याकी सब बिधि रक्षा कीजौ।
सुधा-सलिल सरिसाय सुहावन सत्य याहि सुख दीजौ ॥

[४१]

सुधि रहि-रहि आवत तव सँग की रँगरलियाँ।
नय नयनाभिराम श्यामल वपु-शैल, गग, तट गलियाँ ॥

रस-बतरानि[1] बिचारत विकसत रोम-रोम की कलियाँ।
सत गरीब कौ फेरि देउ मन भली न ये छलबलियाँ ॥

[४२]

कली री अब तू फूल भई।
मन मधुकर बहु आश लगायै तोसो प्रेम मई ॥

बिकसत सुभग अग दल प्रतिपल शिशुता झलक सिरानी।
रह्यौ कछू अज्ञात तोहिं जो अब ऐसी हठ ठानी ॥

चार दिना को लहरि महरि है पुनि रीते के रीते।
ऐसौ करहु न जो पछितावौ पाछै अवसर बीते ॥

सोचि समझि के कीजै कारज जग स्वारथ को चेरौ।
सधे लोक-परलोक याहि सो सत्य सिखावन मेरौ ॥

—अप्रैल, १९१६

1. हँसि मुसकानि।

[४३]

बिरथा जन्म गमायौ अरे मन

रच्यौ प्रपच उदर-पोषण को राम कौ नाम न गायौ।
तरुनिन तरल त्रिवलि को लखि के हाय फिरचौ भरमायौ॥
रहचौ अचेत चेत नहिं कीन्हो सगरौ समय वितायौ।
माया जाल फँस्यौ हा अपुते उरझि भलौ बौगायौ॥
पर तिय को हिय देत न हिचकत नैक नही सरमायौ।
भगवा भेष धरचौ ऊपर ते नाहक मूड मुटायौ॥
जन-मन-रजन भव-भय-भजन अस प्रभु को विसरायौ।
नित प्रति रहन पाप मे रत तू कवहुँ न पुण्य कमायौ॥
मगलमय को नाम तज्यौ तू विषयन सो लिपटायौ।
सत्यनारायन हरिपद पकज भजौ होय मन भायौ॥

—२५-५-१९०३

[४४]

दुआ

यह पागल होना तो हम को मुवारिक हो मुवारिक हो
सभी जग धन्ध से छूटना मुवारिक हो मुवारिक हो
जो कोई जानना चाहै कि दुनिया का रहस क्या है
इक पागलपन समा जाना मुवारिक हो मुवारिक हो
सभी मिथ्या सभी मिथ्या यह जीवन मरण भी मिथ्या
अव प्रेम पूरण हो चुके मुवारिक हो मुवारिक हो
पागल होने को ऋषि मुनि भटकते फिरते जगल मे
पागलपन समझ जाना मुवारिक हो मुवारिक हो
असल को पा लिया जिसने उसी का नाम पागल है
पागलपन का गले पडना मुवारिक हो मुवारिक हो
सतदेव होना चाहता पगलो का वादशाह
हमारी यह दुआ हमको मुवारिक हो मुवारिक हो।

[४५]

माता-विलाप

तेरे बिना मातु को मेरी काजर आँख लगै है।
हाथ पाँव करि ऊजर माता को मुख मोर धुवै है॥

भाँति-भाँति के वस्त्र हाथ गहि को मोको पहरै है।
बडी फिकर करिकै को माता भोजन मोहि करै है॥
हाय मात निज वत्सहि तजिके कितको जाय सिधारी।
बिना लखे तुमरै जल बरसै नयनन ते अति भारी॥
जो मै जानतु ऐसी माता सेवा करत बनाई।
हाय हाय कहा करूँ मात तुव टहल नही कर पाई॥

[४६]

चाहै चवाब चहूँधा करौ सतिदेव जू जोरि कहौ किन कासो ?
काहू की ह्वाँपै चलै न सखी नहिं जानत रीझत कौन अदा सो।
राधा विसाखा रही इक ओर जू लेहु लगाय सबै ललिता सो।
जोवन जोर मरोर मे आयके कूबरी हू नहिं ऊबरी जा सो।
खन्दक खाई लखै जू अगार जू नैक जुबान सम्हारिके बोलौ।
सत्यजू खूब फिरौ निमटै संग बाँधि कै ग्वालन को यह टोलौ।
वाह ! अबीर सो आँखिन फोरत ! खेलनौ हो रग गाँठि को घोलौ।
जीजा की सोह परे सरकौ तुम और ही मीजा टटोरत डोलौ॥

[४७]

आई तव पाती।
नहिं विसरायौ अजहुँ मोहि यह जानि सिरानी छाती॥
बडे भाग जो इतने दिन मे सोचि कछू सुधि लीनी।
दरस-पिपासाकुल को आधी-जीवन-आशा दीनी॥
जो मो सो हँसि मिलै होत मै तासु निरन्तर चेरौ।
बस गुन ही गुन निरखत तिह मधि सरल प्रकृति को प्रेरौ॥
यह स्वभाव कौ रोग जानिये मेरो बस कछु नाही।
नित नव विकल रहत याही सो सहृदय बिछुरन माही॥
सदा दारु-योषित सम बेबस आज्ञा मुदित प्रमानै।
कोरो सत्य ग्राम को बासी कहा 'तकल्लुफ' जानै॥

श्री भवभूति कृत

उत्तर रामचरित नाटक

॥ श्री हरि ॥

भूमिका

कविवर भवभूति

> भवभूते सम्बन्धाद् भूधर भूरेव भारती भाति ।
> एतत्कृत कारुण्ये किमिन्यथा रोदिति ग्रावा ॥१॥
>
> (आर्या सप्तशती)

महाकवि कालिदास की भाति भवभूति का भी नाम, भारतवर्ष मे ही नही समस्त भूमडल के विद्वानो मे प्रसिद्ध है । इनके लेख प्रकृति और मानवी प्रकृति के सच्चे निरीक्षण तथा असामान्य ओजपूर्ण वर्णनात्मक चित्रण से परिपूर्ण है । कालिदास के समान इनका वश-परिचय असभव नही है, इनके जीवनकाल की बहुत-सी बातो का यद्यपि पता नही लगता तथापि अपने कुल-वृत्तात का भावी लोगो को पता देने का उन्होने उपाय कर दिया है ।

वंश तथा जन्मस्थान का परिचय

स्वरचित नाटको की प्रस्तावनाओ मे सूत्रधार के मुख से उन्होने जो अपने जन्मस्थान तथा वंश का परिचय दिया है, उसके सिवाय उनके विषय मे अधिक जानने का और कुछ उपाय नही है । आपने महावीरचरित नाटक के प्रारंभ मे अपना परिचय इस प्रकार दिया है, 'दक्षिण की ओर (विदर्भ देशान्तरगत) पद्मपुर नामक नगर मे कृष्ण यजुर्वेदी तैत्तरीय शाखा के काश्यपगोत्रीय, पक्ति पावन पचाग्नि पूजक, सोमरस पान करने वाले उडंबर नामधारी ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण रहा करते थे । उनके वश मे महाकवि नामक एक महानुभाव ने वाजपेय यज्ञ का अनुष्ठान किया था, इसी कुल मे गोपालभट्ट ने जन्म ग्रहण किया और उनके पवित्र कीर्ति नीलकठ हुए । यही नीलकठ श्रीकठ पद सपन्न कवि

भवभूति के पिता थे। इनकी माता का नाम जातुकर्णी तथा गुरु का नाम ज्ञाननिधि था।"

उक्त लेख से ज्ञात होता है कि भवभूति कही वरार के आस-पास के रहने वाले थे। दडकारण्य तथा गोदावरी नदी के मनोहर मनोज्ञ वर्णन से इस मत की भलीभाति पुष्टि होती है।

समय

यह किस समय हुए इसका जानना कठिन है। क्योकि अपने नाटको मे इन्होने कही तिथि-सवत् आदि नही दिया है और न इनकी जन्म-तिथि आदि का कुछ पता है। उसका पता केवल अनुमान से चल सकता है।

(१) सस्कृत के पडितो मे एक दत-कथा प्राचीन काल से प्रसिद्ध है कि जब भवभूति ने अपना 'उत्तर रामचरित' नाटक कालिदास को सुनाया तो सुनकर वह अत्यत विस्मित हुए और आनदमग्न हो उसे माथे पर रख धन्य-धन्य कहने लगे। उन्होने केवल प्रथम अक के २७वे श्लोक के अतिम चरण 'अविदितगत-यामा रात्रिरेवं व्यरसीत्' मे भवभूति को सूचित किया कि 'एव' पद के स्थान मे 'एव' प्रयुक्त किया जाय तो अर्थ विशेष शोभाप्रद होगा। सुना जाता है कि उन्होने इसे स्वीकार किया और अब तक उक्त श्लोक मे वही पाठ चला आता है। इस मनोरजक कथा मे कोई बात असभव नही जान पडती क्योकि इस नाटक की योग्यता ऐसी ही है कि 'शकुतला' नाटक लिखने वाला भी उसे शिरोधार्य करे। साथ ही कालिदास की विशाल बुद्धि तथा निरभिमानता का भी अच्छा परिचय मिलता है।[१]

इस किवदती के अनुसार बहुतेरे लोग भवभूति को कालिदास का सम-कालीन मानते है। किंतु इसके विरुद्ध प्रचुर प्रमाण है।

प्रथम तो कालिदास की कीर्ति प्राचीन काल से ही आबाल-वृद्धो को विदित है परतु भवभूति को केवल पडित लोग ही जानते है। यदि वह कालिदास के समय मे हुए होते तो जिन लोगो ने 'शकुतला' तथा 'विक्रमोर्वशी' की प्रशसा की है उन लोगो ने 'उत्तर रामचरित' और 'मालतीमाधव' की भी प्रशसा की होती।

द्वितीय, कालिदास के समय की सरल स्वाभाविक रचना शैली से भवभूति का रचनाक्रम बहुत ही भिन्न है।

तृतीय, भवभूति के नाटको मे कालिदास के ग्रथो को अनुलक्षित कर लिखे हुए कुछ स्थल भी पाए जाते है।

१ चिपलूणकर।

(२) 'राजतरंगणी' के मतानुसार भवभूति का सबंध कन्नौज के महाराज यशोवर्मा के दरबार के साथ था, जो उस समय भारतवर्ष मे विद्या का केद्र-स्थल था। यहा भवभूति ने निस्सदेह काव्य और नाटक के नियम सीखे जिनके कारण उनकी बुद्धि का प्रकाश और भी विशद रूप से हुआ। किंतु उनके भाग्य मे कन्नौज रहना नही था, क्योकि यशोवर्मा को कश्मीर के प्रतापी राजा ललितादित्य ने पराजित किया और उसके साथ उन्हे कश्मीर जाना पडा।

> कविर्वाकपतिराजश्रीर्भवभूत्यादिसेवित:
> जितोययौ यशोवर्मा तद्‌गुण स्तुतिवन्दिताम्।
>
> —राज० ४, ११५

इस श्लोक मे ललितादित्य के प्रताप का वर्णन किया गया है और वाक्‌पति का भी नाम आता है जो भवभूति के साथ ही साथ कन्नौज दरबार की शोभा बढाते थे। इन्होने निज रचित 'गोडवहो' नामक प्राकृत भाषा के ग्रंथ मे भवभूति का नाम दिया है।

> (प्राकृत) भवभूइ जलहि निग्गय कव्वा मय रस कणा इव फुरन्दि।
> जस्स विसेसा अज्जवि वियडेसु कहा पवन्धेसु ॥[1]

जनरल कनिंघम के मतानुसार ललितादित्य का राजत्व काल सन् ६९३ से ७२९ पर्यंत है। इसी प्रमाण से डॉक्टर भण्डारकर प्रभृति इनके होने का समय सातवी शताब्दी के अत तथा आठवी शताब्दी के आदि मे ठहराते है।

(३) श्रीहर्षचरित की प्रस्तावना के आदि के श्लोक मे उसके रचयिता बाण कवि ने (जिसका समय सातवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे होना तय है) अपने से पूर्व अन्य कवियो का तो वर्णन किया है किंतु भवभूति के विषय मे कुछ भी नही लिखा है।

(४) भवभूति की भाषा-शैली से उनका आठवी शताब्दी मे होना पुष्ट होता है क्योकि बाण श्री हर्षादि तदनतर के कवियो ने लबे-लबे समासो की कृत्रिम रचना-प्रणाली जो धीरे-धीरे प्रचलित की वही उनके नाटको मे जहा-तहा परिलक्षित होती है। इसलिए शैली-क्रम के अनुसार भवभूति को कवि सुबंधु, दण्डी, बाण की श्रेणी मे परिगणित करना तथा उसी समय के आस-पास उसके प्रादुर्भाव को मानना अधिक युक्तिसगत जान पडता है। इन सब बातो से अनुमान किया जा सकता है कि कालिदास के पीछे ही भवभूति हुए

1 (सस्कृत) भवभूति जलधिनिर्गत काव्यामृत रस कणा इव स्फुरन्ति।
यस्य विशेषा अद्यापि विकटेषु कथा प्रवन्धेषु॥

होगे क्योंकि जब उस कवि केशरी की गर्जना शेष हो जाने पर चारो ओर सन्नाटा छा गया और लोगो को जान पडने लगा कि अब पुन: वैसी गर्जना का होना कठिन है तब पहली गर्जना का स्मरण दिलाने वाले, बल्कि उससे भी कही प्रचड दूसरे की गभीर गर्जना कर्ण-कुहर मे प्रविष्ट होने लगी। यह बात वास्तव मे अधिक चमत्कारपूर्ण मालूम पडती है।

भवभूति

कवि के हृदय की परीक्षा तत्प्रणीत ग्रथो तथा तदधिकृत विपयो से ही हुआ करती है। कविहृदय-निर्गत-भाव-मालिका का आस्वादन करने के पूर्व उसके विषय मे परिज्ञान प्राप्त करना परमावश्यक है।

(१) आत्मश्लाघा 'उत्तर रामचरित' नाटक मे पहले ही आत्मश्लाघा मिलती है—

"वचन के बस जासु सरस्वती, करति काज मनौ निज भामिनी।"
(अ० १ श्लो० २)

आपने अपने कुल का परिचय सूत्रधार के मुख मे दिलाते हुए अपने पद-वाक्य प्रमाणज्ञ होने की प्रशसा कराई है। इस प्रकार का परिचय उसे उक्त दोष से दूपित करना है किंतु तनिक विचाराश करने पर ज्ञात हो जाएगा कि यह विचार सर्वथा सही नही है। यह माना कि अपने मुह अपनी प्रशसा करना उचित नही है, तथापि ससार के बडे-बडे ग्रथकारो ने जो अपना-अपना जीवन-चरित्र स्वय लिखा है उसके लिए उन्हे कोई दोप नही देता बल्कि वे जीवन-वृत्तात होने के कारण बडे आदर की वस्तु समझे जाते हैं, तथा उन्हे लोग बडे चाव से पढते है। जिस प्रकार समर भूमि मे महान वीरो की वीरोक्तियो से आत्मश्लाघा सयुक्त होने पर भी सुनने वालो का जी उकताता नही है किंतु वे उसे बडे उत्साह के साथ श्रवण करते हैं, ठीक उसी भाति रसिकजन भी जगत पूज्य कवीश्वरो की आत्म-दर्पोक्ति पर बहुत ही रीझते है। वे उन्हे बार-बार पढते है कभी तृप्त नही होते, जब-जब उन्हे पढते है तब-तब अधिकाधिक तन्मय होते जाते है।

इसके सिवा दूसरी बात यह है कि जिस किसी को गुणवान गुणग्राहको द्वारा पहले ही आदर-सम्मान प्राप्त हो चुका है तब उसे आत्मश्लाघा के आश्रय की आवश्यकता नही रहती। गुणी लोग सत्परीक्षको की प्रशसा से सतुष्ट हो अपने परिश्रम को सफल मान स्वस्थ रहते हैं, पर जब ऐसा नही होता, अर्थात् गुण की प्रतिष्ठा नही होती, इसके विपरीत उसका उपहास और अपमान होता है, "नैसर्गिकी सुरभिण कुसुमस्य सिद्धा मुर्द्धिस्थितिर्नचरणौ रवताऽनानि" वाले

नियम को भूल कर जब लोग किसी प्रचंड ग्रथकार की अवज्ञा किया चाहते है तब उस स्वापमान की घोर यंत्रणा से व्याकुल होकर उसे अपनी योग्यता प्रदर्शित करने के लिए आत्म-प्रशसा के अतिरिक्त उसे उपायातर ही उपलब्ध नही होता । भवभूति की भी यही दशा हुई होगी । आत्म-कवित्व का उन्हे बडा दृढ विश्वास था । उनका यह सुदृढ निश्चय निंदको की अवज्ञा या अपने ग्रंथो की यथेष्ट ख्याति न होने से अथवा इस भय से कि कदाचित् वे नष्ट हो जाए, किंचित भी न हटा । अपने समय मे लोगो की निंदा से हतोत्साह न हो उसने काल पर ही भरोसा रखा और "भविष्य मे सत्कृति अभिनंदित होगी" यह भविष्य कथन किया (चिप०), इसके प्रत्यक्ष प्रमाण के रूप मे उन्ही का बनाया एक श्लोक उद्धृत किया जाताहै

ये नाम के चिदिह न. प्रथयन्त्यवज्ञा ।
जानन्तुते किमपितान् प्रति नेषयत्न ।
उत्पत्स्यतेऽस्नि ममकोऽपि समान धर्मा ।
कालोह्यय निरवधिर्विपुलाच पृथ्वी ।। (मा० मा०)

अस्तु, इससे यही प्रतिपादित हुआ कि महान् ग्रथकारों के आत्म-विपयक लेख दूषणार्ह नही है किंतु वे परमोपयोगी है । इसे आमश्लाघा न कहकर आत्मगौरव कहना अधिक उचित मालूम होता है क्योकि आत्मयोग्यता के ज्ञान पर ही इसकी निर्भरता है ।

(२) **कर्त्तव्यपरायणता** इस सद्गुण का इनमे इतना प्राचुर्य है कि उसे पूर्ण करने की धुन के आगे यह लोगो के कहने-सुनने का कुछ भी विचार नही करते । समालोचको के प्रचड-वचन-बाणावली से इनका आत्मशासन यत्किंचित डगमगाता भी नही । अदम्य उत्साह के साथ नि स्वार्थ भाव से सत्कर्त्तव्य क्षेत्र मे निर्भय अग्रसर होना ही उनका एकमात्र जीवनोद्देश है । आपके सूत्रधार ने कहा भी है ·

चूक चाकरी मे कबहुँ करनी चाहिए नाँहि
सब प्रकार निरदोस कहु को पदार्थ जग माँहि ।
कुटिल मनुज सो रहि सकत भला कौन निस्सक
सद्वनिता कवितान मे तो नित लखत कलक । (१-५)

प्रधान नायक मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र को कवि ने नि:स्वार्थ कर्त्तव्य-परायणता की कैसी सजीव मूर्ति बनाकर दिखलाया है, यह उसके पठन-पाठन से ही विदित हो सकेगा ।

(३) **हृदय की कोमलता :** कर्त्तव्य-पालन के साथ-साथ उनके हृदय मे

कोमलता का विकास भी भलीभाति परिलक्षित होता है। किसी का दु.ख देखा नही कि इनका मन द्रवीभूत हुआ। जनक के मिलने पर जब कौशल्या चेतनारहित हो गई है उस समय कवि से नही रहा गया और अरुधती के मुख से कहलवा ही दिया "पुरध्रीणा चेत कुसुम सुकुमार हि भवति"। कई स्थलो पर रामचन्द्र के कोमल हृदय का चित्र खीचकर इन्होने मृदुल स्वभाव का परिचय दिया है।

(४) **सुहृदता :** चाहे कुछ भी उपकार न करे किंतु ये अपने सुहृद को अलौकिक वस्तु समझते है, गद्गद भाव पूरित आपका कथन है। आपने अं० १, श्लोक ३९ मे प्रेम की परिभाषा लिखी है जो बडी ही उच्चकोटि की है। सच्चा प्रेमी हुए विना इस प्रकार प्रेम का वर्णन करना सहज सामान्य कार्य नही है।

आपका प्रबल सिद्धात है कि

सहज नेह रस धाम, जापै बस कोउ न चलत।
नित बखिया कौ काम, अन्त सपट पै चट करै॥

(अं० ५, श्लो० १७)

(५) **सहृदयता** कवि का प्रधान गुण सहृदयता है। हृदय की शृगार, वीर, करुणादि जो भिन्न-भिन्न वृत्तिया हैं वे उसे अत्यत सूक्ष्म एव स्पष्ट रूप से अनुभूत होनी चाहिए। उक्त भिन्न-भिन्न वृत्तियो का विषय इद्रियगोचर होते ही कवि का मन क्षुब्ध हो जाता है और उस क्षुब्धता के आवेग मे उसके मुख से जो बाते निकलती है वही यथार्थ कविता है। तात्पर्य यह कि कवि का हृदय ऐसा होना चाहिए जिसमे भिन्न-भिन्न मनोवृत्तिया पूर्ण रूप से प्रतिबिंबित हो जाए। यह नियम भवभूति की कविता मे सर्वत्र चरितार्थ हो रहा है, उनका मन अत्यत निर्मल एव प्रेमी है, वैसे ही स्वभाव नितात सरल अथवा गभीर होने के कारण जिस प्रसग का श्लोक देखिए मानो वह रस उससे टपका पडता है। इससे विशेष परिचय प्राप्त करने के लिए 'उत्तर रामचरित' नाटक मे राम-वासंती सवाद, लव-चद्रकेतु वार्तालाप तथा राम-लव-कुश सम्मेलन आदि का वर्णन पढना उचित प्रतीत होता है।

(६) **मन की शुद्धता** बहुतेरे यूरोपियन विद्वान् सस्कृत कविता पर यह दोष लगाते हैं कि उसमे शृगार का उद्भव शुद्ध प्रेम रस से किया हुआ नही पाया जाता, किंतु बहुताश मे वह काम-वासना ही से प्रकट हुआ पाया जाता है। यह कथन हठवादियो के मतानुसार किसी अश मे ठीक भी है। क्योकि प्राचीन कविगण स्वानुभूत बातो तथा मनोवृत्तियो का वर्णन किया करते थे पर क्रमशः जब कीर्ति व धन के लोभ से काव्य रचने की प्रथा चली और कविता बनाना

एक नियत व्यवसाय हो गया, तब से कवियो को स्वानुभव की कोई आवश्यकता नही रही। अपने आश्रयदाता भूपाल की रुचि के अनुसार उनकी काव्य-कला नर्तकी की भाति नाचने लगी। इस प्रकार सस्कृत कविता का आद्यशुद्ध स्वरूप जब से भ्रष्ट होने लगा तब उस समय के बहुत से काव्य और अब इधर जिनकी प्रवृत्ति विशेप रूप से पाई गई वे बीभत्स भाणादि (नाटक का भेद) अलबत्ते उक्त दोष से दूषित हो सकते है। यदि यही एक बात होती कि उक्त दोष सिर्फ सस्कृत कविता ही मे पाया जाता है तब भी कुछ कहना न था पर क्या उक्त दोष ग्रीक और रोमन (लोगो की) कविता मे नही पाया जाता ? अथवा इतनी दूर जाने की भी आवश्यकता नही है। क्या कोई कह सकता है कि अग्रेजी भाषा का रस-सर्वस्व जिसमे एकत्रित किया गया है उस शेक्सपियर का कविता-कलाप उक्त दोष से सर्वथा मुक्त है ? यदि यह बात सही है, तो कुटुब के लोगो के, अर्थात् पुरुष-स्त्री-लडके आदि सबके एकत्र पढने योग्य उस कवि की सक्षिप्त आवृत्ति अलग-अलग क्यो निकलती है !

जो लोग पूर्व देशीय भाषाओ के काव्य तथा निर्बंध रहित श्रृगार वर्णन का परस्पर नित्य सबध मानते है उन्हे उचित है कि वे भवभूति के नाटको की पर्यालोचना करें।

ठकुर सुहाती न कहने के कारण अथवा वैसा करने को नीचता और अधमता समझने के कारण भवभूति लक्ष्मी के कृपापात्र न बन सके। किंतु उनके गभीर एव उदार मन को राजाश्रित हो विभावानुभव करने की अपेक्षा दरिद्रावस्था ही मे स्वतत्र रहकर अपनी वाग्देवी को निष्कलक रखना अधिकतर अभीष्ट होगा ऐसा बोध होता है।[1] किसी राजदरबार से उनका यथावत् सपर्क न रहने के कारण उनके मन की आद्यावस्था मे कदापि अतर नही पडा और हम समझते है यही कारण है कि उनके श्रृगार-वर्णन मे ऐसी अपूर्व कोमलता, प्रौढता तथा शुद्धता दृष्टिगोचर होती है।

(७) **विद्वत्ता** · अपने समय के बडे-बडे पडितो मे उनकी धाक जमी हुई हुई थी। पदवाक्यप्रमाणज्ञ-श्रीकठपदलाछनादि उपाधियो से तत्कालीन विद्वत्मंडली द्वारा उनका मान किया गया था। उनकी रचना से भली भाति प्रकट होता है कि वे व्याकरण, न्याय मीमासा आदि षट् दर्शनो के अच्छे ज्ञाता थे। इस नाटक मे स्थल-स्थल पर विवर्तवाद उनके वेदात शास्त्र के ज्ञान का प्रत्यक्ष प्रणाण है। वैराज असूर्य लोको के वर्णन से उपनिपदो पर उनका अधिकार विदित होता है, इसमे सदेह नही कि भवभूति अपने समय के असाधारण प्रतिभाशाली विद्वान् हो गए है और इसी कारण सस्कृत साहित्य मे वे महा-

१ क्या इसका भी असर उनकी प्रसिद्धि पर न पडा होगा ?

कवियो मे परिगणित किए जाते हैं। इनकी विलक्षण शैली से ही इनका विद्याभिमान टपका पडता है। अक ३, श्लोक १६ मे वर्णित कुश की वीरता के अनुसार शब्दो का बहाव भी बहुत ही अनुकूल है और उक्त श्लोक भवभूति की विद्या गर्वित पदरचना का एक उदाहरण मात्र है।

(८) **सामाजिक विचार** और जैसे हिंदी आचार्यो की भाति इनका हृदय सकीर्ण नही था। इनके ग्रथो के पठन-पाठन से ही इनके उच्च उदार भावो का पता लगता है। जहा हिंदू समाज के विश्वासानुसार स्त्री और शूद्र को पढना ही नही चाहिए, वहां इनके नाटको मे सब स्त्रिया पढी हुई मिलेंगी और शूद्र भी ऐसा ज्ञानवान निकलेगा जिसका विनम्र वाक्य "सत्सगजानि-निधनान्यपि तारयन्ति" स्वर्णाक्षरो मे लिखने योग्य है। इस नाटक मे स्त्री जाति के भिन्न भिन्न रूपो का बडी उत्तमता से वर्णन किया गया है। कही पुत्री जानकी पिता जनक के चले जाने से शोकाकुल है, कही प्राणेश्वरी सीता का अनुपम चित्र खीचा जा रहा है कही ब्रह्मचारिणी आत्रेयी वाल्मीकि के आश्रम से वेदाध्ययन के लिए अगस्त्याश्रम को आ रही हैं, कही कौशल्या माता सास और ममधिन बनकर आती है और भगवती-अरुधती विदुषी और तपस्विनी के नाम को पूर्णतया चरितार्थ कर रही है। इसके पढने से ठीक ज्ञात हो जाएगा कि भवभूति स्त्रियों को कितनी प्रतिष्ठा की दृष्टि मे देखते हैं। उनके विचार मे स्त्रिया न केवल प्रेम की प्रतिमा और सुख की मूर्ति हैं, वरन् वे आदर की वस्तु और पूजन के योग्य हैं।

राजर्षि जनक के मुख से अरुधती का अभिवादन करते हुए कवि ने उप-रोक्त विचार की पुष्टि की हे (अक ४, श्लो० १०)। इनके विचार मे चाहे स्त्री हो चाहे शूद्र, बालक हो चाहे बूढा, यदि वह गुणी है तो उसका गुण सर्वथा आदरणीय है। "केवल गुनी को गुन पुजत, नहिं रूप अरु नहिं बैस है" (अंक ४, श्लोक ११)। इनके ग्रथो से विदित होता है कि जब तक स्त्री-शिक्षा पाप नही मानी गई थी और न पर्दे का प्रचार था, आजकल की कपट मिश्रित चुना-चुनी के ढग की मेहमानदारी न होते हुए भी लोगो का जीवन पवित्र था। ऐसे ही स्वभाव के कारण उन विविध लोकोत्तर चरितातिशय आकारानुभव गाभीर्य्य सभाव्यमान आर्य महापुरुषो को देखते ही लव जैसा उद्दड वीर बालक मत्रमुग्ध-सा हो गया था। कही जनक को सीता निर्वासन पर क्रोध आ भी गया तो वह दूध के झाग की तरह शीघ्र ठडा हो गया। इस नाटक मे बालक भी आजकल जैसे दुर्बोध, लज्जाशील व डरपोक नही हैं, वे भी दर्प एव सौजन्य का यथोचित वर्ताव करना जानते है। आत्मगौरव की यथोचित शिक्षा करना ही उनका मुख्य उद्देश्य है।'

लव और चद्रकेतु के मिलने का बहुत अच्छा वर्णन किया गया है। यह

दोनो वीर युवा हैं जिनमे युद्ध का उत्साह भरा है परंतु वे एक-दूसरे के साथ वीरोचित सुशीलता और सम्मान दिखलाते है। यह ध्यान रहे कि नाटक यूरोप मे वीरता की उन्नति (Chivalry) होने के कई शताब्दी पहले लिखा गया था।

भवभूति की सच्चे ब्राह्मणो मे बडी श्रद्धा थी, उनका विश्वास था कि—

ब्रह्मज्योति को तत्त्व जिन, प्रकट कियो अभिराम।
तिन विप्रन के वचन मे, नहिं संशय को काम॥
श्री जिन बानी माहिं वसति सदा मंगल करनि।
निहचै करि सो नाहिं, मृषा सवद एकहु कहत॥ (४-१८)

भवभूति ढोग रचने वाले लफगे बाबाजियो को भी खूब जानते थे, और प्राचीन ऋषि-मुनियो को उनसे अलग समझते थे। यदि समाज मे कोई कुरीति प्रचलित है तो भवभूति उसे छिपाना अच्छा नही समझते थे। शास्त्रानुसार मास खाना चाहिए या नही, इसी कथा को इस नाटक के चतुर्थ अक के विष्कम्भक मे दो चेलो मे वाद-विवाद कराकर दिखाया गया है। सौधातकि के मुह से मासाहारियो को व्याघ्र या भेडिया तक कहलवाया है। भाडायन समास मधुपर्क का विधान वेदो तथा धर्म-सूत्रो मे बतलाता है और उनका प्रमाण भी देता है। बहुतो के मतानुसार इस जगह भवभूति ने जिन शब्दो का प्रयोग किया है (जैसे महोक्ष, महाज) उनके बहुधा कई-कई अर्थ किए जाते है। कुछ भी हो, उक्त वाद-विवाद तथा मतभेद आजकल की घास पार्टी तथा मास पार्टी वालो से खूब मिलता है।

(९) **राजनीतिक विचार :** अनादि काल से राजसत्ताधिकार रहने के कारण भारतवर्ष इस प्रकार की शासन-प्रणाली का अभ्यस्त हो गया है। यहां के लोगो के चित्त मे, राजा ईश्वर के अवतार के तुल्य बैठा हुआ है। ऐसे देश, काल तथा भावो की ऐसी स्थिति मे उत्पन्न होते हुए भी भवभूति प्रजातान्त्रिक विचारो के विदित होते है। जिस प्रकार ग्रीस के प्राचीन प्रारभिक इतिहास मे वहा के देशभक्तो की सपूर्ण चेष्टा प्रजा-हित-कामना मे सफल प्रयत्न होने की रहा करती थी, ठीक उसी प्रकार के, नही उनसे भी कही उच्चतर-उदार भावो का विकास भवभूति ने अपने पात्रो से मनसा वाचा कर्मणा एव सपूर्ण रूपेण कराया है। केवल रामचन्द्र जी ही प्रजा को सतुष्ट करने की चेष्टा मे अपना सर्वस्व न्योछावर करने को उद्यत नही है (अक १-१२) वरन् जिनके बुद्धिबल से राजकाज चलता था और जिनको किसी प्रकार के स्वार्थ साधने की कामना नही थी उन्ही रघुकुल के आचार्य कुलगुरु वशिष्ठ की राम के लिए आज्ञा थी कि—

तुव धर्म नित्य प्रजानुरंजन निज प्रमाद विहाय।
तज्जनित यश धन प्रचुर ही रघुवश की प्रभुताय ॥ (१-११)

इनकी आज्ञा का श्रीरामचन्द्र जी ने अक्षर-अक्षर पालन किया है। इसमे सदेह नही कि आधुनिक सामाजिक समालोचको की दृष्टि मे राम का सीता-निर्वासन कार्य अमानुषिक प्रतीत होता है किंतु प्रजानुरजन कर्त्तव्यकर्म की प्रधानता को जिसका उल्लेख कवि ने राम के मुख से कराया है यदि निरपेक्ष भाव से विचारा जाए तो रामक्षतव्य है। लोकमत का उल्लघन करने का सकल्प राम को स्वप्न मे भी नही होता, राम जानते है कि राजापचार प्रबल होता है तभी प्रजा कातर कठ से अपनी सच्ची सम्मति का उद्गार उगलती है। पीडित प्रजा का उस नि स्वार्थ सम्मति के अनुसार कार्य करना राजा का प्रधान कर्त्तव्य है।

जासु राजप्रिय प्रजा दुखारी।
सो नृप अवसि नरक अधिकारी॥ (तुलसीदास)

राजनीतिक विचारो मे ऐसे धार्मिक विचारो को नियोजित करना युक्ति-युक्त है या नही इसके निराकरण कार्य से इस विषय का विशेष सबध नही है, किंतु इतना अवश्य कहना पडता है कि उस समय के राजाओ की शासन-प्रणाली उक्त प्रकार के गुण या दोष से (आजकल के समालोचको की समझ मे जो कुछ हो) अवश्य प्रयुक्त रहती थी। ऐसा सस्कार उनके हृदय मे वश-परपरा से ही अकुरित होता रहता था। उस समय की शिक्षा-शैली ऐसा ही उपदेश देती थी।

जो लोग सती सीता के दु ख से कातर होकर राम पर यह दोष लगाते है कि राम मे मानसिक, नैतिक बल नही था क्योकि उन्होने छोटी-छोटी बातो मे प्रजा को सतुष्ट और प्रसन्न करने के लिए इतनी उग्र उत्कंठा प्रकट की थी, ऐसा समझने वाले अपनी अनुदार आलोचना से मर्यादा पुरुषोत्तम राम के अनुपम आत्म-त्याग-सौदर्य को नष्ट-भ्रष्ट करने का प्रयत्न करते है। राम स्वयं जानते थे कि सीता निर्दोष है, और उन्होने उस निरपराधिनी को देश निकाला देकर घोर घृणित कार्य किया है। उनके ही विलाप से यह सब विदित होता है। और वह आत्मग्लानि के अंतरानल से कितना कुढते थे यह पद-पद पर प्रकट होता है। उन्होने सीता-निर्वासन जनित पाप का प्रायश्चित्त अपने विलापो से किया है। कवि ने तमसा के मुख से ठीक कहलाया है·

उपट पूर्ण तडाग जबै भरे, जल निकासन तासु प्रतिक्रिया।
विपुल शोकदशा मधिहू तथा, रुदन धीरज को सदुपाय है॥[1] (३-२६)

१. Give sorrow words the grief that does not spear, whispers the over fraught heart and bids it break. (Shakespeare)

अस्तु, जब हम नृप-कर्त्तव्य-पालन-कसौटी पर राम के सीता-निर्वासन-कार्य की परीक्षा करते है तो उनके अद्भुत आत्मत्याग और अनुपम धीर-गंभीर उदार भाव के अनंत पारावार मे उक्त भ्रमात्मक कलंककालिमा अनंत बार धुल जाती है।

एक बात और भी ध्यान देने योग्य है, वह यह कि प्रजानुरंजन कार्यो से राम को जी भरकर रोने का भी तो अवकाश न मिला। चाहे कैसा ही घोर शोक का समय हो राम ने कर्त्तव्य-पालन को ही प्राधान्य दिया है। जब उन्होने सुना कि यमुना तट पर तप करने वाले तपस्वियो को लवणासुर ने सताया है तो राम सब रोना-धोना भूल गए और उस असुर के वध का प्रबंध करने मे जा लगे। फिर एक ब्राह्मण ने एक मरा लडका राजद्वार पर पटककर ज्यो ही दुहाई मचाई और आकाशवाणी हुई, उसी समय राम अपने शोक को भूलकर शंबूक को मारने के लिए प्रस्थान कर गए। इन बातो से भली भाति प्रकट है कि प्रजा हित के लिए राम अपने सुख-दु.ख की कुछ भी परवाह न करते थे। राम का करुण-क्रदन-कलाप इस बात का साक्षी है कि सीता को निकालने मे राम की कितनी प्रवृत्ति थी, किस धर्म-सकट मे फसकर राम से यह काम बन पडा था। आधुनिक सामाजिक सुधारो के शुष्क वाद-विवाद तथा व्यर्थ तर्क-वितर्क मे पडकर देश-काल की परिवर्तित दशा को प्राचीन पूर्व स्थिति मे ठेलकर, छिद्रान्वेषण करना अपने प्रधान लक्ष्य से भटक जाना है। भवभूति के राम ने अपने जीवन मे 'बज्रादपि कठोराणि मृदुनि कुसुमादपि' को चरितार्थ किया है। कवि कल्पित उनका चित्र स्वाभाविक है। राम वीर है, पराक्रमी है, प्रजापालक है लेकिन सबसे पहले आदर्श पुरुष है। धीरोदात्त[1] नायक के सपूर्ण लक्षणो ने उनमे आश्रम पाया है। नेता[2] के सब गुण रामचन्द्र जी मे विद्यमान है और इन्ही आदर्शो को सामने रखकर भवभूति ने राम का चरित्र-चित्रण किया है। तथापि भवभूति वासती के मुख से सीता-निर्वासन के लिए राम पर कटु तथा नम्र सकेतो की विकट बौछार करता है। यह सब कुछ करते हुए भी बेचारे भवभूति अपना कवि-कर्त्तव्य पालन करने मे कहा तक सफल हुए है इसका निर्णय केवल विज्ञ पाठको पर ही छोडा जाता है।

(१०) **प्रकृति वर्णन** जिन किन्ही वस्तुओ का वर्णन करना हो उनका साक्षात् अनुभव कवि के लिए अत्यावश्यक है। पहले तो बडे-बडे कवियो मे भी प्राय· यह सामर्थ्य नही पाई जाती कि उनके वर्णन यथार्थ बन सके अर्थात् उन

१ महा सत्वोति गम्भीर क्षमावानविकत्थन । स्थिरो निगूढाऽहकारो धीरोदात्तो दृढव्रत. ।

२ नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षप्रियम्वद· । रक्तलोक शुचिर्वाग्मी रूढवश· स्थिरो युग ।
विद्युत्साह स्मृति प्रज्ञा कलामान समन्वित । शूरो दृढश्च शास्त्रचक्षुश्च धार्मिक ।

पदार्थो के साक्षात्कार से जो कल्पना मन मे आती है वह केवल वर्णन पढने से मन मे कदापि आविर्भूत नहीं होती । जब इन वर्णनो की ही ऐसी दशा है तो इनकी प्रतिकृति मे यथार्थता और रस कहा तक रह सकते है, इसका विचार पाठक स्वय कर सकते हैं (इस प्रकार की त्रुटि से भवभूति के नाटक बहुताश मे दूषित नही है । केवल इनका ही सृष्टि-विभव-वर्णन आधुनिक अग्रेज कवियो की सजावट के ढग पर है) इसका यह अभिप्राय कदापि नही है कि सस्कृत के और कवियो ने सृष्टि पदार्थो का वर्णन लिखा ही नही, किंतु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उन कवियो का ढग निराला है । उनके वर्णन मे अत्यत प्रसिद्ध एव निश्चित बाते कभी छूट ही नही सकती । जिन्हे पढकर यह शका स्वभावत उत्पन्न होती है कि उनमे से बहुतेरो ने अपने वर्णित प्रकृति-दृश्यो का स्वय अनुभव कदापि नही किया परतु प्राचीन ग्रंथो को पढकर वैसा लिख दिया है । किंतु भवभूति ऐसे कवियो मे न थे । उपमा और प्राकृतिक वर्णन यद्यपि कालिदास का सबसे अनूठा है किंतु वर्णन मे उस वस्तु का रूप आखो के सामने खडा कर देना भवभूति ही जानते थे । 'उत्तर रामचरित' मे आश्रम, तपोवन, पर्वत, गुल्म, लता आदि का ऐसा अद्भुत वर्णन किया गया है जैसे यह सब पढने वालो के सामने ही हो । 'मालती माधव' मे श्मशान का वर्णन पढने से रोमाच हो आता है। उन्होने जो स्थान-स्थान पर प्रकृति के उत्तमोत्तम वर्णन किए है उन्हे कवि-कपोल कल्पित एव अयथार्थ कहना युक्तियुक्त नही है । इससे यही प्रकट होता है कि प्रकृति देवी के भाति-भाति के मनोहर दृश्यो को अवलोकन करने का भवभूति को प्रकृतिजात परमोत्साह था । दंडकारण्य, जनस्थान, पचवटी, गोदावरी नदी के स्वच्छ स्वाभाविक वर्णन इसके साक्षी है । बिना अनुभव के ऐसा वर्णन कोई कैसे कर सकता है !

उनके ग्रथ

इनके बनाए तीन नाटक हैं—(१) मालती माधव, (२) महावीर चरित, (३) उत्तर रामचरित । साहित्य महोदधि के इन तीनो रत्नो का जिसने आनद नही लिया उसके लिए काव्य का पठन-पाठन व्यर्थ ही है । कवि भवभूति की सरस्वती मानो अपनी तीन धाराओ से तीन नाटको के आकार मे बही है। कुरुक्षेत्र के समीप सरस्वती एक सी धारा मे थोडी दूर बहकर लोप हो गई है किंतु भवभूति की प्रतिभा के उद्गार मे वह अविच्छिन्न त्रि स्रोत हो बहती चली गई है । 'मालती माधव' मे शृगार रस के रूप मे, 'महावीर चरित' मे वीरता का रूप धर और 'उत्तर रामचरित' मे करुणरस के प्रवाह मे । इस तरह यह समस्त विदग्ध मडली को तीन प्रकार के रस से आप्यायित और आप्लावित कर रही है । साहित्यदर्पणकार "काव्यस्यात्मा ध्वनि." अर्थात् ध्वनि को ही

काव्य की आत्मा मानते है। वह ध्वनि भवभूति की कविता से पद-पद पर टपकी पडती है, यही कारण है कि 'काव्य प्रकाश', 'सरस्वती कठाभरण', 'वाग्भट्टालकार' आदि साहित्य के प्राचीन ग्रथ 'कुवलयानन्द', 'चित्र' ीमासा', 'साहित्य दर्पण' आदि नवीन ग्रथो मे भवभूति के श्लोक बहुधा उदाहरण की भाति उद्धृत किए गए है।

जैसा प्रसाद गुण कालिदास के काव्य मे भरा है वैसा ही ओजगुण-पूर्ण ध्वन्यात्मक नयी नयी उक्ति-युक्ति भवभूति की कविता मे, अधिकतर 'उत्तर-रामचरित' मे है। इसकी विचित्र रचना से मुग्ध होकर कोई-कोई सहृदय साहित्य मर्मज्ञ उन्हे कालिदास से बढा-चढा मानते है। "उत्तरे रामचरिते भवभूति विशिष्यते"।[1]

उनका यह कहना अधिकाश मे बहुत ठीक है। इनका शृगार तथा वीर-रस वर्णन किसी भी सस्कृत कवि से कम नही है और करुण रस के वर्णन मे तो भवभूति सस्कृत के सब कवियो से बढ गए है। यह बात प्राचीन काल से ही चली आती है। इनकी रचनाओ मे जो ओजस्विता और भाव की सच्चाई है उसका पता तो उन्ही को लगता है जो मूल मे इनकी कविताओ को पढते है। मधुर छद गूथने मे भवभूति अद्वितीय है, जिस अर्थ-गौरव-भाव की समयोचित सत्यता तथा भाषा के मनोमुग्धकारी माधुर्य के साथ यह कवीदु हार्दिक भाव का आदर्श सारगभित अक्षरावली मे खीचते है कदाचित् उसे देखकर इनके प्रत्येक पद्य को सचित्र भाव कहने से अत्युक्ति नही होगी। उन्हे पढने से इनकी कवित्व शक्ति का, चमत्कारिणी प्रतिभा का और सही कविता का कुछ पता चल सकता है। उनकी वाणी की किसी प्रकार परीक्षा कीजिए, साहित्य की कैसी ही कसौटी पर कसिए, वह पूर्ण तथा उच्चश्रेणी की है और उसके पठन-पाठन से लोकोत्तर आनद प्राप्त होता है। इसी कारण भवभूति की गणना विद्वानो ने महाकवियो मे की है।

भवभूति और कालिदास

सस्कृत के परमोत्कृष्ट कविवृद मे कालिदास और भवभूति ही ऐसे है जिनका गुणगान आज तक अनविद्यरूप से चला आता है। सर्वसम्मति से दोनो ही आदरणीय तथा पूज्य है। इन दोनो महाकवि कृत रचना की परस्पर तुलना करके यथार्थ तारतम्य निकालना जरा टेढी खीर है। सबकी रुचि एक-सी नही होती। कोई कालिदास को उत्तम मानते है और कोई भवभूति को, किंतु ध्यानपूर्वक देखा जाए तो अपने-अपने ढग मे

१ प० बालकृष्ण भट्ट।

दोनो ही निराले है। दोनो ही प्रथम कोटि के कवि है। इन दोनो की जैसे उत्कृष्ट प्रतिभा प्रकृतिजात थी, वैसे ही भाषा भी अभिप्रायनुसारिणी थी। दोनो की कल्पना तथा पद-रचना मे प्रौढता और सरसतादि, जो महाकवियो के गुण है, पूर्णरूप से पाये जाते है। यदि कालिदास का कल्पना पर अधिकार है तो भवभूति भी मानव मनोधर्म के भिन्न-भिन्न स्वरूप को चित्रित करने मे सिद्धहस्त है।

एक शृगार रस का निदर्शन विशद प्रकार मे कराते हैं तो दूसरे वीर तथा करुण रस की प्रतिमूर्ति सामने खडी कर देते है और सरस शृगार को चित्राकित करने मे अपने प्रतियोगी से किसी भाति कम नही हैं। कालिदास के शृगार का उद्‌भव कही-कही पर विशुद्ध प्रेम से नही किंतु बहुताश कामवासना से ही प्रणोदित कहा जाता है। किंतु भवभूति का शृंगार सहज तथा पवित्र भावनात्मक है। कालिदास की वर्णनशैली सरल, स्वाभाविक, मृदुल, मनोहर है और भवभूति की रचना प्रणाली कृत्रिम, श्रमशिल्पित, प्रौढ, समयानुकूल, तथा लबे-लबे प्रशस्त प्रभावशाली समासो से गुफित है। भवभूति के नाटच पात्र सच्चे और रूपातर मात्र है और उनके तत्समय के सामाजिक भाव, रीति, नीति, आचार, विचार और पारस्परिक व्यवहारो के हू-ब-हू प्रतिबिंब है। उनके द्वारा ही तत्कालीन हिंदू सामाजिक अभिरुचि भाव-सभ्यता का सच्चा पता चलता है। कालिदास के परवर्त्ती होने के कारण भवभूति को उसके भाव तथा विचारो का अनिवार्य अनुकरण करना पड़ा है, किंतु वह अनुकरण भी कही-कही बहुत बढिया हुआ है। जिस बात को कालिदास व्यगार्थ मे प्रकट करते है वही भवभूति द्वारा वाच्यार्थ मे कथन की जाती है। कालिदास पर बहुधा शास्त्रीय नियमो का अंकुश नही है किंतु भवभूति पूर्णतया यथावत् शास्त्रीय नियमो का पालन करते है। उनके अतिथियो का स्वागत मधुपर्क के बिना होता ही नही। कालिदास के नाटको मे विदूषक महाराज मिलेगे, जिनकी उपहासजनक बातो से गाभीर्य भाव को भाग जाना पडता है, किंतु भवभूति के नाटको मे विदूषक का नाम भी नही, प्रत्युत दुर्मुख को भी कर्त्तव्यपरायण होना पडता है। वास्तविक घटनाक्रम के गाभीर्य की रक्षा के निमित्त कदाचित भवभूति ऐसा किया है। कालिदास के कोई भी नायक-नायिका दापत्य विज्ञान के उज्ज्वल उदाहरण आदर्श पति राम और आदर्श पत्नी सीता के जोड के अल्प-काल के लिए भी नही कहे जा सकते।

१ कदाचित भवभूति के समय मे देशीय राज्यो के परस्पर विरोध के कारण उपहासजनक बातो को छोड लोग प्राय. गभीर रहा करते होंगे।

उत्तर रामचरित और शकुन्तला नाटक

ये दोनो नाटक आपस मे बहुत कुछ मिलते है। दोनो ही सस्कृत साहित्याकाश के दो चद्र है। दोनो मे प्रकृति-वर्णन अच्छी भाति दिया गया है, दोनो के नायक उत्तम क्षत्रिय वंश के है, दोनो मे नायको ने अपनी गर्भिणी स्त्री का परित्याग किया है। केवल अतर इतना ही है कि एक ने तो श्रापजनित भ्रम से और दूसरे ने लोकमत के आदर से ऐसा किया है। दोनो नायको की स्त्रियो को आगे या पीछे महर्षियो का आश्रय प्राप्त हुआ है, दोनो ही नायक अपने आपे मे आकर अपनी-अपनी पत्नी के लिए विलाप करते है, अतर केवल इतना ही है कि दुष्यन्त का मनोरजन कभी-कभी विदूषक द्वारा हो जाया करता है और बेचारे राम को "स्वय कृत्वा त्यागं विलपनविनोदोप्य सुलभ" हो रहा है। ऐसी दशा मे राम का पुटपाक के समान करुण रस गाभीर्य युक्त हो गया है। मनोविनोद की अपेक्षा राम का शोक सीता की सहेली बासती के मृदु तथा कटु उपालभो से और भी बढ गया है। परित्याग के समय शकुन्तला दुष्यन्त पर कोप करती है, परतु सीता ने कही भी राम के लिए कटु वचन का प्रयोग नही किया। स्त्री के आत्मत्याग की सीमा इस चित्रण से अधिक नही हो सकती, चिरस्थायी प्रेम का इससे बढ़कर वर्णन नही किया जा सकता और न कही किया गया है, सुशील सद्पति प्रेममयी क्षमा करने वाली सीता से बढकर उत्तम पवित्र देवतुल्य चित्र मनुष्य की कल्पना नही खीच सकती। अत मे दुष्यन्त और राम दोनो ही अज्ञात भाव से अपने पुत्रो से मिलकर मुग्ध हो जाते है और दोनो ही नाटको के नायक महर्षियो के आश्रम मे उनकी कृपा से अपनी-अपनी स्त्री पा लेते है। अतएव ऐसा प्रतीत होता है कि उधर तो महाभारत के एक रूपक को लेकर कालिदास ने 'शकुन्तला' नाटक की रचना कर ससार को मोहित कर दिया, इधर कालिदास के पश्चात्कालीन भवभूति ने रामायण से उसी प्रकार का एक रूपक लेकर 'उत्तर रामचरित' नाटक रच उक्त कवि की शकुन्तला का जोड उपस्थित कर दिया और इस भाति प्रसिद्धि प्राप्त की। अस्तु यदि भवभूति का लक्ष्य 'उत्तर रामचरित' रचते समय 'शकुन्तला' नाटक रहा हो तो असभव नही है।

उत्तर रामचरित नाटक

इस नाटक मे कवि ने निम्नलिखित कथा भिन्न-भिन्न अको मे वर्णित की है. प्रस्तावना—एक ब्राह्मण रगभूमि मे आकर मगलाचरण करता है फिर सूत्रधार (नाटक खेलने वालो का मुखिया) आकर खेलने का प्रस्ताव उपस्थित करता है और मुख्य खेल आरंभ होने के पहले का वृत्तात कह सुनाता है कि

राम के राज्यारूढ होने के पश्चात् राम की तीनो माताए, गुरु वशिष्ठ तथा उनकी पत्नी अरुधती, राम की वहन शाता के पति ऋष्यशृंग के वारह वर्ष मे समाप्त होने वाले यज्ञ मे आमत्रित हो उनके यहा गए हैं, तथा जनक जी जो कई दिनो से राम और सीता से भेट करने को आए हुए थे पुन. मिथिलापुर को लौट गए है, इसलिए सीता कुछ खिन्न है।

अक एक : सीता के मनोरजन के लिए राम ने अपने समस्त भूतपूर्व वृत्तातो को एक चित्रशाला मे अकित कराया है और उसके चित्रो को यथाक्रम दिखा रहे थे कि राम को उन-उन घटनाओ के स्मरण द्वारा पूर्वानुभूत हर्ष, विरह और शोकादि मनोवृत्तियो को एक बार पुन अनुभव प्राप्त हुआ। उक्त चित्र को देखते-देखते दडकारण्य की वार्ता तक जव आ पहुचे, तव राम को जानकी के वियोग का स्मरण असह्य हो गया और उन्होने लक्ष्मण को ठहरने के लिए कहा। उस विचित्र वनशोभा को देख, सीता का, गर्भवती होने के कारण इस वात पर जी चला कि भागीरथी के पावन कूलस्थ वन मे रहना चाहिए। सीता की उक्त इच्छा पूर्ण करने हेतु राम ने लक्ष्मण को रथ प्रस्तुत करने की आज्ञा दी। लक्ष्मण के उधर चले जाने पर सीता चित्रदर्शन से परि-श्रात हो सो गयी। इतने मे दुर्मुख नामक राम का गुप्तचर वहा आया। उससे राम ने पूछा कि लोग हमारे विषय मे क्या चर्चा करते हैं ? तव उसने सीता वषयक भयावना जनापवाद उनके कान मे कहा। जिसे सुनते ही राम मूर्छित हो गए, पर शीघ्र ही मूर्छा टूटने पर (निरुपाय होने के कारण) उन्होने सीता को वन मे छोड देने का निश्चय किया। और इस हृदयदाही विचार की दुर्मुख द्वारा गुप्त भावपूर्वक लक्ष्मण को सूचना दी, जव सीता जगी तव लक्ष्मण जी के साथ रथ पर चढकर भागीरथी के तीर तपोवन को गई।

अक दो . इसके अनतर अगला वहुत-सा वृत्तात अर्थात् स्वयं गगा का कुश-लव युवको को वाल्मीकि के अधीन कर देना, व्रह्मा से वर पा आद्य कवि का रामायण प्रणीत करना, वशिष्ठ, अरुधती और राम की माता आदि को यज्ञ समाप्ति के अनतर वाल्मीकि के आश्रम पर आकर कुछ काल तक ठहरना, राम का अश्वमेध प्रारभ कर घोडे को छोडना और उसकी रक्षा के लिए लक्ष्मण के पुत्र चद्रकेतु को नियुक्त करना, ये सव वाते जनस्थान निवासिनी वासती नामक वनदेवी और वाल्मीकि आश्रम स्थित तपस्विनी आत्रेयी के परस्पर के वार्तालाप मे सूचित की गई है। आत्रेयी ने अत मे यह भी कह दिया कि इस पचवटी मे शबूक नाम का एक शूद्र स्वधर्म विरुद्ध तप कर प्रजा-मात्र के अकाल मरणादि आपत्तियो का कारण हो रहा है। यह वात आकाश-वाणी द्वारा जानकर उसे दड देने के निमित्त राम इधर शीघ्र ही आने वाले है। उक्त कथानुसार राम के वहा पहुच उसका वध करते ही वह अपने दिव्य

शरीर को धारण कर प्रकट हुआ। आगे शंबूक से बातचीत करने पर राम को विदित हुआ कि यह दंडकारण्य है। तब वे पूर्व वृत्तात का स्मरण कर वहा की शोभा देखने लगे। अनतर अगस्त्यमुनि के यहा से सदेशा आने पर उन ऋषि के दर्शनार्थ राम वहा गए। वहा से लौटकर अयोध्या जाते समय राम ने अपने पुष्पक विमान को उस दडकारण्य मे पुन ठहराया, और विचारा कि पूर्व के स्थलो का निरीक्षण कर सीता विरह के दु ख को किंचित् हलका कर ले। परतु यह तो कुछ नही हुआ, उलटे जनस्थान के दर्शन द्वारा उनके वियोगानल की ज्वाला और धधक उठी और उसके योग से वे मूर्छित हो गए।

अक तीन इस भावी अनर्थ को पहले ही जानकर उसके निवारणार्थ गगाजी ने उपाय भी सोच रखा था। वह यह कि अपने प्रभाव से सीता को अदृष्ट रहने की शक्ति प्रदान कर तमसा को उसके निकट रहने की आज्ञा दे रखी थी। अत राम के मूर्च्छापन्न होते ही सीता अदृश्य रूप से उनके पास गई, उनके हाथ का परिचित स्पर्श होते ही राम की मूर्च्छा टूट गई, पर नेत्र खोलकर देखने पर निकट कोई भी दृष्टिगत नही हुआ, तब नितात खिन्न हो उन्होने विचार किया कि सीता के निदिध्यास के कारण ही मुझे यह भ्रम हुआ। इतने मे वनदेवी वासंती घबराई हुई राम के पास आई, और कहने लगी कि सीता ने पूर्व मे जिसे अपने हाथो पाल-पोसकर बडा किया उस अल्पवयस्क युवा हाथी पर एक विशालकाय हाथी आक्रमण कर रहा है। उसकी रक्षा हेतु राम उधर गए, पर वहा उसे जय प्राप्त कर अपनी हथिनी के साथ जल विहार करते पाया। इसी प्रकार अन्य पशु-पक्षियो को भी उन्होने पूर्व परिचित पाया और वासती के भूतपूर्व अनेक घटनाओ का स्मरण दिलाने पर औत्सुक्यादि वृत्तिया उनके मन मे प्रादुर्भूत हुई। बातचीत करते-करते सीता की चर्चा छेड वासती ने उसके परित्यागार्थ हृदय-भेदक शब्दो द्वारा राम का उपालभ किया। सीता की चिरवियोग के कारण घोर अरण्य मे क्या अवस्था हुई होगी सो न विदित होने के कारण राम का हृदय करुणाप्लावित हो गया, और दुःख असह्य होने के कारण वे सज्ञाशून्य हो गए। तब फिर पहले की नाईं सीता ने उनके ललाट को अपने हाथ से स्पर्श कर उन्हे लब्धसज्ञ किया। पर उन्हे या वासती को वह दृष्टिगत नही हुई। अत मे अश्वमेध का समय न चूकने पावे इस अभिप्राय से राम विमानासीन हो अयोध्या की ओर चले गए।

अक चार : इसके आगे का स्थल वाल्मीकि का आश्रम माना गया है। वहा वशिष्ठादि मडली थी ही, और जनक जी भी मुनि के दर्शनार्थ आ गए है। वे सब सीता की हृदयविदारक भीषण अवस्था पर शोक प्रकाशित कर रहे थे कि इतने मे आश्रम के बालको मे से एक उनके निकट आया। उसने अपना नाम लव और अपने ज्येष्ठ भाई का नाम कुश बतलाया। माता-पिता के नाम

पूछे जाने पर उसने उत्तर दिया कि वह मुझे ज्ञात नही है। हां, इतना अवश्य जानता हू कि हम दोनो वाल्मीकि ऋपि के शिष्य है। उनकी चाल-चलन और मुखाकृति को देख जनक जी और कौशल्या को विश्वास हो गया कि इनमे राम और सीता के कुछ लक्षण पाए जाते हैं। इतने मे उस लडके के लगोटिया मित्र दौडकर निकट आए, और उससे कहने लगे कि अपने आश्रम मे 'अश्व' नामक एक विलक्षण पशु आया है सो चल हम तुझे वह अश्व दिखलाते हैं—ऐसा कहकर उसे उधर ले गए। आगे उसके उस अश्व को पकडकर वाध रखने के कारण अश्व रक्षक लोगो ने उस पर आक्रमण किया। पर राम के दिव्यास्त्र उसे आजन्मत प्राप्त होने के कारण उसने अकेले ही सब सैन्य को पराजित किया।

अंक पाच : उस सवाद को सुन कुमार चद्रकेतु उससे युद्ध करने के लिए आया। यह सब घटना राम के शवूक को मार दडकारण्य से लौट आने के पूर्व ही हुई।

अक छह : फिर राम ने वहा पहुचते ही दोनो को युद्ध वद करने की आज्ञा दे अपने समीप उपस्थित होने की आज्ञा दी। चद्रकेतु ने लव की वहुत प्रशसा की, और रामायण कथा के यह प्रधान पुरुप है यह ज्ञात होते ही लव ने भी राम को प्रणाम किया। आगे कुश भी वहा आया और अनेक कारण ऐसे उपस्थित हुए जिनके योग मे राम ने अपने दोनो पुत्रो को पहचान लिया।

अक सात अत मे वाल्मीकि ऋपि के आज्ञानुसार लक्ष्मण ने गंगा के तट पर वडी भारी रगभूमि प्रस्तुत की और वहा पर उक्त कवि प्रणीत छोटा-सा नाटक अप्सराओ द्वारा अभिनीत किया गया। सव लोगो के समीप इस नाटक के अभिनीत कराने मे उक्त मुनि का अभिप्राय यह था कि सीता को वन मे परित्यक्त करने के पश्चात् जो-जो घटनाए हुईं सो सव पर विदित हो जाए। तदनुसार सीता ने अपना शरीर गगा मे विसर्जित किया, उनके दो पुत्र हुए, अनतर गगा और पृथ्वी ने उनकी रक्षा कर दोनो पुत्रो को क्षात्र संस्कार कराने के लिए वाल्मीकि के अधीन किया, इत्यादि समस्त घटनाए उक्त दृश्य-काव्य द्वारा सव लोगो को प्रत्यक्ष-सी करा दी गईं। अत मे इस उपनाटक की सीता ने पृथ्वी के गर्भ मे स्थान प्राप्ति की प्रार्थना की, और उसमे समा गईं। अनतर सव परदे के भीतर गईं। परतु शीघ्र ही सव प्रेक्षको के समीप सच्ची सीता, गगा और पृथ्वी यह तीनो गगा से निकली, उक्त प्रकार से सवके सामने सीता की शुद्धता प्रमाणित हो जाने पर राम ने पुन उनको अगीकार किया। और अत मे वाल्मीकि मुनि ने सवको आशीर्वाद दिया है।

'उत्तर रामचरित' की विशेपता

यह एक ऐतिहासिक नाटक है। इसकी कथा रामायण से ली गई है, किंतु

इसमे प्रधानत दो बाते कुछ हेर-फेर कर लिखी गई हैं। एक यह कि मूल कथा मे यह बात वर्णित है कि लव-कुश ने राम-लक्ष्मण का पराभव किया, पर यहा केवल लव और लक्ष्मण के पुत्र चद्रकेतु का ही युद्ध वर्णित किया गया है। दूसरी बात यह कि राम, लक्ष्मण और सीता का अत नितात दुःख के साथ हुआ है पर यहा वह उसके विपरीत प्रदर्शित किया गया है। प्रथम हेर-फेर करने का कारण स्पष्ट है कि नाटक के नायकादि प्रधान पात्रो को लघुता के दोप से बचाने हेतु वह किया गया है; और दूसरा तो अत्यत आवश्यक था, क्योकि दु ख परिणामी नाटको की प्रथा सस्कृत मे बिलकुल ही नही है और इस प्रकार नाटक का अत न होना चाहिए ऐसी साहित्य-शास्त्र की स्पष्ट आज्ञा भी है। इसके दूसरे अगो की रचना भी ऐसी चतुराई से की गई है कि उसकी सहायता से कवि प्रधान पात्रो के उदात्त गुण स्पष्टतापूर्वक प्रदर्शित कर सका है। सीता राम को निज प्राणो से भी अधिक प्यारी थी तिस पर भी चित्रपट के दर्शन द्वारा भूतपूर्व घटनाओ का स्मरण होते ही उनका हृदय अत्यंत आर्द्र हो प्रेम निमग्न हो गया था, तो भी दुर्मुख द्वारा जनापवाद कर्णगत होते ही उसे उन्होने तत्क्षण वज्र की नाई कठोर कर लिया, और वशिष्ठ के सदेश तथा अपनी कठोर प्रतिज्ञा को अनुसृत कर, गले लिपटी हुई निद्रोन्मुख सीता को निपट निर्दयतापूर्वक अलग कर अत्यत सद्गदित हो विदा किया। दूसरे और तीसरे अक के प्रसग भी ऐसे ही हृदयभेदक है। तद्द्वारा हमारे कवि ने यह बात स्पष्ट कर दिखलाई है कि महाशय पुरुषो के अत करण समय विशेष पर ही नही किंतु एक ही समय मे "वज्र से भी कठोर और कुसुम से भी मृदु" कैसे हो जाते है। शबूक वध की कथा हमारे कवि को अवश्य ही लिखनी पडी क्योकि बिना कारण राजकाज छोड़ दडकारण्य मे आने के लिए राम को कोई निमित्त ही न था। वह काम राम की सदयता का जैसा घोर विरोधी है वैसा ही रगस्थल पर उसका खेला जाना भी अत्रस्त जान पडता है, एतावता थोडे मे ही कवि ने उस कथा को शेष कर शबूक को दिव्य पुरुष के रूप मे शीघ्र ही रगभूमि पर उपस्थित किया है। तीसरे अक मे तो करुण रस मानो, साक्षात् अवतीर्ण हो गया हो। दडकारण्य की वनश्री को देख राम का मन करुणार्द्र हो गया, और वह स्थान चिरकाल के अनतर पुन आलोकपथ मे आने के कारण जो-जो पदार्थ दृष्टिगत होता गया वह सब भूतपूर्व घटनाओ का स्मारक हो सीता विरह के दु ख को अधिकतर जागृत करता। उसी समय सीता की सखी वनदेवी वासती से भेट हो गई है। पर इस अक के सविधानक मे कवि ने इससे भी अधिक चमत्कृतिजनक एक बात बड़ी चतुराई से लिखी है। उसने इसके करुण रस को विशेष रूप से अनुकूलता प्रदान की है। वह सीता की अदृश्यता है। घोर कानन मे जिसकी अवस्था का बोध न होने के

कारण राम के हृदय मे दु.ख की तरगे उठती है; स्वय उसी के सामने उपस्थित होते उन्हे उसका ज्ञान होना, और उसी का परिचित हस्तस्पर्श होने के पश्चात् राम की बातचीत सुन उन्हे उन्माद होने का वासती को सदेह होना, और राम का उसे व्यर्थ भ्रम मानना, आदि बाते नितात हृदयद्रावक है, उसके सिवा ये बातें ऐसी है कि इनके योग से सीता परित्याग विषयक राम की कठोरता अत्यत विस्मृत हो जाती है। चौथे अक के स्थल के लिए वाल्मीकि मुनि के आश्रम की योजना अनेक कारणो से बहुत ही समीचीन एव ममर्पक हुई है। राम और सीता दोनो बाल्यावस्था से असामान्य गुणसपन्न होने पर भी उन्हे सुख का लेशमात्र न प्राप्त हुआ और उनका अत और भी भयावना हुआ, यह देख कौशल्या और जनक को पराकाष्ठा का खेद हुआ। उसके योग से उनकी चित्तवृत्ति उदास एव विरक्त हो गई, उस समय की उनकी उक्तियो का पाठक या दर्शको के चित्त पर स्थलौचित्य की सहायता से विशेष सस्कार कराने के लिए ऋषि के आश्रम को छोड योग्य स्थान दूसरा और कहा मिल सकता है। वैसे ही इस असार ससार के अनेकानेक दु खो को भोग, सशोक एव चिता-व्यथित हो शेष दिनो को काटने हेतु एक ओर बैठा हुआ वृद्ध समुदाय और आश्रम के दूसरे अनाध्याय के कारण निश्चित हो स्वच्छदतापूर्वक बालक्रीडा मे निमग्न हुए वहा के बालको का समूह, ये दोनो बाते एक के उपरात दूसरी उल्लिखित होने के कारण परस्पर नितात शोभाप्रद हुई है। क्योकि ससार की उक्त दोनो अवस्थाए परस्पर नितात विभिन्न होने के कारण ऐसे स्थान पर उनका भेद अत्यत स्पष्ट रूप से दृष्टिगत हो विशेष शोभा को प्राप्त होता है। आगे सीता के विषय मे निराश हुए जनक और कौशल्या ने जब-जब लव को देखा तो उन्हे यह शका हुई कि कदाचित् यह सीता का पुत्र हो, आदि वृत्तात, लव के लगोटिया मित्रो का किया हुआ कौतूहलजनक घोड़े का वर्णन, राज-पुरुषो के धमकाने पर दूसरे बालक और उस क्षत्रिय कुलभूषण मे तत्क्षण दृग्गोचर होने वाला अतर, ये सब बाते बडी चतुराई से लिखी जाने के कारण वे इस अक को विशेष शोभा प्रदान करती है। अस्तु, अगले तीन अको का सविशेष वर्णन करने की कोई आवश्यकता नही जान पड़ती, हमारे चतुर पाठको को उनके विषय मे तर्क करने के लिए उक्त सविधानक ही काफी होगा।

'उत्तर रामचरित' करुण रस-प्रधान नाटक माना जाता है। पहले अक मे करुण-रस कही सभोग शृगार और कही विप्रलभ शृगार मे मिला हुआ पाया जाता है। दूसरे अक मे पुन विप्रलभ शृगार मे मिल वहा उसका आरभमात्र हुआ-सा दीख पडता है। पर अगले अक मे वह पूर्णरूप मे उपलब्ध होता है। चौथे मे जनक और कौशल्या, तथा दूसरे के आदि मे वासती के सभाषण मे शुद्ध

करुण रस पाया जाता है। पाचवे और छठे के आदि मे उभय योद्धा कुमार होने के कारण परस्पर के सवाद मे वीर रस विशेष शोभाप्रद बोध होता है। अंतिम अर्थात् सातवे अक के आदि मे करुण और अत मे अद्‌भुत रस है। कहने का अभिप्राय यह है कि इस नाटक मे कवि ने करुण रस को प्रधानता दे अन्य रसो को प्रसगानुरोध से या तदाश्रित वर्णित किया है। यही तक इस नाटक की अतर रचना के विषय मे लिखा गया। पर जो कोई इसके पृष्ठ यो ही उलटकर देखेगा उसे भी कवि के भिन्न-भिन्न स्थानो की चमत्कारजनक प्रयोग-विधि का ज्ञान सहज ही हो जाएगा। कही ऋषि का आश्रम, कही वन देवताओ के रमणीक एव भव्य वन, कही विद्याधरो का दिव्य प्रदेश, कही सुरासुरादि सब भूतसृष्टि अधिष्ठित आश्चर्य-सपन्न रगस्थल, कही समरागण ऐसे नाना प्रकार के चित्र-विचित्र स्थानो की कल्पना किए जाने के कारण प्रत्येक अंक का रस पाठकगण, और विशेषत दर्शक लोगो के चित्त मे विशेष आनद उपजाता है। वर्तमान नाटक मे प्रकृति वर्णन को भी दूसरे और तीसरे अक मे भवभूति ले आए है। उक्त उभय स्थानो पर दडकारण्य का जो वर्णन किया गया है वह अत्यत सुदर है। उसी प्रकार और-और ठौर पर भी जहा कही लेखानुरोध से वर्णन करना पडा है वहा-वहा पर वैसा ही परमोत्कृष्ट वन पडा है। इसके पात्रगण प्राय वही है जो रामायण मे प्रसिद्ध है, और इस नाटक मे भी उनके उदात्त गुण को कवि ने समुचित सविधानक जोडकर अधिक व्यक्त किया है। साराश यह है कि अनेक उत्तम गुणो के सम्मेलन से 'उत्तर रामचरित' परम रमणीक हुआ है। उसकी यह रमणीकता ही प्रधान कारण है कि वह सहसा रसिकप्रिय हो आज पर्यत विशेष प्रसिद्ध है। और इस बात मे तनिक भी सदेह नही कि उसकी यह समुज्ज्वल ख्याति कालगति के साथ-साथ सतत वृद्धिलाभ करती जाएगी और भवभूति का नाम दिगतर मे सुप्रसिद्ध हो चिर-स्थित रहेगा।

सकेत

नाटक के आरभ मे एक ब्राह्मण आकर सभा को आशीर्वाद देता है, इस आशीर्वाद को नादी कहते है। फिर नाटक खेलने वालो का मुखिया जो सूत्रधार कहलाता है सभा के सामने ग्रथकार का कुछ परिचय देकर कहता है कि आज अमुक नाटक का खेल किया जाएगा, इस बातचीत को प्रस्तावना कहते है। नाटक के भागो को अक कहते है और जो कोई अधिक प्रसग किसी अक के आदि मे आता है वह विष्कभक अथवा गर्भांक कहलाता है। नाटक के पढने वालो की सुगमता के लिए कुछ बाते कोष्ठको मे लिखी जाती है जैसे—

(नेपथ्य में) इसका मतलब यह है कि बात कही परदे के पीछे

से सुनाई पडती है जिसका कहने वाला रंगभूमि पर उपस्थित नही है, इस चिह्न का प्रयोग उस समय होता है जब नाटककार किसी बात को बिना रगभूमि पर खेले दर्शको को ज्ञान करा देना चाहता है।

(**आप ही आप**) अथवा (**स्वगत**) का अर्थ है कि कहने वाला इस प्रकार बोलता है मानो दर्शक तो सुन रहे है परंतु नाटक खेलने वाले दूसरे पात्र नही सुन रहे है। (**प्रगट**) का तात्पर्य है कि आगे का कथन सबके सुनने के लिए है। जहा लिखा है कि अमुक का प्रवेश अथवा अमुक आता है, जाता है इत्यादि; इससे जानना चाहिए कि वह पात्र रगभूमि पर आया अथवा वहा से नेपथ्य अर्थात् परदे के पीछे चला गया।

—सत्यनारायण

धाधूपुर, आगरा
७-६-१३

नाटक-पात्र

(पुरुष)		(स्त्रियां)	
रामचन्द्र	: अयोध्या सूर्यवंशी राजा	सीता	राम की पत्नी (जानकी)
लक्ष्मण शत्रुघ्न	राम के भाई	वासती	सीता की सहेली, वनदेवी
जनक	· राम के श्वसुर, (मिथिला नरेश)	आत्रेयी	: एक ब्रह्मचारिणी
अष्टावक्र	ऋष्यश्रृंग के शिष्य	कौशल्या	राम की माता
शम्बूक	: एक शूद्र तपस्वी	तमसा मुरला भागीरथी	. स्त्री रूप मे नदी विशेष
वाल्मीकि	: एक ऋषि	वसुन्धरा	पृथ्वी, सीता की माता
सौधातकि भांडायन	: वाल्मीकि के शिष्य	अरुन्धती	गुरु वशिष्ठ की स्त्री
कुश लव	: राम के पुत्र	विद्याधरी	· देवी विशेष
चन्द्रकेतु	: लक्ष्मण का पुत्र		
सुमंत	· सारथी		
विद्याधर	: देव विशेष		

दुर्मुख, कचुकी, प्रतिहारी, लडके, सैनिक आदि

स्थान · अयोध्या, पचवटी, जनस्थान, वाल्मीकाश्रम ।

॥ श्री हरिः ॥

उत्तर रामचरित नाटक

(नान्दी)

बन्दौ श्रीमद्वाल्मीकी कवि-मग-दरसावन
रामचरित-नित नव-रसाल-पिक कृत-जग-पावन
पुनि याचत मनहरनि रसिक-बर-हृदय-विलासिनि
अरथ धरनि जयकरनि विविध विज्ञान विकासिनि
श्री शब्द-मूर्ति-धर ब्रह्म की जो मजुल माया लसै
अस अमृत वानी षटपदी नित सत मुख अम्बुज बसै ॥१॥

(सूत्रधार का प्रवेश)

सूत्रधार : बस अधिक विस्तार का काम नही—आज भगवान काल प्रियनाथ की यात्रा के शुभ उत्सव पर सर्व सज्जन महोदयो को विदित हो कि कश्यप-कुल-उजागर अखिल-विद्या-सागर जननिजातुकर्णी के पवित्र गर्भोत्पन्न श्रीकठ-पद-सपन्न परम प्रसिद्ध जिनका नाम श्री भवभूति है।

वचन के बस जासु सरस्वती
करति काज मनौ निज भामिनी
मुदित खेलत तासु कवीन्द्र के
विमल उत्तर रामचरित्र को ॥२॥

(कुछ ठहरकर) अच्छा तो अब मैं कार्यवश अयोध्यावासी और महाराज श्री रामचन्द्र के समय का बन जाता हू। (चारो ओर देखकर) अरे क्या आजकल पौलस्त्य-कुल-धूमकेतु श्री राघवेद्र के राज्याभिषेक का समय है ? इन दिनो तो निरतर आनद मंगल और गाने-बजाने की धूम-धाम मची रहनी चाहिए, फिर किस कारण विरुदावली गाते हुए।

प्रफुल्लित चरण और भाट लोगो से चौराहे शून्य दिखलाई पड रहे है ?

नट : (आकर) भाई, बात यह है कि महाराज ने लंका के युद्ध मे सहायता करने वाले बंदरो, राक्षसो, तथा अनेक देशो के ब्रह्मर्षि और राजर्षि लोगो को, जो राज्याभिषेक के सम्मान के लिए आए थे, यहा से विदा कर दिया है, उन्ही के सत्कारार्थ इतने दिनो तक उत्सव हो रहा था।

सूत्र० : अच्छा, ठीक!

नट : और देखो—

श्री वशिष्ठ सो पूर्न सुरच्छित सब महरानी
कौशल्यादिक मातु प्रेम पूरित मुद-सानी
गुरु तिय के सग गईं सुतापति-सदन सुहावन
निरखन हेतु पुनीत यज्ञ-उच्छव मन भावन ॥३॥

सूत्र० : अजी मैं विदेशी हू, इसीलिए पूछता हूं कि ये सुतापति कौन है ?

नट : शाता जो सुन्दर सुता, दशरथ की गुन माल।
दयी लोमपादहि सदय, गोद धरन भुअपाल ॥४॥

उसका विवाह विभाडक के पुत्र शृंगी ऋषि के साथ हुआ, जो आजकल बारह वर्षो मे पूर्ण होने वाला यज्ञ कर रहे है, इसी कारण पूर्ण गर्भवती जानकी जी को भी छोड सब बडे-बूढे वहां गए है।

सूत्र० : इससे हमको क्या ? हम तो चारण है चलो राजद्वार पर चले और निज वंशपरपरानुसार राजा की विरुदावली बखानें।

नट : तो वहा के लिए कोई बढिया स्तुति सोच लीजिए जिसमे किसी प्रकार का दोष न हो।

सूत्र० : सुनो भाई !

चूक चाकरी मे कवहु, करनी चाहिए नाहिं
सव प्रकार निरदोस कहु, को पदार्थ जग माहिं
कुटिल मनुज सो रहि सकत, भला कौन निस्सक
सद्वनिता कवितान मे, जो नित लखत कलंक ॥५॥

नट : अजी, ऐसो को तो अति कुटिल कहना चाहिए क्योकि—

सती सियहु को दोस दै, जन जव करत अनीति
अपर तियन की जगत मे, को करि है परतीति
केवल निन्दा मूल तिन, राछस घर को वास
अनल परीच्छहु मे तनक, नहिं लोगनि विसवास ॥६॥

सूत्र० : जो कही उडते-उडते इस चर्चा की भनक भी महाराज के कान मे पड गई तो वडा अनर्थ हो जाएगा ।

नट : ऋषि और देवता सव भला करेंगे (इधर-उधर घूमकर) क्यो जी, इस समय महाराज कहा है (कुछ सुनकर) सुनने मे तो यह आया है कि—

रघुनंदन के अभिनंदन को, यहँ आइ विताइ कें द्योस सुखरे
अभिसेक के उच्छव को करिकें, मिथिलापुर को मिथिलेस सिधारे
यहि कारन भारी उदास सियँ, समझावन को कहि वैन पियारे
तजिकें धरमासन प्रेम भरे, नृपरामजू मन्दर को पग धारे ॥७॥

(दोनो जाते हैं)

इति प्रस्तावना

अंक १

[स्थान—राजभवन]

(राम और सीता आसन पर बैठे दिखलाई पड़ते है ।)

राम : देवी, धीरज धरो, इतनी सोच क्यों करती हो ? आपके पूज्य पिता आप ही हम लोगो के बहुकालव्यापी विरह को नही सह सकते, किंतु क्या करे ?

नित्यकर्म को नियम कठिन जो अति ही भारी
स्वतन्त्रता द्विजगृहीमात्र की हरतु पियारी !
विघन तनक सो परत घने दोसनि उपजावत
या चिन्ता सो ग्रसित कारमिक चैन न पावत ।।८।।

सीता : आर्यपुत्र, मैं इसे अच्छी तरह जानती हूं, किंतु अपने लोगो से बिछुडकर कुछ दुःख तो होता ही है ।

राम प्यारी, आपने जो कहा वह ठीक है, हृदय विदीर्ण करने वाली संसारी माया ऐसी ही प्रबल है, इसी कारण इससे भयभीत हो बुद्धिमान जन सब कामनाओ को छोड-छाड कही एकात वन मे जाकर विश्राम करते है ।

(कचुकी का प्रवेश)

कंचुकी : भैया रामचंद्र, **(इतना कह के दांतों के नीचे जीभ काटकर)** महाराज !

राम : **(मुसकराकर)** आर्य, तुम पिताजी के पुराने सेवक हो, तुम्हारे मुख से 'भैया रामचद्र' संबोधन ही अच्छा लगता है, इसलिए तुमको जैसा अभ्यास है वैसा ही कहा करो ।

कंचुकी · महाराज, शृगी ऋषि के यहा से अष्टावक्र जी आए है ।

सीता : तो उन्हे क्यो रोक रखा है ?

राम · उन्हे शीघ्र लिवा ले आओ !

(कचुकी जाता है)

(अष्टावक्र का प्रवेश)

अष्टावक्र : आपका कल्याण हो !

राम : भगवन, मैं आपको प्रणाम करता हू, यहां विराजिए !

सीता : मैं भी प्रणाम करती हू, कहिए जामातृ सहित हमारी सास और शातादेवी कुशल से तो है ?

राम . वतलाइए हमारे बहनोई, सोमरस पान करने वाले शृगी ऋषिजी का यज्ञ तो निर्विघ्न हुआ चला जाता है ? वह और बहन शाता आनद से तो हैं ?

सीता कभी हमारा भी स्मरण करती है ?

अष्टावक्र : (बैठकर) क्यो नही देवी, कुलगुरु भगवान वशिष्ठ जी ने आपको कहला भेजा है कि—

विस्व भरनि वसुमती देवि की तुम हो जाई
जगत जनक सम जनक सुभग तव जनक सुहाई
जिन कुल सविता वंस प्रवरतक, हम आचारी
तिन राजनि की बधू नन्दिनी तुम सुकुमारी ॥९॥

इस कारण और क्या आशीष दे, बस भगवान तुम्हें वीर जननी बनावे, यही हमारी आतरिक कामना है ।

राम . इसके लिए हम अत्यत अनुगृहीत है क्योकि—

निरखि अर्थ कहै निज बैन को
सकल लौकिक साधु बनाइ के
विमल-मानस-आदि-ऋषीनु के
वचन को अनुधावत अर्थ है ॥१०॥

अष्टावक्र और भगवती अरुधती, देवी शाता, महारानी माताओ ने बारंबार यह कहला भेजा है कि आजकल गर्भिणी सीता का मन जिस किसी वस्तु पर चले वह अवश्य ही उपस्थित की जाए, उसमे कदापि देर न करना ।

राम · जो यह कहती हैं, सो सब किया जाता है ।

अष्टावक्र तुम्हारे ननदोई और माताओ ने यह कहला भेजा है कि बेटी, तू पूरे दिनो से है इसी कारण तुझे हम अपने साथ नही लाए, वत्स रामचन्द्र को भी तेरा जी बहलाने के लिए वही छोड दिया है । इसलिए हे आयुष्मती ! लाल से जब तेरी गोद भरी-पूरी होगी तभी तुझसे मिलेगे ।

राम (हर्ष और लाज से मुसकराकर) ऐसा ही हो, कहिए भगवान वशिष्ठ जी की मेरे लिए भी कुछ आज्ञा है ?

अष्टावक्र : उसे भी सुनिए,

ऋषि श्रृंग के मख मे यहाँ, लागे सबै हम आज
है बालमति अब ही तिहारी, राज को नव काज
तुव धर्म नित्य प्रजानुरंजन, निज प्रमाद बिहाइ
तज्जनित यस धन प्रचुर ही, रघुवंस की प्रभुताइ ॥११॥

राम : भगवान मैत्रावरुणि की जो आज्ञा ।

मोह, दया, सुख, सम्पदा, जनक सुता वरु होहि
प्रजा हेत तिनहूँ तजत विथा न व्यापहि मोहि ॥१२॥

सीता : आर्यपुत्र, इसीलिए आप रघुकुल के धुरंधर कहलाते है ।

राम : कोई है ? अष्टावक्र जी को ले जाकर विश्राम कराओ ।

अष्टावक्र : **(उठकर और घूमकर)** अहा ! यह तो कुमार लक्ष्मण आ रहे है । (जाते है)

(लक्ष्मण का प्रवेश)

लक्ष्मण : महाराज की जय हो, उस चित्रकार ने, जैसा हमने कहा था वैसे ही आप के चरित्र के चित्र उन दीवारो पर चित्रित किए है—उन्हे चलकर देख लीजिए ।

राम : **(आप ही)** उदास जानकी को प्रसन्न करना कुवर खूब जानते है, **(प्रकट)** अच्छा तो वह कहा तक बन गया है ?

लक्ष्मण . महारानी की अग्नि शुद्धि तक ।

राम : हैं है, ऐसा मत कहो । ।

अति पुनीत सिया निज जन्म सो
तिहि भला पुनि पावन को करै
लहि सकै कहुँ अन्य पदार्थ सो
अनल तीरथ-तोय विशुद्धता ॥१३॥

हे यज्ञभूमि से उत्पन्न हुई देवी, क्षमा करना, यह तो जन्म भर का कलक तुम्हारे सिर चढ चुका, तुम्हारी पवित्रता के विषय मे मुझे रत्ती भर भी सशय न था, परंतु

कुल कीरति रूप चहे धन जे, ते महीप प्रजा को करै मनभावत
यहि सो मम बैन कढ़े जो अजोग, नही तुव जोग अबै लो सतावत
नित पुष्प सुगधित को जगमाहि, सुभावहि सो सब सीस चढ़ावत
बनिके निरमोही न कोऊ जनो, तिनको दलि पाइनु के तर दावत ॥१४॥

सीता : आर्य पुत्र, इन बातो को जाने दीजिए । जो होना था सो हो गया । आइए अब आपके चित्र को देखे । **(सब जाते है)**

[स्थान—राज-मंदिर, चित्रशाला]

(राम-लक्ष्मण-सीता आते हैं)

लक्ष्मण : यही तो हैं चित्र।

सीता : (देखकर) देखो तो ये कौन है जो ऊपर पास-पास खडे हुए आर्यपुत्र की प्रार्थना-सी कर रहे है !

लक्ष्मण : महारानी, ये मत्र सहित जृम्भकास्त्र है। ये भगवान कृशाश्व मुनि से विश्वामित्र जी को प्राप्त हुए और उन्होने ताडका वध करने के पश्चात् महाराज को दे दिए है।

राम : प्यारी ! इन दिव्यास्त्रो को प्रणाम करो।

वेद, विप्र रच्छा निमत, विधि आदिक ऋषिवृन्द
कियो सहसधिक वरस लो, तप अति कठिन अमन्द
अपनो ही तव तेजवल, परम प्रभासित स्वच्छ
इन अस्त्रनि के रूप मे, तिन देख्यो प्रत्यच्छ ॥१५॥

सीता अच्छा, मैं इनको प्रणाम करती हू।

राम : अव से ये सर्वथा तुम्हारी सतान की सेवा मे रहेगे।

सीता . मुझ पर वडी कृपा हुई।

लक्ष्मण : यह मिथिला पुरी का दृश्य है।

सीता . अहा ! यह तो आर्यपुत्र का चित्र कढा हुआ है। काकपक्षो से श्री मुखमडल की छवि और भी अनोखी हो गई है। प्रफुल्ल नवल नील कमल-सा श्याम इनका सुदर सुकुमार पुष्ट शरीर कैसा शोभाभिराम है, वह देखो पिताजी, वडे आश्चर्य के साथ, सहज ही मे शकर का शरासन तोडने वाले इन महाराज के मृदुल स्वरूप को इकटक निहार रहे हैं।

लक्ष्मण : महारानी देखिए-देखिए—

तव पितु निज प्रोहित निपुन, सतानंद के संग
सजन वशिष्ठादिकन को, पूजत सहित उमग ॥१६॥

राम . ये देखने योग्य है—

प्रिय न काहि रघुजनक को, कुल संवध पवित्र
करता वरता जहँ सुभग, आपुहि विश्वामित्र ॥१७॥

सीता : और देखिए, ये चारो भाई सगुन सायत से मुंडन कराकर विवाह का कंकन बाँधे उपस्थित है—अहा ! ऐसा जान पड़ता है मानो हम लोग जनकपुर मे वैठे है और यह वही समय वरत रहा है।

राम : सुमुखी ! बरतत समय यह, होत वही परतीत
गौतम देव प्रदत्त जब, तेरो पानि पुनीत
ककन भूषित जनु महा, उच्छव को अवतार
ग्रहन करत प्रफुलित कियो, मोको बारहिंबार ॥१८॥

लक्ष्मण : देखिए ये आप है, ये श्री माडवी है और ये वधू श्रुतिकीर्ति है।

सीता : और यह दूसरी कौन है ?

लक्ष्मण : **(लज्जा से मुसकराकर आप ही आप)** महारानी सीता अब उर्मिला को पूछ रही है, सो किसी बहाने यह बात उडानी चाहिए। **(प्रकट)** श्रीमती, देखने योग्य इधर है, आइए भगवान परशुराम जी के दर्शन कीजिए।

सीता · **(भ्रम में पड़कर)** इनके दर्शन से तो भय लगता है।

राम : ऋषि महाराज को नमस्कार है।

लक्ष्मण : महारानी, देखो-देखो यह महाराज ने ऋषि के धर्म···

राम : **(आंख से बरजते हुए)** अजी अभी तो बहुत देखने को पडा है, अब और कही से दिखलाओ।

सीता : **(स्नेह और आदर से देखकर)** आर्यपुत्र, इस विनय बडाई से ही आप की शोभा है।

लक्ष्मण : लीजिए, हम सब अयोध्या मे आ पहुचे।

राम : **(आंसू भरकर)** हा ! मुझे स्मरण है, भली भाति स्मरण है—
ब्याहे जब सब भाई, अछत तात सुख प्रद चरन
मुदित दुलारति माइ, कहाँ हमारे ते दिवस ॥१९॥
और तभी की ये जानकी है।
छिटकी जिह गोल कपोलनि पैं, बिखरी अलकें झलकें घुँघरारी
रद कुदकली समवारी सी वैस की, भोरी धरैं मुख पैं छवि प्यारी
सुठि देह सुभाइ-विलासभरी, ससि की खरी जीति लई उजियारी
निज लोल कलोलनि डोलनि सो, मय मायनु-मोद-बढ़ावनहारी ॥२०॥

लक्ष्मण : और देखो, यह मन्थरा है।

राम : **(बिना उत्तर दिए और दूसरी जगह दिखाकर)** प्यारी वैदेही,
शृंगवेरपुर मे वही, यह खिरनी को बृच्छ
प्रिय निषादपति सो यही, भयो समागम अच्छ ॥२१॥

लक्ष्मण : **(हसकर आप ही आप)** देखो, महाराज ने मझली माता का वृत्तात कैसे छोड दिया !

सीता : देखिए, यहां हम लोगो की जटाए बाधी जा रही है।

लक्ष्मण : राजपाट दै निज सुतनि, त्यागि जगत जजाल
वृद्ध समय बन को गए, सूरज वस भुआल ॥
वही अमल आरण्य व्रत, पावन पुण्य समाज
वाल काल ही मे धरचो, तुमने श्री महाराज ।।२२।।

सीता : ये विश्व की वदना योग्य पुण्य सलिला भागीरथी वह रही है।

राम : (चित्र देखकर) माता भागीरथी ! आप रघुकुल की कुलदेवी हो, मैं प्रणाम करता हू ।

खोजत सगर सुत यज्ञ-हय, महि भेदि, पातलहि गये
मुनि कपिल कोप कराल सो, जरि छार सब छिन मे भये
अति कठिन तप तपि तव भगीरथ, सलिल अघहर लाइके
उद्धार कियो पुरखान को भगवति ! दया तुव पाइके ।।२३।।

सो, हे जननी, आप अरुधती के समान वधू सीता पर सदा स्नेहमयी दृष्टि रखना ।

लक्ष्मण : यह वही श्याम वट है जो भारद्वाज के वतलाए चित्रकूट के मार्ग मे कालिन्दी तट पर मिला था ।

सीता : आर्यपुत्र, क्या इस प्रदेश का भी आप को स्मरण है ?

राम : भला यह कैसे विस्मरण हो सकता है ?

जब मारग के श्रम व्यापन सो, सिथलाइ के आलस भोइ गई
मिसिली मुरझाई मृनालिनि सी, वलछीन पसीननु-मोइ गई
कछु मेरे तवै परिरम्भन सो, सुठि अग-हराहरि खोइ गई
सुख मानि प्रिया ! यहँ वाही घरी, हियरा लगि मेरे तू सोई
गई ।।२४।।

लक्ष्मण : अव यहा से विंध्याचल के वन का आरभ हुआ है, वह देखिए विराध के सग आप का सग्राम हो रहा है ।

सीता . इसे रहने दीजिए, वह देखिए धूप से वचने के लिए आर्यपुत्र ताडपत्तो का छाता लगाए हम लोगो के साथ दक्षिणारण्य मे प्रवेश कर रहे है ।

राम . गिरि-निरझरनी-तीर यह, वही तपोवन पुज
यतनु-आसरम ढिग जहा, ठौर-ठौर द्रुम कुज ।
आतिथेय अति शाति प्रिय, निवसत यही गृहस्थ
खाय मुठी भर भात जो, नित राखत चित स्वस्थ ।।२५।।

लक्ष्मण : देखिए, जनस्थान के बीचोवीच सघन द्रुम कुजो के कारण सतत शीतल श्यामल अरण्य से घिरा हुआ और गोदावरी की कलकल ध्वनि से प्रतिध्वनित गुफावाला यह प्रस्रवणाचल है,

बरसते हुए बादल-दल की शोभा से इसकी घनश्यामता और भी बढ गई है।

राम : सुरति सुतनु ! उन दिननु की, तिहि गिरि पै सौमित्र
किए दोउ हम मुदित जब, सेवा विरचि विचित्र
सुरति सरस तटनी तहाँ, गोदावरि की है न
सुरति कहो तिह निकट को, नित बिचरन सुख दैन ॥२६॥

और

ससर्ग अति लहि हम मिलाए, जुग कपोल कपोल सो
दृढ पुलकि आलिगन कियो, भुजमेलि तब भुज लोल सो
कछु मन्द बानी सन विगतक्रम, कहत तोसो भामिनी
गए बीति चारहु पहर, पै नहिं जात जानी जामिनी ॥२७॥

लक्ष्मण . यह पंचवटी मे सूर्पणखा है।

सीता हा ! आर्यपुत्र, बस यही तक आपके दर्शन होगे ! !

राम : प्यारी ! वियोग से इतना क्यो डरती हो, यह तो चित्र है।

सीता . कुछ भी हो, दुर्जन से दु ख तो होता ही है।

राम : हाय ! जनस्थान की बात तो ऐसी जान पडती है मानौ अभी घटित हो रही हो।

लक्ष्मण : रचि कनक छलमृग राछसहिं, जो कुछ करयो दसकंध नै
भारी करयो प्रतिकार ताको, हाय ! तउ सालत मनै ! !
सीय हित तुम विकल क्रदन, जो विजन वन मे कियो
ताहि सुनि पासानहू रोबत, फटत वज्जुर हियो ॥२८॥

सीता (आंसू भरकर) हा ! देव रघुकुल आनदकद ! इतना दु ख आपको मेरे लिए ही झेलना पड़ा था ! !

लक्ष्मण . **(सांत्वना देने के अभिप्राय से देखकर)** आर्य, यह क्या है ?
तुव नयन सन टपकत टपाटप यह लगी अँसुअन झरी
बिखरी खरी भुअपै परी जनु टूटि मुतियन की लरी
रोकत यदपि बल सो विरह की वेदना उर तउ भरै
जब अधर नासा पुट कँपहिं अनुमान सो जानी परै ॥२९॥

राम · लाल !
तब तो सिया विरहागिनी विकराल कैसी हू रही
पै बैर अपनो लैन के हित सकल मै सहजहिं सही
अब चित्र देखन सों वही पुनि जरि उठी भभकाइकें
हिय-मरम-घाय समान पीडा देति डर उपजाइके ॥३०॥

सीता . हा, धिक्-धिक् ! उद्वेग के विपुल हो जाने के कारण मुझे ऐसा

सूझ पडता है मानो आर्यपुत्र से फिर मेरा वियोग हो गया हो ।

लक्ष्मण : (आप ही आप) अच्छा तो इनका ध्यान और कही ले जाए (चित्र देखकर प्रकट) मन्वंतर समकालीन अतिप्राचीन अपने पूज्य गृद्धराज जटायु के विक्रममय चरित्र का उदाहरण-स्वरूप यह चित्र देखिए ।

सीता : हा तात ! अपूर्व पराकाष्ठा को पहुचा हुआ आपका अपत्य स्नेह सराहनीय है।

राम हा तात ! काश्यप ! पक्षिराज ! पुण्य तीर्थ-स्वरूप ! आपके समान साधु महात्मा फिर कहा मिलेंगे !

लक्ष्मण यह जनस्थान के पश्चिम मे दनुकवध के रहने का स्थान चित्र-कुजवन नाम दडकारण्य का भाग है, यह ऋष्यमूक पर्वत पर मतग मुनि का आश्रम है, यह श्रवणानामसिद्धसिवरी और यह वही पपा नाम का सरोवर है ।

सीता : अरे ! यहा तो आर्यपुत्र क्रोध और शोक से अधीर होकर मेरे लिए उन्मुक्त कठ से रोए थे !

राम देवी ! यह वडा ही रमणीय सर है।

यहि मल्लिकजाति के हस महामृदु वोलत जोवन के मद छाये
निज पख सो दीर्घ मृनालनु के सितकज मनोहर मजु कंपाये
कछु जैसे ढरे औ नवीन भरे असुआन के वीच मे औसर पाये
इत हेर्यो जवै जव ता पल मे लगे उत्पल नील किधौं लहलाये
॥३१॥

लक्ष्मण : ये महाराज हनुमान जी हैं ।

सीता . वहुत दिनो से शोकसागर मे डूवे हुए लोगो का उद्धार कर अत्यत उपकारशील निस्सदेह ये महाभाग मरुतनदन हैं ।

राम : अजनि मन रजन विपुल, महावाहु वलवान
जग अरु हम जिनके ऋनी, ते यह श्री हनुमान ॥३२॥

सीता . लाल ! इस पर्वत का क्या नाम है जिसके कुसुमित कदंवों पर वैठे मयूर नृत्य कर रहे है और जहा वृक्ष के नीचे, मूर्छित दशा मे फीकी काँति वाले आर्यपुत्र, जिनका केवल प्रभाव-सौदर्य शेष रह गया है और जिन्हे रोते हुए तुम सम्हाल रहे हो, दर्शाए गए है ?

लक्ष्मण . अरजुन पहुप सुगधित गिरि सो माल्यवान जिहिनामा
जासु सिखर आश्रयत सघनघन-श्याम हृदय अभिरामा

राम : विरमौ विरमौ तात ! कहो जनि सुनन हेत बल नाही
लगत मनहुँ सिय-विरह-वेदना सालति पुनि उर माही ।।३३।।

लक्ष्मण : यहा से आगे स्वय आर्य के और कपिराक्षसो के असंख्य अद्भुत कार्य क्रमपूर्वक दिखाए गए है किंतु जान पडता है कि महारानी थक गई है, इस कारण निवेदन है कि आप कुछ विश्राम कर लीजिए ।

सीता : आर्य पुत्र ! इस चित्र-दर्शन से मुझ गर्भिणी के मन मे एक इच्छा जगी है, कहिए तो कहू !

राम : अवश्य कहो ।

सीता : मेरे मन मे आता है कि एक बार फिर उन सघन सुदर वनो मे विहार करू और भगवती भागीरथी के पवित्र निर्मल शीतल गभीर नीर मे खूब जी भर कर गोते लगाऊ ।

राम : भैया लक्ष्मण !

लक्ष्मण : महाराज !

राम : देखो, अभी तो गुरुजनो की आज्ञा मिली है कि गर्भिणी की जो इच्छा हो, पूर्ण कर देना । सो तुम जाकर एक उत्तम रथ ले आओ जिसमे इन्है हाल न लगै ।

सीता . महाराज ! आपको भी साथ चलना पडेगा ।

राम : हे कठोर हृदय वाली ! भला यह भी क्या तुम्हारे कहने की बात है !!

सीता : बस, ऐसी ही बातो से आप मुझे बहुत प्रिय है ।

लक्ष्मण . जो महाराज की आज्ञा । **(जाता है)**

राम प्यारी ! आओ इस खिड़की के पास विश्राम कर ले ।

सीता : अच्छा, मैं भी घूमते-घूमते थक गई हू, इस कारण मुझे भी नीद-सी आ रही है ।

राम · तो आओ, मेरा सहारा ले सो जाओ ।

बहु राक्षस चित्र बिलोकन सो, भयभीत कछू कल कम्पन पाई
श्रमसीकर मंजु वसीकर के कनिकान सो जासु बढी रुचिराई
जनु इन्दु मयूख विचुम्बित, सीतल चन्दमनीनु को हार सुहाई
निजबाहु वही ममकठ मे डारि, करौ विसराम प्रिया सुखदाई
।।३४।।

(पास बैठकर आनंद से)

जस जस परसत अग तुव, सूझ न परत विचार
मोह लपेट्यो अटपटो, उपजत मनोविकार

सुख है अथवा दुःख सो, निहचै वैठति नाहि
मद, प्रवोध निद्रा किधों, विप छायो तन माहि
डारि कवहु भ्रम भँवर यहु चेतहि देत भ्रमाय
अरु कवहू करि ताहि थिर, देत प्रमोद जगाय
ग्रहन करन निज-निज विपय, इन्द्रिय गन असमर्थ
अद्भुत गूढ रहस्य जे, समुझि परत नहि अर्थ ॥३५॥

सीता · (हसकर) आपका सर्वदा अनन्य एकरस प्रेम मुझ पर रहा है, इससे वढकर और क्या कहना चाहिए।

राम : सीचि सनेह के जीवन सो, करै सूखत हीय प्रसून मुखारी
इन्द्रिन को नित तृप्ति सुधा, वसुधातल पै वरसावत भारी
एतिक वैन विनीत तवै, दुखमोचन अम्वुजलोचनवारी
श्रौननि को सुख दायन ज्यो, जग त्यो मन हेत रसायन प्यारी ॥३६॥

सीता हे प्रियम्वद ! अव मैं सोऊगी··· (सोने के लिए इधर-उधर कुछ ढूढती हैं।)

राम अजी तुम क्या ढूढती हो ?
एक सो व्याहघरी सो सदा वन गेह मे नेह निवाहन हारी
वालपने और यौवन मे पुनि तोहि समोद सुआवनचारी
जाहि लख्यो सपनेहु नही अपने वस में कवहु परनारी
राम की ताही भुजा को सिराहनो लेउ लगावहु प्रानप्रियारी ॥३७॥

सीता · (नींद का नाट्य करती हुई) ऐसे ही है, आर्यपुत्र ! ठीक ऐसे ही है।

राम . क्या प्रियम्वदा गोद मे सो गई ? (स्नेह से देखकर)
गृह की यहि गृहलच्छिमी पूरन सुखमा-साज
अमृत सराई सुभग यहि इन नयनन के काज
तन परसत ऐसी लगै जनु चन्दन रस धार
यहि भुज सीतल मृदुल गल मानहु मुतियन हार
कछू न जाको लगत अस जहाँ न सुख-सजोग
किन्तु दुसह दुःख को भरचो केवल यासु वियोग ॥३८॥

(प्रतिहारी का प्रवेश)

प्रतिहारी . उपस्थित है महाराज।

राम : अरे कौन ?

प्रतिहारी : दुर्मुख, आपका गुप्तचर।

राम · (आप ही आप) दुर्मुख तो रनवास का सेवक है, उसे तो हमने नगर के लोगो का भेद लेने भेजा था (प्रकट) अच्छा आने दो।

(दुर्मुख का प्रवेश)

दुर्मुख : (आप ही आप) हाय, महारानी सीता के विषय मे ऐसे जनापवाद को, जिसे सपने मे भो विचारने से पाप लगता है, भगवान रामचन्द्र से कैसे कहूगा। विना कहे बनती भी नही, क्या करूं मुझ अभागे का तो काम ही यह है ।

सीता . (**स्वप्नावस्था में विलाप-सा करती हुई**) हाय, प्यारे आर्यपुत्र कहा हो ?

राम · ओहो । चित्र देखने से जो उत्कंठा हुई उसे वढाने वाली मेरी ही विरह-भावना सपने मे भी प्यारी को चैन नही लेने देती। (**स्नेह से सीता के अग पर हाथ फेरते हुए—**)

सुख दुख मे नित एक, हृदय को प्रिय विराम थल
सब विधि सो अनुकूल, विसद लच्छन मय अविचल
जासु सरसता सकै न हरि, कबहू जरठाई
ज्यो-ज्यो वाढत सघन, सघन सुन्दर सुखदाई
जो अवसर पै सकोच तजि परनत दृढ अनुराग सत
जग दुरलभ सज्जन-प्रेम अस बड भागी कोऊ लहत ॥३९॥

दुर्मुख : (**आगे बढकर**) महाराज की जय हो।

राम : कहो क्या समाचार लाए हो ?

दुर्मुख : सब नगरवासी आपकी बडाई करते है और कहते है कि हम लोग इनके सुखद सुराज्य मे वडे महाराज दशरथ को भूल गए।

राम यह तो बडाई हुई, दोष भी तो कुछ कहो, जिससे उसको दूर करने का उपाय किया जाए।

दुर्मुख : (**आंसू भर के**) सुनिए महाराज ! (**कान में कहता है—**)

राम हाय ! यह कैसा असह्य वचन वज्राघात है ! !

(**मूर्छित होते है**)

दुर्मुख : धीरज धरें महाराज, धीरज धरे।

राम (**ठडी सांस भरकर**) हाय !

हा सिय पर घर बास को, कैसो बुरो चवाउ
शान्त कियो रचि अतुल, अद्भुत तासु उपाउ
अब सो वही कुभाग वस, पुनि पुनि जागत दौर
कूकर काटन जहर सम, फैलि गयो सब ठौर ॥४०॥

हाय मैं अभागा अब क्या करूं (**विचारकर शोक के साथ**)

लोकाराधन धर्म, सब प्रकार सज्जननु को
सो पितु पाल्यो धर्म, निज प्राननि अरु मोहि तजि ।।४१।।

उसे मैं कैसे दूषित कर सकता हू, अभी भगवान वशिष्ठ जी की भी तो यही आज्ञा मिली है ।

जग उत्तम रवि कुल नृपति, सब विधि परम पवित्र
तिन कर अनुकरनीय प्रिय, उज्जल साधु चरित्र ।
सो तिह कुल मो जनम सो, भयौ मलीन अपार
जग जिह चलत चवाउ अस, मुहि अधमहि धिक्कार ।।४२।।

हा देवी, यज्ञात्मजा, हा निज जन्म रूप अनुग्रह से वसुधरा को पवित्र करने वाली विदेहवश नंदिनी, हा पावक वशिष्ठ और अरुधती द्वारा प्रशसित प्रशस्त पुण्यशीलवती, हा पतिप्राणा सीता, हा कठिन महारण्य वास की प्यारी सखी, हा तात-प्रेम-पालिता, हा अल्प किंतु मधुर मजु भाषिणी, किस कारण तुम्हारे भाग्य ने ऐसा पलटा खाया है क्योंकि—

तुमही सो यह जगत होतु, सिय सब विधि पावन
पै तुम्हरी चहुँ चरचा, जग जन करत अपावन
है तुमही सो लोग, पियारी सकल सनाथा
किन्तु हाय तुम भोगहु दुख जनु निपट अनाथा ।।४३।।

(**दुर्मुख से**) दुर्मुख, तुम लक्ष्मण से जाकर कहो कि तुम्हारे नये महाराज राम की यह आज्ञा है (**कान में कहते है—**)

दुर्मुख : केवल दुर्जनो के कहने से यह आपने क्या करना ठान लिया है । इससे तो आप पर कलंक लगेगा, महारानी अग्नि परीक्षा मे भी विशुद्ध प्रमाणित हो चुकी है, और फिर आजकल तो उनके गर्भ मे पवित्र रघुकुल की सतान की स्थिति है, यह भी विचार करना होगा ।

राम : अरे चुप, भला प्रजा के लोग दुर्जन किस तरह हो सकते है !

निरत प्रजा-प्रिय भानुकुल, सब प्रकार सुखदाय
विधि बस मम ससर्ग सो, भयो कलकित हाय
कारे कोसनु पै भई, सिया-शुद्धि की रीति
अरे अनोखी भाँति सो, को करि है परतीत ।।४४।।

बस तू जा, चला जा ।

दुर्मुख : हाय महारानी !

राम : हाय, मैं निष्ठुर कर्म करने वाला बड़ा निर्दयी हू ।

निज बालपने सो सदा ही पली जनकादिक की हियमोद जई
उर-अन्तर जो कबहूँ न करचो सब भाँति सो मोते सनेह छई
अब दैके दगा अपराध बिना तिह सीय को हाय ये कैसी भई ! !
जमराज के आनन दैन चहौ जन, मैना कसाई को सौपि दई
॥४५॥

तो फिर हाय, जिसके छूने से भी पाप लगता है ऐसा मैं अधर्मी देवी को भी छूकर क्यो दूषित करूं··· (**सीता का सिर धीरे-धीरे उठाकर अपना हाथ खीचकर**—)

भोरी सिया मोहि छाँड दै मै अति अधम चाडाल हूँ
देख्यो न होगो अस कहूँ अरु ना सुन्यो होगो कहूँ
लखि ऊपरी व्यौहार मम श्री खड के धोखे परी
दुरभाग बस विष विटप सो अबला वृथा लिपटी अरी ॥४६॥

(**उठकर**) हा ! आज पृथ्वी लौट गई, राम के जीवन का प्रयोजन नष्ट हो गया, अब जगत सूना उजाड जगल-सा लगने लगा, यह ससार असार है, शरीर भी अपने लिए बोझ हो गया है, कोई आश्रय भी तो नही रहा, किंकर्तव्य-विमूढ हू, क्या करूं, कहा जाऊ अथवा यो कहना चाहिए—

जगत मे नित भोगन को विथा
बस मिल्यो यह जीवन राम को
मरम भेदक प्रानन् सो जडचो
सकत ना कढि बेबस चेतना ॥४७॥

हा जननी अरुधती ! हा भगवन् वशिष्ठ विश्वामित्र ! हा पवित्र पावक ! हा देवी वसुन्धरा ! हा जनक ! हा पिता ! हा माता ! हा परमोपकारी लंकाधिपति विभीषण ! हा प्यारे सुहृद सुग्रीव ! हा सौम्य हनुमान ! हा सखी त्रिजटा ! आज राम पापी ने तुम सबको धोखा दिया और तुम्हारा सबका निरादर किया, हाय अब मुझे इनके नाम लेने का भी अधिकार कहा है क्योकि—

ये सच्चरित्र अनन्य, जगविदित है धनि धन्य
कहँ मै कृतघ्न नृसस, हत-सूर्यवस-प्रसस
अब लेतु जो इन नाम, सब विधि पुनीत ललाम
जनु परसि तिनको अक, हा ! हा ! करौ सकलक ॥४८॥

जिसे मैंने—

अपनो गिनि के हियरा सो लगी, निरसक सो नीद ने आइ गही
मृदु मूरतिवत रमा गृह की, सुखमा सो सनी सुखदा दुलही
सपने मे भयाकुल गर्भवती, दिन पूरे के भार सो काँपि रही
निरमोही अरे सोइ वज्रहियो करि, राछस को वलि दैन चही
।।४९।।

(सीता के चरण अपने माथे पर रखकर) देवी, देवी, यह अतिम वार राम के सिर से आपके चरण कमलो मे स्पर्श है (रोते हैं)

(नेपथ्य में)

दुहाई है, महाराज की दुहाई है ।

राम देखो तो यह क्या है ?

(फिर नेपथ्य मे)

तप किये जिनने अति दारुण
व्रजरसा यमुना तट रम्य मे
लवण-त्रासित ता ऋषि-पुज को
सरन मे रघुनन्दन राखिये ।।५०।।

राम : अरे क्या अभी तक राक्षसो का त्रास बना ही है । अच्छा, तो अभी इस कुम्भीनसी के पुत्र को नाश करने के लिए स्वनामधन्य शत्रुघ्न को भेजू (कुछ चलकर और फिर ठहरकर) हा देवी, तुमको कैसे अकेली छोड़ू, भगवती भूतधात्री ! तुम अपनी प्यारी जानकी को देखती रहना, तुम्हे सौपता हू ।

जनक के रघु के बरवंस को
सतत जो सत मंगलदायिनी
लहलही लतिका जिह कीर्ति की
तव सुता यह सोइ वसुन्धरे ।।५१।।

(जाते है)

सीता : (सपने मे) हाय प्यारे प्राणनाथ आप कहा हो ! (झट उठकर) हाय-हाय, बुरे स्वप्न से छली जाकर दुःख मे मैं आर्य पुत्र को पुकार रही हू, हाय धिक्कार ! जो मुझ अकेली को सोते छोड वह चले गए, अच्छा देखा जाएगा, फिर मिलने पर जो मैं अपने वस रही तो उन पर विना कोप किए न रहूगी, अरे भाई वाहर कोई है ? (दुर्मुख का प्रवेश)

दुर्मुख देवी, कुमार लक्ष्मण ने कहला भेजा है कि रथ सज गया, श्रीमती आकर उस पर विराजमान हो जाएं ।

सीता . अच्छा, मैं चलती हू, पर चलने से गर्भ भार कपेगा इसलिए

अंक २

अथ विष्कम्भक

(नेपथ्य मे)

तपस्विनी जी आपका स्वागत है !

(पथिक के भेष मे तपस्विनी का प्रवेश)

तपस्विनी अहा, यह तो वनदेवी है जो फल-फूल और पल्लवो का अर्घ बनाकर मेरे लिए लाई है ।

(वनदेवी का प्रवेश)

वनदेवी · (अर्घ देकर)

भोगौ यथा रुचि या वन को, तव दरस मिले धनि भाग हमारो
पुण्य घनेनु सो पावत है, जग पावन सज्जन-सग-सहारो
छाहरि मे विरमाउ, पियो जल चारू, मुनीनु के जोग पियारो
कन्द फराहर पाइये जू, काउ और की ना सब भाँति तिहारो ।।१।।[1]

तपस्विनी · अहा, क्या कहना है !

बहुधा प्रिय वृत्ति बिनै-मधुरी-बतियानि सो चारु विचार दृढावै
पहँचानि अनिन्दित नित्तनई, मति मगल मोद मई मन भावै

१ निज रुचि अनुसारा भोगहु, सारा वन यह धनि मम भागै,
सज्जन सतसगा धरम प्रसगा मिलत, सुकृति जो जागै
तरु छाँह सुहावन मृदुजल पावन, मुनिजन भोजन जोई
फल वा कन्दा सब स्वच्छन्दा, बरतहु निज गिनि सोई ।।१।।

रस एक अगार पिछार लसैं, छल छिद्र बिना, त्रयताप नसावैं
इमि सज्जन-पुण्य-चरित्र सदॉ, चहुँ ओर विजै बरसा
बरसावैं ।।२।।[1]

(दोनों बैठती है)

वनदेवी : कृपा कर बतलाइये तो आपका शुभ नाम क्या है ?

तपस्विनी : मुझे लोग आत्रेयी कहते है ।

वनदेवी . आर्ये आत्रेयी ! अच्छा तो फिर आपका आना कहाँ से हुआ और इस दण्डकारण्य मे विचरने से श्रीमती का क्या प्रयोजन है ?

आत्रेयी :
या वन मे निवसत सुभग, अगस्तादि मुनि पुज
सुन्दर सुर सो नित करैं, साम-गान की गुज
साम गान की गुज गूँजि, मजुल मन मोहत
सत उपदेस असेस काज जो, जग मधि सोहत
तिन सो मैं वेदान्त पढन कौ प्रन धरि मन मे
वाल्मीकि ढिग सो सिधाइ विचरति या वन मे ।।३।।

वनदेवी अजी जब और ऋषि-मुनि तो वेद का पारायण करने के लिए उन प्राचीन ब्रह्मज्ञानी वाल्मीकि जी की शिष्य रूप से सेवा करते है, फिर कहिए आपके इतनी दूर आने का क्या कारण है ?

आत्रेयी : वहा पढने मे बडा विघ्न होता है, इसलिए इतनी दूर आना पडा ।

वनदेवी . सो कैसे ?

आत्रेयी : वहा किसी देवी ने मा का दूध छुटते ही अत्यत विचित्र शैशव अवस्था के दो बालक लाकर उस महात्मा को अर्पण किए, जिनको देख ऋषियो का ही नही वरन सपूर्ण चराचर मात्र का मन स्नेह से मुग्ध हो जाता है ।

वनदेवी : आप उनका नाम जानती है ?

आत्रेयी : उस देवी ने उनका नाम 'कुश लव' बतलाया और साथ ही साथ उनका प्रभाव भी जता दिया था ।

वनदेवी : कैसा प्रभाव ?

१ जग जन मनमोहन सविनय सोहन साधु वृत्ति सुठि वानी
मति शुद्ध सयानी मगलवानी विमल समागम सानी
नित आँख अगारी पीठ पिछारी सरस सुखदाई
अस सुभग सप्रीती सज्जन रीती अकपट विमल सुहाई ।।२।।

आत्रेयी . गुप्त मंत्र सहित जृम्भकास्त्र उनको जन्म से ही सिद्ध है।

वनदेवी यह तो बडे आश्चर्य की बात है!!

आत्रेयी भगवान वाल्मीकि जी ने धाय का काम आप अंगीकार कर उन दोनो को पाला-पोसा, और मुडन सस्कार कराकर बडी सावधानी से उन्हे तीनो वेद छोडकर सब विद्या पढा दी, फिर गर्भ के ग्यारहवे वर्ष लगते क्षत्रियोचित विधि से उन्हे यज्ञोपवीत देकर शेष तीनो वेद भी पढा दिए, उनकी बुद्धि बडी तीव्र और धारणा शक्ति अत्यंत ही प्रबल है; उनके साथ भला हमारा किस प्रकार निर्वाह हो सकता है, क्योकि—

वितरन गुरु इक सम करत, बुध मूरख को ज्ञान
करत न, हरत न, कछुक तिन बोध शक्ति परिमान।
किन्तु समय परिणाम के, अन्तर विपुल लखात
रहत मूढ के मूढ़ इक, अन्य चतुर बनिजात।
जिमि दिनेस समभाव सो, नभ मे करत प्रकास
पूरन प्रति थल पर परत, तासु किरन आभास।
मनि मजुल समरथ सदा, बिम्ब ग्रहन के माहि
पै माटी के ढेल कहूँ, द्युति मय दीखत नाहि ॥४॥

वनदेवी : बस यही विघ्न था ?

आत्रेयी : और भी है।

वनदेवी : वह और क्या है ?

आत्रेयी . एक दिन मध्याह्न मे वह महर्षि महाराज नदी तमसा के तीर गए, वहा देखा कि परस्पर विहार करते हुए क्रौंच पक्षी के जोडे मे से एक को व्याध ने मार डाला है, उसी समय अकस्मात् ऋषि के मुख से, नीचे लिखे आशय का स्पष्ट, दोष रहित पूर्वापर सबधयुक्त मधुर अनुष्टुप् छंद के रूप मे वाग्देवी का प्रकाश हुआ—

रति विलास की चाह सों मदमाती सानन्द
क्रौंचनि की जोडी फिरत, विहरत जो स्वच्छन्द
हनि तिन मे सो एक को, कियो परम अपराध
जुग-जुग लो तोहि न मिलहि, कबहुँ बडाई व्याध ॥५॥[1]

वनदेवी : अरे! यह तो वेद से भी भिन्न नये छद का-सा आविष्कार है!!

1 मा निषाद प्रतिष्ठा त्वमगम शाश्वती समा
यत् क्रौञ्च मिथुनादेकमवधी काम मोहितम्।

आत्रेयी : उसी समय भूत भावन पद्मयोनि भगवान चतुरानन ने शब्द ब्रह्मप्रकाशधारी ऋषि को दर्शन देकर कहा, "हे मुनि-पुगव ! आपको शब्दब्रह्म के स्वरूप का भली भाति ज्ञान हो गया है, इस हेतु अब कुछ रामचरित रचिये और अपनी दिव्य प्रतिभा की प्रभा को निर्विघ्न फैलाते हुए आदि कवि की उपाधि को सार्थक कीजिए !" बस यह कहकर वह अंतर्धान हो गए। इस प्रकार मानव समाज मे सबसे पहले श्री वाल्मीकि मुनि ने शब्दब्रह्मबीज से रामायण सरीखे सरस इतिहास कल्पतरु को पल्लवित किया।

वनदेवी · चलो बडे हर्ष की बात है, अब तो सारा ससार पडित हो जाएगा।

आत्रेयी : इन्ही कारणो से, जैसा कि मैंने आपको बतलाया, विद्या अध्ययन मे बडा विघ्न उपस्थित होता है।

वनदेवी ठीक है, होता होगा।

आत्रेयी · हे कल्याणमयी, मै भली भाति विश्राम कर चुकी, अब तो कृपा कर अगस्त जी के आश्रम का मार्ग बता दीजिए।

वनदेवी : यहा से पचवटी मे होकर, बस गोदावरी के किनारे-किनारे आप चली जाइए।

आत्रेयी (आंसू भरकर) क्या तपोवन यही है, क्या इसे ही पचवटी कहते है, क्या यही नदी गोदावरी है, क्या इसी पर्वत का नाम प्रस्रवणाचल है, क्या जनस्थान की वनदेवी वासती आप ही हो ?

वासती हा जी, है तो सब वे ही, जैसा कि आप कहती है।

आत्रेयी . बेटी जानकी,

वे ही तुव प्रियबन्धु द्रुमादिक ये सुखदाई
जिन प्रसग बस चलत कबहुँ चरचा मन भाई
यदपि नाम अवशेष मात्र तुव हाय प्यारी
किन्तु इनहिं लखि, लगत मनहुँ तुम नयन अगारी ॥६॥

वासंती (**भय के साथ, आप ही आप**) "यदपि नाम अवशेष मात्र तुव हाय प्यारी" इन्होने क्यो कहा (**प्रगट**) आर्ये, बतलाओ तो सीता देवी पर ऐसी क्या विपत्ति पडी ?

आत्रेयी : केवल विपत्ति ही नही पडी, बेचारी को कलक भी लगा (**कान मे कहती है**)

वासती . हाय-हाय, यह तो दारुण दैव का बडा प्रकोप हुआ (**मूर्छित होती है**)

आत्रेयी : अजी धीरज धरो, धीरज धरो।

वासती : हां प्यारी सखी ! हा सौभाग्यवती ! क्या तेरे भाग्य मे यही

वदा था ! रामचन्द्र ! रामचन्द्र! रहने दो, अब तुम्हारे नाम लेने से क्या लाभ है !! आर्ये आत्रेयी, जब उन्हे वन मे त्यागकर लक्ष्मणजी लौट आए तव सीता पर कैसी वीती, कहिए यह भी आपको कुछ विदित है ?

आत्रेयी : नही, कुछ नही।

वासंती : हाय-हाय, वशिष्ठ और अरुधती से रक्षित और अधिकृत रघुकुल मे, वडी-वूढी कौशल्या आदि के जीते जी यह घोर अनर्थ किस प्रकार हुआ ?

आत्रेयी तव वडे-वूढे तो सव शृगी ऋषि के आश्रम मे गए थे। अब जव कि वारह वर्ष पीछे उनका यज्ञ समाप्त होने पर सब के सब वहा से विदा होने लगे, तव भगवती अरुधती ने कहा कि मैं वहू से सूनी अयोध्या मे नही जाऊगी और इसका कौशल्या माता ने भी अनुमोदन किया। इस अनुरोधवश भगवान वशिष्ठ ने पुनीत वाक्यो से सबको आश्वासन देकर कहा कि चलो, सव वाल्मीकि जी के तपोवन मे चलकर वास करेगे।

वासती तो आजकल महाराज राम क्या कर रहे है ?

आत्रेयी उन्होने एक अश्वमेध यज्ञ आरभ किया है।

वासती हाय, तो क्या दूसरा व्याह भी कर लिया ?

आत्रेयी अजी, ऐसा मत कहो, ऐसा मत कहो।

वासती तो फिर यज्ञ मे उनकी सहधर्मिणी कौन है ?

आत्रेयी : सीता की स्वर्णमयी मूर्ति वनवा ली है।

वासती : हाय ! वडे खेद की बात है

कुलिश सो हुँ कठोर अपार है
मृदु प्रसून हुँ सो जिनको हियो
अस अलौकिक जो जन जगत मे
सकत पाइ भला तिन थाह को ? ॥७॥

आत्रेयी . महर्पि वामदेव द्वारा अभिमत्रित पवित्र अश्व भी छोड दिया गया है और शास्त्रविधि के अनुसार उसके रक्षक भी नियुक्त हो गए, कुमार लक्ष्मण के पुत्र दिव्यास्त्र-कुशल चतुर चन्द्रकेतु उस चतुरगिनी सेना के सेनापति निर्वाचित हुए है।

वासती चलो, वडे आनन्द की वात है कि कुमार लक्ष्मण के भी पुत्र है।

आत्रेयी . इसी वीच मे एक ब्राह्मण अपने मरे हुए पुत्र को राजद्वार पर पटक, छाती पीट-पीट कर चिल्लाने लगा, "हाय, अन्याय हो गया ! हाय, घोर अनर्थ हो गया !" उसका पुकारना सुनकर

करुणामय रामचन्द्र ने विचारा कि बिना राजा के अपराध किए प्रजा मे अकाल मृत्यु हो ही नही सकती। इस प्रकार, वे अपने को दोपी ठहरा ही रहे थे कि इतने मे आकाशवाणी हुई—

शूद्र एक शम्बूक तपत पृथ्वी पैं भारी
तिह सिर छेदन जोग तिहारे, राम! खरारी!
ताहि मारि अब शीघ्र लोक मर्याद रखाओ
दै द्विज बालहिं प्रानदान जग अजस नसाओ ॥८॥

इतना सुनते ही तुरत खड्ग हाथ मे ले, पुष्पक विमान पर चढ शूद्र तपस्वी के खोजने के लिए महाराज ने, तभी से, सारी दिशा-विदिशाओ मे भ्रमण करना आरंभ कर दिया है।

वासती : अधोमुख करके धूमपान करने वाला शम्बूक नामक शूद्र इसी जनस्थान मे तप करता है इसलिए बहुत सभव है कि रामचन्द्र फिर कभी इस वन को सुशोभित करैं।

आत्रेयी : हे कल्याणमयी, अब तो मैं जाना चाहती हूँ।

वासती अच्छा, अब दिन भी बहुत चढ आया है। देखिए—

जहाँ घोसला-निकुज आइ के कपोत-पुज
खुटक-बढैया थके कूजन सुनावही
छाहरि मे छाल जिनकी कुरेदि कीरनि को
चोचनु निकारि खात खग दरसावही
जबैंहिं खुजावै गज गडथल पीडनि सो
टपकि घमीले जिन कुसुम सुहावही
ऐसे चारु कूलद्रुम फूल बरसाइ मानौ
गोदावरी पूजि-पूजि तासु गुन गावही ॥९॥

(इति विष्कम्भक)

[स्थान—दण्डक वन]

(पुष्पक विमान मे बैठे हुए खड्ग हाथ मे लिए सदय हृदय श्री राम का प्रवेश)

रे हस्त सूधे आज, द्विज सिसुहिं जियावन काज,
अब यहि कृपान सम्हार, करु शूद्र मुनि पै बार,
अति दुसह गर्भहिं धारि, चित खिन्न जनक कुमारि,
तन छीन जिहि कल नाहिं, तिहि विजन वन के माहिं,
जो तजत नहिं सकुचात, ता राम को तू गात
तो मधि कठोर नृशस, कित सो दया को अस ॥१०॥

(प्रहार करके) अब तो निर्दय हृदय राम के सदृश कर्म हुआ और ब्राह्मण का पुत्र भी जी उठा।

(शबूक का दिव्य पुरुष के रूप मे प्रवेश)

दि० पुरुष : जय हो, महाराज की जय हो।

जम दड हू सो रछत जो नित, दड तिन मोको दयो
अब जी उठ्यो तासन शिशू यह, विपुल मम वैभव छायो
शम्बूक तव पद नवत, माँगत भक्ति भव भय हारिनी
सत सग मे यदि मृत्युहू मिलि जाय, सोऊ तारिनी ॥११॥

राम . दोनो बाते हमारे मन की हुईं, अच्छा भाई! तुमने बडा तप किया है इसलिए—

है जहँ पूरन आनद ललाम, जो परम पुण्य-सम्पत्तिधाम
अस, ध्रुव प्रकाश जहँ दिव्य व्याप्त, वै राज लोक हो तोहि प्राप्त ॥१२॥

शबूक . आप ही के चरणारविंद के प्रसाद से यह महिमा प्राप्त हुई है, इसमे तप का क्या फल है अथवा तप ही ने यह महदुपकार किया हो, क्योकि—

जग नायक त्रायक पूज्य प्रभो,
गरुडध्वज, शौरि, शरण्य विभो
प्रिय पावन भावन भक्तिधनी
जिह लागि करै मुनि खोज घनी
इत सो हरि खोजत मोहि भये
अपुहि सत योजन आइ गये
कहँ शूद्र अधीन मलीन गती
कहँ श्रीपति तीनहुँ लोकपती
अपनाइके जो मम शुद्धि करी
तप को यह पुण्य प्रसाद हरी
नहि तो तजि औध सुराज महा
वन दडक मे तव काज कहा ? १३॥

राम : क्या यह दण्डक वन है ? (चारो ओर देखकर) हा ठीक।

कहुँ सजल शस्य-श्यामल रसाल, कहुँ सूखो रूखो अति कराल
कहुँ कहुँ झरना-छर-छर निनाद, जहँ गूँजि करत दस दिसि सनाद
उर तीरथ आश्रम गिरि समेत, सर सरित गर्भ-कानन निकेत
पूरव परिचित सो अपन जोइ, दीसत दण्डक वन यही सोइ ॥१४॥

शंबूक : हा, यह वही दण्डक वन है जहा पूर्व निवास करते हुए—

चौदह सहस रनधीर, अतिभीम राछस वीर
खरदूषणादि कराल, तुमने हने तिह काल ।।१५।।

राम : तो यह केवल दण्डक वन ही नही, जनस्थान का भी कुछ भाग इसमे मिला है ?

शंबूक : ठीक ऐसा ही है। देखिए, दक्षिण की ओर प्राणी मात्र का हृदय दहलाने वाली मदोन्मत्त प्रचड व्याघ्रादि वन जतुओ से भरी यह सघन विंध्याटवी उसी जनस्थान पर्यन्त चली गई है।

ये जनस्थान-सीमा महान, जहँ सघन गहन वन विद्यमान
निश्शब्द शान्ति मय कहुँ अखड, वन-जन्तु नाद सो कहुँ प्रचड
जहँ लपलपात रसना अपार, सुख सो सोवत अहि फन पसार
तिन तप्त साँस सन कहुँ विशाल, जरि उठत भयकर ज्वालमाल
दै गई भूमि जहँ पै दरार, दीसत कछु-कछु जल तिन मझार
अजगर-श्रम-सीकर भासमान, प्यासे गिरगट तिहि करत पान ।।१६।।

राम : पहलो खर को घर यही, जनस्थान दरसात
मोहित अबकी सी परत, उन द्यौसनि की बात ।।१७।।

अरे, क्या ये वे ही महावन है जिन्हे विदेह नदिनी बडा प्यार करती थी। उन्हे वन मे रहने का सदा ही चाउ रहता था। अब प्यारी के बिना ऐसा मालूम होता है मानो इनसे अधिक भयकर ससार मे कोई वस्तु ही नही है, हा ! (आसू भरकर)

मकरद सुरभित विपिन मे, तुव-सग बसिहो पीउ !
यह कहत जनु अनुभवति, अस रह्यो नेह मय ता-जीउ ।।१८।।
कछु हू करैंना तोउ ढिग बसि, करत बिपदहिं दूरि
अवसि जाको जो सुहृद, सो तासु जीवन-मूरि ।।१९।।

शबूक : बस, महाराज ! इन कठोर दृश्यो को छोडिए, इनसे आपका हृदय वृथा ही व्यथित होता है। अब आप जनस्थान मध्यवर्ती शात-गभीर वनो को देखिए, जहा मतवाले मनोहर मयूरो के कमनीय कोमल कठ सरीखे हरे-भरे पर्वत अपनी लहलही छटा छिटका रहे है, जो सघन शीतल श्यामल तरुण तरुओ की सुखद शोभा से सर्वत्र व्याप्त हो रहा है और व्याघ्रादि जंतुओ का उपद्रव न होने के कारण निर्भय विचरते हुए कुरगो की क्रीड़ा-स्थली बना है।

यहि वेतस-वल्लरी पै खग वैठि, कलोल भरे मृदु वोल सुनावै
तिन सो झरे-पुष्प-सुगधित तोय, वहै अति सीतल ही तल भावै
फल पुज पकेनि के कारन, श्यामल मजुल जवु निकुज लखावै
उनमे रुकि कें करि घोर घनी, झरनानि के श्रोत समूह सुहावै ॥२०॥

और—

इन खोहनि मे दल रीछनि को वसि, जोवन जोर मरोर जतावै
गिरि गूँज के सग उमग भर्यो, भयकारी धुनी घनघोर मचावै
कहुँ कुजर सो रुँदि कुन्दरु की, कुचिली निज गाँठिन को दरसावै
तिन सो कहुँ सीतल और कसाय, चुई रस-गधि चहूँ छिति छावै ॥२१॥

राम (आसू रोककर) अच्छा, तुम्हारा कल्याण हो। अव तुम विमान पर वैठकर दिव्य लोक को सिधारो।

शवूक : श्री महाराज, मै पुरातन ब्रह्मज्ञानी भगवान अगस्तमुनि को प्रणाम करके आपके दिए हुए अक्षयलोक को जाता हू।

(जाता है)

राम. ये वन सोई लख्यो पुनि आज, जहाँ सुख सो वहु द्यौस विताये
भ्रात औ सीय के सग करे, मुनिराजनि के सतसग सुपाये
नित्त फलाहार खात रहे, निज धर्म के पालन मे चितलाये
तोउ सवै जग भोग विलासन के रस सो हम वचित नाये ॥२२॥

ये गिरि सोई जहाँ मधुरी, मदमत्त मयूरनि की धुनि छाई
या वन मे कमनीय मृगानि की लोल कलोलनि डोलनि भाई
सोहे सरित्तट धारि घनी, जलवृच्छन की नवनील निकाई
वजुल मंजु लतानि की चारु, चुभीली जहाँ सुखमा सरसाई ॥२३॥

और—

जो देखन मे दूरि सो, लागत जनु घनमाल
प्रस्रवणाचल सोइ यह, गोदावरी रसाल ॥२४॥
या ऊँची सी सिखिर पै, गृध्रराज को तात
रह्यो वास थल जाहि लखि, अजहु जीय पुलकात।
धुर यहि नीचे परन की, कुटी सुहावन छाइ
वास कियो हमने रुचिर लछिन सीय संग आइ।

लसत सघन श्यामल विपन, जहँ हरपावत अंग
करि कलोल कलरव करत, नाना भाँति विहंग ।
फल भरन सो झालरे, हरे वृच्छ झुकि जाहिं
झिलमिलाति झाँई सु तिन, गोदावरि जल माहिं ।।२५।।

हा ! यह वही पंचवटी है, यही अनेक दिन निवास करने के कारण ये प्रदेश हमारे विविध स्वच्छद विहार के साक्षी है, यही कही प्रिया की प्यारी सखी वनदेवी वासती रहती है, हाय, मुझ पर यह न जाने कैसा अनर्थ टूट पडा, कुछ समझ मे नही आता !

कैधो चिर सन्तापज अति तीव्र विष-रस
फैलि सब तनमाहिं रोम-रोम छायो है
कैधो धाय कितहू ते शल्य को शकल यह
वेग सो हृदय मधि सुदृढ समायो है
कैधो कोऊ पूरित मरम-घाव खाय चोट
तिरकि भयकर विमलि हरि आयो है
होइ न विरह-शोक घनीभूत कोऊ दुख
करि जाने विकल मो चेतहू भुलायो है ।।२६।।

तो भी मै अपने पूर्व परिचित स्थानो को देखे बिना नही जा सकता (देखकर) अब तो यहा की अवस्था मे भी कुछ अतर हो गया है ।

सोहत हो प्रथम जहाँ पै सरि स्रोत मजु
तहाँ अब विपुल पुलिन दरसावै है
विरल हो प्रथम विपिन तहाँ घनो भयो
जहाँ घनो तहाँ अब विरल दिखावै है
बहु दिन पाछे विपरीत चिह्न देखन सो
यह कोऊ भिन्न वन शक जिय आवै है
जहाँ के तहाँ पै किंतु अचल अचल हेरि
'सोई पचवटी' विसवास ये दृढावै है ।।२७।।

हाय, यहा से लौट जाने की इच्छा रहते हुए भी पचवटी का स्नेह मुझे अपनी ओर बरवस खीचता है। (करुणा भरे स्वर मे)

बितये बहु दिन यहँ सिया सग, जनु अपने ही घर सह उमग
नित नव यहँ की चरचा चलाइ, पायो हम दोउन सुख सिहाइ

अव हाय अकेलो प्रिया हीन, अति दुसह विरह दुख सो मलीन
यह राम पातकी करि प्रवेश, देखहि कस पचवटी प्रदेश
जो लखत, हाय तो सिय वियोग, उद्दीपत जिय मे शोक-योग
यदि नाहि लखत तउ असतोष, सिर कृतघ्नता को चढत दोष
कारन, जो प्रियको प्रिय महान, ताको नित चहियतु करन मान
अब कैसे हु न कोऊ वचाउ, हा हा नहि कछु सूझत
उपाउ ।।२८।।

(शवूक का प्रवेश)

शवूक : जय हो, महाराज की जय हो, अगस्तजी ने मेरे मुख से श्री महाराज का इस वन मे शुभागमन सुनकर कहला भेजा है कि विमान से आपके उतरते ही मगलाचार की सामग्री सजाए, स्वागत करने के लिए अत्यत प्रेमपूर्वक लोपामुद्रा और सब आश्रमवासी श्रीमान की वाट देख रहे हैं, सो हमारा आदर स्वीकार कर सबो का मनोरथ पूरा कीजिए, पुष्पक विमान वहुत शीघ्र जाता है, अश्वमेध के समय तक तो आप उससे अयोध्या पहुच सकते है ।

राम . महर्षिजी की आज्ञा सिर माथे ।

शवूक · तो पुष्पक को फिर इधर फेरिये ।

राम . भगवती पचवटी ! वडो के आज्ञा-पालन करने की शीघ्रता मे तुम्हारी यथोचित सेवा किए विना जा रहा हू, उसे थोडी देर के लिए क्षमा करना ।

शवूक देखिए, महाराज देखिए, यह वही क्रौंच गिरि है—

जहँ बाँस-पुज कुज कलित कुटीर माहि
घोरत उलूक भीर घोर घुघियाइ कें
तासु धुनि प्रति धुनि सुनि काक कुल मूल
भय वस लेत ना उडान कहुँ धाइ के
इतउत डोलत मु वोलत है मोर, तिन
सोर सन, सरप दरप विसराइ कें
परम पुरान श्रीखड तरु कोटर मे
मारत स्वकुडली सिकुरि घवराइ के ।।२९।।

और—

जिन कुहरनि गद-गद नदति, गोदावरि की धार
शिखिर श्याम, घन सजल सो, ते दक्खिनी पहार ।

करत कुलाहल दूरि सो, चचल उठत उतंग
एक दूसरी सो जहाँ, खाइ चपेट तरंग।
अति अगाध विलसत सलिल-छटा अटल अभिराम
मन भावन पावन परम ते सरि-सगम धाम ॥३०॥

(जाते है)

अंक ३

अथ विष्कम्भक

(तमसा और मुरला दो नदियो का स्त्री रूप में प्रवेश)

तमसा : सखि मुरला, यहा कैसे फिर रही हो ?

मुरला : प्यारी तमसा, भगवान अगस्त ऋषि की पत्नी लोपामुद्रा ने मुझे नदी शिरोमणि गोदावरी के पास यह कहने भेजा है कि तुम जानती हो कि जव से राम वधू सीता से अलग हुए है, तव से—

कहत न काऊ सुहृद सों, विथा राम गभीर
तासो दिन-दिन वढति तिन, गूढ सघन मन पीर
यथा धातु पुटपाक मे, कोऊ जवै धरि जात
भीतर ही भीतर जरति, वाहिर कछु न लखात ।।१।।

इसलिए उन सरीखी प्राण प्यारी विदेह कुमारी पर महान् कष्ट पडने के सोच और उनके दुस्सह अथाह वियोग-संताप के कारण रामचन्द्र इन दिनो ऐसे दुर्वल हो गए है कि उनको देखकर मेरा हृदय कापता है । और फिर अव लौटते समय वह पचवटी मे आवेंगे तो वे प्रदेश अवश्य उनके दृष्टिगोचर होगे जो प्रिया-प्रियतम दोनो के स्वच्छद विहार के साक्षी है । ऐसी दशा मे शोक और क्षोभ से स्वाभाविक धीर-वीर-गभीर रामचन्द्र के मूर्छित होने की पद-पद पर आशका है । इसलिए भगवती गोदावरी ! आपको उस समय अत्यत सावधान रहना होगा ।

जव राम खेद समेत हो
पुनि पुनि विकल गतचेत हो
तव-तव कमल परिमल भरी
सरि- सीकरनु-सीतल करी

मृदु मद पौन चलाइयो
सुठि उनहिं चेत कराइयो ।।२।।

तमसा . भगवती का विचार तो प्रेमानुकूल है किंतु रामचन्द्र का मोह दूर करने का कारण तो पहले से ही विद्यमान है ।

मुरला . सो कैसे ?

तमसा : सुनिए, जब लक्ष्मण वाल्मीकि के तपोवन के पास सीता को त्याग कर चले आए तब वह प्रसव की विपुल वेदना से घबडा कर गंगा जी की धारा मे कूद पडी । वही उनके दो बालक हुए जिन्हे अत्यत अनुग्रहपूर्वक भगवती वसुन्धरा और भागीरथी रसातल ले गई और मा का दूध छूटते ही देवी जाह्नवी ने स्वय दोनो बालक महर्षि वाल्मीकि को अर्पण कर दिए ।

मुरला · (आश्चर्य से)

सिय सम जन की विपतिहू, अचरज-जनक लखाय
वाल्मीकि भुवि गग से, करत जासु हित आय ।।३।।

तमसा . और अभी सरयू के मुख से शबूक वध-वृत्तात के कारण रामचन्द्र के जनस्थान मे आने की सभावना सुनकर, स्नेहमयी लोपामुद्रा के समान, ऐसे ही भय और शका से प्रेरित होकर भगवती भागीरथी सीता समेत किसी गृह-कार्य के बहाने गोदावरी से मिलने आई है ।

मुरला . भगवती भागीरथी का विचार बहुत ठीक है, क्योकि राजधानी मे अनेक लोकोन्नत साधनो की सफलता के लिए सतत कार्य-मग्न रहने से रामचन्द्र का चित्त बहला रहता है और अब बिना किसी काम-काज के उनका निरतर शोकावस्था मे पचवटी आना महाअनर्थकारी होगा । सो बतलाइए, सीता देवी ऐसी दशा मे उनका किस प्रकार आश्वासन करेगी ?

तमसा . इसीलिए तो श्री भागीरथी ने सीता से कहा, "बेटी यज्ञात्मजा वैदेही, आज चिरजीव कुश-लव की बारहवी वर्षगाठ का दिन है । इस हेतु अपने पुरातन श्वसुर राजर्षि मनुवश के प्रवर्तक पापनाशन सूर्य देव की पूजा निज हाथो से चुने हुए प्रफुल्लित पुष्पों से करो, हमारे प्रभाव से पृथ्वी पर विचरते हुए तुमको वन देविया भी नही देख सकेगी, मनुष्य की तो क्या सामर्थ्य है ।" यो आवश्यकतानुसार सीता उनका आश्वासन कर सकेंगी और उन्होने मुझसे भी कहा है कि "तमसा, तुमसे सीता का अत्यत

अनुराग है, इससे तुम इनकी सहचरी होकर रहना।" सो जैसी मुझे आज्ञा मिली है उसी का पालन कर रही हूं।

मुरला : मैं भी यह वृत्तात भगवती लोपामुद्रा से निवेदन कर द्। मेरी समझ मे अब रामचन्द्र भी आ गए होगे।

लक्ष्मण : और यह देखो गोदावरी-हृदय से निकलकर—

पियरी परी ओप कपोलन की, तन मे दुबराई बढ़ी अति भारी
लटकाए लटें बिखरी मुखपै, उर सोचति मोचति लोचन बारी
अति दीसति आकुल सोगसनी, करुना रस की जनु मूरति प्यारी
तनधारी वियोग विथा सीं किधौ, वन आइ रही मिथलेश दुलारी ॥४॥

मुरला . क्या यह वही है।

अति दीर्घ दारुन ताप वस सिय हिय कमल अकुलाइ
हा ! बिबस विलुनित मुग्ध किसलय सम गयो कुम्हिलाइ
दुबरी परी तन पीयरी इमि, क्वार की लहि घाम
जिमि केतकीसुम-गर्भगत मृदु पंखुरी अभिराम ॥५॥

(जाती हैं)

(इति विष्कम्भक)

(नेपथ्य में)

बडा अनर्थ हुआ! बडा ही अनर्थ हुआ!!

(फूल चुनते हुए करुणा और उत्कंठा के साथ सुनती हुई सीता का प्रवेश)

सीता : अरे! ये बोल तो मेरी प्यारी सहेली वासती का-सा लगता है।

(फिर नेपथ्य मे)

जो जानकी कर कलित कोमल शल्लकी परणानि सो
करभक पल्यो लहकात निज शुण्डाग्र चचल वानि सो ॥

(फिर नेपथ्य में)

क्रीडत करिनि सग कुलिल प्रमुदित परम सो सर मे रह्यो
तिहि मत्त इक मातग बल सन हरि लरि मारन चह्यो ॥६॥

सीता : **(घबड़ाती हुई दो-चार पद चलकर)** बचाओ आर्य पुत्र! मेरे उस बच्चे को बचाओ **(सुधि कर घबराहट से)** हाय-हाय, वे ही बातें जिनके कहने का स्वभाव-सा पड़ गया था, अब फिर

पचवटी को देखकर सहसा मेरे मुख से निकलती है। हा, आर्य-पुत्र !

(मूर्छित होती है)

तमसा : धीरज धरो बेटी, धीरज धरो।

(नेपथ्य में)

हे विमानराज ! यही ठहर जाओ।

सीता (हृदय संभाल भय और उन्माद से) जल भरे गरजते हुए धाराधर की मधुर गभीर ध्वनि के समान यह सरस वाणी कहा से आई जिसके कान मे पडते ही तुरत मुझ अभागिनी मे जान-सी पड गई है।

तमसा · (स्नेह से आंसू भरकर)

> कितहु सो लहि अस्फुट नाद को
> कवन हेतु सिया अस तू भई
> चकित चचल औ उतकण्ठिता
> जिमि ध्वनी घन की सुनि मोरनी ॥७॥

सीता · क्या कहा ? माता ! यही कि स्फुट नही है, मुझे तो स्वर से ऐसा लगा कि स्वय आर्यपुत्र ही बोल रहे है।

तमसा सुना तो गया है कि शूद्र तपस्वी को दड देने इक्ष्वाकुवंशी राजा श्री रामचन्द्र जनस्थान मे आए हुए है।

सीता धन्य-धन्य, महाराज अपने राजधर्म मे दृढ बने हुए है।

(नेपथ्य में)

> झर-झर-झर झरना झरत, जिह गुफानि सब काल
> गोदावरि सरितट मिली, यह सोई गिरि माल
> प्रिया सग बहुतक दिवस, बितए याही ठाम
> द्रुम मृगहू जहँ के लगन, मेरे सुहृद ललाम ॥८॥

सीता : यह तो आर्यपुत्र ही है. हाय ! प्रभात समय के शशि मंडल की भाति इनके मुख मडल की काति फीकी पड गई है, विरह से सूखकर शरीर काटा हो गया है। बस गाभीर्य की झलक मात्र ही शेष बच रही है। इसी से पहचाने जा सकते है, माता ! मुझे सभालना, यह हृदय-विदारक दृश्य अब नही देखा जाता ! !

(तमसा से लिपटकर मूर्छित होती है)

तमसा (सीता को साधकर) धैर्य धरो बेटी, धैर्य धरो।

(नेपथ्य में)

इस पचवटी के देखने से

भीतर ही भीतर घुमडि, मोह-धुआँ वेपीर
प्रथमहिं दुख-लौ उठन के, व्यापत सकल सरीर ॥९॥

हा प्यारी जानकी !

तमसा (आप ही आप) इसकी तो गगा को भी आशका थी।

सीता . (नेपथ्य वाणी सुनकर) हाय यह क्या हो गया !

(फिर नेपथ्य से)

हाय मेरी दण्डक वन की सगिनी ! हाय प्यारी विदेह नदिनी! ..

(मूर्छित होकर गिरने का-सा शब्द होता है)

सीता हाय धिक्कार है ! धिक्कार है ! मुझ अभागिनी का नाम लेते-लेते नील नीरज नयनो को बद कर आर्यपुत्र अचेत हो गए हैं, हाय ! पृथ्वी पर अधीर होकर कैसी अशरणावस्था मे पडे हुए है, भगवती तमसा रक्षा करो, रक्षा करो, किसी तरह इन्हे प्राणदान दो।

(चरणो पर गिरती है)

तमसा आप तुही कल्यानि उठि, रामहिं चेत कराउ
तुव प्रिय सुपरस करहि मे, तिन जीवन सदुपाउ ॥१०॥

सीता . चाहे जो कुछ हो, आप की आज्ञा का अवश्य पालन करूंगी।

(शीघ्रतापूर्वक जाती हैं)

[स्थान—जनस्थान]

(साह्लाद सास लेते तथा सजल नयन सीता से छुए जाते हुए राम पृथ्वी पर पड़े दिखलाई पड़ते हैं, तमसा खड़ी है)

सीता . (कुछ हर्ष से आप ही आप) मुझे तो ऐसा जान पडता है कि त्रिलोकनाथ को फिर चेत हो आया।

राम : (कुछ चेतकर आप ही आप) आहा, यह क्या है !

यह कल्पतरु पल्लव मृदुल की सुठि किधो रस धार है
किम्वा सुधाकर किरन निचुरयो सुखद सुदर सार है
सतप्त जीवन विटप हित कै सघन घन वरषा भली
सर जीवनी धौ मूरि यह जासो खिली मो हिय कली ॥११॥
अवसि परसन यह वही कहुँ, जासु परचय मै लह्यो
सरल सजीवन विमोहन मजु, जो मन को रह्यो

सताप मूर्छा प्रबल को यह तुरत ही विनसाइ के
आनन्द मय कछु और मोहहिं देत तन उपजाइ के ।।१२।।

सीता : (भय और करुणा से कापती हुई कुछ पीछे हटकर) अब मेरे लिए इतना ही बहुत है ।

राम · (बैठकर) क्या करुणामयी सीतादेवी ने मेरे ऊपर अनुग्रह किया है ?

सीता . (आप ही आप) हाय-हाय, तो क्या अब आर्यपुत्र मुझे ढूढेगे ?

राम सभव नही, तथापि मालूम तो ऐसा ही होता है ।

सीता . भगवती तमसा, अब हमे यहा से दूर हो जाना चाहिए, नहीं तो बिना आज्ञा मुझे अपने पास देख महाराज कोप करेगे ।

तमसा बेटी, भगवती भागीरथी के वरदान से तुम्हे वनदेविया भी नही देख सकती , फिर रामचद्रजी देख लेगे ऐसी शका क्यो करती हो ?

सीता हा, यही बात है ।

राम . हाय प्यारी जानकी ! प्राणवल्लभा जानकी !

सीता · (प्रणयपूर्वक कोप करती हुई गद्गद स्वर से आप ही) आर्य-पुत्र ! आपका यह सब कोरा दिखावा है, आप करते कुछ है और कहते और है (आंसू भरकर) अथवा, हाय ! मुझे वज्रमयी मदभगिनी का नाम ले-लेकर पुकारते हुए आर्यपुत्र के सग, जिनका शुभ दर्शन जन्मातर मे भी दुर्लभ था, ऐसी दशा मे कब उचित है कि मै निर्दयता का बर्ताव करू ! इनका और मेरा हृदय तो एक ही है ।

राम (चारों ओर निराशा के साथ देखकर) हाय, यहा तो कोई नही है ?

सीता : भगवती तमसा, इन्होने मुझे अकारण परित्याग कर दिया है फिर भी इन्हे इस स्थिति मे देखकर मेरी हृदयावस्था कुछ और ही हो रही है, जिसे न मै जानती हूं और न कह सकती हू ।

तमसा बेटी, मै इसे जानती-समझती हू ।

निज पीतम प्रेम समागम की नहिं आस, उदास भरी दुचिताई
अपराध बिना निरवासित ह्वै तन छीन वियोग-मलीन सबाई
विरहागि विथा सहि भारी अबै, तिहि देखत भेटन को अकुलाई
सुनि के दुख की बतियाँ पिय की सरला जिय की छतियाँ भरि
लाई ।।१३।।

राम : देवी,

सरस सीतल तो कर-परस
जनु सदेह सनेह प्रसन्नता
अजहुँ मो मन-रजन जो करै
कित गई पुनि तू हिय हारिणी ॥१४॥

सीता : (आप ही आप) यद्यपि निष्कारण अपने परित्याग किए जाने का तीर हृदय मे खटकता है तथापि प्राणनाथ के अगाध स्नेह भरे आनंद बरसाते हुए ये वचन सुनकर मैं अपने जन्म को सार्थक समझती हू ।

राम हाय, किंतु प्रियतमा यहा कहां से आई, यह तो केवल प्रिया-चिंतन के निरतशय अभ्यास से पैदा हुए राम के मन का भ्रम मात्र है ।

(नेपथ्य में)

हा वडा अनर्थ हुआ ! हाय वडा अनर्थ हुआ !!
जो जानकी कर कलित इत्यादि··· **(पूर्वार्द्ध सुना जाता है)**

राम **(करुणा और उत्कठा से)** सो उसका क्या हुआ ?

(फिर नेपथ्य मे)

क्रीडत करिनि सग इत्यादि··· **(उत्तरार्द्ध सुना जाता है)**

सीता : (आप ही आप) हाय, उसको बचाने वाला कौन है, किसे भेजूं ?

राम कहा है वह दुरात्मा, कहा है जो स्ववधू के सग क्रीडा करते हुए प्यारी के गज शावक पर आक्रमण करता है ।

(ऐसा कहकर उठ खड़े होते हैं)

(दूसरी ओर से भयातुर वासंती का प्रवेश)

वासती : (आप ही आप) क्या महाराज रघुनाथ जी आए हैं ?

सीता · (आप ही आप) क्या मेरी प्यारी सहेली वासंती है ?

वासंती जय हो, महाराज की जय हो ।

राम (पहचानकर) क्या प्रिया की सखी वासती है ।

वासती महाराज, शीघ्र चलिए, जटायुगिरि के शिखर से सीधे हाथ की ओर सीता तीर्थ के आगे गोदावरी मे धसकर देवी जानकी के पुत्र की रक्षा कीजिए ।

सीता : (आप ही आप) हाय, तात जटायु, आज आपके विना जनस्थान सूना-सा लगता है ।

राम : (आप ही आप) हाय, वासती के ये वाक्य तो वडे ही मर्मभेदी है।

वासती : इधर आइए महाराज, इधर।

सीता . भगवती तमसा! क्या सचमुच वनदेविया भी मुझे नही देख सकती!

तमसा : अरी वेटी, मदाकिनी देवी का प्रताप सव देवताओ से वढकर है, फिर तुम वार-वार क्यो डरती हो?

सीता : तो चलो हम भी पीछे-पीछे चलें।

(सव जाते हैं)

[स्थान—जनस्थान गोदावरी तट]

(एक ओर से राम और वासती का तथा दूसरी ओर से सीता और तमसा का प्रवेश)

राम: (आते हुए) भगवती गोदावरी! आपके लिए नमस्कार है।

वासती : बधाई देती हू महाराज, यह सुनकर प्रसन्न होइए कि आपकी जानकी देवी का पुत्र स्ववधू सहित जीत गया।

राम: चिरजीव, तुम्हारी विजय हो।

सीता : (आप ही आप) अरे, यह तो इतना वडा हो गया!

राम: (आप ही आप) देवी, तुम वडभागिनी हो।

नव कज कोमल कलित कलिकन समद सन की कोर सो
सुठि लवलि पल्लव लेतु जो तुव ललित कानन-लोर सो।
मद श्रवत बारन गन विजेता नवल नित योवन-छयो
अब तरुन-बैस-प्रमोद-भाजन पुत्र तुव प्यारी भयो ॥१५॥

सीता : चिरजीव हो वेटा, अपनी प्यारी हथिनी के साथ निरतर सुख भोगो।

राम. देखो वासती, वच्चे ने अपनी प्यारी को रिझाने मे कैसी निपुणता प्राप्त की है।

कौतक सो तोरिकै मृनाल पुज कौर नीके
करिनी के मुख माहि मजुल खवावे है
फूले कज तिनसो सुवासित तडाग नीर
बीच बीच करिके कलूला, दौरि प्यावे है
लहकाइ सूंडि चारु अम्बुकन विथुराइ
जैसी मनचाहै वाहि वैसी ही न्हवावे है

सरल सुनाल वारी नव नलिनी को पात
गहि के सप्रेम पुनि छत्तुरी लगावे है ॥१६॥

सीता . भगवती तमसा, जब यह इतना बडा हो गया है तो न जाने कुश-लव कितने बडे हुए होगे।

तमसा : जैसे यह है, वे भी वैसे ही होगे।

सीता : हा, ऐसी अभागिनी हूं मै कि न केवल आर्यपुत्र से किंतु अपने पुत्रो से भी अलग हू।

तमसा : भाग्य मे ऐसा ही बदा था।

सीता . मैने पुत्र जनकर क्या किया जो छोटे-छोटे विलग कोमल, काति-मय, स्वेत दसनावली द्वारा दीप्त कपोल वाले, निरतर मधुर मनोहर मुसकराते हुए काकपक्ष (जुल्फे) रखे मेरे पुत्रो के युगल मुख कमल का आर्यपुत्र ने कभी चुवन न किया।

तमसा भगवान सब भला करेगे।

सीता : भगवती तमसा, प्यारे पुत्रो का स्मरण करने से मेरे स्तनो मे दूध भर आया है और उनके पिता के निकटवर्ती होने से मैं क्षणमात्र के लिए ससारिणी हो गई हू।

तमसा इसमे क्या कहना है, सतान तो स्नेहातिशय की पराकाष्ठा तथा माता-पिता के परस्पर अत करण का बधन है—

लहि सनेह अनुरूप, जबै दम्पति हिय पावन
जुरत एक गुन आइ दुहूँ दिसि सो मन भावन
नित आनन्द मय ग्रन्थि अटल अनुपम जो प्यारी
'नन्दन' कहियत सोइ सुभग सुन्दर सुखकारी ॥१७॥

वासती : महाराज इधर भी देखिए—

नव जोवन जोर उमग छयो, निज नाचन मे जिह उच्छव भारो
चलि चाल मनोहर चारु कलोलत, लोल नई-नई पॉखन वारो
करि ऊँची सिखाएँ कदम्ब पै सोहत, मानो मनीनु को मौर सँवारो
जब नाचि चुकै तब कूक अलापत, लागे सिखी ये सखी को पियारो ॥१८॥

सीता : (कौतुक से आसू भरकर आप ही आप) वही है, यह वही है।

राम . आनद करो बेटा, आनद करो।

सीता : (आप ही आप) ऐसा ही हो।

राम : तुम ज्यो-ज्यो भ्रम्यो फिरकैयनु लै, प्रिया भौह चलाय सिहायो करी
कछु मारि दृगचल चचल सी, पुतरीन प्रवीन फिरायो करी

कर पल्लव तारी बजायो करी, हँसि तोहि समोद नचायो करी
सुत आज लखाई परयो जब सो, अबलो सुधि तेरी सतायो करी ॥

अहा, पक्षियो को भी बडी पहचान रहती है ।

बिरवा यह नीप को नीको लसै, चहुँ चारु प्रसून कछुकन छायो
निज हाथ लगाय प्रिया ने उछाह सो, दै जल याहि सनेह बढायो ॥१९॥

सीता (**देखकर आंसू भरकर आप ही आप**) इसे आर्यपुत्र ने खूब पहचाना ।

सीता सिय की सुधि राखतु जानि परे, जिय मे यह मोरपहारी सुहायो
नित या सग मानि नतैती कछू, तिहि पै करै आनि प्रमोद सवायो ॥२०॥

वासंती : महाराज, यहा बैठिए ।

वुह दीसति चीकनी चोखि शिला, कदली द्रुम सो चहुँ ओरन छाई
सिय सग जहॉ तुम सोवत हे, बतरात विनोद भरे सुख पाई
अरु बैठि जिन्है तृन नूतन दै, तुव प्यारी चरावत चारु सुहाई
अबलो मृग वे चहुँ घेरे रहै, कहुँ अन्त न बैठत ताहि बिहाई ॥२१॥

राम : अब तो यह देखा नही जाता (**रोते हुए दूसरी जगह बैठते है**)

सीता (**आप ही आप**) सखी, वासती ! इन्हे दिखाकर तुमने मेरी और आर्यपुत्र की यह क्या दशा कर दी, हाय-हाय यह वे ही आर्यपुत्र है, वही पचवटी है, वही प्यारी सखी वासती है, वे ही विविध स्वच्छद विहारो के साक्षी गोदावरी समीपवर्ती प्रदेश है, वे ही प्राणो से प्यारे पुत्र के समान पाले-पोसे तरु-पक्षी-मृग है, वही मै हू, पर हाय मुझ अभागिनी को दीखते हुए भी यह सबका सब सूना जान पडता है, हाय भाग्य के फेर से ससार मे कैसा हेर-फेर हो गया है ।

वासती . सखी सीता, तुम कहा हो जो देखती भी नही कि राम की क्या दशा हो रही है ?

नीलोतपल दल सम नवल तन जासु सुन्द सॉवरो
नयनोतसव प्रद, लखत रुचि सो नित नयो गुन आगरो
अति सोच सो व्याकुल वुही परि पीयरो दुर्बल बन्यो
जान्यो परत ना काउ विधि तउ लगत सुन्दरता सन्यो ॥२२॥

सीता : (आप ही आप) देखती हू सखी, देखती हू ।

तमसा . देखती रहो, अपने प्रियतम को देखती रहो ।

सीता . (आप ही आप) हा दैव, ये मेरे विना या मै इनके विना रहूगी यह स्वप्न मे भी किसे सभावना थी, इस क्षण तो मानो दूसरे जन्म मे इनका दर्शन मिला है इसलिए पल भर आसू रोककर अच्छी तरह प्यारे आर्यपुत्र को देख तो लू ।

तमसा (सप्रेम आंसू भरकर और सीता को छाती से लगाकर)

प्रिय-दरस सुख अरु विरह दुख सो, अश्रु अविरल ढारती
तिह रूप प्यासी विगत अजन, नयन निज विसतारती
तुव मधुर मजुल मुग्ध हेरनि, दुग्ध सरि सम पावनी
सुठि करति अभिसेचन पिया को, प्रनय रस सरसावनी ॥२३॥

वासती

मधु बरसावत विपन-द्रुम देहु सब,
फूल औ फलनि के अरघ मन भाये है
सग मे आमोद खिले कजनु को लैके मजु,
मोद सो पवन करौ बीजना सुहाये है
चहकि चहुँधा पछी गाओ कल कठनि सो,
वैतालिक जनु ताल के उमंग छाये है
राजोचित सनमान सजौ सबै क्यो सु आज
महाराज राम पुनि यहि वन आये है ॥२४॥

राम · सखी, वासती, आओ यहा बैठे ।

वासती (बैठकर आसू भरकर) महाराज कुमार लक्ष्मण तो अच्छे हैं ?

राम (अनसुनी करके)

कर कमल सो दै नीर, औ नीवार नव तृन विधि भली
पादप विहग कुरग पोसे चाउ चित जे मैथिली
तिन देखिके जिय सोच व्यापत अकथ अति दुख की कथा
करि वज्रहिय कोऊ विदीरन, साल सालत सर्वथा ॥२५॥

वासती महाराज ! मै पूछती हू कुमार लक्ष्मण तो कुशल से है !

राम (आप ही आप) अरे, इस 'महाराज' के कहने मे तो वडी व्याजस्तुति भरी है । यह तो केवल स्नेहशून्य सवोधन है, वस लक्ष्मण के ही कुशल मे इसका कठ भर आया और नेत्रो से नीर वहने लगा, इससे हो न हो, यह सीता का भी सब वृत्तात जान गई है (प्रकट) हा, कुमार अच्छी तरह है ।

वासती हे देव, आप ऐसे कठोर क्यो हो गए ?

सीता (आप ही आप) सखी वासती, ऐसे ताने क्यो मार रही हो ? आर्यपुत्र से तो सबको मीठा बोलना चाहिए और विशेषकर तुमको, जो हमारी प्यारी सखी हो ।

वासती : तुमही जियप्रान सबै कछु हौ तुमही मम दूजो हियो सुकुमारी
तुमही तन काज सुधा-सरिता इन नैननि को तुमही उजियारी
हिय भोरे की यो ही लई भरमाइ के बात बनाय पियारी-
पियारी
पुनि ता सिय को ··
बस मौन भलो, अब होत कहा कहिबे सो अगारी ।।२६।।

(मूर्छित होती है)

राम (आप ही आप) पूरा भी न कह पाई कि मूर्छित हो गई (प्रगट) सखी, धीरज धरो, धीरज धरो ।

वासती तो आपने ऐसा अयोग्य कार्य क्यो किया ?

सीता . (आप ही आप) सखी वासती, रहने दो इसमे क्या रखा है ?

राम . क्या करू, दुनिया तो मानती ही न थी !

वासती : इसका कारण ?

राम · वे ही जाने ।

तमसा · (आप ही आप) उलाहना बहुत ठीक है ।

वासती तिहारो जो प्यारो स्वजस निरमोही यदि महा
सिया के त्यागे सो कुजस अति भारी अरु कहा ?
भला बीती कैसे मृगनयनि पै वा विपिन मे
अहो स्वामी दीजै उतर यहि को सोचि मन मे ।।२७।।

सीता (आप ही आप) सखी वासती, तुम बडी कठोर हो जो दुखी आर्यपुत्र को और भी दुख दे रही हो ।

तमसा · वह कुछ थोडा ही कह रही है, स्नेह और शोक उससे सब कहलवा रहा है ।

राम · सखी, इसके सिवा और क्या कहै ?
मृग सावक के से विलोल महाभय पूरित चकित लोचन वारी
अरु कपित गर्भ के भार सो जो अलसाइ रही तन मे अति भारी
मृदुमजु मृनाल सी कोमल जो नित चद सो जाकी दुचद उज्यारी
वन बीच काऊ रजनीचर नीच ने सुन्दरी सोई विनासि के
डारी ।।२८।।

सीता : (आप ही आप) आर्यपुत्र ! मैं तो जीती-जागती हू ।

राम . हाय प्यारी जानकी, तुम कहा हो ?

सीता : हाय-हाय, आर्यपुत्र तो बिलख-बिलखकर रो रहे है !

तमसा . बेटी, दुखिया के पास अपना दुख दूर करने के लिए रोना ही एकमात्र उपाय है। क्योकि—

उपटि पूर्ण तडाग जबै भरै
जल निकासन तासु प्रतिक्रिया
विपुल शोक दशामधि हूँ तथा
रुदन धीरज को सदुपाय है ॥२६॥

और विशेष कर के राम को तो यह ससार अनेक रूप से दुखदायी हो रहा है।

चित लगाय इत पालिबो, प्रजा नीति अनुकूल।
उत प्यारी विरहा तपनि, कुम्हिलानो जिय फूल।
तजि तिहिको अब अपुहि पुनि, करत विलाप बनै न
जियत अजहूँ यहि सो प्रकट, रोदन निश्फल है न ॥३०॥

राम हाय, बडा कष्ट है !

प्रिय-वियोग छाती फटै, आवति पै न दरार
काया तजै न चेतनहि, वेसुधि विकल अपार
जरति, करति पै भसम ना, दौ लागी तन माहि
हृदय विदारत निरत विधि, निरदय मारत नाहि ॥३१॥

सीता प्रिय-वियोग ऐसा ही होता है।

राम हे पुरवासियो !

जब राज-मन्दिर मे वसत सिय हा तुम्है भाई नही
तृनसम तजी वन विजन मे तउ मन विथा छाई नही।
तिह सग के इस वास थल ने विकल अब मोको कियो
*यहि हेतु रोवन काज चाहतु आज तुव आयसु लियो ॥३२॥

तमसा (आप ही आप) शोक सागर का अति गभीर और बडा भारी अनिवार्य भ्रमर है।

वासती महाराज, बीती को विसारकर धीरज धरना चाहिए।

राम सखी, क्या कहती हो ? धीरज !

बीत गये बारह बरस, बिन सीया सी बाम
तासु नाम तक हू मिटयो, जियत तऊ यह राम ॥३३॥

सीता आर्यपुत्र की इन बातो ने मुझे मोह लिया है।

* रोवत असरनहि लाख पसीजत क्यो न तुव वज्जुर हियो।

तमसा : यथार्थ है बेटी ।

प्रेम पगे जासो परम, जिय की रुचि सरसात
दारुन सोक समूह सनि, अति अप्रिय दरसात
तेरे पिय के ये वचन, मृदु कटु जुगल अपार
का नही ढारत तुव हिये, अमिय गरल की धार ।।३४।।

राम · सखी वासती,

तीखी मनु तिरछी अनी, बरछी की विसलीन
का हिय गाढी सोक की, मैने विथा सही न ।।३५।।

सीता : (आप ही आप) मै ऐसी मदभागिनी हू जिसके कारण बारबार आर्यपुत्र को दुख होता है ।

राम · बडी धीरतापूर्वक अपने हृदय को थाम लेने पर भी पूर्व परिचित अनेक प्रिय पदार्थो के देखने से दुख का आवेग आज फिर अनिवार्य हो गया है ।

छुभित विचचल सोक की, हिय मे उठति हिलोर
रोकन तिहि कैसेउ किये, जो जो जतन कठोर ।
छायो चित्त विकार, तिनहुँ तोरि अकथित कोउ,
हरत प्रबल जलधार, जिमि दृढ सिकता सेतु को ।।३६।।

सीता : (आप ही आप) आर्यपुत्र का ऐसा दुर्निवार दुस्सह दु खावेग देखकर मेरा हृदय भी इस समय अपना दुख भूल कुछ जडित स्तभित-सा हो गया है ।

वासंती (आप ही आप) महाराज की बडी शोचनीय अवस्था हो गई है, किसी दूसरी ओर चित्त बटाना चाहिए (**प्रकट**) हे देव, अब चिर-परिचित जनस्थान के भागो को देखकर अपना मनोरजन कीजिए ।

राम अच्छा, यही करै ।

सीता (आप ही आप) सखी, जिन्हे मनोविनोद का उपाय समझती है, वे उलटे और दुख की आग भडकाने वाले है ।

वासंती (करुणा से) हे नाथ !

याही लता गृह तुम प्रिया की बाट हेरी, जो घनी
गोदावरी तट निरखि हसनि ठिठकि रही कौतुक सनी
आवत कछुक तुर्व मलिन मन लखि जीय कातर मैथिली
जोरी जुगल कर कलित कोमल कमल कुडमल अजली ।।३७।।

सीता (आप ही आप) सखी, तुम्हारा हृदय वडा कठोर है जो तुम हृदय मे लगे मर्मभेदी शोक-शल्यो को वार-वार कुरेद कर मुझ मंदभागिनी तथा आर्यपुत्र को व्यथित करती हो।

राम . हे कठोर हृदय जानकी, इन दृश्यो के देखने से यह लगता है कि तुम यही कही विचर रही हो, फिर मुझ अभागे पर दया न करने का क्या कारण है —

हा हा प्यारी फटत हृदय यह जगत शून्य दरसावैं
तन वन्धन सव भये सिथल से अन्तर ज्वाल जरावैं
तो विन जनु डूवत जिय तम मे छिन-छिन धीरज छीजै
मोहावृत सव ओर राम यह मन्द भाग्य का कीजै ।।३८।।

(मूर्छित होते हैं)

सीता : हाय-हाय, आर्यपुत्र फिर वेसुध हो गए।

वासती धीरज धरो महाराज, धीरज धरो।

सीता · (आप ही आप) हा, आर्यपुत्र केवल मुझ अभागिनी के लिए समस्त ससार के मगलधार रूप आपका जीवन प्रतिक्षण दारुण सशयावस्था मे पड रहा है, इससे वडी भारी विपत्ति की आशका उपस्थित हुई है। हाय! अव मैं क्या करू।

तमसा : वेटी, घवडाने का काम नही है। रामचन्द्र का पुनर्जीवन तुम्हारे ही पाणिपल्लव के स्पर्श से होगा।

वासती (आप ही आप) क्या अभी तक चेत नही हुआ! हाय प्यारी सखी सीता, तुम कहा हो। अपने प्राणेश्वर की रक्षा करो।

(सीता शीघ्रता से पास जाकर राम का हृदय और ललाट छूती है)

वासती . अहा, रामचन्द्र की चेतना फिर लौट आई।

राम मनहुँ अमिय मय लेपसो, लेपत परम सुहातु
सवै भीतरी वाहरी, मो सरीर की धातु।
औचक ही प्रिय परस यह, पुनरपि प्रानहिं लाय
और कछु विधि को सुखद, देत मोह उपजाय ।।३९।।

(आनद से नेत्र वद करके) सखी वासती, फिर भाग्य उदय हुआ है।

वासती कैसे महाराज ?

राम सखी, कैसे क्या ? जानकी फिर प्राप्त हो गई है।

वासती सो कहा है महाराज ?

राम . (स्पर्श सुखानुभव करते हुए) देखो, यही तो है आगे।

वासती महाराज, इन अपने मर्मभेदी दारुण प्रलापो से मुझ अभागिनी को क्यो दुखित करते हो। मै तो आप ही सखी के दुख से जल रही हू।

सीता (आप ही आप) मै अब हटना चाहती हू किंतु अविचल अनुराग भरे, प्राणनाथ के सुखद, शीतल, दीर्घ, दारुण सताप-हरण, स्पर्श से पसीजकर कापता हुआ यह मेरा हाथ जहा का तहा जडीभूत होकर ऐसा विवश हो गया है, मानो किसी वज्रलेप से जकड गया हो।

राम : सखी, इसमे काहे का प्रलाप है ?

ब्याह समय जो गह्यो मुदित मन प्रथमहिं ककनधारी
चिर परिचित जिह सुलभ सुधा सी परसनि परम पियारी।

सीता (आप ही आप) आर्यपुत्र, अभी तक आप वही है !

राम हिम सम सीतल हीतल सुखप्रद मृदुल मजुमन भायो
लगत बुही कर लह्यो ललित जिन लवली दलहिं
लजायो ॥४०॥

(ऐसा कहकर पकड़ते है)

सीता (आप ही आप) हाय-हाय, प्राणपति के प्रिय स्पर्श से मोहित होकर मुझसे चूक हो गई।

राम सखी वासती, आनद के मारे मेरी इद्रिया अपने-अपने कर्त्तव्य पालन मे शिथिल सी हो गई है, मेरे वस की बात नही रही है, इससे थोडी देर तक इनके हाथ को तुम्ही थामे रहो।

वासंती (आप ही आप) हाय-हाय, इन्हे तो उन्माद हो गया।

(सीता जल्दी से हाथ छुडाकर दूर हो जाती है)

राम हाय, अनर्थ हो गया।

मो जड कम्पित स्वेद मय, कर सन मन-मुद-दानि
छिटकि परचो कित जड कँपत, तासु पसीजत पानि ॥४१॥

सीता (आप ही आप) हा, अभी इनकी दृष्टि ठीक नही हुई है, ठीक-ठीक वस्तु पहचानने मे असमर्थ तथा चकराती सी मालूम होती है—इससे जान पडता है कि आर्यपुत्र अभी अपने आपे मे नही आए।

तमसा (स्नेह से देखकर आप ही आप)

श्रम सीकर कन सो छयी, काँपति औ पुलकाति
पिय तन परस उमग सो, बेटी अस दरसाति।

जनु चलि चचल पवन वस, घन वूंदन के भार
मुकुलित कलित कदम्ब की, वलित डहडही डार ॥४२॥

सीता : (आप ही आप) अरे, अपने आप पर अधिकार न रहने मे मुझे तमसा जी के सामने लज्जित होना पडा, अपने मन मे भला यह क्या कहेगी कि कहा तो राम द्वारा इनका ऐसा परित्याग और कहा उन पर इनके हृदय का ऐसा अनुराग !

राम : (सव ओर देखकर) क्या यथार्थ मे नही है, हाय वैदेही, तुम वडी निष्ठुर हो ।

सीता (आप ही आप) सचमुच मैं वडी निष्ठुर हू, जो प्राणनाथ, तुम्हे ऐसी दशा मे देखकर भी प्राण धारण करती हू ।

राम (आप ही आप) देवी ! कुछ तो पसीजो, मुझे ऐसी दशा मे परित्याग करना तुम्हारे लिए योग्य नही है ।

सीता (आप ही आप) आर्यपुत्र, यह तो आप विपरीत कह रहे हो ।

वासती · महाराज, धीरज धरिए, अपनी असाधारण धीरता को काम मे लाकर गहरी वियोग विथा मे डूवे हुए अपने आपको सभाले रहिए—भला यहा मेरी प्यारी सखी कहा !

राम (आप ही आप) व्यक्त रूप मे जानकी नही है, होती तो क्या वासती न देखती, तो क्या यह स्वप्न हुआ ! रामचन्द्र के नैनो मे निगोडी नीद कहा, जो स्वप्न हो । वस, प्यारी से मिलने का जो निरतर ध्यान वना रहता है उसी से पैदा हुआ नि.सदेह यह विकट उन्माद है, जो मुझे अनेक कल्पनाओ मे डालकर वार-वार सताता रहता है ।

सीता : आर्यपुत्र की इस दशा का कारण मैं ही वज्र हृदय वाली हू ।

वासती महाराज,

दसकध को यह गृद्ध नासित लोहमयरथ देखिये
पुनि तासु खर-भीपन वदन कर अस्थि अव अवरेखिये
तिह-पख हनि, रिपु लै गयो नभ पंथ सो तुव भामिनी
*अति विलविलाती विवस पल-पल दमकि, जनु घन दामिनी ॥४३॥

सीता (भय से आप ही आप) आर्यपुत्र, तात जटायु को यह दुष्ट मारे डालता है और मुझे भी हरे लिये जाता है, आइए-आइए शीघ्र वचाइए ।

* पल-पल विकल दमकति विपुल जनु नवल घन मे दामिनि ।

राम · (शीघ्र उठकर आप ही आप) महात्मा जटायु के प्राण को और सीता को हरने वाले अरे पापी, खडा तो रह, कहा जाता है !

वासती : हे देव, राक्षसकुल धूमकेतु, अभी तक आपका क्रोध ठडा नही हुआ है !

सीता (आप ही आप) हाय, मै पागल हो गई हू।

राम यथार्थ मे अब तो यह प्रलाप ही है।

अनुकूल सुन्दर जतन मय नित विरह दुख अपनोद मे
बहु धीर नासन-जनित अदभुत वीर भाव विनोद मे
अविदित विथा कर सिय विरह तव शत्रुदल वध लो रह्यो
अबको वियोग अथाह निरवधि जाइ कहु का विधि
सह्यो ॥४४॥

सीता (आप ही आप) यह निरवधि है तो हाय अब मेरे प्राण कैसे रहेगे !

राम (आप ही आप) हाय, क्या करू !

जहाँ कपिराज सुगरीव मित्रता विफल
बेअरथ दल बल वानर को भारी है
कछु न प्रभजन कुमार की चलति जहाँ
जामवान हूँ की बुधि थकित विचारी है
पथ न वनाय सकै विसकरमा को पूत
नल जिह ठाम की, अकूत बलधारी है
गति न लछिन-वीर बाननु ने जानी तहाँ
कहाँ जाय तू समानी हाय प्राणप्यारी है ।।४५।।

सीता (आप ही आप) इससे तो पहला वियोग ही अच्छा था।

राम सखी वासती, अब जैसे-जैसे प्रिय पदार्थो का दर्शन होगा वैसे-वैसे राम का कष्ट बढता जाएगा। मेरे पीछे तुम कब तक रुदन करोगी। हाय, मैं ऐसा अभागा हू कि मेरा मिलना सुहृदो को भी दुख पहुचाता है, इससे मुझे अब जाने दो !

सीता , (मोह और उद्वेग से तमसा के गले लगकर) तो क्या आर्यपुत्र अब चले ही जाएगे ?

तमसा · बेटी, हृदय सभालो, हमे भी तो चिरजीव कुश-लव की वर्षगांठ का उत्सव करने भगवती भागीरथी के समीप जाना है।

सीता माता, कुछ तो दया करके ठहरिए और क्षण-भर मुझे इनके दर्शन कर लेने दीजिए—हाय, फिर मिलना कहा ?

राम अश्वमेध यज्ञ के लिए मेरी भी एक सह-धर्मचारिणी··

सीता . (घबराकर आप ही आप) वह कौन है आर्यपुत्र ?

राम . सीता की सुवर्णमयी मूर्ति है।

सीता : (आप ही आप) यथार्थ मे आप स्वनामधन्य आर्यपुत्र ही हैं। उस परित्यागमयी लाज का काटा अब मेरे हृदय से दूर हुआ।

राम . उसी के दर्शन से शोकाश्रु बहाते हुए इन नयनो को शीतल करूगा।

सीता (तमसा से) वह धन्य है जिसका आर्यपुत्र इतना आदर करते हैं और जो उनका मनोविनोद कर, ससार की सब सुमगल आशाओ की आश्रय बनी है।

तमसा (मुसकराती हुई स्नेह से सीता को गले लगाकर) बेटी, इसमे तो तुम अपनी ही बडाई करती हो।

सीता · (सलज्ज नीचा मुख कर आप ही आप) भगवती तमसा से मैंने अपनी हसी कराई।

वासती : इस समागम से आपको बडा कष्ट हुआ। मैं ही इस शोकोद्दीपन का कारण हुई —और जाने के लिए, जिसमे आपके कार्य की हानि न हो, वैसा ही कीजिए।

सीता (आप ही आप) वासंती ही अब मेरी वैरिन हो गई।

तमसा आओ बेटी, चलै।

सीता (कष्ट से) जो आज्ञा।

तमसा : कैसे चलना हो, तुम्हारे तो—

बरसन के प्यासे अडे, पिया दरस मे नैन
बडे-बडे बहु जतन करि, टारे सोहु टरै न ॥४६॥

सीता अपूर्व पुण्यो से प्राप्त हुए आर्यपुत्र के चरणकमलो मे बारबार अनेक प्रणाम है।

(मूर्छित होती हैं)

तमसा : बेटी धीरज धरो, धीरज धरो।

सीता · (सावधान होकर) हाय, मेघाच्छन्न पूर्ण चद्रमा की भाति प्राणनाथ के मुखचद्र का दर्शन दुर्लभ-सा हो गया।

तमसा : कार्य-कारण के भाव मे भी बडी विचित्रता है।

एक करुण ही मुख्यरस, नियत भेद सो सोइ
पृथक्-पृथक् परिणाम मे, भासत बहु विधि होइ।
बुदबुद भवर तरंग जिमि, होत प्रतीत अनेक
पै यथार्थ मे सबनि को, हेतु रूप जल एक ॥४७॥

राम : विमानराज, यहा आइए ।

(सब उठते हैं)

(तमसा और वासंती सीता और राम की ओर देखकर)

अब हम सबनि के सहित जननी अवनि अरु मन्दाकिनी
रवि वालमीकि महामुनी जिन प्रथम ही कविता भनी
अति शिष्ट देव वशिष्ठ सह सहधर्मिनी सब दुख हरैं
कल्यान मान प्रदान मय सब भाँति तुव मगल करैं ॥४८॥

अंक ४

अथ विष्कम्भक

(दो तपस्वियो का प्रवेश)

एक · सौघातकि, देखो आज अनेक अतिथियो के आने तथा उनके सत्कारार्थ यथोचित सामग्री उपस्थित होने से भगवान् वाल्मीकि जी का आश्रम कैसा रमणीय लगता है। अहा,

चामर समाके तिन गुनगुनो नीको माड
मृग निज हाल ब्यानी हिरनी को प्यावे है
ताके पीवन सो ज्यादा बचि के रह्यो जो ताहि
स्वाद स्वाद पीवत अघाय हुलसावे है
घीउ मिलि भात रंध्यो ताकि सुठि सोंधी सोंधी
मजुल महक महकत हिय भावे है
बेर-बेर-बेर फल मिले साग की सुगन्धि
धाइ-धाइ सरसाइ सब ओर छावे है ?

सौधातकि · इन बुड्ढे डढियलो के आने से आज का पढना-लिखना तो हो चुका।

प्रतिहारी क्या कहना है मित्र, गुरुजनो के साथ तुम्हारा यह अपूर्व शिष्टाचार सराहनीय है!

सौधातकि अरे भाडायन, इस अतिथि का क्या नाम है जो सब बूढे और बुढियाओं मे मुखिया-सा मालूम होता है।

भांडायन धिक् मूर्ख, क्या व्यर्थ हसी उडाता है। जानते नही कि श्रृंगी ऋषि के आश्रम से अरुधती के साथ राजा दशरथ की रानी को लेकर महाराजा वशिष्ठ आए है, फिर बता इस प्रकार क्यो बकता है ?

सौधातकि : हू ! तो वशिष्ठ आए है ।

भांडायन : और नही, तू क्या समझता था ?

सौधातकि : मैंने तो समझा कि कोई व्याघ्र या भेडिया आया है ।

भांडायन : अरे, जबान संभाल, यह क्या कहता है ?

सौधातकि · अजी आते ही उसने एक विचारी बछिया की भेट ली ।

भांडायन : वेद में समास मधुपर्क देना लिखा है इसको प्रमाण करने वाले बहुतेरे गृहस्थ लोग श्रोत्रिय अभ्यागत को गोवत्सरी या महोक्ष अथवा महाज भेंट करते है—धर्म सूत्रकारो का भी यही मत है ।

सौधातकि : तब तो मेरी ही बन पडी ।

भांडायन · कैसे ?

सौधातकि : क्योकि जब राजा जनक आए तो वाल्मीकि जी ने दही और मधु ही का मधुपर्क दिया—बछिया रहने दी ।

सौधातकि : सो किस प्रकार ?

भांडायन . जब से उन्होने सीता देवी का सापवाद परित्याग सुना है तभी से वाणप्रस्थाश्रम स्वीकार कर लिया है । चद्रदीप तपोवन मे तप करते-करते उन्हे तो कई वर्ष बीत गए ।

सौधातकि तो यहा कैसे आए है ?

भांडायन · अपने पुराने मित्र वाल्मीकि जी के दर्शन करने ।

सौधातकि : यहा समधिन से उनकी भेंट हुई या नही ?

भांडायन . अभी-अभी वशिष्ठ जी की आज्ञा से श्री अरुधती कौशल्या रानी के पास यह कहने गई है कि उन्हे अपने-आप जाकर विदेहराज से भेट करनी चाहिए ।

सौधातकि : जब तक ये बड़े-बूढे आपस मे मिले, तब तक हम भी क्यो न विद्यार्थियो के साथ खेल-कूदकर आज की छुट्टी मनावे ।

(दोनो निकलते हुए)

भांडायन : वह देखो, पुराने वेद पारगत राजर्षि जनक यही है जो भगवान वाल्मीकि और वशिष्ठ जी से मिलकर यहा आश्रम के बाहर वृक्ष की जड पर बैठे हुए हैं ।

छोकर की सी तन वदन, जाके दिन अरु रैन
सीय सोच की दो लगी, सुलगत चैन परै न ।।२।।

(जाते है)

इति विष्कम्भक

जनक · सोचतु सुता की विषम विपता सदय मैं यह जिह काल
हिय होत हा घायल बडो बाढै विथा विकराल
बीते दिना बहु तउ उलहि मम शोक क्रोध विशाल
चलि जीय पै जनु तेज आरो विरत सालत साल ।।३।।

हाय, यह दारुण दु ख मुझसे सहा नही जाता, इधर वृद्धावस्था और असह्य विपता की विथा घेरे हुए, उधर पराक सातपन आदि निरन्न निर्जल व्रत करने से गांठ का रक्त-मास भी सूख गया, किसी काम का नही रहा। इस पर भी यह शरीर नही छूटता, आत्मघात करके भी छुटकारा कहा ? क्योकि ऋषियो के कथनानुसार आत्मघाती को अंध तामिस्रादि घोर नरक भोगने पडते है। बरसो हो गए, फिर भी जैसे-जैसे सोचता हूं मेरा दु:ख घटने के बदले प्रतिक्षण और भी उग्र रूप धारण करता जाता है, इसके शात होने का कोई भी लक्षण तो नही दिखाई देता। हाय, क्या करू कहा जाऊं, हाय बेटी सीता ! जगन्माता वसुधरा के पवित्र गर्भ से तो तू जन्मी, किंतु न जाने क्या ऐसा भाग्य मे लिखा लाई जिसका यह परिणाम हुआ, हा ! इसी लाज के मारे मैं जी खोलकर रो भी नही सकता। हाय बेटी, हाय !!

छिनक रोवत पुनि हँसत विन हेतु, चमकावत भली
कोमल कली ज्यो कुन्द की कल कढत निज दसनावली
तुतरात कहि कछु की कछू मजुल मधुर बातै घनी
शिशु भाव के तुव कंज मुख की अजहुँ यो कहँ सुधि वनी ।।४।।

भगवती अचला, सचमुच ही तुम बडी कठोर हो।

जिह गग अग्नि अरुधती तुम सह महातम जानही
रघुवंश गुरु-रवि आपु जासन निज प्रतिष्ठा मानही
वाक् विद्या सम जनी तुव देखते पावन भई
निजता सुता की विपति तो सो कहु सही कैसे गई ।।५।।

(नेपथ्य मे—)

इधर आइए भगवती, और महारानी आप भी इधर आइए।

जनक . (देखकर) यह तो कचुकी के पीछे-पीछे भगवती अरुंधती आ रही हैं। (उठकर) फिर महारानी किसे कहा (अच्छी तरह देखकर) हाय, क्या यह महाराज दशरथ की धर्मपत्नी प्यारी सखी कौशल्या है ? अब इन्हे देखकर कौन विश्वास करेगा कि

यह वही है।

कमला सरिस कमनीय अति दशरथ भक्त मे जो लसी
पद 'सरिस' योजन नहिं उचित साच्छात् श्री कमला वसी
विधि वाम बस अति विपति लहि यह हाय कौशल्या वुही
जिय-सोच की मारी लगे अब औरु की कछु और ही ॥६॥

यह और एक दूसरा कुदशा का फल है।

मोहित जिह दरशन रह्यो, नित उच्छव को भौन
अति असह्य सोई लगे, मनहु जरे पै लौन ॥७॥

(अरुधती, कौशल्या तथा कचुकी का प्रवेश)

अरुधती : मेरा तो यही कहना है कि आप स्वय चलकर विदेह राज से मिले और यही तुम्हारे कुलगुरु की आज्ञा है। इसीलिए मुझे आपके पास भेजा है। फिर पद-पद पर आपके आशकित होने का क्या कारण है ?

कंचुकी : देवी, मैं प्रार्थना करता हू कि आप अपने को सम्हाल कर भगवान वशिष्ठ जी की आज्ञा का पालन करें।

कौशल्या यह सोचकर कि मुझे अभी मिथिलाधिपति से भेट करना है, मेरे सब दुख एक साथ उमड़े आते है और शोकाकुल हृदय का सम्हालना कठिन हो गया है।

अरुधती : इसमे क्या सदेह है।

प्रिय वियोग तरंग हिये उठै
दुख न जासु घटै छिन एक हू
स्वजन को लखि के उमडे सदा
सहस धारन सो द्रुत धाय के ॥८॥

कौशल्या : हाय, प्यारी बहू की यह दशा हो गई, अब राजर्षि को अपना मुख कैसे दिखाऊ।

अरुधती · निमिकुल कमल दिनेस यह, तुव समधी मिथिलेस
यज्ञवल्कि जिह हित दियो, विलम ब्रह्म उपदेस ॥९॥

कौशल्या : यही महाराज के प्यारे मित्र तथा बहू जानकी के पिता राजर्षि जनक है, हाय, मैं इनसे ऐसे अमगल समय पर मिली जबकि उनमे एक भी नही है।

जनक : (आगे बढ़ कर) भगवती अरुंधती, मैं सीरध्वज विदेह आपको प्रणाम करता हू।

सप्तर्षि मधि जो मुकटमनि तपतेजनिधि जिन सम नही
सो वशिष्ठहु तुमनि सो कृतकृत्य अपुको मानही
मंगलकरनि तिहुँलोक की जगवन्दी सद्‌गुनवती
सुचि प्रात-श्री सम तोहि सिर निज नाइ वन्दौं भगवती ॥१०॥

अरुंधती : आपके हृदय मे परम ज्योति स्वरूप ब्रह्म का प्रकाश हो और रजोगुण से परे विशुद्ध सत्व गुणरूप तेजोमय सूर्यदेव तुम्हे पवित्र करें।

जनक : आर्यगृष्टि प्रजा के पालन करने वाले महाराज की माता तो कुशल से है ?

कंचुकी : (आप ही आप) आज तो सचमुच ही हम सबको लज्जित होना पडा, देखिए 'प्रजापाल' शब्द इन्होने किस व्यग के साथ कहा है। (प्रकट) हे राजर्षि, सीता के परित्यागरूपी शोकोत्ताप से जलती हुई तथा रामचद्र मुखचद्र के वियोग से महादु:खित महारानी को ऐसे क्रोध, सदिग्ध वचन-बाणो द्वारा व्यथित करना तुम्हे शोभा नही देता। यह दुर्भाग्य का ही कारण समझिए जो रामचद्र जी से ऐसा अनर्थ बन पड़ा, क्या करे नगरवासी सीता की अग्नि-परीक्षा मे अविश्वास रख बेसिर-पैर की बाते उडाकर महाराज की अपकीर्ति फैलाते थे।

जनक : अरे हमारी सतान को शुद्ध करने वाला अग्नि कौन होता है। हाय-हाय, इन निर्लज्ज बकवादियो का ऐसा कहना राम की ही नही किंतु हमारी भी अप्रतिष्ठा का कारण हुआ।

अरुंधती (सांस भरकर) निस्सदेह अग्नि का नाम लेना तो बेटी की निंदा करना है, सीता ही कहना पर्याप्त है—अग्नि उसकी क्या शुद्धि करेगा। उसके समान पहले आप तो शुद्ध हो लें। हाय ! बेटी !

शिशु होहु अथवा शिष्य मेरी ओर इक जाको धरौ
किन्तु लखि तुव शुद्धता अति प्रेम तोमे मो खरौ
वरु होउ नारी वा कुमारी पूज्य तू जग की अहै
केवल गुनी को गुन पुजत नहि रूप अरु नहि वैस है ॥११॥

कौशल्या : हाय मेरा दु ख वढता ही जाता है।

(बेसुध होकर गिर पड़ती है)

जनक : हाय-हाय ! यह क्या हुआ ?

अरुंधती : राजर्षि, है क्या !

नृप अछत शिशुजन संग सुखमय उन दिननु की सुधि वरी
निरखत सनेही तुमहि अब सो आइ कसकी यही घरी
ऐसी दशा लहि तुव सखी यह अति विमूढ लखात है
जिय कमल कोमल कुल तियन को नेक मे कुम्हिलात है
॥१२॥

जनक . अरे हाय, मैं ऐसा अभागा जनमा हूं कि इतने दिनो बाद मिलने पर भी अपने प्यारे मित्र की रानी को प्रेमपूर्वक नही देख सकता ?

प्रिय अभिन्न-उर पूज्य सुहृद समधी हितकारी
तनधारी आनन्द अखिल जीवन फल भारी
यह तन अथवा जीउ अधिक इन सो वा प्रियतम
रहे न का महाराज अटल प्रन श्री दशरथ मम ॥१३॥

हाय-हाय, यही वह कौशल्या है ।

यदि भई अनबन कबहु इनकी कान्त सो एकात मे
निज निज अपार उराहनो दम्पति दियो मोहि तिह समे
नित प्यार मे वा कोप मे मध्यस्थ दोउन को रह्यो
बस तासु सुधि दाहति हृदय अवजात नहि यह दुख सह्यो ॥१४॥

अरुधती हाय-हाय, बहुत देर से इनकी सांस नही चलती और हृदय का धडकना भी बद हो गया है ।

जनक : हाय प्यारी सखी ।

(कमडल से हाथ मे जल लेकर छिड़कते हैं)

सुहृदय तुल्य दिखा दया मयी
प्रथम पूरन सदा अनुकूलता
बनि महा पुनि दारुण क्यो बिधे,
अब करै मन मे अति वेदना ॥१५॥

कौशल्या : (चेत में आकर) हाय बेटी जानकी, तू कहा है ? विवाह सस्कार की उमंग से रमणीय निर्मल मधुर मुसक्यान भरे, मनोहर भोले-भाले प्रफुल्लित मुखकमल का अभी तक मुझे स्मरण है, आ बेटी, विलसत चद्रचद्रिका के समान, अपने कोमल, कमनीय, शीतल शरीर से छटा छिटकाती हुई मेरी गोद की शोभा बढ़ा । महाराज सदा यही कहा करते थे कि यह जानकी परमपूज्य रघुवशियो की वधू है, किंतु हमारी तो फिर भी जनक के सबध से बेटी ही लगती है ।

कंचुकी : ऐसा ही था, महारानी, ठीक है ।

सोहे महीप सुतचार सुरूप वारे
श्री राम किंतु सबसोहि विशेष प्यारे
त्योहि वधूनि मधि श्री मिथला कुमारी
शान्ता सुता सम रही नृप की दुलारी ॥१६॥

जनक : हाय प्यारे सुहृद दशरथ महाराज, तुम ऐसे ही थे । तुमको कोई कैसे भूल सकता है ?

पूजत कन्या पच्छके, वर पच्छहि यह रीति
किन्तु रह्यो मैं पूज्य तुव, नाते सो विपरीति
अस तुम अरु सिय नेह की, मूलहु गई नसाय
धिक-धिक अब यहि जीव नहि, नरक सरिस दुख दाय ॥१७॥

कौशल्या : बेटी जानकी ! क्या करू ! मेरे पापी प्राण भी किसी ने वज्र-कील से जड दिए है, जो शरीर से नही निकलते ।

अरुधती राजकुमारी, धीरज धरो, अब तुम्हे अपने अश्रुप्रवाह को रोकना चाहिए । क्या तुम्हे स्मरण नही है, जो-जो तुम्हारे कुलगुरु ने श्रृंगी ऋषि के आश्रम मे कहा था कि यह सब होनहार था सो हुआ, किंतु फिर भी अत मे कल्याण ही होगा ।

कौशल्या : भगवती, अब तो ऐसी आशा नही है ।

अरुंधती . तो क्या आप उन कुलगुरु के वाक्यो को मिथ्या समझती है, आप जैसी क्षत्राणी को ऐसा नही समझना चाहिए । उनका कथन कभी अन्यथा नही हो सकता ।

ब्रह्म ज्योति को तत्त्व जिन, प्रकट कियो अभिराम
तिन विप्रन के वचन मे, नहि सशय को काम ।
श्री जिन वानी माहि, बसति सदा मगल करनि
निहचै करि सो नाहि, मृषा सबद एकहु कहत ॥१८॥

(नेपथ्य में कोलाहल होता है । सब कान लगाकर सुनते है)

जनक : आज बालको की छुट्टी है, इसी से सबके सब ऊधम मचाकर खेल रहे है, उन्ही का यह कोलाहल है ।

कौशल्या लडकपन का आनंद तो लडकपन मे ही है । **(देखकर)** अरे इन बालको मे रामचद्र-सा मनोहर कातिवान यह किसका बालक है जो अपने मृदुल मुग्ध अंगो से हमारी आखे शीतल कर रहा है ।

अरुधती : **(आनदाश्रु भरकर अलग आप ही आप)** यही भगवती भागीरथी

द्वारा कथित कर्णामृत गुप्त रहस्य है किंतु यह नही जानती कि उन दोनो चिरंजीवो मे से यह कुश है या लव ।

नवनील सरोरुह सो तन श्यामल चारु सिरोरुह की छवि भावै
वटु वृन्द को जो अपनी श्रिय सो प्रिय पुण्य सिरी श्रियवान बनावै
सिसुरूप सो मो पुनि वत्स अनूप लगे रघुनन्दन ही जनु आवै
जिह को है जो केवल देखन सो चख अमृत अजन शुभ्र लगावै ॥१९॥

कचुकी · मुझे तो यह लगता है कि यह बालक क्षत्रिय ब्रह्मचारी है ।

जनक : ठीक, क्योकि—

दोऊ बगलनि ओर पीठि पैं निषग राजैं
तिनके विशिख शिखा चुम्वति मुहावै है
अलप विभूति उर पावन रमाये मजु
धारे रुरु मृगछाला छटा छिति छावै है
मौरवी लता की बनी कौधनी कलित कटि
कोपीन मजीठ रंग रगी सरसावै है
कर मे धनुष तथा पीपर को दड चारु
आछी रुदराछी माला मोद उपजावै है ॥२०॥

भगवती अरुधती, आप जानती है यह किसका बालक है ?

अरुधती आज ही हम लोग भी आए है ।

जनक : आर्य, मुझे बडा कौतुक हो रहा है । जाकर भगवान वाल्मीकि जी से ही पूछिए और इस बालक से भी कहते जाइए कि ये बडे-बूढे तुम्हे देखने के लिए उत्कठित हो रहे है ।

कचुकी जो आज्ञा ।

(बाहर जाता है)

कौशल्या : क्या ऐसा कहने से वह आ जाएगा ?

अरुंधती : भला ऐसा सुदर स्वरूप है तो उसमे शील न होगा ?

कौशल्या : (देखकर) देखो तो सही कैसे विनीत भाव से कचुकी की बातें सुन वह बालक सब ऋषि कुमारो का साथ छोडकर इधर को ही आ रहा है ।

जनक : **(बहुत देर तक टकटकी लगाकर)** देखो जी, यह क्या बात है ?

बिनै सिसुता सो सुहावन चारु लसै यहि मे अति तेज निकाई
लखै जिह सूछम देखन हार परै न अजानहि रच लखाई

विमोह हरै मन मो वलवान रहै तप सो जिहि मे थिरताई
यथा लघु चुम्बक खड स्वओर कुधातुहि खेचतु है वरिआई
॥२१॥

(लव आता है)

लव माना कि ये सब बडे है और परम माननीय है तथापि जिनके नाम, कुल और वर्ण का मुझे पता नही उन्हे पहले-पहल अपनी ओर से किस प्रकार प्रणाम करूंगा (**विचार कर**) किंतु गुरुजनो के मुख से सुना है कि ऐसा करने मे कोई बुराई भी नही है (**सनम्र आगे बढ़कर**) आप सबको लव प्रणाम करता है।

अ० और ज० : हे कल्याण रूप, तुम्हारी वडी आरवल हो।

कौशल्या वेटा, चिरजीव रहो।

अरुधती · आ, वेटा (**लव को गोद मे लेकर आप ही आप**) बडे भाग से न केवल गोद ही भरी किंतु वहुत दिनो का मेरा मनोरथ भी पूर्ण हुआ।

कौशल्या : वेटा, इधर भी आ, (**गोद मे लेकर**) अहा, यह बालक न केवल खिलते हुए नीलोत्पल से घनश्याम वरण सगठित सुदर शरीर मे, तथा कमलो की केसर खाए हुए ललित कंठ वाले मनहरण हसो के से ललाम मृदु गभीर धीर स्वर मे, प्यारे रामचद्र की अनुहार करता है, किंतु पूर्ण प्रफुल्लित पद्म-गर्भगत दलो के तुल्य, इसका शरीर सस्पर्श भी वैसा ही मृदुल है। चिर जियो वेटा, अपना मुखचद्र तो दिखला कैसा है (**ठोड़ी ऊपर को उठाकर भली भाति निहार तथा प्रेमाश्रु भरकर**) राजर्षि क्या आप नही देखते कि अच्छी तरह निहारने से इसका मुख वेटी वधू जानकी के चद्रानन से मिलता है।

जनक · देखता हू सखी, मुझे भी वैसा ही लगता है।

कौशल्या आश्चर्य है, न जाने क्यो मेरा हृदय उन्मत्त-सा हो गया है और सीता के से इसके अनिर्वचनीय मनोहर मुख ने मुझ पर कुछ मोहनी-सी डाल दी है।

जनक : सिया रघुनदन की उनहारि गयो यह बाल महा सुखदाय
मनो प्रतिविम्बित ह्वै यहि माहि रहो उनकी द्युति आकृति छाय
मिलै उन सो यहि को सब भाँति विनै मय बोल सुशील सुभाय
वृथा चित चचल क्यो मम दैव कुमारग मे भटक्यो इत आय
॥२२॥

कौशल्या : बेटा, तेरी मां भी है ? तुझ कुछ अपने पिता की भी सुधि है ?

लव · नही तो ?

कौशल्या . तो तू किसका पुत्र है ?

लव : भगवान वाल्मीकि जी का।

कौशल्या : बेटा कहने की-सी बात कहो।

लव : मैं तो यही जानता हू।

(नेपथ्य में—)

देखो सैनिको, कुमार चद्रकेतु की आज्ञा है कि तपोवनाश्रम के समीप की भूमि पर कोई पाव न रखे।

अ० और ज० · यज्ञ के घोड की रक्षा के लिए कुमार चद्रकेतु भी यहा आ पहुचा है इसलिए आज उसे भी देख सकेगे, आहा, वडा धन्य दिन है।

कौशल्या वत्स, लक्ष्मण का पुत्र "आज्ञा देता है" ये अक्षर अमृत बिंदु तुल्य कैसे सुदर तथा कानो को सुख देने वाले है।

लव : आर्य, ये चद्रकेतु कौन है ?

जनक . तुम राजा दशरथ के पुत्र राम-लक्ष्मण को जानते हो।

लव वे ही जिनकी कथा रामायण मे कही है। भला उन्हे कैसे नहीं जानूगा ?

जनक . तो उन्ही लक्ष्मण जी का पुत्र चद्रकेतु है।

लव : अच्छा, तो वे उर्मिला के पुत्र तथा रार्जषि मिथिलाधिप के धेवते है।

अरुधती : (हंसकर) इससे यह प्रकट हुआ कि कुमार रामायण जानने मे बडा प्रवीण है।

जनक : (विचारकर) तुम कथा जानने मे वडे प्रवीण हो तो वतलाओ कि दशरथात्मजो के पुत्रो के क्या-क्या नाम है और कौन-कौन किस मां से उत्पन्न हुआ है ?

लव कथा का यह भाग हमने क्या, किसी ने भी अब तक नही सुना।

जनक . क्या कवि ने उसकी रचना नही की।

लव : रच तो लिया किंतु प्रकाशित नही हुआ, उसी का एक भाग, दृश्य काव्य के रूप मे खेलने के लिए तैयार हो गया है। अब उसे अपने हाथ से लिखकर वाल्मीकि जी ने नाटकाचार्य भगवान भरतमुनि के पास भेजा है।

जनक · सो किस प्रयोजन से।

लव . जिससे भगवान भरतमुनि अप्सराओ द्वारा उसका अभिनय करावें।

जनक . यह तो बडे आश्चर्य की बात है।

लव : अजी महाराज, वाल्मीकि जी की उसमे इतनी अधिक प्रीति है कि उसे कितने ही शिष्यो द्वारा भरताश्रम पर भेजा है और फिर भी कही रास्ते मे गडबडी न हो जाए इस भय से धनुप-बाण बधवाकर हमारे भाई को साथ कर दिया है।

कौशल्या : तुम्हारे भाई भी है ?

लव . हा, उनका नाम आर्य कुश है।

कौशल्या . क्या तुमसे जेठे है ?

लव : हा, उनका जन्म कुछ पहले हुआ था।

कौशल्या . तो क्या बेटा, तुम दोनो ने एक साथ ही जन्म लिया था ?

लव : हा जी।

जनक अच्छा तो कथा कहा तक वन गई है ?

लव लोगो के मिथ्या कलक लगाने के भय से घबडाकर राजा ने यज्ञात्मजा भगवती सीता को वनवास दे दिया और शीघ्र होने वाले प्रसव की वेदना से व्याकुल उस बेचारी को वन मे अकेली छोड लक्ष्मण फिर लौट गए—बस यही तक समझिए।

कौशल्या हाय बेटी, भोली-भाली चद्रमुखी, उस समय निर्जन वन मे दैव-कोप से तेरे कुसुम सदृश सुकुमार शरीर की क्या दशा हुई होगी !

जनक : हाय बेटी,

नव दारुन वा अपमान सो तू निहचै दृग नीरहि ढारत होइगी
सिसु होन समै पै सिये बन मे कहुँ बेहद पीडा सो आरत होइगी
घिरि हाय अचानक सिहनि सो किमि बेवस धीरज धारत होइगी
करि के सुधि मेरी डरी हिय मे चहुँ तात ही तात, पुकारत होइगी ॥२३॥

लव (अरुधती से) अच्छा ये कौन है ?

अरुधती ये कौशल्या है और ये राजा जनक है।

(लव बड़े आदर, खेद तथा कौतुक से देखता है)

जनक हाय, दुष्ट पुरवासियो ने तो अपनी मर्यादा छोड दी और राम ने भी कुछ विचार न करके शीघ्रता कर डाली, यह आश्चर्य है !

निरत वज्रसम घोर यह, सिय सग अनरथ पात
आलोचत मम अति प्रबल, क्रोधानल बढि जात

समर माहिं कर चाप गहि, अथवा दै निज श्राप
अन्याई को हनि अबहि, उचित हरन सन्ताप ॥२४॥

कौशल्या हाय भगवती अरुधती, रार्जषि के कोप को शात करके राम की किसी प्रकार रक्षा कीजिए।

यहि भाँति निकारत कोप सही
अपमानित मानधनी सबही ॥
सुत राम तिहार छिमा करिये
नृप छोभ सबै जिय सो हरिये ॥
यह दीन अधीन प्रजा सबरी
प्रति पालन जोग अबोध भरी ॥२५॥

जनक : प्रजा माहिं लखियत घने, निरपराध द्विज बाल
अब लागन जन जरठ अरु, अग भग बे हाल
मो जीवन धन प्रिय सुअन, रघुनन्दन का और
चाप श्राप को काम कछु, अब नहिं काहू ठौर ॥२६॥

(कौतुक भरे दौड़ते हुए बालकों का प्रवेश)

लड़के . अजी 'अश्व' 'अश्व' करके जिस पशु को नगर में पुकारते है सो हमने आज अपनी आखो से देखा।

लव अश्व का वर्णन तो पशु-शास्त्र तथा युद्ध-शास्त्र दोनो मे ही किया है। कहो तो कैसा है ?

लड़के सुनिए,

पाछे पूंछ होति इक लम्बी पुनि-पुनि ताहि हिलावै
चारि सुम्म अत्यत रुचिर जिह दीरघ ग्रीव सुहावै
नित नूतन तृन हरित चरत जो चपल चारु चित भावै
दूर जात, का कहहिं, संग चलि क्यो न लखहु बुह जावै ॥२७॥

(ऐसा कह लव को दोनों हाथ तथा मृगछाला पकड़कर खीचते हैं)

लव : **(कौतुक और विनयपूर्वक परबस भाव दिखाकर)** हे महानुभाव, देखिए-देखिए, ये मुझे खीचे लिये जाते है।

(जल्दी से फिरता है)

अ० और ज० जाओ बेटा, अपना कौतुक शात कर आओ।

कौशल्या · भगवती, बिना इसके देखे मुझसे रहा नही जाता इसलिए आओ और कही से इसको देखे।

अरुंधती : अरे वह चपल तो वडी दूर निकल गया, कैसे दीख पडेगा।

(कचुकी आता है)

कचुकी : महाराज वाल्मीकि ने कहा है कि अवसर पडने पर इस वालक के वारे मे आपको वताया जाएगा।

जनक : कुछ गूढ वातें इसमे होगी, भगवती अरुंधती, सखी कौशल्या और आर्य गृष्टी चलिए। सवके सव स्वयं भगवान वाल्मीकि जी से भेंट करें।

(सव जाते हैं)

लड़के : कुमार, देखो यही वह कौतुक है।

लव : देखा और जान भी लिया कि यह अश्वमेध का घोडा है।

लड़के कैसे जाना ?

लव . तुम भी वडे मूर्ख हो, तुमने उस काड मे पढा तो है, देखते नही सैकडो रक्षक सिपाही हथियार वाधे, कवच पहने, धनुप लिये इसके साथ है—यह तो अधिकतर सेना ही दिखाई पडती है। इस पर भी तुम्हे विश्वास न हो तो जाकर पूछ लो।

लड़के तो क्यो भाई, ये सवके सव किस प्रयोजन से घोडे को घेरे फिरते हैं ?

लव : (स्पृहा के साथ आप ही आप) जान लिया, ठीक, अश्वमेध तो विश्वविजयी नृपरत्न के अतुलित महत्त्व तथा जगत के अन्य क्षत्रियो के पराभव की कसौटी है।

(नेपथ्य में—)

दशकधर कुल अटल रिपु, धर्म धुरन्धर धीर
सात दीप नव खड मे, एक वीर रघुवीर।
ताही को यह मख-तुरग, झडा सुभग अपार
अथवा इनके रूप मे, छत्रिनु को ललकार ॥२८॥

लव (व्यथा प्रकट करके) अरे, इन लोगो के वाक्य कैसे क्रोधानल वढाने वाले हैं ?

लड़के : क्या कहा गया कुमार, तुम तो चतुर हो, सव समझ गए होगे।

लव : अरे क्या सारा ससार क्षत्रिय शून्य हो गया जो तुम इस प्रकार दून की हाक रहे हो ?

(नेपथ्य में—)

अरे, महाराज रामचद्र के सामने कौन क्षत्रिय है।

लव अरे पामरो, तुम सवको धिक्कार है।

यदि बडे वह वीर, रह्यो करै
यह कहा अरु ढोग भयावनो
कछु न लाभ वृथा बकवाद सो
सरनु मारि हरौ तुम्हारी धुजा ॥२६॥

अरे लड़को ! ढेले मार-मारकर इस घोडे को इधर फेर दो, जिससे यह बिचारा हिरनो मे चरता फिरै और उधर न जाने पावै ।

(एक सैनिक का प्रवेश)

सैनिक . **(क्रोध और गर्व से)** अरे, क्यो रे चचल, क्या बक-बक कर रहा है ? निष्ठुर निर्मोही शस्त्रधारियो का दल बच्चो की भी सगर्व बाते नही सहता । जा, जब तक अरिमर्दन राजकुमार चद्रकेतु पूर्वीय वनो का मनोरम दृश्य देखकर लौट न आवे तब तक इन गहन वृक्षो की आड मे होकर भाग जा—अरे जा !

लड़के : कुमार, इस घोडे को रहने दो । वह देखो शस्त्र चमकाते हुए सैनिको का दल तुम्हे धमका रहा है और यहा से आश्रम बहुत दूर है । इसलिए चलो रे, सबके सब हिरन की-सी छलागे भरते हुए भाग चले ।

लव : (हसकर) क्या सचमुच शस्त्र चमक रहे है ? **(धनुष उठाकर)** अच्छा तो फिर—

प्रबल प्रतचा जीह लहराति चचला-सी
उतकट कोटि विकराल दाढ जाकी है,
घोर घन घररर घोर जा टकोरन की
गजबीली अट्टहाँसी रनरग छाकी है,
विकट उदर वारो खेचत तनत सोई
मानौ जमुहाई लेत परचडता की है,
विश्वहि ग्रसन काज उद्यत ये चाप मम
धारै आज जम की सदाप छवि बाँकी है ॥३०॥

(यथोचित घूम-घाम कर सब जाते है)

अंक ५

(नेपथ्य में—)

सैनिको, घवडाओ मत, घवडाओ मत !

बुह अवसि ही दीसत यहाँ सो शुभ्र रथ छविवन्त
लावत भजावत अश्व हीसत वेगवन्त सुमन्त
अति खाय मग हदका पताका फरफराति अपार
तुव संग रन सुनि तुरत आवत चद्रकेतु कुमार ॥१॥

(रथ पर चढे, धनु-षवाण हाथ में लिये आश्चर्य और हर्षयुक्त चंद्रकेतु का सुमत के साथ प्रवेश)

चद्रकेतु . आर्य सुमत देखो, देखो—

किञ्चित कोप के कारण सो जिह आनन ओप अनूपम सोहै
गुञ्जति सिञ्जनि को धनु लै जुग छोरनि मजु टकोरत जो है
चंचल पच शिखानि किये बरसावत सैन पै वान विमोहैं
चूइ रह्यो रन रग महा यह वालक वीर वतावहु को है ? २॥

आह, कैसा आश्चर्य है !

अकेलो ही है मुनि को यह बाल तऊ भयभीत न रंच लखावै
मनौ कुलहा रघुवंस को चारु दुरचौ जिय नेहलता उलहावै
दलै गज गड थलीनि की ग्रन्थि अवै धनु घोर टंकोर मचावै
घिरचौ वहु वीरन सो चहुँ तीर चलावत मो उर कौतुक छावै ॥३॥

सुमत · आयुष्मन् !

विमल छवियुत सुर असुर सन विपुल वीर जवान
निरखि यह सिसु सकल विधि सो ठीक तोहि समान
मोहि सुध आवत परम धृत धनु सघन घनश्याम
कुशिकसुत-मख-रिपुनि प्रमथत सुभग तनु श्रीराम ॥४॥

चंद्रकेतु लरत खन अति चचलित जिन अगुली उत्ताल
समर शस्त्र कराल गहि अस कुपित सैन विसाल
कनक किंकिन झन झनावत टिनिन टिन रथजाल
निरत मदजल चुअत श्यामल द्विरद वारिद माल।
जे घटा दल सकल घेरत एक वालहिं आज
होत नीचे नैन मम लखि लाज को यह काज ॥५॥

सुमत . वत्स, जब सब मिलकर इसका बाल बाका नही कर सकते, तो फिर एक-एक से क्या होता है ?

चद्रकेतु आर्य, शीघ्र करो ! इसने चारो ओर हमारे आश्रित जनो का संहार करना आरंभ कर दिया है।

दुदुभी की घोर सन रोदा ठनकार जाकी
बढि बढि रव और तीव्र सरसाये देत
कुजरनि पुज जो गरजि गिरि कुजनि को
गुजत, तिनहुँ कान जुर उपजाये देत
भाजत भयानक विपुल मुड रुडनिसो
काटि यह वीर महीतल पैं बिछाये देत
लागे जनु काल विकराल पूरन अघाय
खाय-खाय जूँठिन चहूँघा बिथुराये देत ॥६॥

सुमत : (**स्वगत**) ऐसे पराक्रमी के साथ चद्रकेतु को द्वद्व युद्ध करने की किस प्रकार अनुमति दू ! (**विचारकर**) और रघुवशी राजाओ के बीच रहते-रहते हम बूढे हो गए। इस रणभूमि से पीठ दिखलाना रघुवशियो का धर्म नही। इसलिए रण उपस्थित होने पर सिवाय लडने के और क्या उपाय है ?

चद्रकेतु (**विस्मय, लज्जा और खेद से**) धिक्कार है, हमारी सेना के लोग रण से भागने लगे।

सुमत · (**रथ का वेग दिखाकर**) आयुष्मन्, यह वीर अब बाते करने योग्य आपके समीप आ गया।

चद्रकेतु . (**विस्मृति जताता हुआ**) आर्य, दूतो ने इसका नाम क्या बतलाया है ?

सुमंत : लव ।

चंद्रकेतु तुच्छ सिपायनु विजय करि, यस न बढै लव तोर
हौस बुझावहु जीय की, मो सग लरि इत ओर ॥७॥

सुमंत . कुमार, देखिए-देखिए !

सुनत ही तुव टेर, दल को दलन तजि रनधीर
मुरत इत रनमद भरचो यह लसत बालक वीर
सघन घन की गरजना सुनि, सिंह को जिमि बाल
फिरत सदरप ठवनि सो तजि कुजरनि ततकाल ।।८।।

(नेपथ्य में महाकोलाहल होता है)

(शीघ्र और उद्धत चाल से लव का प्रवेश)

लव . वाह, राजपुत्र वाह, क्यो न हो, आखिर तो सच्चे इक्ष्वाकुवशी राजपूत हो न ! लो, आओ मैं तुम्हारे सामने आया ।

(नेपथ्य मे फिर कोलाहल)

लव : (शीघ्र लौटकर) अरे ! क्या ये हारे हुए योद्धा फिर साहस करके युद्ध के लिए लौट आए है और मुझ पर प्रहार करना चाहते है ? धिक् निर्लज्जो—

यह जो उठत सब ओर सो दल-प्रबल कल कल-घोर
बस, लील लेहि अबैहि तिहि मम चण्ड कोप अथोर
जिमि प्रलय आधी सो विचंचल जलधि जल बल भूरि
गिरि घात सन अति छूभित बडवानल हरै चहुँ पूरि ।।९।।

(इधर-उधर घूमता है)

चद्रकेतु अजी कुमार !

निज अलौकिक शौर्य्य सो तू लगत प्रिय मन माहि
मम मित्र तिह कारन भयो मुहि तोहि अतर नाहि
हे वीर, निज ही सैन को तू हनत फिर किहि हेतु
जब दरप नासन तुव कसौटी अहहि चंदर केतु ।।१०।।

लव · (सहर्ष शीघ्र लौटकर) अहा, इस सूर्यवशी महापराक्रमी वीर की वाणी मधुर और कटु दोनो प्रकार की है। इस कारण इन्हे छोडकर इसे ही देखना चाहिए ।

(नेपथ्य में फिर कोलाहल)

लव (क्रोध और तिरस्कारपूर्वक) अरे, इन पापियो के कोलाहल से नाक मे दम हो गया । यहा तक कि इस वीर के साथ बाते करते भी नही बनता ।

(लौटता है)

चंद्रकेतु (सुमत से) आर्य देखिए, देखिए, देखने ही योग्य है ।

कौतक जनक यह दरप सो मुहि लच्छ करि जा ओर
आवत लसत मम सैन अनुसृत हाथ लै धनु घोर

दोउ ओर सो जनु लहि झकोरन पवन के घन श्याम
सुठि पाक-सासन को सरासन धारि शोभा धाय ॥११॥

सुमत कुमार ही इसे देख सकते है। हम तो विस्मय के मारे यह भी नही कर सकते।

चद्रकेतु हे राजा लोगो,

कहँ तुम सब गज हय रथासीन
कहँ यह पदाति साधन विहीन।
कहँ कवचयुक्त तुव तन कराल
कहँ यहि तन कोमल मिरगछाल।
कहँ वयोवृद्ध तुम जन अनेक
कहँ निस्सहाय यह बाल एक।
तउ करत याहि पै तुम प्रहार
धिक्कार सबनि को बार-बार ॥१२॥

लव · **(दुःख के साथ)** क्या यह मुझ पर दया दिखलाता है! **(सोच-कर)** अच्छा, पहले तो जृम्भकास्त्र से सेना को मोहित कर दू, जिससे समय नष्ट न हो।

(ध्यान करता है)

सुमत . अरे, यह क्या! अचानक ही हमारी सेना का कोलाहल बद हो गया!

लव : अब मैं इस अभिमानी को देखूगा।

सुमत : वत्स, मेरी समझ मे तो इसने जृम्भकास्त्र का प्रयोग किया है।

चद्रकेतु . इसमे क्या सदेह है, क्योकि—

मनो प्रचड अधकार विज्जु सन्निपात है
लखै जबैहि चक्षु चौधियात ना दिखात है
लिखी सुचित्र सी ठडी समस्त सेन ह्वै रही
अमोघ घोर जृम्भकास्त्र है यही अवश्य है ॥१३॥

देखो-देखो, कैसे आश्चर्य की बात है।

सघन रसातल गरभ गत कुजनि मे
पुजित तिमिर सम कारे कजरारे है
पीतर तपत को सो पिङ्गल प्रकास करि
भरे अब जृम्भक अकास मे सरारे है
यथा प्रलै-प्रबल प्रचड पौन उच्चलित
विन्धाचल कूट कन्दरानि मे करारे है

धावत कपिल रंग विद्युत संवारे घने

धाराधर मानहु मतंग मतवारे है ॥१४॥

सुमत भला इनके पास जृम्भकास्त्र कहा से आए ?

चंद्रकेतु मेरी समझ मे तो भगवान वाल्मीकि जी ने दिए होगे।

सुमत वत्स, भगवान वाल्मीकि को अस्त्रो के विषय से क्या प्रयोजन ! और विशेषकर जृम्भकास्त्रो से, क्योकि—

यह सवै उत्पन्न कृशाश्व सो
प्रथम कौशल को उन सो मिले
तिन विचारि स्व शिष्य परपरा
पुनि दिये गुरु सेवक राम को ॥१५॥

चद्रकेतु : तव भी क्या हुआ, जिन लोगो मे सत्व गुण का विशेष आविर्भाव हो गया है, वे आप ही समत्र जृम्भकास्त्र को देखने मे समर्थ होते है।

सुमत : वत्स, सावधान हो जाओ, वह वीर पास आ पहुचा।

दोनो कुमार : **(परस्पर आप ही आप)** यह कुमार तो वडा सुदर है।

(स्नेह से देखकर)

लहि औचक जासु समागम को लखि कै यहि वीरपनो अधिकाई
भयो कोऊ उदे ये पुरानो किधौ परचै जनमान्तर को दृढ आई
अपनो अथवा अपने कुल को, विधि के वस सो यह जानी न जाई
परि या छिन याहि लखे उमगे प्रिय भ्रात सनेह हिये सुखदाई
॥१६॥

सुमत वहुधा जीवधारियो का धर्म ही यह है जिसके कारण एक-दूसरे से रसमयी प्रीति हो जाती है। इसी को लोग गृह-मैत्री या आंख का लगना कहते है और इसे ही अनिर्वचनीय नि स्वार्थ प्रेम के नाम से पुकारते है।

सहज नेह रसधाम, जापै वस कोउ न चलत
नित वखिया को काम, अतस पट पै चट करै ॥१७॥

दोनो कुमार : **(एक-दूसरे से आप ही आप)**

चीकनो चारु पटंवर सो, अति कोमल मजुल जासु शरीर है
छाँडत कैसे वनै यहि पै, मम तीखो कराल विनासक तीर है
देखत ही जिह भेंटन को, अकुलाय वडो मन होतु अधीर है
गात सवै पुलकात अवै, भरै नैननु माँहि सनेह को नीर है
॥१८॥

अथवा—

गति शस्त्र चलाये बिना कहा और है सूर सों जो रनमत्त अपार है
पुनि शस्त्रहिं धारिके काहु भयो जो कियो भट ऐसेहु पै नहिं बार है
रन सो मुख मोरत का गिनि है लखि मोहि उठावत अस्त्र अगार है
हिय प्रेम तऊ विपरीत चले अति दारुन वीरनु को व्यवहार है ॥१६॥

सुमंत : (लव को देख आंसू भर के आप ही आप)

मृदु मनोरथ की प्रिय मूल जो
प्रथम ही हरि ने हरि ही लई
लुनि चुके जब कोयल बल्लरी
तब सु-आस प्रसूनन की कहाँ ॥२०॥

चद्रकेतु · आर्य सुमत, मैं रथ से उतरता हू ।

सुमत · किसलिए, वत्स ?

चद्रकेतु : जिससे इस वीर का आदर और क्षत्रिय धर्म का यथावत् पालन हो, क्योकि युद्ध-शास्त्र-वेत्ताओ के मतानुसार रथी को पदाति के साथ लडना कहा उचित लिखा है ?

सुमत : (आप ही आप) हाय, मैं तो धर्मसकट मे पडा—

कहहु का विधि न्याय-मरजाद को
करहुँ याहि अबै प्रतिषेध मैं
रथ बिना लरिवे हित शत्रु सो
किमि भला अनुमोदन ही करौ ॥२१॥

चद्रकेतु : जब हमारे पिता, पितामह आदि धर्म विषयक शकाओ मे आपसे परामर्श लेते आए है तो अब इतनी चिंता मे पडने का क्या कारण है ?

सुमंत : आयुष्मन्, तुमने ठीक विचार किया है ।

समर न्याय यही सब भाँति सो
यहि अमोल सनातन धर्म है
बस यही रघुसिहन की रही
सतत वीरचरित्रमयी प्रथा ॥२२॥

चंद्रकेतु : आर्य, आपने ठीक कहा,

तुव पढे इतिहास पुरान है
सदुपदेस ललाम सुनीति के
विसद जानि सकौ वस आपु ही
कुल-मरजाद सवै रघुवश की ॥२३॥

सुमत : (आंखो मे आंसू भर और गले लगा कर)

तुव तात लछिमन ने कियो जो इद्रजीत निपात
सो सव लगे मोहि जा घरी जनु कालि की सी वात
अव तिनहुँ के तुम पुत्र, धारत वीरता व्रत साज
धनि धन्य दशरथ कुल प्रतिष्ठा विमल छाई आज ॥२४॥

चद्रकेतु (कष्ट के साथ)

कहा प्रतिष्ठा होइगी, हम कुल की मतिवान
कुल जेठे ही कें नही, जव कोऊ संतान
याही दुख सो अति खरे चिंतातुर छवि हीन
मम पितु अरु द्वै वधु तिन, निसिदिन रहत मलीन ॥२५॥

सुमंत हाय, चद्रकेतु की ये वातें सुनने से हृदय विदीर्ण हुआ जाता है।

लव (आप ही आप) अहा, अत करण मे मिश्रित रस का संचार हो रहा है—

जिमि करत प्रफुलित कुमुदिनी को उदित पूरन चद
तिमि भरत हिय मे दरस जाको अति अमल आनंद ॥

किंतु—

इन झनन झन झन करन कटु-गुनगुज मय धनु जोइ
गाहि ताहि यह भुज वीर रस भरि समर प्रिय पुनि होइ
॥२६॥

चद्रकेतु (रथ से उतरकर) आर्य, सूर्यवशी चद्रकेतु आपको प्रणाम करता है।

सुमत : अतुलित अजित अपार ओजमय पावन भारो
नृप ककुत्थ के तुल्य होउ प्रिय तेज तिहारो।
नित्य विष्णु वाराह देव तुव विघन नसावै
सुदर करि कल्यान मोद हिय मे सरसावै ॥२७॥

और भी—

तुव कुल पिता सविता समर मे तोहि आनंदित करै
रघुवश पूज्य वशिष्ठ मुनिहू नित्य तुव हिय सुख भरै।

इद्र इंद्रावरज पावक पवन पन्नग रिपु भली
निज ओज की पूरन प्रभा दै करहिं तोहि सब विधि बली ।
मंत्र सी श्रीराम लछिमन-धनु प्रतचा-धुनि घनी
देइ तोको मजु मंगल करनि जाय शोभा सनी ।।२८।।

लव : (चद्रकेतु को रथ से उतरता देख) कुमार, बस करो, हो गया आदर ! आप तो रथ पर बैठे ही अच्छे लगते है ।

चंद्रकेतु · तो आप भी दूसरे रथ की शोभा बढावे ।

लव : (सुमत से) आर्य, राजकुमार को रथ पर बैठा लीजिए ।

सुमत . तो तुम भो वत्स, चद्रकेतु की बात मान लो ।

लव : जो वस्तु अपनी है भला उसके स्वीकार करने मे संकोच कैसा ? किंतु बात यह है कि बनवासी होने के कारण हमे रथ पर चढने का अभ्यास नही ।

सुमंत वत्स, तुम दर्प और सौजन्यता का यथोचित बर्ताव करना जानते हो, जो कही तुम ऐसे को इक्ष्वाकु कुल कमल दिवाकर राजा रामचद्र देखते तो उनका हृदय प्रेम से गद्‌गद हो जाता ।

लव . सुना गया है कि वे राजर्षि बडे सज्जन पुरुष है ।

साँचहि हमहुँ न मख विघनकारि
जो रहे आपु निज हिय विचारि ।
गुनबन्त राम को जगत माहिं
कहु मानत को जन पूज्य नाहिं ।
पै सब छत्रिन को तुच्छ मानि
तुव हय रच्छक जो कही वानि
सुनि ताहि हमहुँ जिय चढयो रोस
बस, और कछू नहिं कियो दोस ।।२९।।

चद्रकेतु (मुसकराता हुआ) क्या आपको हमारे पूज्य चरण तात के प्रताप की बडाई बुरी लगती है ।

लव : अजी बुरी लगे या न लगे, पर इतना मैं पूछता हू कि राजा रामचद्र तो बडे धीर स्वभाव के सुने जाते है । वे, न तो स्वय अभिमानी है न उनकी प्रजा को अभिमान होता है, फिर बतलाइए ये लोग उन्ही के आदमी होकर ऐसी राक्षसी भाषा क्यो प्रयोग करते है । देखिए—

दरप भरे उनमत्त पुरुष की बानी
ऋषीनु ने सब ठौर राच्छसी मानी ।

सकल वैर को सोई बीज बुबावे
नष्ट भ्रष्ट करि जगत कष्ट उपजावै ॥३०॥

इस प्रकार उन्होने इसकी निंदा की है और इसके विरुद्ध जो अन्य वाणी है उसकी प्रशसा वे इस भाति करते है ।

कामना पूरी करै सवकी दुख दारिद को दल दूरि बहावै
पाप के पुंजहि लुज करै कीरति लौनी लता उलहावै ।
सुन्दर सूनृत वानी सदा जय मंगल मोद की मातु सुहावै
याही सो धीरनु के मत मे वुह काम दुहा सुरधेनु कहावै
॥३१॥

सुमंत : भगवान वाल्मीकि के शिष्य इस कुमार का तो बड़ा ही पवित्र स्वभाव है । आर्ष दृष्टात दिए विना तो बातें ही नही करना जानता ।

लव · और जो चंद्रकेतु यह कहते हैं कि क्या तुमको पूज्य चरण तात के प्रताप की वड़ाई बुरी लगती है, सो आप ही वतलाइए कि क्षत्रिय धर्म क्या एक ही व्यक्ति के लिए है, क्या एक राम ही के सिर क्षत्रियो के समस्त वीरतादि गुणो का ठेका है, और कोई उनका आधार ही नही हो सकता ?

सुमत : वस करिए, अधिक न वढाइए, कहने से ही परख लिया कि तुम रघुवशावतस महाराज राम को नही जानते ।

प्रवल सैनिक वीरनु मारि के
प्रगट सत्यकरी तुम वीरता
परशुराम झुके जिह सामने
जनि वको उनकी कहि वात यो ॥३२॥

लव : (हसकर) आर्य, मान लो कि उन्होने परशुराम जी को भी हरा दिया, पर इससे भी क्या वडी प्रशंसा की वात हुई ?

जीभ को वल द्विजन मे यह स्वयं सिद्ध प्रमान
वाहु को वल छत्रियनु मे जग प्रसिद्ध महान ।
शस्त्रधारी द्विज रहेउ भृगुवंसमनि महाराज
कहु तिनहि जय करि राम ने कियो कौन दुर्जय काज ॥३३॥

चंद्रकेतु : (विगड़कर)

कौन सो यह पुरुष उपज्यो नयो जग के माँहि
जासु लेखे परसुरामहु वीर पुगव नाँहि

सप्त भुवनहिं अभय को जिन विपुल दीयो दान
तिन तात पावन चरित को नहिं जाहिं रचक ज्ञान ।।३४।।

लव : अजी रघुपति का चरित्र और उनकी महिमा कौन नही जानता ! यदि कुछ कहने की बात हो तो कही भी जाए, किंतु हम अपने मुख से क्यो कहे ?

जे बडे जगत तिन बडे काम
सब भाँति उचित उज्जल ललाम ।
तिन चरित अलौकिक अति उदार
आलोच्य विषय है नहिं हमार ।
जे करत सुदर तिय को सहार
लूटत अखड यश तउ अपार ।
जे खर राक्षस सन युद्ध माहिं
त्रय पैड हटत तउ सभय नाहिं ।
जिन बाल निधन कौशल बितान
बिन घोषण छायो जग महान ।।३५।।

चद्रकेतु : अरे, तूने तात की निंदा करके मर्यादा तोड दी और अब भी बकता ही जाता है ।

लव : क्या भौह चढाकर लगे मुझे ही आख दिखाने ।

सुमत : अब इन दोनो का क्रोधानल भडक गया ।

कोपज है कम्प जासो चोटिनु की गाँठि खुलि
चचल चिकुर चारु कारे सटकारे है
कछु-कछु कोकनद-छद-छवि के समान
भये नैन इनके अपुहि रतनारे है
सिकुरत चलत कुटिल भौह-भग-युत
आनन सचोप अति उग्र ओप वारे है
लसत मयंक सकलंक किधौं पकज पै
गुजरत मानहुँ मलिन्द मतवारे है ।।३६।।

दोनो कुमार (परस्पर) अच्छा तो फिर, आओ, रण योग्य भूमि पर उतर चले ।

(सब जाते हैं)

अंक ६

अथ विष्कम्भक

(उज्ज्वल विमानों पर चढ़े विद्याधर और विद्याधरी का प्रवेश)

विद्याधर अहो, असमय कलह के कारण परम प्रचड अखड क्षात्र तेज से दीप्त इन सूर्यवशी कुमारो के विक्रमयुक्त विचित्र चरितो ने सब सुरासुरो को कैसा विमोहित कर लिया है, क्योकि हे प्रिया ! देखो ।

झन झनन ककन समक्वनित कल किंकनीक विशाल
जुग छोर सनलगि जासु गुन अति करति शब्द कराल
धनु तानि अस सर तजत जिन शिख निरत चचल चारु
जग भयद अद्भुत तिन दोउन मधि बढत युद्ध अपारु ॥१॥

दोउ कुँवरनु के कल्याण काज
दुम दुम दुदभि नभ बजति आज ।
गम्भीर जासु सुख दैन रोर
जनु सरस सघन घन घनक रोर ॥२॥

इससे चलो हम भी, इन दोनो वीरो पर सुदर प्रफुल्लित स्वर्णमय सरोजो से मिश्रित, मधुर मकरद सुरभित, कल्पतरु मदार आदि दिव्य द्रुमो के नवीन मणि सरीखे स्वच्छ कमनीय कलित पुष्पो की निरतर सानद सघन वर्षा करे ।

विद्याधरी अब के फिर किसलिए इस सहसा दौडती हुई विद्युच्छटा से सारा आकाश झटपट पिगल वर्ण का हो गया है ।

विद्याधर आज तो—

किधौ त्रिलोचन को यह लोचन तीसरो
खुल्यो सृष्टिसहार हेतु रिस सो भरो ।

चमकत जनु उज्ज्वल जोतिर्मय चण्ड है
विसकर्मा की सान चढयो मार्तण्ड है ॥३॥

(कुछ सोचकर) ओहो, जाना, अब जाना, वत्स चद्रकेतु ने यह आग्नेयास्त्र का प्रयोग किया है, उसी की यह ज्वाला बरस रही है—

अवसि जासु भयानक झर्प सो
झुरसि चौर धुजा जिनके गये
अस विचित्र विमाननु-मडली
भजि चली भय सो छितराय के ।
विविध रग मये झुरसे लसे
सुपट अचल दिव्य धुजान के
जनु शिखा उन पै बहु अग्नि की
मुदित मजुल कुकुम डारती ॥४॥

कैसे आश्चर्य की बात है, वह देखो भीषण वज्रखंडो के समान तीक्ष्ण अगारो की झडी लगाए और वेग से लपलपाती उठती ज्वाल-जिह्वा से उद्दड भैरव रूप धारण किए, मानो साक्षात् भगवान अग्निदेव चले आ रहे है, चारो ओर यह उन्ही का प्रचड प्रताप फैल रहा है। अब तो ज्वाला सही नही जाती, इसलिए प्यारी को अपने पार्श्व मे छिपाकर यहा से कही दूर भागना चाहिए ।

(वैसा ही करता है)

विद्याधरी : आहा, प्राणनाथ, मजु मुक्तमाल सम सीतल मृदुल तुम्हारे पुष्ट-काय के स्पर्श से आनदोल्लसित मुझ अधमुदे तरल नयनो वाली का सताप अब दूर हो गया है ।

विद्याधर : प्यारी, भला मैने इसमे क्या किया, अथवा—

वरु कछू न करै तउ सर्वदा
वसि समीप सबै विपदा हरै ।
सुहृद जो कहुँ जासु जहान मे
अवसि सो तिह जीवन मूरि है ॥५॥

विद्याधरी : चमचमाती चचला की चचल चमकयुक्त, मतवाले मयूरो के कठ सरीखे सघन श्यामल धाराधरो से यह आकाश-मडल क्यो व्याप्त हो रहा है ?

विद्याधरी : अहा, अवश्य ये कुमार लव द्वारा चलाए हुए वरुणास्त्र का

प्रभाव है, देखो प्यारी, किस प्रकार सहस्रो निरंतर मूसलधाराओ के पडने से पावकास्त्र ठडा हो गया।

विद्याधरी · यह बडे आनद की वात हुई।

विद्याधर : हाय-हाय, अति सब की बुरी होती है क्योकि प्रवल आधी के जोर से चारो ओर उमडते-घुमडते घूम-घूमकर घनघोर मचाते काले मतवाले मेघो के सघन गाढान्धकार मे वधा हुआ, किंवा सहसा सपूर्ण विश्वग्रसनार्थ फटे हुए विकराल कालकठ की मुखकदरा मे चक्कर खाता हुआ, अथवा युगात की योगनिद्रा मे सपूर्ण जीवलोक काप रहा है। वाह ! कुमार चंद्रकेतु वाह ! उपयुक्त अवसर पर तुमने वायव्यास्त्र का प्रयोग किया। क्योकि—

चलत पौन अहा वह देखिए
नसि गयी घन मेघन की घटा।
जगत ज्ञान हिये जिमि होत है
जग-प्रपच सवै लय ब्रह्म मे ॥६॥

विद्याधरी नाथ, देखो तो ये कौन है जो शीघ्रता के साथ ऊंचा हाथ किए दूर से ही पटके का छोर हिलाकर लडाई को मधुर भाषण द्वारा वरजते हुए दोनो कुमारो के वीच मे अपना विमान उतार रहे है।

विद्याधर (देखकर) यह तो शबूक को मारकर महाराज रघुनाथ जी आ रहे है।

सुनि के वर बैन प्रभाव भरयो उनको मृदु मजु सनेह सो छायो
तिन गौरव राखन युद्ध तज्यो लव धारत सीरो सुभाव सुहायो
अरु चन्दरकेतु विनीत महा निज तात के पायनु सीस नवायो
अस पूत दोऊनि के भेटन सो नृप मंगल मोद लहैं मन भायो
॥७॥

चलो प्रिया, हम भी अव इधर से चलें।

(दोनो जाते हैं)

इति विष्कम्भक

(रामचद्र, लव और प्रणाम करते हुए चद्रकेतु का प्रवेश)

राम : (पुष्पक विमान से उतरकर)

दिनकर कुल के चद, चंद्रकेतु पावन परम
करहु मोहि सानद, लागि हृदय सो तुरत अब

निज सरीर परसाउ, तुहिन सदृश सीतल सुखद
प्रियतम आइ नसाउ, विकल करनि मम जिय-जरनि ॥८॥

चद्रकेतु : महाराज को प्रणाम है।

राम (**प्रेम के आंसू भर तथा उसे गले लगाकर**) बेटा, दिव्यास्त्र धारण करने वाले तुम कुशल से तो रहे ?

चद्रकेतु : महाराज के आशीर्वाद और अद्‌भुत पराक्रमशाली प्रियदर्शन लव के दर्शन लाभ से मुझे परम आनद है, अब तात आपकी सेवा मे विशेषकर यह निवेदन है कि आप उसी कृपादृष्टि के साथ जो कि मेरे ऊपर रही है अथवा उससे भी अधिक दयाभाव से इस प्रशस्त महावीर को देखिए।

राम. (**लव को देखकर**) अहा वत्स, चंद्रकेतु के मित्र की बडी गभीर सुहावनी सूरत है।

तन धारी किधौ धनु-वेद लसै तिहुँ लोक की परि नसावन काज
यह औतरयो छत्रिय धर्म किधौं श्रुति पावन सेत रसावन काज।
किधौ शक्ति समाज उदोत भयो गुन संचय कै मनभावन काज
जग पुण्य पदारथ पुज घनौ किधौं प्रेम प्रमोद जगावन काज ॥९॥

लव अहो दर्शनमात्र ही से इन महापुरुष का पुण्य प्रभाव अनुभव होता है।

अभयदान सनेहऽरू भक्ति को
मनहु एक यही अवलम्ब है।
धरम धीरज की अथवा लसै
मधुर मूर्ति प्रसन्न प्रभामयी ॥१०॥

अहा, कैसे आश्चर्य की बात है ! ।

अन्तर ध्यान विरोध भयो हिय सान्त सुभाय ने रंग जमायो
ऐड न जानै गई कितनो अरु नम्रता ने अति मोहि नवायो।
दर्सन सो इनके झट ही यह जानि परै बस काऊ के आयो
साँचु ही तीरथ को सो, प्रभाव अनूपम ऐसेनु मे विरमायो ॥११॥

राम : अहा, अकस्मात् ही संपूर्ण दुःख शात होकर न जाने क्यो अतः-करण मे स्नेह उमड रहा है। और लोग यह भी कहते है कि

स्नेह सर्वदा किसी न किसी निमित्त पर निर्भर होता है। तब तो इन दोनो वाक्यो से एक-दूसरे का निषेध हुआ। किंतु —

> यह गूढ सुभाउ को कारन कोउ सबै जग मे जिय मेल मिलावै
> नहिं निर्भर सुदर रग औ रूप पै प्रेम-प्रथा निहचै मन आवै
> लखि मित्र पवित्र सरोरुह हीय प्रफुल्लित प्यारी छटा सरसावै
> अरु चद्रके होत उदोत, द्रवै नित चंदरकात मनी चित भावै
> ॥१२॥

लव चंद्रकेतु, ये कौन है ?

चद्रकेतु · प्रिय, ये मेरे आराध्य चरण पूज्य पिताजी है।

लव · जैसे तुम्हारे लगते हैं वैसे ही हमारे लगे, क्योकि आप तो हमे मित्र मान चुके हो न ? किंतु रामायण के चरित्र नायक तो चार पुरुष हैं जिनमे से प्रत्येक को तुम इसी पद (**पिता**) से सबोधन करते हो। इसलिए वतलाइए, ये उनमे से कौन हैं ?

चद्रकेतु ये हमारे सबसे बडे तात है।

लव : (**उल्लास से**) अहा, क्या ये रघुनाथ जी है, आज का दिन धन्य है जो इनका दर्शन हुआ। (**विनय और कौतुक से देखकर**) हे तात, यह वाल्मीकि जी का शिष्य आपको प्रणाम करता है।

राम आओ प्यारे, आओ ! बस करो वेटा, बहुत विनय हो चुकी। आओ, वारबार मेरे हृदय से लगकर आनद दो—

> नव ललित प्रफुलित कमल कोमल गर्भ दल अनुहार
> तव परस सुन्दर सरस सुखप्रद सुभग सुचि सुकुमार।
> घनसार चदन लेप सम सीतल दुचंद अमद
> मम अग सो लगि देत प्रिय अनुपम परम आनद ॥१३॥

लव (**आप ही आप**) इनका स्नेह तो देखो, अकारण ही मेरे ऊपर कितना अधिक है और फिर भी मैंने वेसमझे-बूझे इनसे इतना वैर वढा लिया कि शस्त्र ग्रहण करने तक की नौवत पहुच गई (**प्रगट**) तात, आशा है आप मेरी इस चपलता को अब क्षमा करेगे।

राम वत्स, तुमसे कौन अपराध बन पडा ?

चद्रकेतु · हय-रक्षको के मुख से आप के प्रताप का वखान सुनकर इन्होने अपनी वीरता दिखलाई।

राम : क्या डर है, यह तो क्षत्रियो का भूषण ही है !

नहिं तेजधारी सहत कबहू बढत अन्य प्रताप
यह प्रकृति जन्य सुभाव उनको अटल अपने आप।
यदि तपत नभ करि सूर्य अविरत किरन कुल विस्तार
किमि सूर्य मनि अपमान निज गिनि वमत अग्नि अपार ॥१४॥

चंद्रकेतु . तात, इस वीर को क्रोध भी शोभा देता है। देखिए, इनके चलाए जृम्भकास्त्र के कारण सेना चारो ओर बेसुध पडी है।

राम : (देखकर) बेटा लव, अपने अस्त्र हटा लो और चद्रकेतु तुम भी जाकर निर्व्यापार विस्मयापन्न सेना को धैर्य प्रदान करो।

लव : बहुत अच्छा, अभी लीजिए।

(**ध्यान मे मग्न होता है**)

चंद्रकेतु . जो आज्ञा।

लव लीजिए, अस्त्र का निवारण हो गया।

राम : वत्स, ऐसे अस्त्रो का प्रयोग तथा निवारण मत्र ही से होता है और गुरु परपरा से ही ये सिद्ध किए जाते है।

वेद द्विज रच्छानिमित विधि आदि सुर मुनि वृन्द
कियेउ सहसन बरस लो तप कठिन अति स्वच्छन्द।
तप तेज बल अपनोहि तव पूरन प्रभासित स्वच्छ
लखेउ तिन इन शस्त्र चय के रूप मे प्रत्यच्छ ॥१५॥

तदतर इस समत्र गूढ विद्या को भगवान कृशाश्व ने सहस्र वर्ष से भी ऊपर सेवा करने वाले शिष्य विश्वामित्र के हेतु प्रदान किया और उनके प्रसाद से हमने सीखा, यह तो पहला क्रम है। फिर तुमको किसने बतलाया, यह हम जानना चाहते है।

लव : आप से आप हम दोनो को यह अस्त्र सिद्ध हो गए।

राम : (**विचारकर**) असंभव कुछ नही, परम पुण्य फल की यह कोई महिमा है परंतु द्विवचन का प्रयोग तुमने क्यो किया।

लव हम दो भाई है जो एक ही साथ जन्मे थे।

राम : तो वह दूसरा कहा है ?

(**नेपथ्य में—**)

भाडायन, भाडायन !

का चिरंजीव लव सग अथोर
नृप सेन करत संग्राम घोर।
प्रिय सखा, बतावहु सकल भेव
का कहत ? 'अजी यह सत्यमेव'।

तो अब त्रिभुवन मधि भासमान
'अधिराज' शब्द हो नासमान ।
छत्रिय जात्यायुध अनल क्राति
याही छिन सो बस हो हि शाति ॥१६॥

राम : इद्रमनी कीसी श्याम छटा यह को है मनोहर धारन हारो
जा कलकठ की मजुधुनी सुनि गात सबै पुलकात हमारो
ज्यो लहि नीलनिकाई भरयो नव नीरद धीर निनाद सुखारो
उच्छव सो लहरात कदंब, कली कुल सो तन साजि पियारो
॥१७॥

लव यही मेरे बडे भाई कुश हैं, जो भरताश्रम से लौटकर आ रहे है ।

राम : (कौतुक से) वत्स, तो इस चिरंजीव को भी यहा बुला लो ।

लव : बहुत अच्छा ।

(जाता है)

(कुश आता है)

कुश (अद्भुत हर्ष और धैर्य से धनुष उछालता हुआ)

वैवस्वत मनु के अगार सो अबै लो जिन
दियो पाक-सासन को अभय प्रदान है
गरब हरन गरबीन को दिगत माहि
जिनको जुलत क्षात्र तेज को कृसान है ।
तिन सूरवशी भट भूपनि सो आजु यदि
ठनि जाय सगराम विकट महान है
दिव्यायुध - उग्रदुति - नीराजित गुनवारो
तो सफल धन्य धन्य मम धनुवान है ॥१८॥

राम यह क्षत्रिय कुमार तो बड़ा पराक्रमी विदित होता है ।

तृन हू सम तीनहुँ लोकनि को बल, जो नहि आँखिन के तरलावत
अति उद्धत धीरगती सो मनो, अचला को चले वह धीर नवावत
निज बालक वैस ही मे गिरि के सम गौरवता की छटा छिटकावत
तनधारी किधौ यह दर्प लसै अथवा वर वीरता को मद आवत
॥१९॥

लव : (आगे बढकर) आर्य की जय हो !

कुश : आयुष्मन्, यह चारो ओर क्या युद्ध-जुद्ध की बात चल रही है ?

लव : यह तो जो कुछ है सो है परंतु आपको निज दर्पभाव त्याग कर इन महापुरुष के साथ विनय का वर्ताव करना उचित है ।

कुश : सो किसलिए ।

लव : देखो, ये श्री रघुनाथ जी महाराज बैठे है—वह हम दोनो पर बडा स्नेह रखते है और आपसे मिलने को उत्कंठित हो रहे है ।

कुश : (सोचकर) क्या वही जो रामायण की कथा के नायक और वेद रत्नागार को रक्षा करने वाले है ?

लव : हां, वे ही ।

कुश : वे तो बडी ही प्रशसा के योग्य पुण्य दर्शन महात्मा हैं परंतु उनके समीप किस प्रकार चलना चाहिए यह समझ मे नही आता ।

लव : जिस रीति से पिता आदि गुरुजनो के निकट जाते है उसी रीति से चलिए ।

कुश : ऐसा क्यो कर हो सकता है ।

लव : परम पराक्रमशाली उर्मिला के पुत्र चंद्रकेतु बडे ही सज्जन हैं और वह हमारे साथ मित्रभाव मानते हैं, इसलिए उनके संबंध से ये रार्जाष हमारे धर्म-पिता हुए ।

कुश : और ऐसे क्षत्रियो से विनयभाव अवलंबन करना भी कुछ लज्जा की बात नही है ।

लव : तो फिर आइए और ऐसे पुण्य चरित्र महापुरुष के दर्शन कीजिए, जिनके चेहरे से गंभीरता टपकी पडती है ।

कुश : (देखकर)

कसमृदुल मोहन रूप है
प्रिय पुण्यशील अनूप है ।
कथि रम्य रामायण खरी
कवि सफल बानी निज करी ॥२०॥

(आगे बढकर) वाल्मीकि मुनि का शिष्य कुश आपको प्रणाम करता है ।

राम : चिरंजीव रहो बेटा, आओ, हमारे पास आओ ।

तुव निरखि रूप रसाल
जनु सजल घन घन-माल।
करें नेह वस यह जीय
तोको लगावहुँ हीय ॥२१॥

(छाती से लगाकर आप ही आप) तो क्या यह वालक मेरा ही पुत्र है !

मो तन सो उत्पन्न किधौ यह वाल स्वरूप मे नेह को सार है
कै यह चेतना धातु को रूप करै कढि वाहिर मजु विहार है।
पूरी उमग हिलोरत हीय के श्राव को कैधौ लसै अवतार है
जाही सो भेंटि सुधा रस ले जनु सिचत मो सव देह अपार है
॥२२॥

लव : तात, सूर्य की किरणें आपके माथे पर पड रही हैं। आइए इस गालवृक्ष की छाया मे छिन-भर वैठकर विश्राम कर लीजिए।

राम : जो कुछ वत्सो को अच्छा लगे।

(सव चलकर वैठते हैं)

राम . (आप ही आप)

विनय युक्त यद्यपि कुश लव की वरनि न जाई
वैठनि उठनि अमोल चलनि वोलनि मुखदाई।
तोऊ उच्च उदार भाव इन माहिं विलच्छन
दरसावत नृप चक्रवर्ति के से शुभ लच्छन ॥२३॥

सुलच्छन राजन के सो सुहाई अनोखी अकृत्रिम सुन्दरताई
सवै जन के मन भाई, वढावति दोउनि के तन की कमनाई।
मयूख छटासन छाई लसै जिमि उज्जल रत्नप्रभा रुचिराई
लहै मकरद के विदन सो अरविंद निकाई अनूपम ताई
॥२४॥

ये दोनो अधिकतर रघुकुल कुमारो की अनुहार गए है। क्योंकि—

कल कपोत सुकठ सम जिन रग विलसत श्याम
वर वृपभ के से कध सोहत गठित अग ललाम
मन मुदित वीर मृगाधिपति सम करत दृष्टि अलोल
अरु मगलीक मृदंग सम गम्भीर वोलत वोल ॥२५॥

(अच्छी भाँति निहारकर) अरे, केवल हमरे ही अंग के समान

इनका रूपरंग नही है किंतु,

निपुनता युत लखन सो सिसु युगल सुदर गात
सिय रूप को अनुरूप इनमे अति प्रतच्छ लखात ।
यह लगत जनु पुनि दृष्टि गोचर होत सुखमा सद्म
प्रिय प्रफुल्लित मृदुल मंजुल मो प्रिया-मुख पद्म ।।२६।।

लसै रद उज्जल मोती समान वुही छवि मोहनी मजु रसाय
मनोहर है तिन सो दोउ ओठ वुही श्रुति-शोभा रही सरसाय
भले दृग श्यामल औ रतनार सुहावत यद्यपि तेज जनाय
तऊ इनमे बिलसै वुहि चारु प्रिया के कटाच्छन की समताय
।।२७।।

और यह तो वही वाल्मीकि जी के रहने का वन है जहां सीता देवी त्यागी गई थी और इन दोनो बालको का रूपरग भी वैसा ही है, यद्यपि इनके कथानुसार ये जृम्भकास्त्र इन पर स्वय प्रकाशित हुए है तथापि यह मेरा पूरा विश्वास नही है, संभव है मैंने जो चित्रदर्शन के समय प्रिया से कहा था कि ये अस्त्र होनहार तुम्हारे कुमारो के पास जाएगे, यह उसी का फल हो क्योकि पहले से भी ऐसा ही सुनते है कि विना गुरु के दिए ये जृम्भकास्त्र किसी को मिलते नही—हृदय का सुखातिशय मेरे अस्थिर चित्त पर, न जाने क्यो, इस प्रकार की बारबार ठगोरी डालता है । इसके सिवा यह भी विचारणीय है कि—

जब दपति-प्रेम प्रसून खिल्यो ढिग वास ते दूनौ विनोद जगाय
सब सो पहले मोहि जॉच परी सिसु युग्म की, गर्भ टटोरि
सुहाय ।
तिय जाति सुभाय इकतहु मे दृग नीचे किये तब मोसो लजाय
परिद्योस कछूक के पाछे खरो मन प्यारी के ज्ञान भयो यह
आय ।।२८।।

(रोकर) तो इनसे किसी उपाय से पूछूं कि ये दोनो किसके बालक है ?

लव : तात, क्या बात है जो,

जग मगल प्रद वदन तुव, नयन नीर कन धारि
ओस बिंदु युत कज की, करत मजु उनहारि ।।२६।।

कुश : भैया,

सिय देवी विना रघुनदन को चहुंघा सव सोकहि सोक लखाईं
निज प्यारी वियोग विथा सो तिन्है वन तुल्य सवै जग देत दिखाईं।
वुह सीतल प्रेम-प्रमोद कहाँ, विरहागि सो ही तल तप्त सदाईं
तुअ मानौ पढी कवहूँ न रमायन पूछत ऐसे अजान की नाईं ॥३०॥

राम (आप ही आप) हा, यह तो ऐसी वेलाग वात हुई जिससे कुछ भी निर्णय नही किया जा सकता, अव वस करो, पूछने से क्या होगा ? अरे दग्ध हृदय, ऐसा तू अकस्मात् स्नेह से उवल पडा और एक साथ खुल गया कि लडके भी मुझ पर तरस खाने लगे। अच्छा तो कुछ और छेड़ू (प्रगट) वत्स, तुम दोनो ने जो भगवान वाल्मीकि की पद्यमयी मनोहारिणी रविकुल कीर्ति-प्रभाविस्तारिणी रामायण पढी है उसका कुछ अंश कौतूहलवश मुझे भी सुनने की इच्छा है।

कुश : वह सपूर्ण ग्रथ ही हमने पढा है। लीजिए वालकाड के अतिम अध्याय मे निम्नलिखित भाव के ये दो श्लोक स्मरण आते है।

राम : अच्छा वोलो वेटा।

कुश : रघुकुल कमोद विधु जो न्यायी उदार भारी
सियही सुभाव ही सो तिन राम की पियारी।
तिह नेह की सलोनी लतिका ललाम छाई
गुन मजु पाइ तिय के पुनि और लहलहाई ॥३१॥

सिय के तथैव सोहे निज प्रान सोहु प्यारे
अरविंदनैन वारे अवधेश के दुलारे।
जो प्रीति योग तिनको अन्योन्य प्रति सुहायो
तिहि कहि सकैन कोऊ हिय को हिये मे भायो[1] ॥३२॥

राम : हाय, यह तो हृदय मर्माच्छिद वडा ही कठिन कष्ट है। हा देवी, निस्सदेह तुम ऐसी थी, अहो अकस्मात् अवस्थांतर प्राप्त होने

१ प्रकृत्येव प्रियासीता रामस्याऽन्महात्मन
प्रियभाव सतुतथा स्वगुणै रेव वर्धिऽत.
तथैव राम सीताया प्राणेभ्योऽपिप्रियोभवत्
हृदयत्वेव जानाति प्रीतियोग परस्वरम् ॥

से वियोगांतमयी संसारिक घटनाएं सताप को कितना बढाती हैं ?

कहँ निरतशय विश्वासमय स्वच्छन्द सो आनन्द
कहँ ते कुतूहलप्रद परस्पर मन विनोद अमन्द ।
सुख दु ख मे वह एक सी सह-हृदयता कित हाय
किहि लागि पापी प्रान अजहूँ तन रस्यो विरमाय ।।३३।।

हाय ! हाय !

सरस सुभग सुन्दर सरल, मृदुल मनोहर स्वच्छ
प्यारी के अनगिनत गुन, उदय करन मे दच्छ ।
बहु दिन को विसरचो समय, सुमरत जो दुख दैन
आइ हिये करक्यो वुही, सुनि इनके ये बैन ।।३४।।

उठते से उरोज कछूक तवै मृगनैनि के पा तरुनाई खरी
दिन थोरेइ मे कछु पीन भये खिली कजकली की लुनाई हरी ।
रति रग तरग भरे हिय पै सजि सेन अनग चढाई करी
परिपूरन जोम जनाई नही प्रति अग मे लाज निकाई भरी
।।३५।।

कुश : और यह मंदाकिनी कूलवर्ती चित्रकूट के वन विहार मे सीता देवी से निम्न भाव का राम ने श्लोक कहा है—

कैसी चोखी चीकनी, फटिक सिला दरसाय
जनु तुम्हारे ही काज यह, धरी विरचि वनाय ।
चहुँ दिसि यापै विछि रहे, देखौ सुदर फूल
चंपा द्रुम ने मनु सजी, सय्या तुव अनुकूल[1] ।।३६।।

राम : (लज्जा, स्नेह और करुणा से) ये बालक बडे भोले है । विशेषकर वनवासी होने के कारण ये लोग यह नही जानते कि कौन-सी बात कहने योग्य है और कौन-सी नही । हा देवी, तुम्हे उन प्रदेशो का स्मरण है जो हम दोनो के विश्वस्त स्वच्छद विहारो के अभी तक साक्षी है । हाय ! हाय !

कुकुम मलेन जासु तउ, उज्ज्वल अरुन कपोल
श्रम सीकर सीतल भयो, जो अनुपम अनमोल ।

१ त्वदर्थ मिव विन्यस्त· शिला पट्टोऽयमग्रत
यस्या यमभित पुष्पै प्रवृष्ट इव केशर ।।३६।।

मंद-मद लगि पवन जहँ, मंदाकिन को आय
प्यारी घुँघरारी अलक, जासु दयी बिचलाय।
ललित ललाट मयक दुति, आकुल लहि तिन भार
लहलहाति चुई सी परी, इत उत चलि बहु बार।
निराभरन श्रुति तउ सुभग, अस तुम्हरो मुखचंद
सुरति करति हिय मे अजहु, भरत छनिक आनंद ॥३७॥

(रुके हुए के समान कुछ ठहरकर करुणा से)

जब ध्यान मे तन्मय होत स्वकल्पित तासु स्वरूप ही दीसि परै
विरहा की दशाहू मे धीरज दै इमि प्यारो सदा दुख दूरि करै।
भ्रम नष्ट भये पै कछू न कछू बन जीरन को जग रूप धरै
घबराइ महाविलखै दुखिया जिय मानो तुसानल माहि जरै
॥३८॥

(नेपथ्य मे—)

गुरु वशिष्ठ वाल्मीकि ऋषि, कौशल्या मिथलेस।
अरुधती युत सभय सब, सुनि सिसुकलह-कलेस।
वृद्ध अवस्था बस निवल, रहे दूरि सो आय
चल्यो जात नहि श्रम ग्रसित, तउ अति आतुर हाय ॥३९॥

राम ओहो, क्या भगवती अरुधती, भगवान वशिष्ठ, माता और विदेहराज भी यही है। हाय-हाय, मैं उनसे किस प्रकार मिल सकूगा? (करुणा से देखकर) अहह! तात जनक जी भी दैव-योग से यही आ रहे है। हाय! यह मुझ अभागे के लिए वज्राघात है!

जाकी करी सराहना, गुरुजन प्रमुदित हीय
लखि स्वब्याह मे तात की, अस मिलनी रमनीय।
सो पितुसुख अरु बिपति यह, कैसे देखत नैन
किह अभाग बस राम की, छाती आजु फटै न ॥४०॥

(नेपथ्य में—)

हाय-हाय

केवल तेज विसेस सो, होत जासु अनुमान
छवि मलीन अस रघुपतिहि, औचक ही पहचान।
पहले के मूर्छित परै, जनक नृपहि चेताय
शोक विकल वेसुध गिरी, मातहु हा घबराय ॥४१॥

राम : हा तात! हा माता! हा जनक!

निमिवंस औ रघुवश की जो सतत मंगलकारिनी
तिहुँ भुवन मधि कमनीय कीरति-कौमुदी विस्तारिनी।
ता निरपराधिनि सीय हित यह निठुर पापी राम है
मो तुल्य निरमोहीनु पैं तुव मोह को कहा काम है ॥४२॥

(विचारकर) और नही तो थोडा-वहुत ही आगे वढ के अव इनसे मिल लू।

(उठते हैं)

लव और कुश : इधर से तात, इधर से।

(करुणा से भरे सब वाहर जाते हैं)

अंक ७

[स्थान—रगभूमि]

(लक्ष्मण का प्रवेश)

लक्ष्मण : आज भगवान वाल्मीकि जी ने हमे तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि सपूर्ण पुरवासियो और सुरासुर, नाग, किन्नर आदि समग्र चराचर प्राणी मात्र को, अपने तपोवल के प्रभाव से एकत्रित किया है और महाराज राम ने आज्ञा दी है कि आज भगवान वाल्मीकि अपना वनाया नाटक अप्सराओ से खेलवाएंगे। उसे देखने के लिए हमारा भी निमत्रण है सो गंगाजी के किनारे रगभूमि रचवाकर सव दर्शको का यथोचित प्रवंध कर दो। हमने मनुष्य, देवता और सव जीव समूह को यथायोग्य स्थान पर वैठा दिया है और—

जे नृप धर्म के पालन मे स्वप्रजा-अनुरंजनता सो छये हैं
ता संग धारि तपोवन के मुनि-घोर व्रतै जग धन्य भये हैं।
वालजुमीक महाऋषि के कविता-गुन-गौरव-नेह मये हैं
देखहु आरज वस सिरोमनि राम यहाँ वुह आइ गये है ॥१॥

(श्रीराम का प्रवेश)

राम : वत्स लक्ष्मण, दर्शक तो सव अपने-अपने स्थान पर वैठ गए न ?

लक्ष्मण : हा जी, सव वैठ गए।

राम : अच्छा तो इन प्यारे कुश-लव को भी कुमार चंद्रकेतु के वरावर ही स्थान मिलना चाहिए।

(राम बैठते हैं)

लक्ष्मण : अच्छा भाई, अव अपना नाटक प्रारभ करो।

सूत्रधार : (सामने आकर) महाशय गण, यथार्थवादी भगवान वाल्मीकि

ऋषि सब चराचर प्राणीमात्र को आज्ञा देते है कि हमने अपनी आर्ष दृष्टि से देखकर अद्भुत करुण रस से पूर्ण यह जो कुछ पवित्र नाट्य-प्रबध आपके सामने उपस्थित किया है उसका वृत्तात सब सच्चा और बडे महत्त्व का है। इसलिए आप सब लोगो को उसे, सावधान होकर देखना चाहिए।

राम : बहुत ठीक कहा, ऋषि लोग ऐसे ही होते हैं। उनके लिए केवल दिव्यदृष्टि से, क्या दृष्टि और क्या अदृष्टि सब धर्म प्रत्यक्ष के ही समान है। उन महाभागो की सुधामयी उत्कर्ष तत्त्व वाली रजोगुण से परे सत्वगुण-युक्त और बोधक शक्तिशालिनी वाणी किसी देश व किसी स्थान अथवा किसी काल मे नही रुकती, अतएव उसमे शका करना व्यर्थ है।

(नेपथ्य मे)

हा आर्यपुत्र ! हा कुमार लक्ष्मण ! मुझ अभागिनी के बालक हुआ चाहता है इसलिए उसकी वेदना से बडी दुखी हू और अकेली निराश्रय जगल मे पडी हू। मुझे पापी बाघ-भेडिये खाने को दौडते है। हाय, अब मै अभागिनी क्या उपाय करू ? कहा जाऊ ? निराश हो गगाजी मे कूद पडती हू।

लक्ष्मण . हाय ! यह तो कुछ और ही बात निकली।

सूत्रधार . विश्वभरनि जो धरनि तासु तनया सिय प्यारी
निरपराधिनी जो वन को नृप राम निकारी।
प्रसव वेदना विकल नयन सन नीर निसारति
हाय-हाय करि गग माहि अपने को डारति ॥२॥

(निकलता है)

राम : (घबड़ाकर) देवी ! देवी ! तनिक ठहरो।

लक्ष्मण महाराज यह तो नाटक है नाटक !

राम : हाय देवी, दडक वनवास की प्यारी सखी, राम के कारण यह तुम्हारी दुर्दशा ! !

लक्ष्मण आर्य, नाटक का अर्थ तो देखिए।

राम : यह लो, हम तो वज्र की छाती किए देखते ही है।

(पृथ्वी और गगा एक-एक बालक लिए सीता को सम्हालती दीख पड़ती है)

राम : वत्स लक्ष्मण, जो कभी सुना न था सो अब आकर आज उपस्थित हुआ है। सम्हालो भैया ! मैं मोहाधकार मे डूबा जाता हू।

गहि धीरज हीय सुता अपने अव सोच की मारी मरै जनि प्यारी
विसवास हमारो करै नहि क्यो, खरी तू जग मे वड भागनि भारी।
यह तैने जने सुठि बालक जो जलमाहि पुनीत विदेह दुलारी
इन दोउन सो चलि है फलि है वसुधातल पै रघुवस अगारी ॥३॥

सीता : अहो भाग जो दो पुत्र जनमे, हाय आर्यपुत्र! (मूर्छित होती है)

लक्ष्मण . (चरणो मे गिरकर) आर्य, आर्य! अहा भगवान ने फिर दिन फेरे, रघुवश के कल्याण का अकुर फिर लहलहा उठा (देखकर) हाय, क्या आर्य वेसुध-से हो रहे है और नेत्रो से अश्रुधारा वह रही है।

पृथ्वी : पुत्री, धीरज धरो।

सीता . भगवती, तुम कौन हो और ये कौन है?

पृथ्वी : यह तुम्हारी ससुराल की कुलदेवी भागीरथी हैं।

सीता भगवती, मैं तुम्हारे पाव पड़ती हू।

गंगा वेटी, तुम-सी पतिव्रता के लिए जैसा चाहिए वैसा ही तुम्हारा कल्याण हो।

लक्ष्मण . (अलग) हम लोगो पर वडी कृपा हुई।

गंगा : यह तुम्हारी जननी वसुधरा हैं।

सीता : हाय मा, आपने मुझे इस दशा मे देखा।

पृथ्वी आओ मेरी लाडली वेटी। (छाती से लगाती है)

लक्ष्मण (सहर्ष) अहा, पृथ्वी और गगा दोनो का महारानी पर अनुग्रह है।

राम (देखकर) यह तो अत्यत करुणाजनक दृश्य है।

गगा . यदि विश्वभरा पृथ्वी देवी भी व्यथित होती है तो अपत्य स्नेह सवसे अधिक होता है। सचमुच इस मोहमाया की ग्रथि से सव प्राणीमात्र का हृदय गुथा हुआ है। ससार का वधन तोडना अत्यत दुष्कर है, वेटी वैदेही! और वेटी वसुधरा, धीरज धरो, अपने हृदय को सम्हालो।

पृथ्वी देवी गगा, सीता को जनकर कैसे धीरज धरूं?

सोऊ लयो सहि जो सिय ने कियो राक्षस के वहु काल निवास
कैसे सह्यो अव जाय वतावहु ताही को दूसरो ये वनवास।

गंगा : या जग मे विधिना, सजनी, करनी निज हीय विचारत जोऊ
सो विधि सो बुह है के रहै नहिं ताहि मिटाय सकै जन कोऊ ॥४॥

पृथ्वी : ठीक कहती हो सखी, पर क्या रामचद्र को यह उचित था ? हाय, उन्होने यह न सोचा कि—

भयो ब्याह जा संग मे, बालपने के माहिं
धरनी सुता अयोनिजा, यामे पातक नाहिं।
राजऋषी जाको जनक, जनक सिखावत जोग
ताकी का कढि है सुता, ऐसी निपट अयोग ॥
लका सो निकरत करी, अग्नि परीच्छा जास
जिह तन लगि चन्दन भई, अन्धी कहा हुतास।
भलो जबै बनबास तउ, सग परी जो रोइ
करचो सुहातो पीय को, सदा अपनपो खोइ ॥
पियरी तन बलछीन अति, कँपति गर्भ के भार
याही सो रघुवस की, सन्तति चलै अगार।
इतनी बातनि मे न कछु, राम करचौ परिमान
लरकबुद्धि परि काउ को, गिन्यो न मान अमान ॥५॥

सीता . हाय ! आर्यपुत्र की सुधि क्यो दिलाती हो ?

पृथ्वी . हा, अब भी आर्यपुत्र तेरे कुछ लगते है ?

सीता . **(लज्जा से आंसू भर)** तो जैसी मा कहै।

राम : **(अलग)** भगवती वसुधरा ठीक कहती है ! मै इसी योग्य हू ! !

गगा : प्रसन्न हो, देवी भूतधात्री ! आप तो ससार की देह हो, फिर भी अजान की भाति अपने जामाता पर क्रोध करती हो ? देखिए—

लोग लुगाइन मे चरचा अपकीरति की अति फैलि रही है
लका मे अग्नि परीच्छा भई कोउ मानत ताहि यहाँ न सही है।
'राखे प्रजा अनुरञ्जन को धन' या रघुवस ने टेक गही है
ऐसी दशा मे बिचारे रघुपति को करनी तब काह चही है ॥६॥

लक्ष्मण : देवता ही प्राणियो के अत करण के मर्म को भली भाति जान सकते है और विशेपकर गंगा देवी। इस कारण भगवती, आपको मेरा प्रणाम है।

राम : सचमुच ही आपके अनुग्रह का प्रवाह महाराज भगीरथ के वंश मे निरतर बहता रहा है।

पृथ्वी : देवी भागीरथी, मैं तुम्हारे ऊपर नित्य प्रसन्न हूं, परंतु इस लडकी का असह्य दु ख देखकर छाती फटती है। मैं क्या नही जानती हू कि राम का सीता पर कितना प्रेम है ?

चाव चवाइन के चहुँ सोर सो, है के महा मन माहि दुखारी
जानि वली जिय देव प्रकोप को वेवस राम तजी सिय प्यारी।
जो अपनो तन राखि रहे यह तासु अलौकिक धीरज भारी
और प्रजा कृत पुण्य प्रताप है मंजुल भूप सुमगल कारी
॥७॥

राम : (अ०) माता-पिता लडको पर दया न करे तो कैसे काम चले।

सीता (रोती हुई हाथ जोड़कर) मा, मुझे अपने मे लीन कर लो।

राम (अ०) देखें, और क्या कहे !

गगा · नही वेटी, ऐसा मत कहो। तुम सहस्र वर्षो तक अभी ससार मे और रहो।

पृथ्वी . वेटी ! अभी तो तुझे इन वच्चो को पालना है।

सीता मैं तो अनाथ हू, फिर इनका कौन होगा ?

राम : रे वज्र हृदय ! अभी तक फटता नही !

गगा · तुम तो वेटी ! सनाथ हो, फिर अपने को अनाथ क्यो कहती हो ?

सीता : मैं अभागिनी हू। सनाथ किस प्रकार हो सकती हू !

दोनो देविया : जगत की जव मंगल कारिणी
फिरहु क्यो अपु को अपमानती।
विमल पाय सिये तुव सग को
वढती और हमार पवित्रता ॥८॥

लक्ष्मण . (राम से) महाराज सुनिए ये देविया क्या कह रही है ?

राम : ससार सुनै।

(नेपथ्य मे कल-कल शब्द होता है)

राम . वात तो कोई वड़े आश्चर्य की है।

सीता : अरे, आकाश क्यो चमक उठा है ?

दोनो देवियां : जान लिया—

जिनहिं पाइ मुनीस कृशास्व सो
सुभग सुदर कौशिक देव ने

पुनि दिये मनभावन राम को
वर विचारि स्व शिष्य परम्परा ।
लसत ये तब वे सब शस्त्र हैं
अवसि जृम्भक सो युत, जानिये
करि विचित्र महा निज तेज जो
प्रगट आइ भये अब ही यहाँ ॥६॥

(नेपथ्य में)

नमत है तुमको शिर सो सिये
हम मिले तुम पुत्रनि आज सो ।
सुघर चित्र दिखावत है जबै
यह निदेस दियो रघुवीर ने ॥१०॥

सीता : अहो भाग्य ! ये सब अस्त्र देवता है । हा आर्यपुत्र, तुम्हारे ही अनुग्रह से वे अब भी चमक रहे है ।

लक्ष्मण : (**राम से**) आर्य, आपने सीता जी से कहा था कि ये सब तुम्हारी सतान की सेवा मे रहेगे, वैसा ही हो रहा है ।

दोनों देवियां : यह करत मजु प्रनाम तुमको शस्त्र देव जु आज
धनि धन्य हो जिनको गह्यो कर कमल मे रघुराज ।
ये बाल जब चिन्तन करै तब दरस दीजौ आन
हम देत अब आसीस नित नव होइ तुव कल्यान ॥११॥

राम : लहि गंगमहि-प्रसादै विस्मै अपार आवै
सुत जन्म-सत्यताहू आनंद हिय जगावै ।
इन सो गुही गुहाई करुना तरग भारी
भरि छोभ सो करै अब कैसी दशा हमारी ॥१२॥

दोनों देवियां : मौज करो बेटी, इन दोनो पुत्रो को राम के समान ही जानो ।

सीता : अच्छा मा, यह सब तो ठीक है, किंतु फिर इन दोनो का क्षत्रियोचित सस्कार कौन करेगा ?

राम : हा, जो वशिष्ठ रच्छित रघुवश की निकाई
श्री के समान सुदर सब भाँति सो सुहाई ।
सुत संस्कार कर्त्ता ता सीय ने न पायो
कैसो प्रपच विधिना ऐसो समय दिखायो ॥१३॥

गगा : बेटी, तुम इसकी चिता न करो, दोनो बालक दूध छूटने के बाद महात्मा वाल्मीकि को सौप दिए जाएगे, वे इनके क्षत्रियोचित कर्म को करेगे ।

जिमि मह-ऋषी वशिष्ठ अरु, सतानन्द मतिवान ।
तिमि गुरु रघुनिमि वंस के, वालमीकि भगवान ॥१४॥

राम : भगवती ने अच्छा विचार किया है ।

लक्ष्मण : आर्य, इन घटनाओ से मुझे बिल्कुल निश्चय होता है कि ये लव-कुश वही है । क्योकि—

इन्हे जन्म सो सिद्ध अस्त्र तुम जानिये
वालमीकि के शिष्य इन्हे ही मानिये ।
तुम्हरी ही अनुहारि गये दोउ धीर है
बारह बारह बरस वैस के वीर है ॥१५॥

राम : वत्स, ये दोनो मेरे पुत्र है कि नही, इस सदेह के कारण कुछ समझ नही पडता, इतना घबडा रहा हू ।

पृथ्वी . आओ बेटी, चलो अब रसातल को पवित्र करो ।

राम · हाय ! प्रिया तू रसातल चली गई !

सीता मा, ऐसा करो कि मैं तुममे समा जाऊ, मुझसे संसार के दु.ख सहे नही जाते ।

राम . देखे क्या उत्तर देती है ?

पृथ्वी दूध छूटने तक मेरे कहने से इन बच्चो की रक्षा कर, पीछे जैसा तुझे रुचे वैसा करना ।

गगा : यह भी ठीक है ।

(गगा, पृथ्वी और सीता जाती है)

राम अरे, क्या वैदेही पृथ्वी मे समा ही गई ! हा ! दडक वनवास की प्यारी सखी ! सतीशिरोमणि ! हा कष्ट ! मुझे अकेला छोड तू लोकातर को चली गई ! हाय देवी हाय !

लक्ष्मण रक्षा करो भगवान वाल्मीकि, रक्षा करो ! हाय क्या यही आपके नाट्य-प्रबध का सार परिणाम था ?

(नेपथ्य मे)

सब बाजो गाजो को बद करो । अरे सब चराचर प्राणी मात्र क्या मनुष्य और क्या देवता सब के सब देखो, अभी भगवान वाल्मीकि जी की आज्ञा से एक महान् अद्भुत और पवित्र घटना उपस्थित होती है ।

लक्ष्मण : (देखकर) अहो,

करत 'घर घर' घोर घूमत झाग देत अपार
मनहुँ मथन सो विडोलित उठति गंगाधार ।

सकल सुर गधर्व ऋषि मुनि यच्छ के समुदाय
अन्तरिच्छ मझार छाये लखहु कौशलराय।
गगभुवि देवीनि के सग भुवन त्रय विख्यात
उदित अब तिह सलिल सो आहा, सिया दरसात ॥१६॥

(फिर नेपथ्य में)

जय वशिष्ठ मुनि पत्नि अरुन्धति जगत वदिनी
सौपत तुमको पुण्यव्रता मिथिलेस नदिनी।
काहू विधि की शक न तुम अपने हिय आनौ
हमहिं वसुमती त्रिपथगामिनी निश्चय जानौ ॥१७॥

लक्ष्मण : अहा, क्या चमत्कार है! देखो, आर्य देखो, (**देखकर**) हा कष्ट! आर्य तो अभी तक बेसुध ही पडे है।

(**अरुधती और सीता का प्रवेश**)

अरुंधती : तजि सकोच सकल निज बेटी प्यारी जनक दुलारी
आइ परचो कर्त्तव्य तिहारौ करौ शीघ्रता भारी।
आओ अपनो मृदुल पानि अब राम सरीर छियाओ
जैसे बनै जतन करि वैसे मेरो वत्स जियाओ ॥१८॥

सीता : (**भय से पास जाकर राम के शरीर पर हाथ फेरती है**) सावधान होओ आर्यपुत्र! सावधान हो।

राम. (**आंखें खोलकर आनद से**) अहो, यह क्या है? (**सीता को देख कुछ मुसकरा कर हर्ष और आनद से चकित हो**) अहा क्या है? स्वप्न है कि सचमुच ही वैदेही है? (**फिर देखकर लाज से**) क्या मेरी माता भगवती अरुधती, शृगी ऋषि और शाता समेत सब बडे-बूढे प्रसन्न हो रहे है?

अरुंधती वत्स, ये देखो महाराज भागीरथ के कुल की देवता सर्वदा अनुग्रहशील भगवती भागीरथी है।

(**नेपथ्य मे**)

जगत्प्रभु रामचद्र, स्मरण करो, तुमने चित्र देखने के समय कहा था कि हे गगा माता! तुम वधू सीता पर सर्वदा अरुधती के समान अपनी स्नेहमयी दृष्टि रखना, सो मै आज अपने ऋण से उऋण हो गई।

अरुंधती : और ये बेटा तुम्हारी सास वसुधरा है।

(**फिर नेपथ्य में**)

आयुष्मन् तुमने सीता त्यागते समय कहा था कि 'भगवती

वसुधरा' तुम अपनी प्यारी बेटी जानकी को देखती रहना, तुमको सौंपता हू, सो तुम भूपति होने से मेरे स्वामी के समान और जामाता होने से मेरे पुत्र के समान हो, इसलिए मैंने तुम्हारा कहना कर दिया ।

राम : मुझ जैसे महा अपराधी पर देवियो ने कैसी कृपा की ? मैं आप दोनो को प्रणाम करता हू (**चरणो पर गिरते है**) ।

दोनो देविया : चिर जियो प्यारे और सकुटुब सुख-भोग करो ।

अरुधती : प्यारे पुरवासीगण, इस समय जिस प्रकार भगवती भागीरथी तथा देवी वसुधरा ने इतनी बडाई करके मुझ अरुधती को सीता सौप दी, उसे तो आपने प्रत्यक्ष देख ही लिया, इसके पहले भगवान अग्निदेव द्वारा सीता के पुण्य चरित्र की परीक्षा हो चुकी है और अब भी देखिए ब्रह्मादिक देव इसके गुणगान कर रहे हैं । अब आप लोगो से पूछना यह है कि ऐसी पुनीत, पतिव्रता, यज्ञ से उत्पन्न हुई, परम प्रसिद्ध सूर्यवंश की वधू सीता देवी को फिर ग्रहण करना उचित है या नही ? इस विषय मे आपकी क्या सम्मति है ?

लक्ष्मण . इस प्रकार भगवती अरुधती के धिक्कारने से लज्जित होकर अब तो पुरवासी तथा सब संसार के लोग महारानी को हाथ जोड रहे हैं और इद्रादिक लोकपालो के साथ मरीचादि सप्तर्षि स्वनाम धन्य सीता जी के सिर पर पुष्प बरसा रहे है ।

अरुंधती : जगदीश रामचद्र,

यह तुम्हारी सहधर्मिनी, प्रियाधर्म अनुसार
परम प्रेम सो कीजिए, याको अगीकार ।
जो सुवरन की प्रतिकृती, तुव ढिग ताके ठौर
देउ पुण्य प्रकृती सियहि, आमन रघुकुल मौर ।।१६।।

सीता (आप ही आप) देखे, आर्यपुत्र मेरा दुख मेटते हैं या नही ?

राम : बहुत अच्छा, भगवती का आदेश सिर माथे ।

लक्ष्मण . हम भी कृतार्थ हुए ।

सीता : मैं तो जी गई ।

लक्ष्मण : महारानी, यह निर्लज्ज लक्ष्मण तुम्हारे चरणो पर गिरता है ।

सीता : वत्स, तुम्हारी चिरायु हो ।

अरुधती भगवान् वाल्मीकि, सीता के गर्भ से जो रामचंद्र जी के लड़के कुश-लव है, उन्हे भी ले आइए ।

(**जाती है**)

राम और लक्ष्मण : अहा ! हमने ठीक विचारा था।

सीता (आंखो में आंसू भर कर घबराई-सी) कहा है मेरी प्यारी जुगल जोड़ी ?

(कुश-लव के साथ वाल्मीकि का प्रवेश)

वाल्मीकि . भैया कुश-लव, यह रघुनाथ जी तुम्हारे पिता है। यह लक्ष्मण तुम्हारे पिता के कनिष्ठ भ्राता है, यह सीता देवी तुम्हारी जननी तथा ये राजर्षि जनक तुम्हारे नाना है।

सीता (हर्ष, करुणा और आश्चर्य से देखकर) क्या यहा तात जनक भी है।

कुश-लव : हा तात ! हा माता ! हा नाना !

राम-लक्ष्मण . (हर्ष से कुश-लव को गले लगा के) निस्सदेह बेटा, तुम दोनो बडे भाग्य से मिले हो।

सीता : आओ मेरे दोनो लाल, आज तुम्हारी मा का नया जन्म हुआ है। आओ बेटा, मेरी छाती से लग जाओ ! (दोनों को छाती से लगाकर रोती है)

कुश-लव . (मिलकर) हम दोनो धन्य है।

सीता . (वाल्मीकि की ओर) भगवान् तुम्हारे पाव पडती हू।

वाल्मीकि : ऐसा ही सकुटुब सुख भोगती चिरायु हो।

सीता अहा, तात जनक, कुलगुरु वशिष्ठ, सास कौशल्या जी, पति के सहित शातादेवी ! लक्ष्मण और आर्यपुत्र के त्रयतापहरण चरणारविंदो के सग प्यारे कुश-लव भी दिखाई पडते है, आज अपने भाग्योदय को देखकर हृदय आनद से फूला नही समाता।

वाल्मीकि : (उठकर देख के) लीजिए, लवणासुर को मार कर मथुरेश्वर शत्रुघ्न भी आ गए।

लक्ष्मण : जब अभ्युदय होता है तब कल्याण की सब बाते एक साथ ही मिल जाती है।

राम : सीता की प्राप्ति, पुत्रो का दर्शन और लवणासुर का वध आदि कल्याणो का इस समय अनुभव कर रहा हू तो भी न जाने क्यो मुझे प्रतीति नही होती। ऐसा मालूम होता है जैसे मै स्वप्न देख रहा हू, अथवा जब अभ्युदय का तार बध जाता है तब ऐसा ही जान पडता है।

वाल्मीकि : प्यारे रामचद्र, कहिए आपका और क्या प्रिय करे ?

राम : इससे अधिक अब क्या मनोरथ होगा. तथापि—

कलिमल कुल दूर करनि, श्रेयद मन मोद भरनि,
गाथा यह दुःख दरनि, पुण्य रासिनी।
मगलमय जगमगाय, भुवन मोहनी सुहाय,
जग की जनु गंग माय, ताप नासिनी।
शब्द ब्रह्म को प्रकास, जिह कवि उर करत वास,
तिह सुप्रौढ बुधि विलास, मुद विकासिनी।
अभिनय कृत-भासमान, चरितामृत विसद जान,
सत जग यहि करहिं पान, हिय विलासिनी ॥२०॥

(सब जाते हैं)

इति उत्तर रामचरित्र नाटक !

●

॥ श्री ॥

महाकवि भवभूति कृत

मालती-माधव नाटक

अनुवादक

कविभूषण पं० सत्यनारायण कविरत्न

रसिक नव रस के चाखनहार।
जननी-जन्म-भूमि वाणी के, जो अनुपम आधार।
निदरत नहिं हरि जन-सत-आशा श्री व्रजभाषा ठेट।
सुमन "मालती माधव" यह, तिन कोमल कर में भेट॥

—सत्यनारायण।

विज्ञप्ति

सन् १९१३ के जाड़े के दिनो मे रुग्ण होकर चिकित्सा के लिए कुछ दिन मुझे भरतपुर रहने का अवसर प्राप्त हुआ था। मनोरजन के लिए प्रार्थना करने पर परम पूजनीय सहृदय श्री पडित मायाशकर जी बी० ए० ने, जो आजकल दीघ मे नाजिम है, प्राचीन हस्तलिखित संस्कृत हिंदी पुस्तको की खोज का कार्य आरंभ कर दिया। उसी समय एक जीर्ण-शीर्ण पुस्तक के दर्शन हुए जिसमे इधर-उधर के पत्र नही थे—खोलकर उसे बीच मे देखा तो सामने श्मशान का वर्णन। तुरत हृदय मे विचार उठा कि कही भवभूति प्रणीत मालती-माधव नाटक के आधार पर तो नही लिखा गया है ? अच्छी तरह जहा-तहा पढने से विचार ठीक निकला। इस पुस्तक का नाम माधव-विनोद है।[१]

माधव-विनोद मालती-माधव नाटक का सुदर आद्योपात पद्यात्मक किंतु स्वच्छद अनुवाद है। उसे अनुवाद न कहकर अपने ढग का स्वतत्र ग्रथ कहना अनुचित न होगा।

इस लेखक द्वारा किया हुआ उत्तररामचरित नाटक का हिंदी-अनुवाद उस समय छप चुका था। मित्रो के अनुरोध से सन् १९१४ की वसत ऋतु मे मालती-माधव नाटक का भी अनुवाद प्रारभ कर दिया गया। ऐसा करने मे निस्सदेह उक्त माधव-विनोद, श्री त्रिपुरारी, नान्यदेव एव जगद्धर की संस्कृत टीका तथा प्रोफेसर काले की अंगरेजी टिप्पणियो से बडी सहायता मिली

१ इसके रचयिता व्रजभाषा के कविवर श्री सोमनाथ जी चतुर्वेदी हैं। पुस्तक को बने लगभग पौने दो सौ वरस हुए। इनके बनाए अनेक ग्रथ अब तक विद्यमान हैं जो व्रजभाषा के भूषण कहलाने योग्य है। यदि श्री १०८ समर्थ सवाई व्रजेंद महाराज भरतपुराधीश की शरण पाकर भी ये अशरण जननी-जन्मभूमि-व्रजभाषा पुस्तकें ससार के प्रकाश मे सगर्व अपना सिर ऊचा न उठा सकी, तो फिर इनके उद्धार की कोई सभावना नही है।

किंतु इस पर भी कही अविकल अनुवाद का विकल भावानुवाद हो गया है। इस असमर्थ लेखनी प्रसूत अनुवाद मे त्रुटि न रहना आश्चर्य की बात होती, क्योंकि मूल ग्रथ के भाव की सपूर्ण रक्षा करके अन्य भाषा मे छंद माधुर्य के साथ कवि की उक्ति का सच्चा चित्र खीचना सहज सामान्य कार्य नही है।

मूल ग्रंथ के कतिपय पद्यो के साथ परम प्रवीण कविवर श्री सोमनाथ जी का स्वतत्रानुवाद और यह नवीन अनुवाद के साथ-साथ पढने से ही इस परिश्रम करने की आवश्यकता हृदयस्थ हो सकेगी। प्रथम मगलाचरण ही से लीजिए:

१. सानन्दनन्दिहस्ताहतमुरजर वाहूत कौमार वर्हि-
त्रासान्ना साग्ररन्ध्र विशति फणिपतौ भोग सकोच भाजि।
गण्डोड्डीनालिमालामुखरित ककुभस्ताण्डवे शूलपाणेर्वै-
नायक्यश्चिरं वो वदन विधुतयः पान्तु चीत्कारवत्यः॥

झमकतु बदन मतंग कुभ उत्तंग अंगवर।
बदन वलित भुसुड कुण्डलित सुण्ड सिद्धिघर।
कंचन मनिमय मुकुट जगमगै सुभग सीस पर।
लोचन तीनि विसाल चारि भुज ध्यावत सुर नर।
ससिनाथ-नन्द स्वच्छन्द नित कोटि बिघन छर-छन्द-हर।
जय बुद्धि विलंद अमंद दुति इन्दुमाल आनन्द कर॥(मा० वि०)

आनंद सो नन्दी घन मुरज वजावै, सुनि
आवै मानि गरज कुमार-मोर प्यारो।
तिहडर फनहिं सिकोरि भाजि प्रविसत
जिन सूँडि रन्ध्र माहिं वासुकी बिचारो।
चिघरत तासो, शिव ताण्डव मे, गुञ्जै दिसि
मद-लोभ भौर पुञ्ज डोल मतवारो।
यहि सों डुलाइवो स्वशीश गन-नायक को
होहि सब भाँति सो सहायक तुम्हारो॥

मालती के चित्रपट पर माधव का परम प्रसिद्ध छद—

२. जगति जयिनस्ते ते भावा नवेन्दु कलादय.
प्रकृतिमधुराः सन्त्येवान्ये मनो मदयन्ति ये।
मम तु यदियं याता लोके विलोचनचन्द्रिका
नयन-विषय जन्मन्येक स एव महोत्सवः॥

चन्दन चंद्रक चन्द अनिन्द, वसत समाजनि की अधिकाई।
और हजारनि सुन्दर वस्तु, सुहैं जग को सुखदानि महाई।

मो कहँ श्री ससिनाथ की सौह नही इहि मद्धि रतीक झुठाई ।
तक्षन दानि अनन्द भई मुखचन्द की तेरी अमद जुन्हाई ॥

(मा० वि०)

नव इन्दु कलादि पदार्थ सबै जग जे विरही-मन जीतत हाल ।
हिय औरनु के लहरावत है उलटे इत वेही लगावत ज्वाल ।
कहुँ यह लोचन-चन्द्रिका चारु बसै इन नैननि रूप रसाल ।
बस मेरे तो जन्म मे सोही महोच्छव एकहि बार मे होहुँ निहाल ॥

वन मे मालती के लिए माधव का वियोग-वर्णन—

३. नवेषु लोध्रप्रसवेषु कान्ति ईशः कुरगेषु गत गजेषु ।
लतासु नम्रत्वमिति प्रमथ्य व्यक्त विभक्ता विपिने प्रिया मे ।
लोद के वृच्छनि देह की दीपति लोचन चारु कुरगनि छीने ।
चोरि लयौ नइवौ नव बेलिनि पाइ अकेली विनोद विहीने ।
श्री ससिनाथ की सौह मतगनि सुन्दरि की गति आनँद भीने ।
बाँट लिये अग अग सु यो मनभावती के अपनो मत कीने ॥

(मा० वि०)

नव पुष्पित लोध के बृच्छनु ने नव कोमल कान्ति लई सुकुमारी ।
अरु लोचन चारु कुरगनु ने गति मत्त मतंगनु ने मतवारी ।
इन वेलि नवेलिनु ने मनमोहन नम्र स्वभावहि की छवि धारी ।
यह जानि परै सबने वन मे मिलि बाँटि लई मम प्राण पियारी ॥

माधव के मेघदूत द्वारा मालती के लिए संदेश—

४. देवात्पश्येर्जगति विचरन्मत्प्रिया मालती चे—
दाश्वास्यादौ तदनु कथयेर्माधवीयामवस्थाम् ।
आशातन्तुर्न च कथयतात्यन्तमुच्छेदनीयः
प्राणत्राण कथमपि करोत्यायताक्ष्याः स एक. ॥

सब दिसि डोलत कलोल भरे मेघ तुम पाप निरवारत सलिल
बरसाइके ।
मालती कहूँ जो रावरे की दीठि आवै तब मेरी दशा
कहियो दया को सरसाइके ।
तो बिन बिकल माधौ भूल्यो खान पान अरु भाजि गई
नैननि ते नीदौ अरसाइकें ।
है अब उपाय एक यही सचु पाइ प्यारी ताहि लै जिवाय
मुखचन्द दरसाइके ॥

(मा० वि०)

परकारज देश विदेश फिरौ यदि देखौ कहूँ मम मालति प्यारी।
हिय धीरज ताहि बँधाय दशा यहि माधव की कहि दीजियो सारी।
अरु देखियो आस को तन्तु न तोरियो राखियो सो मृदु मंजु सँवारी।
बस वाही के एक सहारे अहो घन ! जीवति आयतलोचन वारी॥

प्रकृति-वर्णन—

५ अयमभिनव-मेघ-श्यामलोत्तुग-सानु-
मंदमुखरमयूरीमुक्त ससवत केकः।
शकुनि शवल नीडा नो कह स्निग्धवर्ष्मा
वितरति बृहदश्मा पर्वतः प्रीतिभक्ष्णो॥

वहु शृंगे जाकी मुकट प्रभा की नीलघटा की दुति जीतें
सीतल जलवारे स्रवत अपारे झिरना भारे नहिरीतें।
द्रुम पुञ्जनिवेली जुटी सुहेली पहुपनि मेली थिर थहरें
मकरन्द बटोरें जहँ चहुँ ओरें झमकि झकोरें मृदु फहरें।
फहरे सुप्रभजन गरमी गंजन खग दुख भंजन धुनि बोलें
अरु नचत मयूरा शृंगनि रूरा सिखिन हजूरा मन खोलें।
वहु विधि के विहरें मृग छवि छहरें आनँद लहरें लाइ हियें
तपसी जिह कन्दर वसि कें अन्दर वन फल सुन्दर खाइ जियें॥

(मा० वि०)

अति ऊँचे उठे जिह शृगनु पै घनश्याम घटा छवि छाइ रही।
अरु मोदमयी मदमत्त मयूरी निरन्तर कूक मचाइ रही।
खग नीड विचित्र धरें तरु पगति जा तन शोभा बढाइ रही।
सुखमा सो सनी अस पर्वतमाल मनोहर नैननु भाइ रही॥

६. काश्मर्याः कृतमाल मुद्गत दलं कोयष्टिकष्टीकते
तीराश्मन्तकशिम्बि चुम्बितमुखाधावन्त्यपः पूर्णिका.।
दात्यूहैस्तिनिशस्य कोटरवति स्कन्धे निलीय स्थित
वीरुन्नीडकपोतकूजित मनु क्रन्दन्त्यध. कुक्कुभा.॥

चील्ह चिकारति अवर मे अरु टिट्टिभि टेरति मडि विहारनि।
सारस औ चकई चकवा मुख ढाँकि रहै निज पच्छ उदारनि।
कुक्कुट कूकत ताप तचे अरु चातक जाचत मेह की धारनि।
जन्तु अडोल भये वन के अरु बोलति है पिंडुकी द्रुम डारनि॥

(मा० वि०)

लसैं मधुपरनी के कहुँ पुज। साजि दल नवल नवल सौ कुज॥
सघन सीतलता को ललचात। तहाँ देखो टिटीहरी जात॥

कहूँ अतसी गाडर द्रुम लूमि । झुके तट ओर रहे सरि चूमि ।।
तहाँ पवई निज पर फैलाय । छाँह के लालच भाजी जाय ।।
जहाँ वंजुल की मजुल बेलि । हरी लहराइ रही अलबेलि ।।
वही सारस चकवनु के ठाम । पख मुख ढाँकि करें विसराम ।।
कहूँ वीरुत-तरु पै धरि धाम । कलित कूजें कपोत अभिराम ।।
करै नीचे तीतरु-परिवार । 'पटीलो' शब्दनु की झनकार ।।

७. नाटक-समाप्ति पर सद्भिलाषा—

सन्तः सन्तु निरन्तरं सुकृतिनो विध्वस्तपापोदया
राजानः परिपालयन्तु वसुधा धर्मे स्थिताः सर्वदा ।
काले सतत वर्षिणो जलमुचः सन्तु स्थिराः पुण्यतो
मोदन्तां घनबद्ध बान्धव सुहृद् गोष्ठी प्रमोदाः प्रजाः ।।

सुरभी झिरना सम छीर स्रवै लखि मोद हियो परसातु रहै ।
अरु है जु हमारो समाज सबै सु सनेह सन्यो दरसातु रहै ।
ससिनाथ कहै जब चाहिए ता छिन मेह महा बरसातु रहै ।
सगरे जन के सुख सो नृप को यह राजु सदा सरसातु रहै ।।

(मा० वि०)

विलसहिं नित सुकृत सत, पापिनु को होइ अन्त,
राजै नृप धर्मवन्त, सतत न्यायकारी ।
सीखे उपकार करनु, सब जन निज भेद हरनु,
दारिद दुख दोष दरनु, जीवनु संचारी ।
वरसें घन सघन छाय, यथा समय आय आय,
जासो भुवि लहलहाय, सस्य-ससिधारी ।
सुधरे कलुषित चरित्र, उदय भाव हो पवित्र,
लहि सुराज सत्य मित्र, हो प्रजा सुखारी ।।

उक्त सस्कृत नाटक के गद्य का भी अनुवाद चतुर चतुर्वेदी जी ने पद्य मे ही किया है। उन्हे राज्याश्रय मे अवकाश था। यहा कोई आश्रय नही, अवकाश नही, इसी कारण वैसा इस पुस्तक मे नहीं हो सका। भाव भवभूति के, शब्दावली कवि सोमनाथ की, यहां तो मूल ग्रथानुसार यथोचित संपादन कर दिया है। अब यह कैसा हुआ है, इसके निर्णय का भार सहृदय पाठको पर ही छोड़ा जाता है।

आजकल नयी रोशनी वालो को ब्रजभाषा से कुछ चिढ-सी हो गई है। शृगार का नाम सुनकर तो उनकी आखो मे खून उतर आता है। इसलिए इस अभागी भाषा तथा उक्त विषय पर पहले तो लोग लिखते ही बहुत कम

हैं, जो लिखता है उसका ग्रंथ आर्थिक दुर्दशा के कारण इस क्रय-विक्रयमय संसार मे अपनी सूरत ही नही दिखा सकता। इस भाति उत्साह भंग होते हुए भी यदि किसी के हृदय मे कुछ लिखने की तरंग उठे तो उसे 'फक्कड' ही समझना चाहिए। कुछ भी समझा जाए किंतु प्रसन्नता की बात यह है कि जो काम सौंपा गया था वह किसी प्रकार पूर्ण होकर सेवा मे उपस्थित है। अनुवाद के बनने मे और बनने से अधिक प्रेस के आस-पास प्लेग आ जाने के कारण छपने मे अत्यंत शीघ्रता की गई है, ऐसी दशा मे अशुद्धियों का रह जाना आश्चर्य नही है। यथासंभव उन्हे दूर करने के लिए शुद्धिपत्र दे दिया गया है, आशा है कि तदनुसार ही पुस्तक सुधार कर पढने की कृपा की जाएगी।

उपसंहार मे उन सहृदय सज्जनो को कृतज्ञतापूर्वक धन्यवाद देकर, जो निज अमूल्य कृपा-कटाक्ष से समय-समय पर उत्साह बढाते रहे हैं। मैं लाला रामप्रसाद गुप्त का भी परम अनुग्रहीत हूं जिन्होने निज व्यय से इस अनुवाद की प्रथमावृत्ति प्रकाशित करने की कृपा प्रदर्शित की है। उन्हे इस आवृत्ति के प्रकाशन का अधिकार दे दिया गया है। इसके साथ ही इतना और निवेदन है कि यदि यह असमर्थ लेखनी-प्रसूत अनुवाद मूल का षष्टिमांश भाव भी पाठको के हृदयस्थ कर मूल ग्रंथ के पठन-पाठनार्थ यत्किंचित भी उनकी प्रवृत्ति को जाग्रत कर सका तो बस सब परिश्रम सफल है क्योंकि—

"क्लेशः फलेनहि पुनर्नवता विधन्ते।"

—सत्यनारायण

धाधूपुर, आगरा
बसत पचमी, स० १९७४

भूमिका

॥ वश्य वाचः कवेर्वाक्य ॥

जिनकी प्रतिभा-मयूरी ने उत्तररामचरित नाटक की रस वाटिका मे अभिनव नृत्य किया है उन्ही महाकवि भवभूति की रसाल लेखनी से इस मालती-माधव नामक दृश्य-काव्यमयी मधुर मजरी का समुद्भव हुआ है।

महाकवि कालिदास की भाति इनका भी नाम भारतवर्ष मे ही नही किंतु समस्त भूमडल के सहृदय विद्वानो मे प्रसिद्ध है। इनके लेख प्रकृति और मानवी प्रकृति के सच्चे निरीक्षण तथा असामान्य ओजपूर्ण वर्णनात्मक चित्रण से परिपूर्ण है। कालिदास जी के समान इनका वश-परिचय असभव नही है, इनके जीवन काल की अनेक बातो का यद्यपि पता नही लगता तथापि अपना कुल वृत्तात इन्होने स्वरचित नाटको मे सूत्रधार के मुख से दिलवा दिया है।

वश तथा जन्म-स्थान का परिचय

इनका वंश तथा जन्म-स्थान-परिचय इस प्रकार दिया हुआ है 'दक्षिण की ओर' (विदर्भ देशातर्गत) पद्मपुर नामक नगर मे कृष्ण यजुर्वेदी तैत्तिरीय शाखा के काश्यप गोत्रीय पक्तिपावन पचाग्निपूजक सोमरस-पान करने वाले उडुवर नामधारी ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण रहा करते थे। उनके वग मे महाकवि नामक एक महानुभाव ने वाजपेय यज्ञ का अनुष्ठान किया था। इसी कुल मे गोपाल भट्ट ने जन्म लिया और उनके पवित्रकीर्त्ति, नीलकंठ हुए। यही नील-कठ, श्री भवभूति-पद-सपन्न श्रीकठ के पिता थे। इनकी माता का नाम जातुकर्णी तथा गुरुदेव का नाम ज्ञाननिधि था।"

उक्त लेख से ज्ञात होता है कि यह कही बरार के आस-पास के रहने वाले थे। दंडकारण्य तथा गोदावरी नदी के मनोहर मनोज्ञ वर्णन से इसकी भली भाति पुष्टि होती है।

समय[1]

यह कब हुए यह जानना कठिन है क्योकि अपने नाटकों मे इन्होने कही तिथि-सवत् आदि नही दिया है। वह केवल अनुमान से ज्ञात हो सकता है। राजतरगिणी के मतानुसार भवभूति का सबध कन्नौज के राजा यशोवर्मा के दरबार के साथ रहा। यशोवर्मा को जब कश्मीर के राजा ललितादित्य ने पराजित किया, जैसा वाक्पति ने 'गौडवहो' मे लिखा है, तब भवभूति उसके साथ कश्मीर चले गए।

अब जनरल कनिंघम के मतानुसार ललितादित्य का राजत्वकाल सन् ६६३ से ७२६ पर्यंत है। इसी प्रमाण से डॉक्टर भाडारकर प्रभृति उनके होने का समय सातवी शताब्दी के अत तथा आठवी शताब्दी के आदि मे ठहराते हैं। इसके अतिरिक्त भवभूति की भाषा-शैली से उनका आठवी शताब्दी मे होना पुष्ट होता है। शैली-क्रम के अनुसार भवभूति को कवि सुबधु, दडी, बाण की श्रेणी मे परिगणित करना तथा उसी समय के आस-पास उनके प्रादुर्भाव को मानना अधिक सयुक्तक जान पडता है। इन सब बातो से अनुमान किया जा सकता है कि कालिदास के पीछे ही भवभूति हुए होगे, क्योकि जब उस कवि केशरी की गर्जना शेष हो जाने पर चारो ओर सन्नाटा छा गया और लोगो को जान पडने लगा कि अब पुन वैसी गर्जना का होना कठिन है तब पहले का स्मरण दिलाने वाले सुतरां उससे भी कही प्रचड दूसरे की गभीर गर्जना कर्ण कुहर मे प्रविष्ट होने लगी। यह बात वास्तव मे अधिक चमत्कारजनक मालूम पडती है।

उनके ग्रथ

उनके बनाए तीन नाटक है—मालती-माधव, महावीरचरित, उत्तररामचरित। साहित्य-महोदधि के इन तीन रत्नो का जिसने आनद नही लिया उसके लिए काव्य पठन-पाठन व्यर्थ ही है। महाकवि भवभूति की सरस्वती मानो अपनी तीन धाराओ मे तीन नाटको के आकार मे बही है। कुरुक्षेत्र के समीप सरस्वती एक ही धारा मे थोडी दूर बहकर लोप हो गई है किन्तु भवभूति की प्रतिभा के उद्गार मे वह अविच्छिन्न त्रि.स्रोत हो बहती ही चली गई है। मालती-माधव मे शृंगार रस के रूप मे, महावीरचरित मे वीरता का रूप धरकर, और उत्तररामचरित मे करुण रस के प्रवाह मे, इस प्रकार समस्त विदग्ध मंडली को तीन प्रकार के रस से आप्यायित और आप्लावित कर रही है। साहित्य-दर्पणकार 'काव्यस्यात्माध्वनि' अर्थात् ध्वनि को ही काव्य की

१. विशेष रूप से इसका निर्णय अनुवादक द्वारा रचित उत्तररामचरित नाटक की भूमिका में दिया है।

आत्मा मानते है। वह ध्वनि भवभूति की कविता से पद-पद पर टपकी पडता है। यही कारण है कि काव्यप्रकाश, सरस्वती-कठाभरण, वाग्भट्टालकार आदि साहित्य के प्राचीन ग्रथो एवं कुवलयानंद, चित्रमीमांसा, साहित्य-दर्पण आदि नवीन ग्रथो मे भवभूति के श्लोक बहुधा उदाहरण की भाति उद्धृत किए गए है। जैसा 'प्रसाद' गुण कालिदास के काव्य मे भरा है वैसी ही ओजपूर्ण ध्वन्यात्मक नयी-नयी उक्ति तथा युक्ति भवभूति की कविता मे, विशेषकर उत्तररामचरित मे पाई जाती है। इनकी विचित्र रचना से मुग्ध होकर कोई-कोई सहृदय साहित्य-मर्मज्ञ इन्हे कालिदास से बढा-चढा मानते है। "उत्तररामचरित-भवभूतिर्विशिष्यते" ॥

उनका यह कहना अधिकांश मे बहुत ठीक है। इनका शृगार तथा वीररस वर्णन किसी भी सस्कृत कवि से कम नही है और करुण रस के वर्णन मे तो भवभूति सस्कृत के सब कवियो से बढ-चढ गए है। इनकी रचना मे जो ओजस्विता तथा भाव की सचाई है उसका पता तो उन्ही को लगता है जो मूल मे इनकी कविताए पढते है। मधुर छद गूथने मे भवभूति अद्वितीय है, जिस अर्थ-गौरव, भाव की समयोचित सत्यता तथा भाषा के मनोमुग्धकारी माधुर्य के साथ यह कवीन्दु हार्दिक भाव का आदर्श सारगर्भित अक्षरावली मे खीचते है, कदाचित उसे देखकर इनके प्रत्येक पद्य को सचित्र भाव कहने मे अत्युक्ति नही होगी—उन्हे पढने से इनकी कवित्व-शक्ति का, चमत्कारिणी प्रतिभा का और असली कविता का कुछ पता चल सकता है। उनकी वाणी की किसी ही प्रकार परीक्षा कीजिए, साहित्य की कसौटी पर कसिए, वह पूर्ण तथा उच्च श्रेणी की है, और उसके पठन-पाठन से लोकेतर आनद अवश्य होता है। इसी कारण भवभूति की सरस काव्य कल्लोल मे तन्मय होकर विद्वानो ने उनकी गणना महाकवियो मे की है।

मालती-माधव नाटक

सक्षेप मे इसका कथा भाग नीचे दिया हुआ है। प्रारभ मे एक ब्राह्मण रगभूमि मे आकर नादी पाठ करता है फिर सूत्रधार (नाटक खेलने वालो का मुखिया) सूर्यनारायण की स्तुति कर कवि के कुल और काव्य-कलापो का वर्णन करता है।

अक एक . एक मठ के भीतर वृद्धा संन्यासिनी कामदकी अपनी शिष्या अवलोकिता से यह बातचीत कर रही है कि भूरिवसु और देवरात जो दोनो मित्र है वे महाविद्यालय मे जब पढते थे तब मेरे और सौदामिनी के समक्ष उन दोनो मे यह निश्चय हुआ था कि यदि उनके लडका या लडकी हुई तो वे उनका परस्पर विवाह कर अपना प्रेम सदा के लिए दृढ करेगे। पढने-लिखने

के पश्चात् भूरिवसु पद्मावतीपुरी के राजा का प्रधान मत्री नियुक्त किया गया और देवरात को भी विदर्भ देश के अधिपति ने मुख्य मत्री का पद प्रदान किया। दैवयोग से उनके मन की-सी बात हुई—अर्थात् भूरिवसु के यहा मालती कन्या ने जन्म लिया और देवरात के यहां माधव नामक पुत्र-रत्न हुआ। अब कुवर माधव मेरे पास नीति पढने भेजा गया है—उसके हृदय मे मालती के प्रति प्रेमाकुर बढता ही जाता है। अवलोकिता से यह सुनकर कि मालती भी माधव को अपने महल के नीचे आते-जाते देखकर उस पर मोहित हो गई है और उस (माधव) का एक सोहना चित्र भी उस (मालती) ने बनाया है, कामंदकी प्रसन्न हो रही है। अवलोकिता ने उसे यह भी सूचित किया कि उसने मालती द्वारा बना हुआ माधव का चित्र विहार-दासी मदारिका के हाथो माधव के पास किसी न किसी प्रकार पहुचाने का प्रबध कर दिया है और मदनोद्यान जाने के लिए माधव को भी राजी कर लिया है जिससे मालती से वहा उसकी चार आखें हो सके। यह भी इच्छा प्रकट की कि मालती और माधव के सबध के साथ ही माधव के मित्र मकरद और नदन की बहन मदयतिका का भी सबध हो जाए तो बहुत अच्छा हो। इस प्रकार कवि ने मुख्य इतिवृत्त को बीज रूप से आरोपित किया है, जिसके आरंभ का अकुर कामदकी के प्रण (अ० १, श्लोक ६) मे कर दिया है।

दूसरा दृश्य एक उद्यान मे दिखाया गया है। वहा माधव का दास कलहंस उक्त चित्र लेकर जाता है और कही आस-पास छिपकर माधव और मकरंद की बातचीत सुनता है क्योकि माधव को ढूढता हुआ मकरंद भी वही पहुंच गया है। माधव के उतरे चेहरे से ही उसके मन की पहचान कर वह (मकरंद) उसका हाल पूछता है और माधव, मालती के साथ अपने अनुराग की बात खोल देता है। किस प्रकार उसने प्रथम दर्शन मे ही उस (माधव) के हृदय पर विजयाधिकार कर लिया है यह सूचित करता है, और मालती का अपने ऊपर प्रेम बताता है, जिसकी पुष्टि मालती की सखी लवंगिका द्वारा उसकी बनाई मौलश्री की माला ले जाने से करता है। मकरद इस घटना को आशा-जनक समझता है और माधव को धीर बंधाता है। उसी समय कलहंस माधव के पास जाकर उक्त चित्र दिखाता है जिससे रही-सही शका और भी जाती रहती है। मकरद भी माधव को उसी चित्रपट पर मालती की छवि चित्रित करने के लिए सम्मति देता है, माधव भी जैसे-तैसे पूरा कर देता है और उसी पर एक छंद भी बनाकर लिख देता है। इसी अवसर पर मदारिका आती है और कलहस से चित्रपट को ले जाती है। यो माधव के विरह-वर्णन के साथ यह दृश्य समाप्त हो जाता है।

अक दो : प्रथम ही दो चेरियो की बात से विदित होता है कि मदनोद्यान

मे माधव का दर्शन कर मालती की बेचैनी और भी बढ गई है—बीच मे जिस अचित्य घटना से मालती की आशा पर पानी ही फिरा जाता था, वह यह थी कि पद्मावती के राजा के साले नंदन ने राजा के द्वारा मालती को अपने साथ व्याह करने के लिए उसके पिता भूरिवसु से बातचीत लगाई है—किंतु मालती को यह विदित नही। वह तो माधव की धुन मे अकेली अपने यहा बैठी है। उसके पास लवंगिका आती है और मालती उससे उक्त मौलसिरी का हार ले लेती है। हार देने के साथ ही लवंगिका बतलाती है कि उसके विरह मे माधव का भी बुरा हाल है और उक्त चित्र भी जिस पर माधव ने मालती की छवि चित्रित की थी, दिखलाती है। मालती उसे देखती है, उस पर लिखे छद को भी पढती है और इच्छा प्रकट करती है कि भगवान इनका बाल बाका न होने दे। वह भी विरह-यातना का अनुभव करती है और सब हाल लवगिका को सुनाती है। लवगिका मालती से माधव के साथ गधर्व-विवाह करने का संकेत करती है किंतु वह, यह कहकर कि माता-पिता की इच्छा एव कुल-मर्यादा के विपरीत चलने से मरना अच्छा है, उक्त प्रस्ताव को अस्वीकार करती है। जब ये बातें चल रही थी उसी समय कामदकी और अवलोकिता नदन के सग उसकी सगाई की भी चर्चा छेडकर पिता भूरिवसु के प्रति अविश्वास, नंदन के प्रति घृणा और माधव के प्रति उसके हृदय मे अनुरागमयी सहानुभूति उत्पन्न करती है और शकुतला एव वासवदत्ता के गधर्व विवाह के ऐतिहासिक उदाहरण सुनाकर स्वयवर-प्रथा की ओर उसका ध्यान आकर्षित करती है। यही उक्त कथा की मुख्य सधि है जिसमे बीज और आरभ मिले रहते हैं।

अंक तीन : स्थान भूरिवसु का महल है। यहा बुद्धरक्षिता और अवलोकिता बाते कर रही है कि माधव को कुसुमाकर उद्यान जाने के लिए राजी किया हैं। वही मालती जाने को है। मदयतिका के हृदय मे मकरद के लिए अनुराग उत्पन्न करने के लिए बुद्धरक्षिता ने बडा प्रयत्न किया है और कम-से-कम मकरंद के दर्शन की लालसा उसके हृदय मे जाग्रत कर दी है। आगे दृश्य मे, जिसका स्थान उक्त उद्यान माना गया है, कामदकी बताती है कि मालती की लजीली प्रकृति मे उसने कितना परिवर्तन कर दिया है। फिर मालती और लवगिका भी वही आ जाती है। माधव भी, जिसे उस समय किसी ने न देखा, वही आ जाता है। जैसे ही उसने फूल चुनती हुई मालती को देखा तो वह उसे और भी सुदर मालूम होने लगी। मालती को कुछ थकी हुई समझ कर कामदकी उसे फूल चुनने से मना करती है। जब सब बैठ जाती हैं तब कामंदकी मालती के विरह मे व्याकुल माधव की दुर्दशा का चित्र बडी करुणामय भाषा मे चित्रित करती है। इधर लवगिका ने भी मालती की बुरी हालत का वर्णन

छेड दिया है। कामंदकी माधव की कुशलता के लिए चिंता प्रगट कर रही है, वैसे ही वे सब एक व्याघ्र का कटहरे से भाग जाना सुनकर चौक पडती है। यकायक बुद्धरक्षिता वहा आई और मदयतिका को व्याघ्र के पजो से बचाने का प्रयत्न करने के लिए उनसे प्रार्थना की। उसी समय उन सबका घटना-स्थल पर होना दिखाया गया है। वे वहां मकरंद को देखकर, जिसने व्याघ्र को मारकर मदयतिका को बचा लिया था, वडी प्रसन्न होती हैं किंतु उनकी वह प्रसन्नता घायल मकरद को अचेत देखकर खेद मे बदल जाती है। वह तलवार के बल पर खडा था, मदयतिका ने उस वीर को कृतज्ञतावश सहारा दिया किंतु इस पर भी उसकी मूर्छा वढती हुई देखकर माधव भी मूर्छित हो जाता है।

अक चार : इसका दृश्य उसी स्थान पर दिखाया गया है। माधव और मकरंद को चेत होते देखकर जैसे ही सब बातें करने वैठी उसी समय एक दूत ने जाकर मदयतिका को सूचित किया कि महाराज की कृपा से उसके भाई नदन को मालती मिल गई समझो, अमात्य भूरिवसु की स्वीकृति भी ले ली है और उसे अपने साथ चलने को कहा। यह वृत्तात सुनकर मदयतिका, यद्यपि वह प्राणाधार मकरंद को ऐसी अवस्था मे छोडना नही चाहती थी, दूत के साथ चली जाती है किंतु बेचारे मालती और माधव बिल्कुल निराश हो गए है। कामदकी ने उन दोनों को यह समझाकर बहुत धैर्य दिया कि अमात्य भूरिवसु के कथन का यह अभिप्राय नही है—उसके शब्दो से यह ध्वनि निकलती है कि महाराज का अपनी पुत्री पर अधिकार है, भूरिवसु की पुत्री पर नही। इसके सिवाय उसे दृढ विश्वास दिलाया कि माधव का मालती के साथ विवाह करा देगी। महारानी का बुलावा आने से चिंताकुल कामंदकी और मालती राजमहल को चली जाती हैं और बेचारा माधव भी मकरंद के साथ नगर को लौट आता है। उक्त दोनो अंक ही इस नाटक मे प्रतिमुख संधि है जिससे कथा के क्रम-विकास मे वडी सहायता मिली है।

अक पांच · पद्मावती के श्मशान भूमि का दृश्य है। कपालकुडला योग-बल से अपनी अतरिक्ष यात्रा का वर्णन करती हुई कहती है कि उसके गुरु अघोरघट ने कराला देवी पर एक स्त्री की बलि बोली है सो उसे यही कही इस नगर मे एक सुदरी की खोज करनी है—अब वह उसी के लिए जा रही है। जैसे ही वह चलना चाहती है श्मशान मे आते हुए माधव पर उसकी दृष्टि पड जाती है। माधव प्रेम का वर्णन करते-करते इस स्थल पर तन्मय हो गया है—भूत-प्रेत-पिशाचो को मास बेचता हुआ जैसे-जैसे वह अगाडी बढता है वैसे ही पिशाचो के रंग-ढंग, भोजन आदि का वर्णन कर बीभत्स रस को पराकाष्ठा पर पहुचा दिया है। उसके साथ श्रृंगार रस का जो मिश्रण

किया है वह पढते ही बनता है। चलते-चलते जैसे ही वह एक नदी पर पहुंचा उसके कान मे एकसंग रोने की आवाज आई। ध्यानपूर्वक सुनने से जान पडा कि वह कराला काली के मठ की ओर से आ रही है। वहा जाकर उसने देखा कि अघोरघंट और कपालकुडला के मध्य मे रक्तमालाम्बरधरा मालती बलिदान होने को खडी है। चामुडा का यथोचित पूजा-पाठ करके वे मालती से कह रहे है कि जिसका तुझे स्मरण करना हो, कर ले। वह रो-रोकर माधव का नाम पुकारने लगी जिसे दूर मे सुनकर और मालती की आवाज पहचान कर माधव वहा पहुचता है। अघोरघट और माधव क्रोध मे आकर परस्पर भला-बुरा कह रहे थे और लडने के लिए बिल्कुल तैयार हो चुके थे वैसे ही कामदकी आकर बाहर से चामुडा के मठ को घेर लेने के लिए सैनिको को आज्ञा देती है। इससे अघोरघट और कपालकुडला का साहस कुछ ढीला हो जाता है। मालती को कामदकी के पास छोड माधव अघोरघट से लडता है।

अक छः : कपालकुडला पद्मावतीपुरी के पास दिखाई पडती है और गुरु अघोरघट के मारे जाने का बदला लेने के लिए प्रण करती है। उसी समय (नेपथ्य से) मालती के विवाह की विज्ञप्ति दी जाती है जिसे सुनकर कपालकुडला प्रसन्नता प्रगट करती है क्योकि व्याह की धूमधाम मे उसे अपनी घात खलने का अवसर मिलने की सभावना है। इसके पश्चात् दूसरा दृश्य ग्राम देवी के मंदिर मे उपस्थित होता है। निर्दिष्ट संकेतानुसार माधव और मकरद वहां पहले ही पहुच चुके है—कामदकी और लवगिका भी मालती सहित मदिर मे आकर बैठती है। एक नौकर मालती के लिए वस्त्राभूषण की पिटारी लेकर आता है—देवी के सामने वस्त्राभूषण पहनाने के लिए मालती को लवंगिका के साथ जगमोहन मे भेजकर कामदकी स्वयं रत्न परखने के बहाने बाहर रह जाती है। वहा मालती अपनी प्रिय सखी लवंगिका के गले लगकर माधव के गुण और उपकार का स्मरण कर रोती है और प्राण-विसर्जन करने का सकल्प प्रगट करती है—इस कार्य मे उसका अनुमोदन प्राप्त करने के लिए उसके चरणो पर गिरती है। इतने मे लवगिका के सकेत करने पर माधव उसके स्थान में आ खडा होता है। मालती के नेत्र सजल होने के कारण उसे किसी प्रकार का संदेह नही होता है, यहा तक कि माधव को लवगिका ही जान वह उसके गले से लिपट जाती है और अपने मन की सब बाते सुनाती है। माधव की गुही हुई मौलसिरी की माला को मालती ही मानकर अपने हृदय से लगा रखने की प्रार्थना कर उसके गले मे पहना देती है। पर ऊपर देखते ही माधव को पहचान सभय लज्जित हो वह पीछे हट जाती है। इतने ही मे कामदकी भीतर आकर मकरद और लवगिका के साथ उसे समझा-बुझाकर गधर्व विवाह करने के लिए राजी करती है। उन दोनो

को गुप्त मार्ग द्वारा अपने मठ पर जाने की अनुमति देकर मालती के सब वस्त्रालकार मकरद को पहनाती है और लवगिका के साथ उसे नदन के साथ विवाह होने के लिए भेज देती है।

अक सात : प्रथम दृश्य नदन के महल से प्रारभ होता है। वुद्वरक्षिता आती है—मकरद जिस चतुराई से मालती बना, जिस प्रकार नंदन के साथ उसका विवाह हुआ, जिस भाति रगमहल मे जाकर वनी हुई मालती के हाथो उसका अपमान हुआ, वह सब हाल वर्णन करती है। अगाडी के दृश्य मे मकरद कुछ उदास मालूम पड़ता है किंतु लवगिका उसे समझाती है और उसे मुह ढक कर सोने को कहती है। इसी अवसर पर नंदन की वहन मदयंतिका बुद्धरक्षिता के साथ मालती को उक्त दुर्व्यवहार के लिए उपालंभ देने आती है। किंतु लवगिका और बुद्धरक्षिता सब दोष नदन के ही सिर मढती हैं। मदयतिका यह कहकर अपने भाई की ओर लेती है कि नदन दोषी ही सही पर मालती भी तो दूध की नहाई-धोई नही है। माधव के साथ उसके भी प्रेम की चर्चा चारो ओर चल रही है। किंतु बुद्धरक्षिता और लवंगिका इस वातचीत का ढर्रा ऐसे पलटती हैं कि भोली-भाली मदयतिका मकरद के साथ अपने अनुराग को कवूल देती है। वह पहले से ही मकरंद पर आसक्त हो गई थी और जब से उसने उसे व्याघ्र से वचाया है तब से तो वह उसके प्रेम की भिखारिनी वन गई थी—इसी अवसर पर मकरंद, सच्चा मकरद वनकर प्रकट हो जाता है और मकरद की रक्षार्थ मदयंतिका को उसी समय अंधेरी रात मे कामदकी के मठ के पास उद्यान मे जाना पडता है जहा मालती और माधव पहले ही से उपस्थित थे। लवंगिका और बुद्धरक्षिता चोर-द्वार से वाहर निकल आती है। इस प्रकार अक समाप्त होता है।

उक्त तीनो (५, ६, ७) अको को 'गर्भ संधि' समझना चाहिए इसमे प्रासगिक इतिवृत्त और प्रत्याशा इस प्रकार परस्पर गुफित हो रही हैं, जिससे मुख्य घटनाक्रम को सफल होने के लिए, लाख विघ्न पडने पर भी, अच्छी सहायता मिलती हे।

अक आठ : विवाहित मालती और माधव उद्यान मे वैठे दिखाए गए हैं। वही अवलोकिता भी आ गई है। उससे मकरद और मदयतिका के विषय मे वातचीत छिड गई है—वह माधव के मद्य सदेहो का यथा समय उत्तर देकर कहती है कि यदि कोई मदयतिका-मकरद के विवाह की वात आकर सुना दे तो उसे वह क्या पुरस्कार देंगे। इसी समय वहा बुद्धरक्षिता, लवगिका और कलहंस घवडाते-हाफते हुए आए और माधव से कहा कि मकरद को नगर के चौकीदारो ने घेर लिया है, और वह उनसे अकेला ही लड रहा है। माधव मदयतिका को धीरज बंधाकर कलहम के साथ मकरद की सहायता को उसी

समय जाता है। मालती यह सब हाल कहने के लिए कामंदकी के पास अव॰ लोकिता और बुद्धरक्षिता को भेजती है और लवगिका को माधव के पास यह संदेश लेकर भेजती है कि वे बडी होशियारी से युद्ध करे। यो मालती कुछ उद्विग्न-चित्त होकर बाहर अकेली टहलती है। उसी समय कपालकुडला आकर अपना बदला लेने के लिए मालती को पकड श्री पर्वत पर ले जाती है। (वह उसका वध करने ही को थी कि कामंदकी की एक पुरानी सहचरी सौदामिनी ने, जो उसी पर्वत पर तप कर रही थी, मालती के प्राणो की रक्षा की) मदयंतिका यह सोचकर कि मै अकेली यहा बैठी-बैठी क्या करूंगी बाहर आती है और लौटी हुई लवगिका को मालती समझकर पुकारती है। भेद खुलने पर मदयंतिका और लवंगिका मालती को ढूढने बाहर आती है—उसी समय कलहंस, विजयी माधव मकरंद के आने की सूचना लाता है। पीछे से वे भी आ जाते है। यो सब के सब मदयतिका और लवगिका से मिल जाते है। मालती का हाल उनसे सुनकर माधव खिन्न होता है किंतु मकरद उसे यह समझा कर कि कदाचित मालती कामदकी के यहा गई हो, धीरज देता है। सब के सब वही जाते हैं।

अक नौ : उधर सौदामिनी पद्मावतीपुरी मे माधव से यह सब हाल कहने को आती है। यहा प्राकृतिक सौंदर्य का बडा मनोहर वर्णन है। इधर माधव मालती के विरह दु.ख मे कातर हो मकरंद के साथ वन मे उसे ढूढने निकला है। कभी मेघ द्वारा सदेशा भेजता है कभी हाथी, कपि, मोर, चकोर, वृक्षो से अपनी प्राणप्यारी का पता पूछता यहां तक व्याकुल हो जाता है कि उसे मूर्छा आ जाती हैं। उसकी यह दुख भरी दशा देख मकरंद एक पर्वत की चोटी पर से कूद कर प्राण देने को ज्यो ही उद्यत होता है त्यो ही सौदामिनी वहा योगबल द्वारा प्रादुर्भूत होती है और मालती के जीवित रहने की पहचान जो मौलसिरी की माला थी उसे दिखाकर उसने उसको सात्वना दी। इसी समय शीतल वायु के सस्पर्श से माधव की मूर्छा हट गई—सौदामिनी उस मौलसिरी की माला को उसकी अजली मे डाल देती है। माधव उसे तुरत पहचान लेता है और उससे उसे धीरज मिलता है। आगे सौदामिनी प्रगट होकर दोनो को मालती का समाचार सुनाती है और कामदकी से सब हाल कहने के लिए माधव के साथ अपने योगबल से अंतरिक्ष मे अंतर्धान हो जाती है। उक्त (८वा, ९वा) दोनो अंक 'अवमर्श सधि' के रंग मे रगे है। इसमे प्रकरी और नियताप्ति मिलकर इष्ट सिद्धि की ओर अग्रसर हो रहे है।

अक दस : इधर कामदकी, भूरिवसु, लवगिकादि मालती की सखिया उसकी कही टोह न लगने के कारण अत्यंत दुःखित हो गई है—उनके विलाप को सुनकर करुणा को भी करुणा आती है। कामदकी आदि दु ख के कारण

पर्वत से गिरना चाहती है और अमात्य भूरिवसु जीते जी चिता मे जलने को जा रहा है—उसी समय बिजली तड़पी—आगे सौदामिनी ने प्रकट होकर सबको आश्वासन दिया है और मालती की सबके साथ भेंट कराई है। तदनंतर आनंदमग्न हो सब लोगो ने वर-वधुओ का विवाहोत्सव मनाया। यह अंक निर्वहण सधि (उपसहृति) के नाम से व्यक्त किया जाता है क्योकि समुद्र मे नदियो की भाति अनेक चेष्टाए एक ही इष्ट की पूर्ति के लिए परस्पर एकत्र होकर सफल प्रयत्न हुई है।

मालती-माधव नाटक की विशेषता

उक्त नाटक अन्य नाटको की भाति पुराणातर्गत कथा का आधार नही है, इसकी आख्यायिका केवल कविकल्पना की सृष्टि है। है तो यह बडे हेर-फेर के साथ, परंतु सरल है, और इसमे किसी विषय को जटिलता भी प्राप्त नही हुई है। इसकी घटना ऐसी चमत्कृति-जनक एव चित्र-विचित्र होने पर भी इसके कथासूत्र मे कोई त्रुटि नही है। आधारस्वरूप कुछ न होने पर भी ऐसी रोचक कथा की रचना कवि की प्रौढ कल्पना-शक्ति का परिचय देती है। इसके अलावा कापालिक पथानुयायी दो पात्रो की इस नाटक मे योजना कर उनका मेल घटनाक्रम के साथ बडी उत्तमता से संयुक्त किया गया है। पात्रो के भिन्न-भिन्न स्वभावो की यथार्थ-विचित्रता यथा सभव स्पष्ट रीति से सुचित्रित की गई है। मकरंद माधव की शूरता और सुहृदस्नेह, मालती के स्वभाव की गंभीरता एव कुलशीलता, कामदकी की नीति-पटुतादि गुण, इसमे पूर्ण रूप से दिखाए गए हैं। इसका प्रधान रस प्राय. शृगार रस जान पडता है किंतु इस पर भी अन्य नाटकों की भाति इसमे वह उतना स्पष्ट और उद्दाम नही है। जिस ढग का वह पाया जाता है वह वडा गंभीर एवं प्रौढ़ है। मालती आत्म-गौरव की आदर्श है। उसके प्रेम मे पवित्र प्रबलता है, गदलापन नही है। वह माधव के लिए गहरी निराशा की दारुण यंत्रणा मे तड़पती है, उसे जीवन धारण असह्य हो जाता है, जैसा करने से उसे आनंद मिले वही उसकी सखी-सहेली भी समझाती हैं, यथावश्यक सब सुविधाएं होते हुए भी उसका कर्त्तव्य-ज्ञान एवं कुलाभिमान; किंकर्त्तव्यविमूढ होकर मर्यादा-पथ से बाल बराबर भी विचलित नही हुआ है। इसके हृदय मे अनुराग के साथ कर्त्तव्य का जैसा भीषण संग्राम हुआ है, उसका दृश्य शब्दो द्वारा व्यक्त करना असंभव है। वह तो केवल समझने की और आखें बद कर हृदय मे अनुभव करने की वस्तु है। यही हाल माधव का है। यद्यपि उसका हृदय अनुराग से लबालब भरा है, जवानी का जोश बिजली की तरह उसकी नस-नस मे दौड रहा है—दुष्ट अघोरघट के हाथ से मृगनयनी मालती की रक्षा करके भी अपनी आशा

के सफल होने का भार मालती ही पर छोड देता है। उसके प्रेम का आदर्श क्या है, उसके लिए मालती क्या वस्तु है इसको कवि ने पाचवें अंक मे दिखाकर निज वर्णन-शक्ति की पराकाष्ठा कर दी है। उसमे अनेक रसों का समावेश है किंतु शृगार और बीभत्स को संग-सग इस अनोखे ढंग से समाविष्ट किया है कि चित्त ऊबता नही है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि की प्रबल प्रतिभा-शक्ति के सामने सिंह और गाय एक धार पानी पी रहे हैं। निस्संदेह भिन्न-भिन्न रसो की ऐसी एकात्मता विरले ही स्थानो पर मिल सकेगी। इस नाटक मे अधिकतर स्त्रिया पढी-लिखी है, किस अवस्था मे पवित्र गार्हस्थ्य जीवन मे दीक्षित होना चाहिए उसका निर्णय कवि ने बड़ी उत्तमता से कर दिया है, इससे कवि के विचार समाज-सुधार के विषय मे व्यक्त होते है।

समाज सुधार मे नैसर्गिक भावो के स्वतः सफल होने मे पुरुषो के साथ स्त्रियो की कितनी आवश्यकता है, समाज को ऊचा उठाने मे स्त्रियो को कितना प्रयत्नशील होना उचित है, उन्हे राजनीति से सबध रखना चाहिए अथवा अजागलस्तन की भाति जातीय भार बनकर रहना चाहिए, राजापचार के विरुद्ध व्यर्थ का वाग-वितडा न उठाकर कैसे आदोलन की आवश्यकता है, इन सब विषयो को इस कवि ने कामदकी के चरित्र द्वारा बड़ी खूबी के साथ दिखा दिया है। साथ ही भूरिवसु की यथोचित शातिमयी कर्त्तव्यपरायणता का अनुकरण एव अनुसरण करना योग्य है। इसमे मकरंद के अपूर्व किंतु सभव सुहृद स्नेह का विशुद्ध वर्णन पढ़कर चित्त गद्गद हो जाता है। कवि ने राजा का जो आदर्श रखा है वह बहुत ही सतोषजनक है। प्रजा को उसकी आलोचना करने का अधिकार है। प्रजा वर्ग की बहादुरी से राजा प्रसन्न होता है और यथार्थ कारण प्रदर्शित करने पर अपनी आज्ञा वापस भी ले लेता है।

इस प्रकार इस नाटक मे कवि ने धर्मनीति, समाजनीति और राजनीति का अच्छा प्रतिबिंब दिखाया है। बीच-बीच मे जहां प्रकृति का वर्णन आ गया है वह भी अत्यत सुदर है, विशेषतया नवे अक मे पद्मापुरी की वनश्री का मजुमनोहर वर्णन बडा ही चित्ताकर्षक है।

यद्यपि यह नाटक दस अको मे समाप्त किया गया है किंतु इस पर भी इसे खेलने के लिए और नाटको की अपेक्षा अधिक समय नही लगेगा। क्योकि पाचवें अक के बिल्कुल छोड़ने और सातवे तथा आठवें अक को मिला देने से कथा-सूत्र अविच्छिन्न रह सकता है। इस ग्रथ को पढकर ग्रंथकार के "अस्ति वा कुतश्चिदेव भूतं महाद्भुत प्रकरण" कहने की सत्यता अक्षर-अक्षर सार्थक प्रतीत होती है।

नाटक-पात्र

(पुरुष)

माधव	: विदर्भराज के मंत्री का पुत्र
मकरंद	: माधव का मित्र
भूरिवसु	: पद्मावती राज का मंत्री—मालती का पिता
देवरात	: विदर्भ राज का मंत्री—माधव का पिता
नंदन	: पद्मावती के राजा का साला
अघोरघंट	: एक कपालिया, साधक
कलहंस	: माधव का सेवक

(स्त्रियां)

मालती	: पद्मावती राज के मंत्री की पुत्री
लवंगिका	: मालती की सखी
कामंदकी	: वृद्धा बौद्ध संन्यासिनी
बुद्धरक्षिता	: मदयंतिका की सखी
अवलोकिता, सौदामिनी	: कामंदकी की शिष्याएं
मदयंतिका	: नंदन की बहिन
कपालकुंडला	: अघोरघंट की शिष्या
मंदारिका	: विहार-दासी

प्रतिहारी, सैनिक, चेरियां आदि ।

॥ श्री हरिः ॥

हिंदी
मालती-माधव नाटक

अथ प्रस्तावना

(नान्दी)

जाके चूडा मे जो बाँकी गुम्फित कपाल-माल
ररकत अररर वहाँ गग-वारी ।
विज्जुछटा तुल्य जो ललाट-लोचन की ज्योति
बासो मिलि जगमगै तासु प्रभा प्यारी ।
कोमल सु-केतकी-कली की कोर ताकौ जहँ
भ्रम होत चारु बाल चन्द्र को निहारी ।
ऐसे चन्द्रमौलि के भुजगवल्लरी सों चहुँ
बँधे जटाजूट हरे बिपति तुम्हारी ॥१॥
आनंद सो नन्दीगन मुरज बजावै, सुनि
आवै मानि गरज कुमार-मोर प्यारो ।
तिह डर फनहिं सिकोर भाजि प्रविसत,
जिन सूंडि-रन्ध्र माहिं वासुकी बिचारो ।
चिघरत तासो, शिवताण्डव मे, गुजें दिसि,
मद-लोभ भौर पुज डोलैं मतवारो ।
यहि सो डुलाइवौ स्वसीस गन-नायक को
होहि सब भाँति सों सहायक तुम्हारो ॥२॥

सूत्रधार : **(आकर)** बस अधिक विस्तार का काम नही **(आगे देखकर)** ओहो, अशेषभुवनद्वीप-दीप भगवान सूर्यनारायण इतने ऊंचे चढ आए, अच्छा तो इन्हे प्रणाम करूं **(प्रणाम करता है)** ।

जय-जय कल्याण-रूप, विश्वमूर्त्ति विश्वभूप,
नासत घन अन्धकार, अनुपम हितकारी।
सुख औ सम्पद सु-मूल, सब प्रकार सानुकूल
कमला दीजै दयाल, दारिद-दल-हारी।
मो विनम्र घोर पाप, कीजै सब दूर आप,
हूजिये प्रसन्न देव, दु:ख-दानवारी।
मगल-संयोग अर्थ, सुन्दर सुवरण समर्थ
भगवन् पूजो अभीष्ट, तेज-पुञ्ज-धारी ॥३॥

(नेपथ्य की ओर देखकर) भाई पार्श्वक, रंगमंगल के कार्य तो सब ठीक-ठाक हो गए। यह भगवान काल प्रियनाथ की यात्रा का शुभ महोत्सव है, विविध प्रातवासी अनेक सहृदय सज्जन एकत्र हुए है, तिस पर भी आप ऐसे चुपचाप क्यो बैठे है ? विद्वत्परिपद ने मुझे आज्ञा दी है कि किसी अपूर्व नाटक मे हमारा मनोविनोद करो, इस हेतु हमे ऐसा प्रबंध खेलना चाहिए जिसमे उक्त परिषद को रिझाने के लिए सब गुण हो।

(नट आता है)

नट : महानुभाव, वह कौन गुण हैं जिनका पूज्य भूदेवो ने आपको आदेश दिया है।

सूत्र० : सब रस गहनं प्रयोग-युक्त विलसत जामे वर।
शुचि सनेह सो सने हाव औ भाव मनोहर।
उद्धतता सम्पन्न तऊ अनुराग-सूत्रधर।
मधुर-विचित्र-कथानक चित नित-नव-अनंद-कर।
जहँ बात बात मे सुहृदयप्रिय सुठि-चातुर्य सुगन्ध है।
सो उक्त विविध गुन सो गुंथ्यो अनुपम चारु प्रबन्ध है ॥४॥

नट : तो फिर आपने क्या सोचा ?

सूत्र० : (सोचकर) हा, याद आया, दक्षिण देश के पद्मपुर नामक नगर मे कृष्ण यजुर्वेदी-तैत्तिरीय शाखा के काश्यप गोत्रीय, पंक्ति-पावन पंचाग्निपूजक, सोमरस पान करने वाले, उडंबर नामधारी ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण निवास करते थे :

बड़े वे श्रोत्रिय सुहृद सुजान।
सके को करि तिनके गुनगान।
पढ़े जो सादर नित श्रुतिचार।
तत्त्व को निश्चय करन विचार।

भये वे द्रव्यवन्त महाराज।
सो केवल यज्ञ-धर्म के काज।
रहे पत्नी-व्रत युक्ति-समेत।
सुकृत-सन्तान प्राप्ति के हेत।
कियो उन निज जीवन सो प्रेम।
साधिवे केवल तप को नेम ॥५॥

इसी कुल मे गोपालभट्ट ने जन्म ग्रहण किया। उनके पवित्र-कीर्ति नीलकंठ हुए, उन्ही नीलकठ के पुत्र श्रीकठपद सपन्न पद वाक्य प्रमाणज्ञ, कविवर श्री भवभूति है। उनका नाटक-निर्माण मे नैसर्गिक नेह है। उन्होने उक्त गुणालकृत, इस अपनी कृति को हमारे हाथ सौपा है।

उसके विषय मे उनका यह कथन परम प्रसिद्ध है :

निदरत करि उपहास जे, लखि यह रचना-साज।
समझि लेइ ते यतन यह, नहि किंचित तिन-काज॥
उपजै मति कोऊ सुहृद, मो गुन परखन हार।
है यह समय अगाध बहु, औ अपार संसार ॥६॥

तो फिर पात्रो को सूचित कर दीजिए जिससे कि नाटक अच्छी तरह खेला जाए, और वे भी यथासभय शीघ्र सरूप बनाकर गाना प्रारभ कर दे। कवि के गुणो की मत पूछिए, उन्हे तो कवि ने स्वय यो वर्णन किया है :

मम को गुण प्रख्यात नहि, शिक्षा-पुण्य-प्रताप ?
नाम यथारथ जासु गुरु, पूज्य ज्ञान निधि आप ॥७॥

आगे इसको और भी अच्छी तरह व्यक्त कर दिया है :

वेद-अध्ययन उपनिषद, साख्य योग को ज्ञान।
आवत नाटक काम नहि, तो तिन-कोरो गान॥
जिह भाषा मजुल मधुर, रचना प्रौढ़ ललाम।
सरस अर्थ गौरव बिमल ताकी कविता नाम ॥८॥

नट : (सोचकर) आपकी आज्ञा सिर-माथे, यथायोग अभिनय कार्य आपने पहले ही से सबको बाट दिया है। बौद्ध-सन्यासिनी वृद्धा कामंदकी का अभिनय आप ही ने तैयार किया है, अतः वह आप ही को करना पड़ेगा, और उसकी शिष्या अवलोकिता का सरूप मै धारण करूगा।

सूत्र० : अच्छा फिर—

नट : फिर ? अजी प्रकरण-नायक मालतीवल्लभ माधव का अभिनय-कार्य किस प्रकार संपादन होगा ।

सूत्र० : मकरंद तथा कलहंस के प्रवेश के पश्चात् उसे रखना उचित है ।

नट : अच्छा तो अब समाज के सामने हम लोग सजकर खेलने को तैयार हो ।

सूत्र० : बहुत अच्छा, लो मैं अभी कामंदकी बनता हूं ।

नट : मैं भी अवलोकिता बनकर आता हू ।

(दोनों जाते हैं)

इति प्रस्तावना

अंक १

[स्थान—कामंदकी का मठ]

(भगवा वस्त्र पहने कामदकी और अवलोकिता बैठी हैं)

कामदकी : बेटी अवलोकिता !

अवलोकिता : कहिए क्या आज्ञा है ?

कामदकी : यदि अतुल विभवशाली भूरिवसु की कन्या मालती के साथ देवरात के पुत्र माधव का विवाह हो जाए तो क्या ही अच्छा हो ।

(बाईं आंख का फड़कना हर्ष के साथ सूचित कर)

फरकत यह उलटौ नयन, शुभ सूचक परिणाम ।
साखि देत मेरौ हृदय, सूधौ परि है काम ।।९।।

अवलोकिता . यह तो आपके चित्त को बड़ा रोग लगा है । बड़े आश्चर्य की बात है कि टिकरी लगे कंथा तो आप पहनती है, इतना भोजन करती है जिसमे शरीर रह सके, और सो भी एक बार, तिस पर भी अमात्य भूरिवसु ने आपको इस बखेडे मे डाल दिया है। और आप भी सब दीन-दुनिया का विचार छोड़ इस काम के पीछे हाथ धोकर पडी हैं !

कामदकी : बेटी, ऐसा मत कहो—

जो वह करत प्रवृत मोहि यह कृति मे निश्छल ।
जानहुँ तिह-विश्वास प्रेम को सो पुनीत-फल ।।
तप त्रिगरै, वरु रहै भले व्यय होइ प्राणधन ।
सुहृद-काज यदि बनै सफल तो यह मो जीवन ।।१०।।

मैं भूरिवसु के लिए इतना क्यो यत्न करती हू सो क्या तुझे विदित नही है । बाल्यावस्था मे देश-देश के अनेक विद्यार्थियो के

साथ जब हम सब विद्यापीठ मे पढते थे तब से ही हमारा स्नेह संबध भी भूरिवसु एवं देवरात के साथ हुआ है और मेरे तथा सौदामिनी के सामने उन दोनो ने प्रतिज्ञा की है कि यदि उनमे एक के पुत्र तथा दूसरे के पुत्री होगी तो दोनो संतानो का परस्पर विवाह कर दिया जाएगा। अब विदर्भ राज के मंत्री देवरात ने कुडनपुर से अपने पुत्र माधव को यहा पद्मावती मे जो न्याय पढने भेजा है सो एक प्रकार से अच्छा ही किया है।

प्रतिज्ञा करि राखी युग मित्र परस्पर व्याहन निज सन्तान ॥
निरतर सुहृदय सरल पवित्र, दिवावन ताको सुधि मति वान ॥
चारु सच्चरित बुद्धि अभिराम, असाधारण गुन मंगल मूल ॥
पठइ सुत कीन्हो समुचित काम, करन संबंध सुदृढ अनुकूल ॥११॥

अवलोकिता : यदि ऐसा ही है तो अमात्य भूरिवसु माधव को अपनी पुत्री क्यों नही व्याह देते। ऐसी युक्तियो का आश्रय लेकर चोरी-चोरी विवाह कर देने के लिए आपसे क्यों कहते है ?

कामदकी : तिहि नन्दन व्याहन चहत, नृप मन-रुचि-रिझवार।
नृप के ही मुँह बात यह, कहवाई अनिवार॥
दरसावत नृप-दोष, करि जो आन्दोलन उचित।
भडकेगो तिह-रोप, जासो यही उपाय बस॥१२॥

अवलोकिता : बडा आश्चर्य है ! उनके ऊपरी व्यवहार से तो ऐसा प्रतीत होता है कि वह माधव का नाम भी नही जानते। और लोग भी ऐसा ही समझते हैं। पर भीतर-भीतर कुछ और ही कार्य-वाही चल रही है, तो इससे क्या समझा जाए ?

कामदकी : अरी, यह तो सब ढकोसला है।

विकसन-शील-सुभाय के, दोऊ अबहिं अयान।
जानि बूझि तिन-भेद, वह यासो मनहुँ अजान॥१३॥
घर-घर मे चरचा चलति, कुँवर-कुँवरि-अनुराग की॥
वञ्चनीय नन्दन नृपति, याही में कल्याण अब॥१४॥

देखो :

करै ऊपरी मेल सबनसो सुठि बतरावै।
जनु कछु जानत नाहिं, धरै अस सरल सुभावै।
सबकी सुनै सलाह, चाल निज ऐसी ठानै।
सूछम हू सो भेद जासु वैरी नहिं जानै।

नित प्रगटै अपको अलग तऊ, सकल निभावै प्रिय-परन ।
नहिं काऊ सो चरचा करै, यही चतुर को आचरन ॥१४॥

अवलोकिता : मैं भी माधव को आपके कहने से, किसी न किसी बहाने भूरिवसु के गृह के समीप वाले राज-मार्ग पर भेजा करती हूं ।

कामंदकी : ठीक, मालती की जो धाय है उसकी पुत्री लवंगिका ने तभी मुझसे कहा है :

जनु नव काम-मूर्ति वह माधव जब यहि मग पग धारै ।
तब-तब उझकि झरोखनि सो रति-मालति ताहि निहारै ।
सिथल अंग ह्वै जाति कबहुँ तिह-मुख सरसै पियराई ।
पुलकित अमल कपोल, अमोलनि पल-पल लेति जँभाई ॥१६॥

अवलोकिता अच्छा, इसी कारण उसने अपने मनोविनोद के लिए माधव का चित्र बनाया है, जिसे लवंगिका ने आज ही मंदारिका को दिया था ।

कामदकी (कुछ सोचकर) लवंगिका ने खूब किया, क्योकि माधव का सेवक कलहस, विहार-दासी मंदारिका को चाहता है, तो उसका अभिप्राय यह मालूम होता है कि इसी ढग से वह चित्र माधव के पास तक पहुच जाए ।

अवलोकिता : मदनमहोत्सव देखने के लिए अनेक भांति उत्साहित करके माधव को भी आज प्रातःकाल मैंने मदनोद्यान भेजा है । मालती तो वहा जाएगी ही, बस यो उन दोनो की सहज ही मे चार आखे हो जाएंगी ।

कामदकी : वाह, बेटी, वाह ! तुमने बिना कहे-सुने केवल तर्कना से मेरे अभिप्राय को पूरा करने का जो यत्न किया है उससे आज मुझे अपनी पहली शिष्या सौदामिनी का स्मरण दिलाया है । वह भी ऐसी ही चतुर थी कि तर्क-वितर्कों के योग से मेरे मन की बातो को जानकर उनके अनुकूल बिना कहे-सुने ही कार्य किया करती थी ।

अवलोकिता : हा अच्छी याद दिलाई, तुमसे उन सौदामिनी की चर्चा करना तो मैं भूल ही जाया करती हं । उन्होने आजकल अद्‌भुत मंत्र सिद्ध करके कापालिक व्रत धारण किया है और वे श्री पर्वत पर रहती है ।

कामंदकी : यह तुमने किससे सुना ?

अवलोकिता : इस नगर की जो श्मशानभूमि है वहां कराला काली का एक मंदिर है ।

[स्थान—मदनोद्यान]

(कलहंस एक चित्र लिये आता है)

कलहंस : नाथ, माधव को मैं कहा देखू ! अहा, उनका रूप कैसा सुदर है जिसे देखकर साक्षात् 'मन्मथ का भी घमड चूर हो जाता है। उन्ही ने मालती का मन हरण करके उसे व्याकुल कर दिया है। (इधर-उधर टहलकर) बडा थक गया हू, तो इसी उद्यान मे छिन भर ठहर जाऊं, कदाचित मकरंद के साथ-साथ माधव भी यहां मन बहलाने को चले आवें। बस उनके यही दर्शन हो जाएंगे।

(मकरद आता है)

मकरंद : अवलोकिता ने कहा था कि माधव मदनोद्यान को गया है, अच्छा तो मैं भी वही चलू। (घूमकर तथा देखकर) ओहो, मेरा मित्र तो वह आ रहा है (अच्छी तरह देखकर)।

चलत मे यह अति ही अलसात।
देह न करति वृष्टि सुखमा की सूनी दृष्टि लखात ॥
चिन्तातुर सो साँस भरत छिन-छिन दूनी दरसावै।
कारण का ? यहि के सिवाय कछु और समझ नहिं आवै ॥
अवसि रही फिरि भुवन भुवन मे मन-मथ विजय-दुहाई।
जोर मरोर भरी जोवन-नदि यहि तन मे उमडाई ॥
प्रकृति-मधुर रमनीय भाव जब जोवन ज्योति प्रकासै।
बरबस मन बस करत धीरता धीरज हू की नासै ॥१८॥

(कामोन्मत्त माधव आता है)

माधव : लख्यौ जब सो वाकौ मुखचंद।
फस्यौ मन जाइ प्रेम के फद ॥
लौटायो लौटे नही, त्यागि दई सब लाज।
बिसरयौ धीरज, सग ही विनय विवेक समाज ॥
आज निज भूल गयो छर छन्द ॥ फस्यौ० ॥
तब तो तिह छबि लखि रुचिर भूल्यो सबको ध्यान।
विस्मय मोहित मुदित मनु करत अमिय-असनान ॥
अहा कैसो आयो आनन्द ॥ फस्यौ० ॥
अब वाके देखे बिना काहू विधि कल नाहिं।
लौटे बारहि बार यह मनौ अगारनु माहिं ॥
कष्ट काहू विधि सो नहिं मन्द ॥फस्यौ० ॥१९-२०॥

मकरद : (पास आकर) भाई माधव, इधर तो आओ।

माधव : भाई मकरद !

मकरद : आपका ललाट प्रचड मार्तंड की किरणो से कैसा संतप्त हो रहा है, चलो इस उद्यान मे छिन भर बैठ लें।

माधव : जैसी आपकी इच्छा।

(जाकर बैठते हैं)

कलहंस : (देखकर अपने-आप) वाह जी, माधव तो मकरंद के साथ-साथ इसी मौलसिरी की कुज मे विराजमान है। तो यह उनका बढिया चित्र उन्हे ही दिखाऊ, जिन्हे देखते ही मालती का मन लोट-पोट हो गया। बडी देर के थके-थकाए आए हैं, अभी ही तो बैठे है, अच्छा तो कुछ देर और इन्हे विश्राम लेने दूं।

मकरद : चलो, उस कचनार के नीचे हम लोग बैठें। अहा, इसके विकसित कुसुमो की केसर से निकली हुई कसैली किंतु शीतल सुगंध द्वारा यह सारा उद्यान कैसा महक रहा है।

(जाकर बैठते हैं)

मकरंद : मित्र माधव, आज इस नगर की सुदरियों ने मदनमहोत्सव मनाया, तुम उसे देखने गए थे। पर मुझे जान पड़ता है कि जब से तुम वहा से लौटकर आए हो तुम्हारी चित्तवृत्ति मे कुछ विलक्षण परिवर्तन-सा हो गया है। भगवान रति-रमण ने तुम्हे अपने बाणो का लक्ष्य तो नही बना लिया है।

(माधव लाज से सिर नीचा कर लेता है)

मकरद : (हसकर) यदि यह बात सत्य भी हो तो उसमे क्या बुराई है। इस कमल से मुग्ध मुखमंडल को लज्जित हो नीचा करने की कोई आवश्यकता नही है। देखो—

तिन जीवनु की का चलै है कथा ? जिन पै सुमबान ने बान सँभारयो।
सबरे जग को सिरजा विधिना परमेसुर हू बस तासन हारयो ।।
यह वाही मनोभव को है प्रभाव जो पूरि रह्यो भुवि पै दिसि चारयो।
फिरि लाज को कारन मित्र, कहा ? चित को किन चाहत भेद उघारयो ।।२१।।

माधव : मित्र, मन का भेद भला तुम से न कहूगा तो किससे कहूगा— सुनिए, अवलोकिता ने मेरे पास आकर मदन महोत्सव की बडी

प्रशंसा की। उससे उत्साहित तथा उत्कठित होकर मैं उसे देखने अकेला ही चला गया। इधर-उधर फिरते-फिरते जब थकने लगा तब उस रमणीय मंदिर के सामने लगे हुए एक छोटे से मनोहर मुकुलित मौलसिरी के थांवले के समीप जा बैठा, जहा मधुर मदिरा के समान गंध वाली सुगध से मोहित होकर अल-बेले अलिवृद गूज रहे थे। वहा अपने-आप निरतर गिरे हुए खिले फूल उठाकर बैठे ही बैठे मैने एक सुदर हार गूथना प्रारभ कर दिया। अल्पकाल के अनतर मैंने देखा कि भगवान मकरध्वज की विश्व-विजयिनी जीती-जागती पताका के सदृश, अमूल्य रत्नो के आभूषणो से अलकृत, उत्तमोत्तम वस्त्रो से सुसज्जित एक नवयौवना सुकोमलागी बाला अनेक परिचारि-काओ के साथ मदिर से निकलकर बाहर आई। उसके मुग्ध मनोहर मुखचंद्र को देखकर ऐसा जान पड़ता था मानो वह अभी कुमारी ही है—

वह रूप-सागर की किधौ श्री परम प्यारी मोहिनी।
सौदर्य-सार-समूह की किम्बा अटारी सोहनी॥
शशि-कला मंजु मृनाल किशलय कौमुदी अभिरामिनी।
लै अंग अंग अनूप बिरची काम जनु वह कामिनी॥२२॥

उसकी प्यारी सहेलियो के भी मन मे थी कि फूल बीनें। बस उन्ही के अनुरोध से वह भी उसी मौलसिरी के पास आई, तभी मुझे भी देखने का अच्छा अवसर मिला। उस समय उसकी दशा को देख ऐसा ज्ञात होता था कि मानो वह किसी सौभाग्यशाली के लिए चिरकाल से मन्मथ की असह्य यातना सह रही है, क्योंकि—

मिसिली मुरझाई मृनालिनी-सी दुबराइ गई जिह देह अमोल।
जब सग सहेली सबै बिनवे कछु बे मन काज करै तब डोल।
हिय सोच तऊ अकलक मयक की शोभा लजावन हार सुलोल।
नव कुजर दन्त कटे की अनन्त-धरै छवि सुन्दर जाके कपोल॥२३॥

जब से मैंने उस की सर्वांगसुदर मूर्ति को देखा तभी से ऐसा अत्यंत आह्लाद मिला है मानो मेरे नयनो मे किसी ने अमृत की सलाई फेर दी हो। उसने अपनी ओर मेरे मन को ऐसा खीचा जैसे चुबक लोहे को खीचता है। कहां तक कहू—

कधौं भागन को घने ताप रह्यो मनुआँ तिहि कामिनी मे विरमाय।
किहि हेतु न जान्यो परै कछूहू गयो चेतु न जाने कहाँ बिसराय।
अब चाहे भलो करो चाहे बुरो, वही दोऊ प्रकारन को फल दाय।
भवितव्यता जैसी हो हैकें रहै, तिहि सो जग काउ की ना
बसियाय ॥२४॥

मकरद : फिर चिंता क्यो करते हो, क्योकि स्नेह वाह्य कारणो से कदापि नही होता, और जो वाह्य कारणो से उत्पन्न होता है, वह असत्य है। किसलिए ? कि वह उस वस्तु के प्राप्त होते ही नष्ट हो जाता है। जो ऊपरी नही है, वही यथार्थ स्नेह है। दो वस्तुओ का प्रेम-पाश मे बधना बिना किसी अतरंग हेतु के नही हो सकता। देखो—

यह गूढ स्वभाव को कारन कोउ सबै जग मे जिय-मेल मिलावै।
नहि निर्भर सुन्दर रंग औ रूप पै प्रेम प्रथा निहचै मन आवै।
लखि मित्र पवित्र सरोरुह-हीय प्रफुल्लित प्यारी छटा सरसावै।
अरु चन्द्र के होत उदोत द्रवै नित चन्दरकान्त-मनी चित
भावै ॥२५॥

अच्छा फिर,

माधव : फिर क्या ?

तिह सग सखियनि हित परखियनि कुटिल भोह नचाइ।
मनमथ-कला सनि भरि हुलासनि अमृतमय मुसिक्याइ।
पहँचानि उर कछु आनि अन्तर एक तंत रचाइ।
करि दीठि तिरछी, मनहुँ बरछी, दियो मोहि बताइ ॥२६॥

मकरद : (आप ही आप) तो क्या पहचान भी लिया ?

माधव : फिर वे सबकी सब क्रीडा करती, कर-कमलो से तालियां बजाकर कल कंकनो को झनकारती, झिझुकते हुए राजहंस की-सी चाल से धीरे-धीरे पैर रखती, चलने से नूपुरो तथा करधनी के रोनो की मंजु-मंजीरों की भाति प्रतिध्वनित करती, एक संग फिर कर और मेरी ओर उंगली दिखाकर बोली, "राजकुमारी, देखो यहा पर किसी का कोई बैठा है।"

मकरद : (आप ही आप) हा, तो जान पडा कि यह अनुराग बहुत दिनो से था और वह इस समय व्यक्त हुआ।

कलहस : (आप ही आप) यह क्या किसी स्त्री के विषय मे रसीली बात हो रही है ?

मकरद : हां जी फिर ?

माधव : इतने ही मे जो कछु बाने करयो कहिबे नहि बैननि मे चतुराई ।
जय-शील अनेक विलासनि को प्रगटाइ छटा चहुँधा छिटकाई ।
वहु सात्विक-भाव सनी मिस काउ के ऐसी अधीर जताई दिखाई ।
वह बाल बडी-बड़ी आँखिनि की मनु मैन महीप ने आपु पढाई ।।२७।।

अभिलास पगे उतकठित से अंग-अंग अनंग जगावन सो ।
चिकनाये सनेह लुनाई भरे सरसाये दुहूँ दिसि धावन सो ।
दृग साधि कछू कछू खेचि मनौ शर घालति भौंह कमानन सो ।
चितई चितचोर सकोच भरी मम ओर अनेक प्रकारन सो ।।२८।।

परम लजीले तरल से, सरल सजीले रंग ।
जहँ के तहँ अलसात से, ललचीले जिन ढग ।।
रुचिर कमल दल से खिले, अचरज आब अमोल।
मगन सघन बरुनीन मय, तिह तरुनी दृगलोल ।।
सकल भाँति लहि हृदय मम, अनसहाय अनओट।
ऐसे असरन पै करी, निज कटाच्छ की चोट ।।
प्रथम हरयो छेद्यो बहुरि, करि निधरक रसपान।
पटक्यो छूंछो जानि जिय, नरियल के उनमान ।।२९।।

उस मनमोहिनी प्राण-वल्लभा सुदरी के अपने ऊपर अनुराग की संभावना देख मैं तो तत्क्षण उसका दास बन गया। परंतु अपनी अधीरता किसी पर प्रगट न होने पावे इस अभिप्राय से बडी दृढता के साथ अपने मन को ढाढस दे, ज्यो-त्यो करके जो हार मैं गूथ रहा था, उसे पूरा करने मे जैसे ही लगा, वैसे ही उसने हथिनी पर सवार होकर बहुत से सिपाही-पियादे, नौकर-चाकरों के साथ नगर की ओर जाने वाले राजमार्ग को अलंकृत किया।

निज जात समै वह फेरि कछू सुठि ग्रीव को जोंही लखी मम ओर।
मुख सूर्जमुखी के समान लस्यौ विलस्यो छवि धारत मंजु अथोर।
जुग नैन गढ़ाइ सनेह-सने जिन चारु घने बरुनीन के छोर।
बस मानो बुझाइ सुधा विष मे हिय घायल कीन्हों कटाच्छ की कोर ।।३०।।

तब से तो भाई—

न जाने कैसो यहै विकार ।
जडावत तावत हृदय अपार ।।

नहिं आवत पहचानि मे मुख सो कहत बनै न ।
यहि का ? पहलेहु जन्म मे याको अनुभव है न ॥
करत ना पूरौ बनै विचार। न जाने० ॥
ज्ञान गयो, जासो बढ्यो, ऐसो मोह महान ।
सन्मुख धरयो पदार्थ हू, परै नही पहचान ॥
सोच मे यद्यपि वारम्वार। न जाने० ॥
साधारण-सी वस्तु में, जिह-परिचय-अभ्यास ।
पै कछु की कछु सुरति सो, होत विरोधाभास ॥
कहूँ का ? ऐसो विगरयो तार। न जाने० ॥
हिम-सर हिमकर कोउ हो, सकै न नसि सन्ताप ।
थिर न, रचत नित-नभ महल, भ्रमि चित अपने आप ॥
पाप यह कहा लग्यो अनिवार। न जाने० ॥३१-३२॥

कलहंस : (आप ही आप) इस वर्णन से तो यही ज्ञात होता है कि किसी मनोहारिणी वाला ने मेरे स्वामी का मन हरण किया है। ऐसी चतुर कौन होगी, कदाचित् वह मालती ही न हो ?

मकरंद : (आप ही आप) यह अपूर्व रहस्य है। ऐसी दशा मे इसे निषेध करना चाहिए या नही, क्योकि—

"हूजिये नाहिं मनोज अधीन कहा तुमने अपने मन ठानी ।
बुद्धि मलीन न कीजिये जू, वस लीजिये मानी इती मम वानी ॥"
या समै जो उपदेसतु ये सब जानि परै है निरर्थ कहानी ।
जोवन जग अनग तरग उमंगित या तन मे लहरानी ॥३३॥

(प्रगट) यह तो तुमने सब सुनाया, पर वह है कौन, और किस कुल की है, सो भी कुछ जानते हो ?

माधव : सुनो, वह भी सुनाता हूं। जब हथिनी पर चढकर वह जाने लगी, उसी समय उसकी एक सखी मौलसिरी के फूल वीनने के वहाने पीछे रह गई, और सब लोगो के आगे वढ जाने पर वह मेरे पास आई, और मुझे प्रणाम करके बोली, "महाभाग, गुण (धागा) एक-सा होने के कारण सुमनो (फूलो) की गूथन एक-सी हुई है। अत. यह तुम्हारा हार अत्यंत ही रमणीय दीख पड़ता है। हमारी राजकुमारी इसे हृदय से लगाने के लिए परमोत्कठित है। उसका यह पहला ही सुमन व्यापार है। इसके गूथने मे आपने जो असाधारण चातुर्य प्रदर्शित किया है उसकी सार्थकता का लाभ लीजिए, और इसे हमारी सरस (सानुराग)

राजदुलारी का हृदयावलंबी होने दीजिए।"

मकरंद : वाह-वाह, कैसी चतुराई है।

माधव : मेरे पूछने पर उसने कहा कि ये अमात्य भूरिवसु की पुत्री है। इनका नाम मालती है। मै उनकी परम विश्वासपात्र सखी हूं, और मेरा नाम लवंगिका है।

कलहंस : (आप ही आप) क्या मालती का-सा नाम लिया जा रहा है! तव तो भगवान कुसुमायुध ने वडी कृपा की, बस अव सब काम वन गया।

मकरंद : (आप ही आप) उसने जो कहा कि वह भूरिवसु की पुत्री है, इससे ही ज्ञात होता है कि वह बडी योग्य है। और भगवती कामदकी तो उससे ऐसी प्रसन्न हैं कि दिन-रात मालती-मालती ही कहा करती है। किंतु सुना है कि उसे महाराज चंद्रकेतु ने नंदन के लिए मागा है। (प्रगट) अच्छा फिर—

माधव : इस प्रकार जब उसने अनुरोध किया तो मैंने उस हार को अपने कठ से निकालकर उसे दे दिया। वह मालती के पास जाने को वडी उत्कंठित थी, इसलिए उसने टेढे-सीधे हार की ओर अच्छी तरह देखा भी नही! बस मेरी ओर एक तिरछी निगाह डाली, और बार-बार सादर यह कहते हुए "अजी यह तो आपका महा प्रसाद है" उसे ले लिया और चली गई। जब वह उधर भीडभाड़ में मिल जाने से दिखाई न पडी तब मै भी धीरे-धीरे चला आया।

मकरद : मित्र, यह कुछ कम आनंद का विषय नही है। तुम्हारे कहने से तो यही विश्वास होता है कि मालती तुम्ही पर अनुरक्त हुई है और तुमने जो कहा है कि उसके कपोलो पर पीलापन आ गया है, इससे यही अनुमान होता है कि उसके मन को भी भगवान पंचशर ने अपने शर का लक्ष्य वनाकर झमेले मे डाल दिया है। और यह सब है निस्सदेह तुम्हारे ही कारण। इसका पता लगाना कठिन है कि पहले ही पहले तुम्हे उसने कहा देखा था, उसके सदृश कुलकन्या का एक पुरुष पर आसक्त हो किसी दूसरे से आख लडाना सर्वथैव असभव है। अच्छा, यदि ऐसा नही है तो—

क्यो सखि अपुही अपु विहँसि सैननि मे वतराहिं।
लागत यहि सो तासु मन आइ फँस्यो तो माहिं॥
काऊ को कोऊ यहाँ मनभावन सुखदैन॥

माधव : और इसके सिवाय।

मकरंद : वा लवंगिका के परम रहस भरे ये वैन ।।३४।।

कलहंस : (आगे बढ़कर) इसे भी लीजिए (चित्र दिखाता है)।

(दोनों देखते हैं)

मकरंद : कलहंस, यह माधव का चित्र किसने उतारा है ?

कलहस : जिसने उनका चित्त चुराया है।

मकरद : क्या मालती से अभिप्राय है ?

कलहंस : वही जी वही।

माधव : मित्र मकरद, तुम्हारा अनुमान खूब ठीक बैठा।

मकरंद : (कलहस से) यह मिला कहां ?

कलहस : मैंने तो अपनी मंदारिका से लिया, उसे लवंगिका ने दिया था।

मकरद : कुछ मंदारिका ने कहा भी कि मालती ने इन माधव का चित्र क्यो उतारा ?

कलहंस : जी वहलाने को।

मकरद :

तव नयननु हित कौमुदी, वह सुन्दरी सुजान।
तुम हूँ वाके सकल विधि, तन मन धन अरु प्रान ।।
प्यारे अब तिह-मिलन मे, नेंकहु संसय नाहिं।
एक संग मिलि विधि मदन, भये सहाय यहि माहिं ।।३५।।

जिस रूपराशि के लिए तुम ऐसे व्यग्र हो और जिसने तुम्हारे चित्त को चंचल कर रखा है, वह मालती अवश्य दर्शन योग्य है। अतः उसकी छवि तुम भी इस चित्रपट पर उतार दो।

माधव : जैसी तुम्हारी इच्छा (लिखने की चेष्टा करता है) किंतु भाई मकरंद—

उमडि-उमड़ि अँसुअान सों, भरि भरि आवत नैंन।
यासो भली प्रकार ये, समुही देख सकै न ।।
तासु कल्पना की रुचिर, आवत ही जिय बात।
बाँधि दयो सो होत यह, जड़ सबरो ही गात ।।
हाल पसीजत लिखत मे, अंगुरि न ठिक ठहराय।
लगातार पुनि कर कँपत, का विधि करूँ उपाय ।।३६।।

तो भी किसी न किसी प्रकार से इसे पूरा करूगा ही।

(चित्र लिखकर दिखाता है)

मकरंद : (चित्र देखकर) तुम्हारा मन जो इस पर आया है, यह ठीक ही है। ऐसी अनुपम लावण्यवती पर तुम जैसे रसिक का मन अनुरक्त होना ही चाहिए। (आश्चर्य से) वाह जी, क्या हाल

ही हाल यह छंद भी गढकर इस पर लिख दिया (पढ़ता है)—
नव इन्दु कलादि विभाव सबै जग जे विरही-मन जीतत हाल ।
हिय औरनु के लहरावत हैं उलटे इत वे ही लगावत ज्वाल ।।
कहूँ जो यह लोचन-चन्द्रिका चारु बसै इन नैननि रूप-रसाल ।
बस मेरे तो जन्म मे सो ही महोच्छव, एकहि वार मे होंहु
निहाल ।।२७।।

(मंदारिका आती है)

मदारिका : कलहस, तुम बड़े चोर हो। तुम्हारे चरण-चिह्नो को देखती यहा आ रही हू। कहो कैसा पकड़ पाया। **(माधव और मकरद से लजाकर)** अरे क्या ये भी यहा ही है !! **(पास जाकर)** महाराज, मैं प्रणाम करती हू ।

माधव-मकरंद : मंदारिका आओ, यहा बैठ जाओ ।

मंदारिका : **(बैठकर)** कलहस, हमारा चित्रपट हमे दे दो, नही तो अच्छा न होगा । भला तुमसे किसने कहा था कि इसे ले आना ?

कलहंस : **(माधव से चित्र लेकर)** लो, यह लो ।

मदारिका : इस पर यह मालती का चित्र किसने क्यो खीच दिया है ?

कलहंस : क्यो क्या ? मालती ने जिसका जिस निमित्त से चित्र खीचा उसने उसी निमित्त से मालती का भी चित्र बना दिया, इसमे अनुचित ही क्या हुआ ?

मंदारिका : **(प्रसन्न होकर आप ही आप)** वडी बात है। सृष्टि निर्माता ब्रह्मा का परिश्रम अब सफल हुआ ।

मकरद : इस चित्र के विपय मे जो कुछ तेरे प्रियतम ने कहा वह ठीक है या नही ?

मंदारिका : महाराज, वैसे का वैसा ही ठीक है ।

मकरंद : तो मालती ने माधव को इतने ध्यानपूर्वक कहां देखा ?

मंदारिका : मैं कुछ भी नही जानती, किंतु लवगिका कहती थी कि उन लोगो ने इनको झरोखो से कई वार देखा है ।

मकरंद : ठीक, हम लोग उसी मार्ग से आया-जाया करते थे ।

मंदारिका : अच्छा तो अव आज्ञा दीजिए, क्योकि मैं भगवान मदन देव का यह चरित **(प्रणयिनी तथा प्रणयी द्वारा खींची हुई परस्पर प्रतिमूर्ति)** प्रिय सखी लवगिका को शीघ्र दिखाना चाहती हूं ।

मकरद : हा-हां अवश्य, इस समय तुम्हे यही करना उचित है ।

(मदारिका जाती है)

मकरद : भाई माधव, भगवान अशुमाली अपनी किरणो को प्रखर कर

आकाश के बीचों-बीच आ पहुंचे हैं, चलो अब घर चलें ।

(दोनों चलते हैं)

माधव : ठीक है, ऐसा ही मेरा भी विचार है—

प्रिय प्रात समैं कर कुंकुम लै सखियानु ने जो मन मोद बढाय ।
मृगनैनि के गोल कपोलन पै बहु भाँति रचे सुठि फूल बनाय ।
भये होयँगे और के और कछू अब या छिन वे यहि घामहि पाय ।
जब स्वेद के बिन्दु-समूह रलें कन ओस के से मुख पै सरसाय ।।३८।।

हा ! !
सकल थल विहरत ही तुम पौन ।
भेटि प्रिया अंग अंगनि को फिर मो तन परसत क्यो न ।।
मदन-मरोर विवस मृगलोचनि उतकण्ठित दिन रैन ।
दुख पावति उत विरह-विथित इत मोहू को नहि चैन ।।
मुकुलित कलित कुन्द-कलियन कौ मधुमय जो मकरन्द ।
संगी तासु कहाइ अहो किन बरसावत आनन्द ।।३९।।

मकरंद · (अपने-आप)

कहाँ मंजु तन अति मृदुल, माधव को सुकुमार ।
कहाँ पंचशर को परम, दुरजय प्रबल प्रहार ।।
जर जर यहि विरहागिसों ऐसो भयो विहाल ।
करत त्रिदोपज-ज्वर कठिन गज कौ जैसो हाल ।।४०।।

ऐसे अवसर पर भगवती कामदकी के सिवाय हमारी रक्षा कौन करेगा, उन्ही के हाथ इसका एकमात्र उपाय है ।

माधव : (अपने-आप)

सब ओर जितै जित देखत हो दृग मोहनी मूरति भाइ रही ।
चहुँ बाहिर औ उर-अन्तर मे बहुरूप अनूप दिखाइ रही ।
खिले स्वर्न-सरोज मनोहर को जिह आनन ओप लजाइ रही ।
अति नेह सो मो-दिसि लाज पगी निज दीठि कछू तिरछाइ
रही ।।४१।।

(प्रगट) भाई, देखा यह मेरा हाल ! ! ! —

मथन-शील कोउ वेदना, जारत सकल शरीर ।
इन्द्रिय-ग्राहक-गुन हरत, मोह महा वेपीर ।।
उत्कण्ठित छिन-छिन परम, उफनत क्वाथ समान ।
जरत हृदय, तोऊ बसत, वा प्यारी मे प्रान ।।४२।।

(सब जाते है)

इति बकुल वीथी नाम प्रथमाङ्क

अंक २

(दो चेरियां आती है)

पहली : सखी संगीतशाला के पास अवलोकिता से बडी देर तक क्या-क्या बात करती रही ?

दूसरी · अरी, वही एक राम कहानी है। आज प्रातःकाल हम लोग राजकुमारी के साथ मदनोद्यान गई थी, वहां उस बकुल के नीचे जो घटना हुई उसे माधव के प्रिय मकरंद ने भगवती कामंदकी की सेवा मे ज्यों का त्यो निवेदन कर दिया। अब कुमारी का क्या हाल है, इसका पता लगाने के लिए उन्होंने अवलोकिता को भेजा है, सो उसने आते ही पूछा कि मालती कहा पर है। मैंने भी उसे बता दिया कि वह लवगिका के साथ ऊपर अटारी मे बैठी है। बस यही थी सब बातचीत।

पहली : सखी लवगिका तो केसर के फूल बीनती-बीनती मदनोद्यान में ही रह गई थी, वह क्या हाल ही चली आई ?

दूसरी : और नही तो क्या। जैसे वह पास आई वैसे ही सब सखियो का साथ छोड़कर मालती ने उसका हाथ जा पकडा और उसे अटारी पर ले गई।

पहली : उसी महानुभाव की बात पूछपाछ कर अपना जी बहला रही है।

दूसरी : (सांस भरकर) उस बिचारी के भाग मे जी बहलाना कहां ? वह पहले ही उनकी गुणावली सुनकर अपना मन खो चुकी थी। आज तो पास से उनका दर्शन कर वह और भी अनुराग मे पागल हो गई होगी। इसके सिवाय प्रात काल मत्री ने हमारे महाराज की बात का उत्तर दे दिया जिसमे उन्होने मालती को नदन के साथ ब्याह देने का प्रस्ताव किया था।

पहली : क्या उत्तर दिया ?

दूसरी : वस यही कि महाराज अपनी कन्या का जो चाहे सो करें। इससे जान पडता है कि माधव की प्रेम-फांस मालती के हृदय मे जन्म भर करकती रहेगी।

पहली . अरी तू जो कहती है सो तो सच है किंतु भगवती कामंदकी क्या अपनी महिमा का कुछ भी प्रभाव न दिखाएंगी ?

दूसरी : इन कोरी वातो से क्या प्रयोजन निकलता है, चलो अपना-अपना काम देखें।

[स्थान—मालती के महल की एक अटारी]

(मालती और लवगिका बैठी हैं)

मालती : सखी, फिर क्या हुआ ?

लवगिका : वस, उन्होने मुझे यह मौलसिरी की माला दे दी।

(माला देती है)

मालती : **(माला लेकर तथा उसे सहर्ष देख)** सखी, इस हार की गूथन तो बड़ी विलक्षण है, किंतु सब फूल एक ही ओर गुण मे ग्रथित होने के कारण इसकी रचना मे विषमता आ गई है।

लवंगिका : सो तो ठीक है, किंतु तुम्हारे ही सिर इसका दोप है।

मालती : बहिन, मैंने क्या किया ?

लवगिका : और क्या करोगी, नवदूर्वादिल सदृश श्यामल अंग वाले माधव के मन को अपने सौंदर्य के वल से लूट लिया, बस एकाग्रचित्त न रहने से उसकी हथौटी कुछ की कुछ हो गई है।

मालती : सखी, तुझे जी समझाना बहुत आता है।

लवगिका : इसमे जी समझाने की कौन-सी बात है। सच तो कहती हूं, जब वह तुम्हारी ओर देख रहे थे तो उनके नैन कह रहे थे कि भगवान मैन के बाण उन्हे भी लगे है। क्योकि मंद वायु से प्रकाशित कमल की भाति वे चचल हो रहे थे। कभी तो टक-टकी लगाए तुम्हारी ओर निहारते थे और कभी हार गूथने के बहाने बडी कठिनता से दृष्टि फेर लेते थे। यह सब उनकी अवस्था अपनी आखो से तुम स्वयं देख चुकी हो, इसमे पलोथन लगाने की मुझे क्या आवश्यकता है ?

मालती : **(गले से लगकर)** प्यारी लवगिका, कही उनकी आखें वैसी न हो जिससे देखने वालो को धोखा हो जाए। बहिन, सच-सच

बता कि जैसे तू कह रही है उसी प्रकार उनके भाव व्यक्त हुए थे ?

लवंगिका : (हसकर तथा भौंह नचाकर) उस समय तुम भी तो बेताल-सुर के नाच उठी थी।

मालती : (लजाकर) अच्छा तो फिर उसके उपरात क्या हुआ, सो बतला।

लवंगिका : लोग जब लौटे, और अधिक भीड होने के कारण वह मेरी दृष्टि न पडे, तब मैं भी वहा से लौट आई, और आते-आते मंदारिका के यहां गई। आज प्रातःकाल ही मैंने उसे वह चित्रपट दिया था।

मालती : कौन-सा चित्रपट, वही जो मैंने कल बनाया था ?

लवंगिका : हां, वही।

मालती : तो फिर उसे मदारिका को देने का क्या कारण ?

लवगिका : तू नही जानती ? माधव का अनुचर कलहंस मंदारिका का प्रेमी है, तेरा बनाया चित्र वह उसे अवश्य दिखलावेगा। यही समझकर मैंने वह चित्रपट उसके पास भेज दिया था। आते समय उसे लेते आने का विचार था, इसीलिए ही वहा गई थी। किंतु मंदारिका ने कुछ और ही मन की बात कही।

मालती : (आप ही आप) ठीक, मदारिका ने वह चित्रपट कलहंस को और उसने अपने स्वामी को दिखलाया होगा। (प्रगट) कौन-सी बात कही, बताओ तो ?

लवगिका : यही जले को जलाने वाला, दुर्लभ मनोरथ के सोच की आग को कुछ-कुछ ठडा करने वाला तुम्हारा चित्रपट।

(चित्रपट दिखलाती है)

मालती : (हर्ष और प्रेम से उसे देखकर) ओहो ! मेरा मन भी कैसा घबडाया हुआ है, अब भी इसे सच-सच प्रतीत नही होता। कही यह भी (चित्रपट) मुझे धोखा देने के लिए ही न हो ? इसमें तो कुछ लिखा भी है ('नवइन्दुकलादि...' छद पढ़कर हर्ष से) महाभाग, यह तुम्हारा कथन बहुत ही यथार्थ है। जैसी सुदर आपकी आकृति है, वैसी ही कविता भी है। किंतु तुम्हारा दर्शन तत्काल के लिए तो मधुर है, अंत मे नितात संतापदायी होने के कारण दारुण है। जिन अबलाओ ने तुम्हे नही देखा है अथवा देखकर भी जिनका मन तुम्हारे लिए उत्कठित न हुआ हो, वे यथार्थ मे धन्य हैं।

लवंगिका : सखी, यह सब कुछ होते हुए भी तेरे मन को भरोसा क्यो नही होता ?

मालती : कैसे धीरज धरूं ?

लवंगिका : जिसके लिए तेरा हृदय, टूटे हुए अशोक पल्लव के समान, मुरझा गया है, और तू थककर ऐसी असमर्थ हो गई है कि मल्लिका कुसुम की माला का भार भी नही सह सकती,—कुसुमायुध ने जैसे तुझे ठाठर बना दिया है, वैसे ही उसके भी मन को मथ एवं संतापित कर अपना मन्मथ नाम यथार्थ चरितार्थ कर दिया है ।

मालती भगवान उन्हे सकुशल रक्खे, सखी ! मुझे आस नही रही । आज तो मेरा जी और भी घबड़ाता है—

बस अब नहिं जात सही ।
यह मन विथा तीव्र विष सम, जो अविरत व्यापि रही ।
धधकि धधकि दहकति पावक सी प्रबल, धुआँ नहिं दीसै ।
कठिन ताप ज्यो प्रति छिन बढि-बढि सब अंगनि को पीसै ।
पराधीन पितु करि न सकै कछु, माता समरथ नाहिं ।
लखियत मम उद्धार करन की सकति न सखि, तो माहिं ।।१।।

लवगिका : ऐसा ही है, सज्जनो का समागम उनके समीप रहने से सुख देता है, और वही उनके विलग होने से दुख देता है । केवल झरोखे मे बैठकर जिसे छिन भर देखने के कारण निर्दय काम-बाण के असह्य प्रहार से तुम्हारे प्राण आपत्ति-ग्रसित हुए है, और सारी देह की यह दशा हो गई हैं—आज, पूर्ण चंद्रोदय के समान शीतल होने पर भी, उसी का दर्शन करने से जो तुम्हारी ऐसी दशा हो तो क्या आश्चर्य ! प्यारी सखी, तुम्हारे दुर्लभ एव अत्यंत अनिर्वचनीय मनोरथ का फल इसके अतिरिक्त और कुछ नही जान पडता कि तुम्हारा जिस पर विशेष अनुराग है उस हृदयवल्लभ प्रियतम का समागम तुम्हे प्राप्त हो । यही तुम्हारा आतरिक प्रयोजन है ।

मालती : सखी, मेरा जीना तुझे बहुत प्रिय है, मेरे लिए साहस करने को तू सदा उद्यत रहती है । पर मैं कुछ इतनी पागल नही हूं । बस मै तेरे परामर्श को कदापि अंगीकार नही करूंगी । अथवा इसका दोष मैं तुझे ही क्यो दू ? उसके लिए मैं ही अपराधी हूं जो मैं उन्हे बार-बार देखती हू । बडे सकट एवं धैर्य से अपने हृदय को स्तभित कर दुष्प्राप्य फल की अभिलाषा करती हू,

और इसीलिए तुझे भी इस प्रकार बोलने का अवसर हाथ लगा—तथापि :

प्रति रात्रि नभ में चन्द्र पूरण हृदय वरु तापत रहै।
अरु मृत्यु सो आगे करै कहा, मदन चाहे नित दहै ।।
मम इष्ट पावन परम पितु औ मात कुल को मान है।
तिहि त्यागि बस चाहिये न मोहि, प्रानेस औ यह प्रान है ।।२।।

लवंगिका : (आप ही आप) अब क्या उपाय हो सकता है ?

(पर्दे के पीछे से आकर)

प्रतिहारी : श्रीमती कामंदकी आई हैं।

मालती : अच्छा तो विलंब करने का क्या काम है, उन्हे भीतर ले आ।

(प्रतिहारी का जाना और मालती का चित्र को छिपाना)

लवगिका : अब बात बनी।

(अवलोकिता के साथ कामदकी आती है)

कामंदकी : (आप ही आप) वाह, भूरिवसु वाह, "महाराज अपनी कन्या को जो चाहे सो करे" लोक और परलोक दोनो साधने की बात कही। कैसा सारगर्भित कथन है, वाह, इसके सिवाय आज मदनोद्यान की घटना सुन मुझे प्रतीत होता है कि मेरे अभीष्ट के सफल होने मे दैव भी अनुकूल है। मौलसिरी के हार तथा चित्रपट आदि की बातो से मुझे असामान्य कौतुक एवं आनंद होता है। परिणय-संस्कार मे प्रधानत: वर-वधू का परस्पर अनुराग ही नितात श्रेयस्कर है। अंगिरा ऋषि ने भी कहा है कि जिस पर मन और नेत्रो का अधिकतर अनुराग हो उसी के साथ विवाह करने मे विशेष वृद्धि होती है। चलो दैव-योग से सब काम बन गया।

अवलोकिता : वह देखो, मालती सामने बैठी है।

कामंदकी : (देखकर)

अति कृशतन सुन्दर सरस, कदली-कोस समान।
कला-शेष शशि-मूर्ति सी, दृग सुख दैनि महान ।।
मनमथ दाह अथाह सो, विकल विपन्न उदास।
एक संग लखि याहि जिय, उपजत सुख अरु त्रास ।।३।।

परे पियरे यहि गोल कपोल वियोग के सोग अपारनु पाइ।
तऊ उन पै यह बात विचित्र मनोहरता की छटा छहराइ ।।

लसै जिन को तन मंजु मलूक सुभाय सों सुन्दरता सरसाइ।
विराजै वही मनमथ्थ महीप विजै निज चौगुनी चारु दिखाइ ॥४॥

ठीक ऐसा अनुमान होता है कि यह मन-ही-मन प्रिय-समागम का सुख अनुभव कर रही है। क्योंकि—

यहि परी नीवी-ग्रन्थि ढीली अधर पल्लव विचल हैं।
स्वेदकन झलकत वदन पै भुजलताहू सिथिल हैं॥
प्रिय-अध-निमीलित नयन मजुल मधुर मुग्ध सनेह सो।
अकथित-पियारी-भावना बस अचल सारी देह सो॥
कुच-कज-कलिका-कोर कम्पत, टेक पल पल लेत ना।
पुलकित कपोल विचित्र इक संग मूर्च्छना औ चेतना ॥५॥

(पास जाती है)

(लवंगिका मालती को हिलाती है और दोनो उठती हैं।)

मालती : आपको प्रणाम है।

कामंदकी : पुत्री, तुम्हारी मनोकामना पूरी हो।

लवगिका : भगवती, इस आसन पर विराजिए। (सब बैठती हैं)

मालती : कहिए, कुशल तो है?

कामंदकी : (लंबी सांस भरकर) हां कुशल ही सी है।

लवगिका : (आप ही आप) यही कपट-नाटक की प्रस्तावना है। (प्रगट) माता, आख का जल आख मे रोक और दीर्घ निःश्वास का परित्याग कर गद्गद कठ द्वारा आपने, कुशल प्रश्न के उत्तर मे, मालती से जो बात कही वह सर्वथा विलक्षण जान पड़ती है। इस समय आपके इतने उद्विग्न होने का क्या कारण है?

कामंदकी : क्या पूछती हो, बस यही कि हम इस तापसोचित भगवे वस्त्र को धारण कर उसके विरुद्ध किस कार्य के अनुष्ठान मे लगी हुई हैं, यही हमारी उद्विग्नता का कारण है और दूसरा क्या?

लवगिका : उसके लिए इतना उद्वेग क्यो करना चाहिए?

कामदकी : क्या तुम नही जानती? (मालती की ओर सकेत करके)

जग मे मदन महीप-प्रिय सुविदित विजयी तीर।
कारण सहज विलास को सुन्दर यासु शरीर॥
सो अनुपम गुण ऐन, यहि अनुचित वर-योग सो।
सोचनीय दिन रैन, व्यर्थ भयो सो जानिये ॥६॥

(मालती घबड़ाहट प्रदर्शित करती है)

लवगिका : आप ठीक कहती है। यह बात नगर मे घर-घर मे फैल गई है

कि महाराज के अनुरोध से अमात्य भूरिवसु ने नंदन को मालती का देना निश्चय कर लिया है। सब लोग अमात्य ही को दोष देते है।

मालती : (आप ही आप) क्या पिता ने मुझे, बलिदान की भाति, महाराज को भेंट कर दिया !

कामंदकी : आश्चर्य है !

> कहा सोचि गुन-हीन चुन्यो वर कारण गुन्यो न जावै।
> कुटिल नीति मे कुशल तिनहिं सन्तान-नेह नहिं आवै॥
> फिर का ऐसी बात ? समझ मे हाँ, अब के वह आई।
> सुता ब्याहि नृप-प्रिय-नन्दन संग हेलमेल वढि जाई॥७॥

मालती : (आप ही आप) महाराज ही को सतुष्ट करना पिताजी को अधिक इष्ट है, मालती की उन्हे कुछ चिता नही है।

लवंगिका : माता, आपका कहना बहुत ठीक है, यदि ऐसा न होता तो उस वयातीत एव मैले-कुचैले नदन को अपनी पुत्री देना क्यो विचारते ! महाराज का मन रखने के लिए ही उन्होने यह विलक्षण विचार किया है।

मालती : हा, भाग्य फूट गया। मुझ मंदभागिनी पर यह अचानक वज्रपात हुआ।

लवंगिका : माता, आप ही इस समय कोई युक्ति बतलाइए। मेरी प्यारी सखी मालती के लिए जीते जी मरणावस्था की समस्त सामग्री एकत्रित हो रही है। इसकी रक्षा आप ही कीजिए। आप भी इसे पुत्री ही करके मानती है।

कामंदकी : लवंगिका, तू बड़ी अबोध है। भला तू ही कह कि यहां मैं क्या कर सकती हू। अपनी पुत्री पर पिता का पूर्ण रूप से अधिकार है। और सुख-दुख तो दैवाधीन है, पर तो भी ऐसे अवसर पर उपाय व्यर्थ नही जाता। वधू और वर दोनो यदि कुछ यत्न करें, तो उनका अभीष्ट सिद्ध हो सकता है। पूर्व काल मे ऐसी घटनाएं हुई है। विश्वामित्र की पुत्री शकुतला ने आत्मानुमति से ही महाराज दुष्यंत को ब्याहा और उर्वशी ने पुरूरवा राजा को वरा। उसी प्रकार उज्जयिनी के चंडमहासेन राजा की कन्या वासवदत्ता ने (पिता द्वारा सजय के साथ वाग्दत्ता होने पर भी) स्वय यत्न कर कौशावी के राजा उदयन के संग अपना संबंध कर लिया। ये बाते पुराने लोगो से सुनने मे आती हैं, परतु ऐसा (गंधर्व विवाह) करने मे साहस चाहिए। वैसा करने

को कौन कहे, इन जैसियो को ऐसी बातें बतलाना अच्छा नहीं है, अब तो—

जो नृप-प्रिय सुहृदय सचिव नन्दन, गाइ बजाइ।
ताको बेटी व्याहि निज, मंत्री गंगा न्हाइ॥
वा कुरूप के सग मे, यहि जोरी जुर जाइ।
धूमकेतु-युत ज्यो विमल शशि की कला सुहाइ॥८॥

मालती : (सांस लेकर आप ही आप) हा तात ! आप जैसे अपत्य वत्सल तथा विवेकी पुरुष का मेरे साथ यह व्यवहार ! हा, लोभ जो चाहे सो करावे !

अवलोकिता : भगवती, यहा बडा विलंब हुआ, वह माधव भी अत्यत अस्वस्थ है, इसलिए अब उसका भी समाचार लेना उचित है।

कामंदकी : ठीक, अच्छा स्मरण दिलाया, मैं अभी चलती हूं। बेटी मालती, मुझे शीघ्र ही जाना है, अब मुझे जाने दे।

लवगिका : (कान मे) सखी मालती, कामंदकी द्वारा उस महाभाग का कुल-परिचय भी जान लेना चाहिए।

मालती : (उसी प्रकार कान मे) हा, हा, जानना तो मैं भी चाहती हूं।

लवगिका : माता, आप बार-बार माधव-माधव कहा करती हैं, सो वह कौन है ? ऐसा जान पडता है कि आप उन्हे बहुत प्यार करती है।

कामदकी : इसके पूछने का अब क्या अवसर है, यह कथा बहुत बडी है और मुझे शीघ्र जाना है।

लवगिका : यह ठीक है कि इस कथा का छेडना इस समय अप्रासंगिक होगा, तो भी उसे बतलाकर हमे अनुगृहीत कीजिए।

कामदकी : यदि तुम्हारा यही आग्रह है तो कहती हूं, सुनो—विदर्भ देश के महाराज का प्रधानमत्री राजकार्य-कुशल एव पुरुष-श्रेष्ठ देवरात है। उसका तुम्हे, संभव है, अधिक परिचय न हो पर यह लोक-प्रसिद्ध पुण्यश्लोक कौन है और किस योग्यता का है यह उसका सहपाठी, इस मालती का पिता, अच्छी तरह जानता है।

जिनकी अभिनव कीर्ति-कौमुदी सकल दिसनि मे छाई।
जिन तन तेजोमयी सुकृत की सुभग लता लिपटाई॥
अगिनित महिमा पुंज सुमगल-केतन-कुज सुहावै।
तिन सम जन, अस जग मे, जाने कैसे कैसे आवै॥९॥

मालती : (सहर्ष) सखी, अभी भगवती ने जिनका नाम लिया है, पिताजी

बारंबार सदा ही उनका स्मरण किया करते हैं।

लवगिका : सखी, उस समय के बडे-बूढो से यह भी पता लगता है कि वे दोनो परस्पर सहाध्यायी रहे है।

कामंदकी :
प्रगटित गुन द्युति सुन्दर महान,
अति मंजु मनोहर कलावान।
उदयो इक यह जग-दृग-अनन्द,
तिह उदयाचल सो बाल-चन्द ॥१०॥

लवगिका : (मालती के कान में) कही वही तो माधव नही है?

कामदकी :
बाल वयस तउ चतुर, भवन सो पढन यहाँ जो आयो।
सरसावत अनद, जिह पूरण-शरद-चद-मुख भायो॥
जोवनवती चारु जुवती, जब वा के रूपहि जोहै।
कुवलय-नयननु सो पुर-झिझरी पद्माकर सी सोहैं ॥११॥[1]

आजकल जो अपने बचपन के साथी मकरंद के हाथ न्यायशास्त्र पढते है उन्ही का नाम माधव है।

मालती : (सहर्ष लवंगिका के कान में) सखी, इस उत्तम कुलोत्पन्न महाभाग के विषय मे जो कुछ श्रीमती कामदकी ने कहा, उसे तूने सुना।

लवंगिका : रत्नाकर के सिवाय पारिजात वृक्ष अन्यत्र कहां मिल सकता है।

(नेपथ्य में शख बजता है)

कामंदकी : (सुनकर) अरे वडी देर हो गई, वह देखो—
संध्या-शख की ध्वनि भई।
चाउ भरे विलसत सुख-निंदिया जे चकवा चकई॥
करि रति-रग भग तिन तन मे चिंता कँपनि छई॥
बडे बडे मदिर-निकुज को करति प्रति ध्वनि-मई॥
अतिघन ह्वै चहुँ दिसि अकास मे कैसी गूँजि भई ॥१२॥

तो अब चलना चाहिए, बेटी, सुखी रहना।

(उठती है)

मालती : (आप ही) हा तात! आप जैसे अपत्यवत्सल तथा विवेकी

---

१ नव वैस तऊ परवीन बडो पढिवे यहँ आयो सबै मनभावै।
जितै जात तितै करि आनन चन्द अमद-अनद प्रकास वढावै।
पुर की झिझरी औ झरोखनि को पद्माकर की उपमा सरसावै।
नव नागरी चचल नैन तहाँ कुवलैन समान अनूप खिलावै ॥११॥

पुरुष का मेरे साथ यह व्यवहार ! राजा का तो मन रखना चाहा पर मालती की कुछ चिंता नही । (आंसू बहाकर) क्या वे महापुरुष किसी बड़े वंश के अवतंस हैं ! प्यारी सखी ने यथार्थ कहा कि रत्नाकर को छोड़ पारिजात और कहा मिल सकता है । क्या मुझे कभी फिर उस आनंदमयी मूर्ति का दर्शन होगा !

लवंगिका . अवलोकिता, आओ इधर के सोपान से हम लोग नीचे चलें ।

कामंदकी : (आप ही) आज दूती का काम करके मैंने अपने सिर का भार हलका किया। क्योंकि—

यहि वर खोट निकारि, पिता मे अप्रतीति करवाई ।
कहि पहले सु वृत्तान्त, कार्य की परिपाटी समझाई ।
अरु प्रसंगवस माधव-सत-कुल-गुन गन-पुंज सुनायो ।
अब दोउनि को होइ परस्पर परिचय परम सुहायो ॥१३॥

(सब जाते हैं)

इति धवल गृहो नाम द्वितीयोऽङ्कः ।

अंक ३

अथ विष्कंभक

[स्थान—भूरिवसु का महल]

(बुद्धरक्षिता आती है)

बुद्धरक्षिता : (नेपथ्य की ओर देखकर) अवलोकिता, जानती हो कि माता जी कहा हैं।

(अवलोकिता आती है)

अवलोकिता : अरी तू पागल तो नही हो गई है! भगवती कहां गई हैं, इसका पता लगाने की आजकल कोई आवश्यकता नही है। मालती से मिलने को कहकर गई है सो अभी तक वहां ही विराजमान हैं।

बुद्धरक्षिता : भला, और तू तो उन्ही के संग रहा करती थी, परंतु आज तुझे यहा अकेली ही देखने से जान पडता है कि तू भी कही अन्यत्र गई थी।

अवलोकिता : हा, मुझे भगवती ने यह संवाद देकर माधव के पास भेजा था कि वह शिवालय के समीप ही कुसुमाकर-पुष्पोद्यान मे चलकर, लाल अशोक के गहन घन-निकुज मे बैठे। यह सूचना उन्हे देकर अभी आ रही हूं और वह भी तदनुसार वहा गए है।

बुद्धरक्षिता : यह तो बता, माधव को वहा किस अभिप्राय से भेजा है।

अवलोकिता : अरी, आज कृष्ण चतुर्दशी है, आज के दिन के लिए शास्त्र मे लिखा है कि अपने हाथो पुष्प चुनकर शंकर की पूजा करने से सौभाग्य अटल रहता है। इस हेतु श्रीमती कामंदकी के साथ मालती भी आशुतोष महादेव के दर्शन करने वहा जाने वाली हैं। श्री कामंदकी की सूचना के अनुसार मालती की माता ने

केवल लवंगिका सहित उसे उनके साथ वहा भेजा है। पुष्प चुनने के बहाने जब वह वहां भ्रमण करेगी तो माधव की और उसकी चार आंखे हो जाएंगी, ऐसी ही कुछ योजना की गई है। अच्छा यह तो हुआ पर तू भी तो बतला कि यहा कैसे आई ?

बुद्धरक्षिता : मैं भी उसी शिवालय की ओर जाने को निकली हू। मेरी प्रिय सखी मदयतिका आज वहा दर्शनो को जा रही है, और उसने वहा आने के लिए मुझसे बडा अनुरोध किया है। सो श्री कामदकी के चरण छूकर मैं भी वहा जाऊ, इसीलिए यहां आई हू।

अवलोकिता : और माताजी ने तुमको जो काम बताया था उसका क्या किया ?

बुद्धरक्षिता : किया क्या, तब से अभी तक मेरा यत्न चला ही जाता है। उनकी आज्ञानुसार तभी से जब-जब हम दोनो एकात मे बातें करती हैं तो किसी-न-किसी निमित्त से मकरंद के रूपगुण का बखान करके मदयतिका को मकरद के ऊपर विशेष रूप से आसक्त कराने के लिए चेष्टा करती रही हू। अभी तक उन दोनो मे से किसी ने किसी को देखा भी नही है परंतु तो भी मेरे कथन मात्र से वह उस पर अनुरक्त हो गई है और उसके दर्शनो के लिए वह अत्यंत लालायित एव आतुर हो रही है। अब देखना चाहिए आगे क्या होता है ?

अवलोकिता : वाह बहिन वाह ! क्या कहना है !

बुद्धरक्षिता अच्छा तो चलें।

(जाती है)

इति विष्कंभक

[स्थान—मदनोद्यान]

(कामंदकी आती है)

कामंदकी : (आप ही आप)

विनय विनम्र मालती जैसी बरनि न जाई।
जब कुछ दिना उपाय किये तब ढँग पै आई॥
मो सो जुदी उदास, पास मैं तो प्रसन्न मन।
रहसि रहसि बतराति चहति नहिं छिन भर बिछुरन॥
नित कछु न कछू दै प्रीति सो चलत मोहि अँचरा गहति।
सौ सौ सौगन्द खवाय अब पुनि पुनि आवन को कहति॥१, २॥

बस, यही तो आशा के सफल होने का दृढ कारण है—

शकुन्तलादि-तिय-साँची कथा पुरानी।
इतिहास विदित सुनि-सुनि औरनु की वानी।
मो गोद परी रहि जाति मूँदि दोउ नैना।
चिन्तातुर सी बहु देर, न उचरै बैना ॥३॥

अब और जो करना है वह माधव के सामने होगा। (**नेपथ्य की ओर देखकर**) बेटी, यहा आओ।

(**मालती और लवंगिका आती हैं**)

मालती : (**आप ही आप**) हा तात, आप जैसे अपत्य-वत्सल विवेकी पुरुष का मेरे साथ यह व्यवहार! राजा का तो मन रखना चाहा पर मालती की कुछ चिंता नही है। क्या वह महापुरुष किसी बडे कुल मे उत्पन्न हुए हैं। प्यारी सखी ने ठीक ही कहा कि रत्नाकर को छोड पारिजात मिल सकता है—क्या मुझे फिर कभी उस आनदमूर्ति का दर्शन होगा!

लवंगिका : सखी, आम की मधुर रसभरी मंजु मंजरी खाकर इस शाखा से उस शाखा पर कलोल करता हुआ कोकिल कुल जो कलरव कर रहा है उसके कोलाहल से आकुल हो, मुकुलित सहकार शिखा का समाश्रय त्याग, उड-उडकर गुजारते हुए अलबेले अलिवृद के सपर्क से, चारुचंपक-कलिका-कोष प्रस्फुटित हो रहे हैं। उनके मकरंद से मनोहर एव पीन-जघन स्थान तथा नितंब-विस्तार-भार से राजहंस की तरह धीरे-धीरे चरण-संचरण करने के कारण सुधा बिंदु-सदृश, बसीकर श्रमसीकर-कण-सपन्न तेरे मुग्ध-मुखचंद्र पर चंद्रक-चदन की भाति शीतल-संस्पर्श करने वाला, यह कुसुमाकर उद्यान का मारुत मानो प्रेमोपहार लेकर सविनय तेरा श्रम दूर करने और तुझे भेटने बार-बार आ रहा है।

(**माधव आता है**)

माधव : (**आप ही आप**) अहा, भगवती कामदकी आ गई—

यह प्रान पियारी के जो पहले आवै।
जिय नव जीवन की जोति-छटा छिटकावै॥
घनश्याम अगारी यथा चपल उजियारी।
विरही वरही के हेतु सुमंगल कारी ॥४॥

ओहो, लवंगिका और मालती भी साथ हैं—

अति सहज सलौनी सरल कमल-नयनी कौ।
शशि वदन चारुता-सदन अमल प्रिय जी कौ ॥
तिहि निरखत ही जड भयो तऊ पुनि कैसे।
मन प्रकृति-धीर सुचि अचल चन्द्र-मनि जैसे ॥
यह यो विकार सों युक्त द्रवत दरसावै।
बस वार-बार ये ही अचरज हिय आवै ॥५॥

इस समय यथार्थ मे इस (मालती) की रमणीयता से लोकेतर बोध होता हैं—

मनहुँ मुरझानी चम्पक वेलि।
विविध-विकास मंजु अरसानी अंग-अग मृदुल नवेलि ॥
उद्दीपत मन माँहि मदन की ज्वाल माल अनिवार।
हृदय हिलोरति नयन जुगल को करति कृतार्थ अपार ॥६॥

मालती : सखी, इसी कुज मे फूल चुनै।

माधव : (आप ही आप)

सुनत ही प्यारी के यह वैन,
मजुल, मधुर, सुखद वसुधा के, सरस सुधा के ऐन।
पुलकित मो तन भयो, पाइ जनु कादम्बिनी-फुहार,
कलित कदम्ब प्रफुल्लित अनुपम लहरत बारम्बार ॥७॥

लवगिका : अच्छा सखी, ऐसा ही करें।

माधव : (आप ही आप) श्रीमती कामंदकी का आचार्यत्व बड़ा ही आश्चर्यजनक है।

मालती : सखी, यहा नही वहा चुनेंगे, क्योकि देख, उस सामने वाले पेड़ के फूल उत्तम है।

कामदकी : बेटी, बस कर, जितने फूल चुने हैं उतने ही पर्याप्त हैं। अधिक श्रम होने के कारण अरी देख तेरा कैसा हाल हो गया है। (हंसकर)

नहि सावित वैन कढै, अति ही अँग अगन मे अरसाय रही।
मिसिली मुरझाई मृनालिनी सी मुखचन्द पसीननु छाय रही।
अध-मुद्रित दोऊ लसे अँखियाँ, पुलकाइ रही, घबराइ रही।
जिमि पीतम देखन सो, धनि होति है वैसे ही तू दरसाय रही ॥८॥

(मालती लजाती है)

लवंगिका : माता, आपने बहुत ठीक कहा, इसकी अवस्था कुछ ऐसी ही मालूम होती है।

माधव : (आप ही आप) हंसी भी की तो मन की ही की।
कामदकी : आओ, यहा बैठकर कहानी कहै।

(सब बैठ जाती हैं)

कामदकी : (मालती की ठोड़ी छूकर) सुनो, एक विलक्षण बात सुनाती हू।
मालती : कहो, सुनती हू।
कामंदकी : तुमसे बातचीत करते-करते एक बार माधव का नाम लिया था, और कहा था कि वह भी मुझे ऐसा ही प्रिय है जैसी कि तू, उसकी तुझे सुधि है या भूल गई।
लवंगिका : हा, हा, अच्छी तरह स्मरण है कि जिस प्रकार आप इनको चाहती है, उसी प्रकार आपका विशेष प्रेम उन पर भी है।
कामदकी · अस्तु, जब से वह मदनोद्यान को गया, तभी से उसे न जाने क्या हो गया है कि उदास रहता है, अपने आपे मे नही है।

चन्द लखै न अनन्द लहै, अति ही अपनेनि सो प्रीति हटी है।
है पुनि साहस-बानि तऊ उफनाइ वियोग-विथा प्रगटी है।
चम्पक-बेलि सी श्यामल सुन्दर देह सबै पियराइ लटी है।
सायक-पच के झेले प्रपंच पै रंचक नाहि निकाई घटी है ॥९॥

लवगिका : अच्छा, तभी अवलोकिता आपसे कहने आई थी कि माधव का जी अच्छा नही है।
कामदकी : फिर मैंने यह सुना कि मालती ही के लिए उसकी ऐसी दशा हो रही है। मनोज-जन्य उन्माद के अतिरिक्त इसका कारण और दूसरा नही है, मेरा भी ऐसा ही निश्चय हुआ और यह ठीक भी जान पडा—

माधव-मन गम्भीर थिर, शान्त समुद्र समान।
लखि मालति-मुख-पूर्ण शशि सो लाग्यो लहरान ॥१०॥

माधव : (आप ही आप) वाह, क्या बात बनाई है, क्या चाल है! आरंभ मे देखने मे कैसा सरल है, उसे बडाई देने के लिए कैसे-कैसे यत्न किए गए है, इसमे न जाने कितनी युक्तिया हैं। किंतु उक्त प्रकार का भाषण करना इनके लिए कोई विलक्षण एवं बडी बात नही है—

अरथ गुनै अपु शास्त्र को, अरु स्वाभाविक ज्ञान।
प्रौढ-उक्ति सानी विपुल, बानी मधुर प्रमान।
बानी मधुर प्रमान निरखिवौ समुचित अवसर।
नित नव निज प्रतिभा-प्रयोग रचिवौ निसिवासर।

ऊँच नीच सब समझि राखिवी हिय कौं समरथ ।
एते गुन जहँ बसें क्रिया तहँ सफल मनोरथ ।।११।।

कामंदकी : सो इस प्रकार मन क्षुब्ध हो जाने के कारण वह अपने प्राणो को हथेली पर लिये फिरता है । न मालूम किस समय वह कसा साहस-कार्य कर बैठे । अभी तो —

पिक-रव भरी रसाल मंजरी, तिहि-दिसि दीठि लगावै ।
वकुल-गन्ध-गर्भित समीर-दिसि, निज शरीर समुहावै ।
दाह-लोभ जल-जात पात सो अपने गातहि तावै ।।[1]
तउ जिय तजिवे वार-वार वह चन्द्रकलनु अपनावै ।।१२।।

माधव (आप ही आप) इनके कथन करने की रीति भी अनोखी है, जिस घटना का मैंने स्वप्न मे भी अनुभव नही किया, उसका यह कैसा अभिनव वर्णन कर रही है ।

मालती : (आप ही आप) यदि उनका ऐसा हाल है तब तो बड़े खेद की बात है ।

कामंदकी : इसी प्रकार उसकी विपन्नावस्था रहने के कारण कही वह प्रकृति-मृदुल, स्वरूप वालक इस अपूर्व दुख के भार से काल के गाल में न पड़ जाए ।

मालती · (धीरे से) मेरे लिए उस गुणागार लोकालंकार (माधव) के सर्वनाश की शंका कर भगवती ने मुझे बहुत ही भयभीत किया है । अब मैं क्या करू ।

माधव : (आप ही आप) बड़े भाग जो श्रीमती कामदकी मुझ पर इतना अनुग्रह करती है ।

लवंगिका : माता, आपने जो कहा, सभव है वैसा ही हो । परंतु हमारी यह सखी भी, अपने घर के झरोखे से, मार्ग को सुशोभित करने वाले उस महानुभाव (माधव) का बार-बार दर्शन कर, प्रचंड प्रभाकर के तेज स्पर्श से सुंदर पद्मिनी के मृणाल सदृश म्लान हुए अपने अंग-अंग द्वारा निज कामवेदना को प्रगट कर रही है । ऐसी दशा मे विशेष रमणीय प्रतीत होने पर भी अपनी वढती विषमावस्था की घोर चिंता में हमे डाल रही है । केलि-कलाओ मे तो इसका जी ही नही लगता । दिन-भर कमल-सा हाथ कोमल कपोल पर धरे वैठी रहती है, और खिले अरविंद मकरद से नव-विकसित कुद-माकंद (रसाल) मधु-बिंदु से परि-

१ जरयो चहत, जलजात पात परि ताके तनहि वचावै ।

पूर्ण, स्वभवनसमीपी-उद्यान-वायु के स्पर्श से भी इसको अथाह दाह होता है। उस यात्रा के दिन मदनोद्यान मे निज महोत्सव की शोभा देखने के चाउ से पधारे हुए अगधारी-अनंग भगवान के समान, काम-कानन को अलंकृत करने वाले उस महानुभाव के दर्शन का सुख—दर्शन, जो विविध विलासो द्वारा मन हरण कर अनुरूप अनुराग-राग से अभिनव यौवन को और भी अमूल्य बना देता है—दर्शन, जिसे अपनाने की बलवती लालसा होने पर भी यथेच्छ, न मिल सकने के कारण उतावला चित्त कौतूहल से बावला हो जाता है—ऐसे परस्पर शुभ दर्शन का सुख इसे ज्यो ही मिला बस इसकी ऐसी टकटकी बंध गई कि पलक मारना भी बुरा लगता था। चित्त ऐसा घबरा-सा गया कि हाथ-पैर चलते ही न थे। पसीने-पसीने हो गई, रोम खडे हो गए थे। परस्पर इनके इस प्रेममय कृत्य से हम सखियो को उस समय तो सुख हुआ था, किंतु उसी क्षण से इसे असह्य दुख हो गया है। शरीर की जलन दिन-दिन बढती जाती है, अतः इसकी दशा अब विलक्षण है। पूर्ण चद्रोदय (माधव) के दर्शन से क्षणिक सुखानुभव कर यह बाल कमलिनी के समान कुछ-कुछ क्षीणकाति-सी हो गई है। पहले जैसी प्रफुल्ल नही है।

इस पर भी प्रिय प्रवास की रस बरसा से सरस वसुमती के समान हृदय-वल्लभ के सत्य, किंतु क्षणिक सकल्पित समागम द्वारा इसकी सारी देह स्वेदमय हो ठडी-सी पड़ गई है। कभी-कभी तो इसके रुचिर अधर पल्लव फड़क उठते है, इस कारण मुक्तावलि सम समुज्ज्वल दसन पक्ति के खुल जाने से इसकी काति और भी खिल जाती है। निरतरोल्लास से इसके सुदर कपोलद्वय पुलकित हो जाते हैं, और सुख के अश्रु-बिदु उन पर ढलकने लगते है। नील कमल जैसी सरस, अधखुली आखो के चारुचचल तारे जहां के तहा अचल-से रह जाते है। नवचद्रकला के समान इसका मनोहर ललाटस्थल सघन-श्रम-सीकर कणो के झलकने से और भी रमणीय हो जाता है। जब इसका भोला-भाला मुख अमल कमल की शोभा धारण करता है तो उसकी जगमगाती आनंदज्योति से प्रकाश-सा हो जाता है। इसे उक्त दशा मे देखकर नवेली अलबेली सखियों को इसके क्वारेपन मे भी धोखा होने लगता है। हम लोग तो सब कुछ करती है कि यह सो जाए—चादनी मे चंद्रहार टाग देती हैं, जब अत्यत

शीतल शशि-कर-संस्पर्श से उसकी मणिया द्रवित होने को होती है तब उसे उसके गले मे डाल देती है, दासिया प्रचुर-कर्पूरादि शीतल द्रव्य-सपन्न चदन से लेपकर कोमल कदलीपत्र से इसके शरीर का शीघ्र-शीघ्र मर्दन करती है—पर तो भी यह आर्द्र-कमलदल पर पडी तडफ-तडफकर दुःख से रात काटती है। ऐसी दशा मे जो कही झपकी लग ही गई तो तत्काल स्वप्न मे समागम-सुखानुभव के कारण चरणो मे लगाया हुआ महावर भी बहने लगता है। पानजघन-मूलो के थरथराने से इसका नीवी बधन शिथिल पड़ जाता है; कपित भुजलताओ द्वारा, लंबी-लंबी सास आने से ऊचे-नीचे उठते हुए पुलकित पयोधरो पर ज्यो ही इसका हाथ पड जाता है वैसे ही चौंककर उठ बैठती है और चारो ओर सेज सूनी जान आखें बंद कर बेसुध हो जाती है। घबड़ाती हुई सखियो के सादर प्रबल प्रयत्न करने पर जब कुछ देर मे इसे फिर सांस आने लगती है तब कही जाकर धीरज बधता है। और जब हम इसे जगाती है, तो रो-रोकर कहती है, "विधाता, मैं तो मरना चाहती थी, जी के क्या करूं, न जाने इस दुर्वार दारुण दु·ख मे मुझे अभी और कितने दिन काटने हैं!" ऐसे वाक्यो द्वारा कष्ट-कथाओ को सुना-सुनाकर हमे दैव निंदा मे प्रवृत्त करती है। अब इसके घोर दु.ख को दूर करने का क्या उपाय करना चाहिए, सो हम लोगो को नही सूझ पडता। कृपा कर आप ही स्वयं विचार कर कहे कि इसके अति लावण्यमय सुकुमार शरीर पर निर्दय मन्मथ और कितने दिन बाण-प्रहार करता रहेगा। और ऐसे दु.ख मे अभी इसे कितने रातें बितानी पडेंगी जिनके पूर्व भाग के अंधकारावरण को चारु चद्रिका दूर करती रहती है, जिसकी उज्ज्वलता कर्नाटक देशीय कामिनी के उन कपोलो के सदृश रमण-केलि-कलह के कारण उत्पन्न हुए कोप से अरुण हो जाते हैं। अथवा जब उमगते हुए दुग्धसागर सदृश धवलोज्ज्वल ज्योत्स्ना स्व-प्रकाश-जल से सर्वदा गगनागन की सफेदी किया करती है और जब मधुर मलय-मारुत सुगंध भरे पाटल वकुल-कलिकाओ को गाढालिंगन द्वारा विकसित कर उनकी सुवास-नाओ से अठखेलियो के साथ दशो दिशाओं को प्रफुल्लित करता है तब ऐसी लबी-लंबी रातें कही हमारी सखी के लिए अनर्थ-कारी प्रमाणित न हो, इसी बात की बड़ी शंका हो रही है।

कामंदकी : माधव सों अनुराग जो, है याको निरधार।
तौ गुनज्ञता को फल्यो, यह स्वभाव अविकार ॥
बढत अनन्द अपार, जबै विचारत याहि चित ।
पै हिय होत दरार, सुनि-सुनि यहि दारुण दशा ॥१३॥

माधव : (आप ही आप) यह जो दुखी होती है सो भी उचित ही है।

कामदकी : कहाँ वह वैस कुमार महा सुकुमार लुनाई भरी यह बाल ।
कहाँ निज नाम यथारथ मार महीप के पाँचहु बान कराल ॥
चलाइ चहूँ मलयाचल बात प्रकम्पत जो नित बौरे रसाल ।
सजाइ शशी अवतंस वसत विशाल बिछायो सबै दिसि
जाल ॥१४॥

लवगिका : भगवती यह तो आपको विदित ही होगा कि चित्रपट की पृष्टि पर इसने माधव की प्रतिकृति उतारी थी (**मालती का आंचल उठाकर**) और यह देखो, उन्ही के हाथ की गुथी माल गले मे पहनकर अपने जीने का आसरा कर रही है।

माधव : (आप ही आप)
धन्य तू मौलसिरी की माल ।
तेरी जीत जगत मे साँची गुनमय रूप रसाल ॥
जो प्यारी की तू प्यारी भई ऐसी दिन औ रैन ।
इक छिन हूँ बिन हिये लगाये वाको चैन परै न ॥
पीत मृनाल नाल से गोरे तासु उरोज उतग ।
तहाँ विलास-वैजयन्ती बनि विहरै भरी उमंग ॥१५॥

(नेपथ्य में बड़ा कोलाहल होता है)

(सब सुनते हैं)

अरे भाई, शिवालय के रहने वालो, भागो-भागो, वह देखो जवानी के जोर के मारे क्रुद्ध हो, खीच-खाच के छडो को तोड, यह भयानक सिह लोहे के कटहरे से यकायक निकल गया है, और ध्वजा की भाति पूछ उठाकर ऐठता हुआ मठ से चला आता है। कितनो ही को तो मार डाला। कटारी के समान दातो से हड्डिया कटकटाकर चबाता हुआ, कंदरा-सा मुह बाये इधर-उधर दौड़ रहा है। एक ही थाप से मनुष्य, बैल और घोडो को मारकर उनका रुधिर-मास गले मे भर के गभीर घोर घर्घर गर्जन ध्वनि से आकाश को प्रतिध्वनित कर रहा है। बहुत से मारे गए, बहुतो का चूरा हो गया, बहुतो का पता

ही नही न जाने क्या हुआ, बहुत से डर-डरकर भाग रहे हैं, उसके तीक्ष्ण नखों के शरीरो पर लगने से इतना रक्त बहा है कि सब सडक कीचड से भर गई। देखो यह दुष्ट शार्दूल कराल काल की लीला को कैसा चरितार्थ कर रहा है—अरे सब भागो, भागो और अपने-अपने प्राण बचाओ !!

(बुद्धरक्षिता घबड़ाई हुई आती है)

बुद्धरक्षिता : बचाना-बचाना ! नदन की बहिन सखी मदयंतिका इस व्याघ्र के पजे मे फस गई है ! इसके साथ के सब लोग भाग गए। जो लोग साहस कर आगे बढे उन्हे दुष्ट श्वापद ने मार डाला। बस अब शीघ्र कोई आओ और उस बिचारी को बचाओ !!

मालती : सखी लवंगिका, अब क्या करना चाहिए, बड़ा ही अनर्थ हुआ चाहता है।

माधव : (उठकर) वह कहा है, उसे दिखलाओ बुद्धरक्षिता ! घबड़ाओ मत।

मालती : (हर्ष-भय के साथ) क्या ये भी यहां ही हैं !

माधव : (आप ही आप) आज मैं अपने को परम धन्य मानता हू। क्योकि अचानक ही देख यह मुझे चकित दृष्टि से निहार रही है।

अविरल मनु सित अमल कमल की माला सो गमि लीनो।
दुग्ध धार सो किधौं मुग्ध कर तन न्हवाइ सब दीनो॥
चितइ चारु अनिमेष नयन जनु हिय 'प्रवेश करि पायो।
वा घन सघन सुधा बरसन सो बरबस सींचि जिवायो ॥१६॥

बुद्धरक्षिता : महाभाग, इस उद्यान के बाहर जो मार्ग गया है उसी के नाके पर वह बाघ है, अब अधिक विलब करने का काम नही है।

माधव : (उत्साह से) अच्छा तो संभल जाऊं।

कामदकी : भैया, होशियार रहना।

मालती : (लवंगिका से) इस समय मेरा जी परम शकित हो रहा है।

माधव : (देखकर) ओहो,

लटकत टूटी, मुख अत्रजाल।
आवत मृगेन्द्र क्रुद्धत विशाल॥
परे रुंड मुड कृत खंड-खंड।
फरकत कटि हालहि भुज उदंड॥
वह रुधिर-पंक पूरण लखात।
जहँ पिंडुरी लो पग धँसे जात॥

होगौ कछु कौ कछु करि उताल ।
अब यह मारग भयो अति कराल ॥१७॥

बड खेद का विषय है !

हम तो ह्वासो अति दूर, हाय !
पशु-पंजे कन्या परी जाय ॥

सब लोग : अरे यह तो बिचारी मदयतिका है !

गिरे मानुष को आयुध उठाय ।
मकरन्द परचौ झट बीच धाय ॥
झपटचौ तिहि पै वह पशु महान ।

सब लोग : वाह भाई वाह !

काम०-माधव : कियो वुही कुवर ने विगत-प्रान ॥१८॥

सब लोग : बडी बात, हत्यारा मारा गया ।

कामदकी . (देखकर) देखो-देखो, बाघ के नखो के लगने से रुधिर बह रहा है । और पृथ्वी पर तलवार के सहारे खड़ा हुआ मकरंद भी मूर्च्छित हो गया है । मदयंतिका घबड़ाकर उसे चैतन्य कराने मे लगी है और संभाल रही है ।

सब लोग : हाय-हाय, बडी चोट आई ।

माधव : हाय, क्या यह बेसुध हो गया, माता सभालना । अब क्या होगा ।

कामंदकी : वत्स, इतना क्यो घबड़ाते हो, आओ चलो, उसे देखे ।

(सब जाते हैं)

इति शार्दूल विद्रावणी नाम तृतीयोऽङ्कः

अंक ४

[स्थान—उद्यान]

(माधव और मकरंद बेसुध पड़े है। मदयतिका और लवगिका उन्हे संभाल रही हैं। कामंदकी, मालती और बुद्धरक्षिता घबराकर उन्हें चेत कराने के लिए यत्न कर रही हैं।)

मदयतिका : भगवती, इस अभागिनी मदयंतिका के लिए अपने प्राणो को घोर आपत्ति मे डालने वाले एव दीन-दुखियाओं पर ममताशील इन महाभाग (मकरद) को सचेत करने का यत्न कीजिए।

अन्य सब : हाय, हाय, तो हम लोग खडी क्या कर रही हैं !

कामंदकी : (दोनों पर कमंडल से जल छिड़ककर) तुम लोग अंचल से दोनो पर हवा करो। खड़ी-खडी क्या देखती हो ?

(सब अचल से हवा करती हैं)

मकरद : (चैतन्य होकर तथा देखकर) भाई, तुम तो ऐसे कातर हो गए हो! मेरी ओर तो देखो, अब मैं अच्छी तरह से हू।

मदयंतिका : (प्रसन्न होकर) इस मकरंद रूपी पूर्ण चंद्र के उदय से मेरी अब चिंता दूर हुई।

मकरद : (माधव के ललाट पर हाथ फेरकर) महाभाग, आपकी मनोकामना पूर्ण हुई, आपके मित्र मकरद को चेत हो आया।

माधव : (आंखें खोलकर तथा उठकर) भई वाह, तुमने वड़े साहस का काम किया। आओ, आओ।

(दोनो मिलते हैं)

कामदकी : (दोनों का सिर सूघकर) बड़ी बात, मेरे बच्चे बच गए, यह जगदीश ने बडी कृपा की।

अन्य सब : चलो, बड़ी अच्छी बात हुई।

(सब आनद मनाती हैं)

बुद्धरक्षिता : सखी मदयतिका, मैंने तुमसे जिनकी चर्चा की थी, वे यही हैं।

मदयतिका : यह मैं तभी जान गई कि वह माधव है और यह वही हैं।

बुद्धरक्षिता : कह, मेरा कहना सच हुआ। अब मन की तो बतला दे।

मदयतिका भला ऐसे न होते तो कभी तुम उनकी बडाई करती ! आप जैसी चतुर अनुचित बात का हठात् पक्ष प्राप्त नही करती ! (माधव की ओर देखकर) सुनते हैं, मालती का इस महानुभाव पर विशेष अनुराग है। यह भी बहुत अच्छा है।

(मकरद को प्रेम से निहारती है)

कामंदकी : (आप ही आप) मदयतिका और मकरद का एक-दूसरे को निहारना भी दैवयोग से कितना अच्छा हुआ। (प्रकट) वत्स मकरद, ऐसे समय यहा मदयतिका के प्राणों की रक्षा करने के निमित्त ही दैव तुझे कैसे ले आया, इसका मुझे अत्यंत आश्चर्य है।

मकरंद : नगर मे आज मेरे कान मे यो ही एक भनक-सी पडी थी। उसे सुन मुझे शंका हुई कि कही उससे माधव का चित्त अधिकतर उद्विग्न न हो जाए, बस इतने ही मे अवलोकिता द्वारा मुझे समाचार मिला कि कुसुमाकर उद्यान मे ऐसा-ऐसा होने वाला है, तुम भी आना। अत: इधर आने के लिए चल दिया। मार्ग ही मे इस बाघ की गडबड को सुन दौडते-दौड़ते इस सत्कुलोत्पन्न कुमारी को, उस झपटते हुए निष्ठुर शार्दूल के पंजो से मरते-मरते बचाया। इसके उपरात जो हुआ सो आप देख ही चुकी है।

(मालती-माधव सोचने का नाट्य करते है)

कामंदकी : (आप ही आप) इन मालती-माधव को, जो प्रधान नायक-नायिका है परस्पर वचनबद्ध कराने के लिए यही अवसर उपयुक्त है। (प्रगट) वत्स माधव, तेरे मित्र के अच्छे होने पर मालती ने आनद मनाया था, इसलिए मालती को भी प्रीति-निसानी (सहदानी) देने का सही उचित समय है।

माधव : माता,

तिहि सिह सो घायल मित्रहिं देखि ज्यो मोह मयी
मोहि मूरछा आई।
करुणा करि कें वह सारी विथा जिह सुन्दर नेह ने
दूरि भजाई ॥

विन राजी लिये ही तवै सो यहै मम प्रेम की पूरण पात्र सवाई ।
मन जीवन मो अपनाइवे को यहि को अधिकार सदा अधिकाई ॥१॥

लवंगिका : हमारी प्यारी सखी आपका यह प्रसाद सिर-आखो पर लेती है।

मदयतिका : (आप ही आप) यह महानुभाव समयोचित भाषण करने की कला मे बडे दक्ष एव निपुण हैं ।

मालती : (आप ही आप) मकरंद ने ऐसे घवराने का क्या कारण सुना था ?

माधव : मित्र, यह तो वताओ कि तुमने मेरे जी को चिंतित एवं व्यथित करने वाली वात क्या सुनी थी ?

(एक पुरुष आता है)

पुरुष : वेटी मदयतिका, तेरे वडे भाई नंदन ने तुझे यह सदेशा भेजा है कि आज महाराज ने हमारे गृह को पवित्र करने की कृपा की थी । अमात्य भूरिवसु पर अपना अटल विश्वास और हम लोगो पर परम अनुग्रह व्यक्त किया । स्वयं उन्होने श्रीमुख से हमे मालती के साथ विवाह कर देने का सुनिश्चय किया है । उसके आनंद को प्रदर्शित करने के लिए आज बड़ा महोत्सव मनाने का विचार है । इसलिए चलो और राजमंदिर को सजाओ ।

मकरंद : (माधव से)मित्र, मैंने जो वात सुनी थी वह यही है ।

(मालती-माधव उदास हो जाते हैं)

मदयतिका : (सहर्ष मालती से मिलकर) सखी मालती, हम और तुम एक ही नगर मे रहे, साथ-साथ खेले, तभी से दोनो मे भाइलीपन चला आता है । अव तुम हमारे गृह की शोभा हुईं । निस्संदेह विधाता ने यह सोने मे सुगंध मिलाई ।

कामदकी : तेरे भाई नदन को मालती मिल गई, इसके लिए तुझ बधाई है ।

मदयतिका · माता, यह सव आपके आशीर्वाद का फल है । और वहन लवगिका, लो अव तुम्हारे मिलने से हमारे मनोरथ सफल हुए।

लवगिका · सखी, क्या यह भी मुझे वतलाने की वात थी, जिसमे तुम्हे आनद है, उसमे मुझे आनंद क्यो न होगा !

मदयंतिका : (बुद्धरक्षिता से) सखी, आओ चलें और भैया का विवाहोत्सव मनावें ।

बुद्धरक्षिता : अच्छा चलो ।

लवगिका : (अलग कामंदकी से) माता, देखिए मदयंतिका और मकरद दोनो के कपित नील-कमल-दल की भाति कटाक्षो से जान पडता है कि इनके नयन कैसे चचल हो रहे हैं। धीर छुटा सा जाता है, आनद और विस्मय से इनका हृदय मुग्ध हो गया है। इन सब बातो को देखने से जान पडता है मानो इनके भी मनोरथ पूरे हो गए है ।

कामंदकी : (हसकर) इतना ही नही, किंतु एक-दूसरे की ओर निहारकर परस्पर मानसिक समागम का सुख भी लूट रहे है ।

लखौ इन दोउन के ये नैन ।
कछू बाँके बाँके रस ऐन ॥
आधे सो कछु अधिक ये, मुद्रित कोयनु-ओर ।
प्रेम भाव प्रगटत अचल, चंचल चित के चोर ॥
डोर इक लागि रही सुख दैन । कछू० ॥
उर अन्तर-आनन्द के, अनुभव मे लवलीन ।
सरसत सरल सनेह सो भृकुटि कुटिल प्रवीन ॥
चीन्ह विलसत अरु सकुचत सैन । कछू० ॥
लसत अधखिले कमल से, खुले पलक कछु देर ।
कबहुँ कबहुँ प्रिय परसपर, तिरछे करि इक बेर ॥
फेर सो पावत अनुपम चैन । कछू० ॥२॥

पुरुष : बेटी मदयतिका, इधर से आओ ।

मदयतिका : सखी बुद्धरक्षिता, मेरे जीवन के रक्षक, कमलदलायतलोचन, इस महानुभाव के क्या फिर भी कभी दर्शन हो सकेंगे !

बुद्धरक्षिता : यह तो भाग्य की बात है, यदि बदा होगा तो ऐसा भी होगा ।

(दोनों जाती हैं)

माधव : **(आप ही आप)**

टूटै आशा-ततु यह बहु दिन बढचो अकूत ।
अतिशय खेचन सो यथा मृदु मृनाल कौ सूत ॥
आधि व्याधि कौ अब महा, निरवधि होइ प्रसार ।
प्रगट रूप यही चित बसै दुचिताई अनिवार ॥
सुच तौ विधि सब विधि रहै अखिल सोच-निखार ।
मदन प्रफुल्लित वदन अब होइ कृतार्थ अपार ॥३॥

अथवा यो कहिए—

कहा सुलभ संसार में, ऐसे जन की थाह।
जैसो चाहे वाहि हम, वैसी वाकी चाह॥
कार्य होत आरंभ ही, भयो विधाता बाम।
यथा असम्भव प्रार्थना, तथा उचित परिणाम॥
तदपि सुनत यहि दान सो, उड्यो प्रिया-मुख रंग।
सो प्रभात के चन्द्र सम, जारत मेरो अग॥४॥

कामदकी : (आप ही आप) माधव व मालती का उदास होना मुझे बडा दु.ख पहुचाता है। दोनो ही के प्राण निराशा के जाल मे फंस गए है (प्रगट) वत्स माधव, तुम्हारी बडी आयु हो, तुमसे मैं एक बात पूछती हू—क्या अमात्य भूरिवसु अपने आप ही तुम्हे मालती दे देगा ?

माधव (लाज से) नही तो।

कामदकी तो फिर तुमको उचित है कि तुम अपनी आशा न छोडो।

मकरद : अभी सुनने मे आया है कि वह वाग्दत्ता हो चुकी है। इसी से शका होती है।

कामदकी : वत्स, यह समाचार तो मैं पहले सुन चुकी हू। यह तो प्रसिद्ध है कि महाराज ने जब नंदन के लिए मालती को मांगा तब अमात्य भूरिवसु ने उत्तर दिया कि "महाराज अपनी कन्या का जो चाहे सो करें, उन्हे पूर्ण अधिकार है।"

मकरद : हा, हा, सुना तो यही था।

कामदकी : और यह जो उस आदमी से सुना, कि स्वयं महाराज ने नंदन को मालती देने का निश्चय कर लिया है, तो इससे यही अनुमान होता है कि अभी तक सब बातें केवल कहा-सुनी पर ही अवलंबित हैं। ससार मे बात ही पर सारे व्यवहार होते हैं। बुरे-भले सब काम बातो पर ही निर्भर रहते हैं। भूरिवसु ने जो महाराज से कह दिया है, सो सब सत्य ही है, ऐसा मत समझो, 'अपनी पुत्री पर महाराज का पूर्ण अधिकार है' इसका क्या अर्थ ? राजा का अधिकार तो सभी प्रजा वर्ग पर रहता है। मालती स्वय महाराज की कन्या नही है और न धर्मशास्त्र वालो का यह सिद्धात है कि कन्यादान मे राजा हस्तक्षेप करें। और न यह बात रूढि ही मे कही पाई जाती है, इसलिए भूरिवसु ने जो महाराज से कहा-सुना है, उसके विषय मे चिंता करने की कोई आवश्यकता नही है। और हा, तूने यह कैसे

मान लिया कि इस विषय मे मैं असावधानी से काम ले रही हूं। देखो—

परै शत्रु हू पै कबहुँ नहिं वैसो दुख आइ।
जैसो इन दोऊनि के, रह्यो चित्त मे छाइ ।।
चाहे जो कछु होय, प्राण जाँइ अथवा रहै।
जतन करूंगी सोय, जासो इन जोरी जुरै ।।५।।

मकरंद : जननी, तव इन बालनि पै करुणा अथवा हित।
जग सो नित छत्तीस तिहारो तउ द्रावत चित।
जासो तजि सन्यास-सुलभ-व्रत जतन करति अस।
किन्तु विधाता प्रबल, चलै कछु नहिं बासो बस ।।६।।

(नेपथ्य में)

भगवती कामदकी, श्री राजरानी ने निवेदन किया है कि मालती को लेकर अभी आइए।

कामंदकी : उठो बेटी।

(सब उठते है। मालती-माधव परस्पर सानुराग देखते हैं)

माधव : (आप ही आप) इस मालती के साथ संसार-सुख का अनुभव क्या इतना ही बदा था, इसके आगे अब और क्या होगा ! ओ ! हो !!

सुहृदतुल्य दिखाइ दयामयी—
प्रथम पूर्ण सदा अनुकूलता।
बनि महा पुनि दारुण क्यों विधे,
अब करै मन मे अति वेदना ।।७।।

मालती : (आप ही आप) नेत्रानद-कर प्राणनाथ, क्या अब तुम्हारे दर्शन न होगे ?

लवगिका : हाय, भूरिवसु ने तो इसे चिंतार्णव (कुएं) मे ढकेल दिया।

मालती : अब जी के क्या करू ? पिता के असीम निर्दयता के बर्ताव ने भी अपनी कापालिकता पूर्ण की। पापी दैव ने जैसा चाहा था वैसा-ही हो गया, अब मुझ अशरण का कौन शरण है, किसे दोष दू, कहां जाऊ ?

लवगिका : सखी इधर आओ, इधर।

(कामदकी, मालती, लवगिका बाहर जाती है)

माधव : (आप ही) माता कामदकी मुझे बडा प्यार करती हैं, इसलिए मुझे धीरज बधाने ही के लिए इन्होने कदाचित कहा हो कि

तू उसके लिए हताश मत हो, किंतु वास्तव मे देखा जाए तो इनके कथन मे कुछ सार्थकता प्रतीत नही होती। (**उद्वेग के साथ**) हा, मेरा जन्म कृतार्थ होगा या नही, इसकी मुझे शंका ही है। ऐसी दशा मे मेरा क्या कर्त्तव्य है। (**सोचकर उन्माद से**) अब तो यही उपाय है कि महा मास बेचू। (**प्रगट मकरंद से**) प्रियवर, अपनी प्राणवल्लभा के हेतु तू भी तो उत्कंठित हो रहा होगा। क्यो, मेरा कहना सत्य है न ?

मकरद : लखि घायल मो दिसि आई जबै सिरसी तिह-सारी सखी रँग-सानी।
वह ताहि न थामि सकी कर सो, अँग अंगनि माहि सुधा सरसानी।
मृग शावक की सी विलोल बडी, जिह चक्रित आँखि महाभय मानी।
छवि सो उर छाइ रही वह जो तिरछाइ विलोकनि सो लिपटानी ॥८॥

माधव : मित्र, बुद्धरक्षिता उसकी प्यारी सखी है और वह तेरे लिए पूर्ण प्रयत्न कर रही है।

मारि मृगेन्द कराल काल सो जो जिय होमि बचाई।
अस तव प्रिय निरसक अंक लहि कहाँ रमै वह जाई।
यहि सिवाय वा मृग-नयनी ने मधुर मजु दरसाई।
अमल अधखिले कमल नयन सो तोमे नेह-निकाई ॥९॥

तो चलो उठो, पुण्य सलिला पारा तथा सिधु संगम पर स्नान कर नगर मे प्रवेश करें।

(**उठकर चलते हैं**)

मकरद : यही तो है उनका महान सगम, आहा !
जैसे न्हाइ तरंग तुरंतहि तीर कामिनी आवै।
भीजे पट सो लिपटि रहे तिन सुठि शरीर दरसावै ॥
कनक कलस-कल-पीन-पयोधर-शोभा बरनि न जाई।
मृगनयनी भुज-बेलिनु मे जब तिन को चलहि दुराई ॥१०॥

(**सब जाते हैं**)

शार्दूल विक्रमो नाम चतुर्थाङ्क

अंक ५

[स्थान—श्मशान]

अथ-विष्कम्भक

(आकाश-यान से भीषणोज्ज्वल वेश में कपालकुंडला का प्रवेश)

कपालकुंडला : षटधिक दशनाड़ी चक्र मध्य जो निज आतम ठहरावै ।
नित जिनकौ रूप धरन सो हिय मे योगी-जन वर पावै ।
निज अविचल मन सो खोजत साधक जिन्है समाधि लगाई ।
सब शक्ति-अयन शिव शक्ति-नाथ त्रिनयन अस होहु सहाई ।।१।।

इस समय मैं—

षटचक्र मे रोकि मनोवृत्ति को हिय अम्बुज मध्य समाधि लगाय ।
देखति हो शिव-रूप समान स्वआतम को नित चौगुने चाय ।
नाडिनि हू के उदै-क्रम सो जग पाँचहु भूतिनि को बस लाय ।
घोर घटानि विनाश्रम काटति जाति सदा नभ मे छवि छाय ।।२।।

खड़कत उर लगि-लगि मुण्ड-माल ।
बाजत कटि-किंकिन-ध्वनि कराल ।।
जब चलति गगन मधि मै अनूप ।
रमनीय विकट मम होत रूप ।।३।।

और—

दृढ यदपि बँध्यो यह जटा-जूट ।
तऊ बेग चलन सो गयो छूट ।।
बिखरे जासो चहुँ ओर बार ।
ढाँपत मुख-मण्डल बार बार ।।

खट्वाग सग घटा-निनाद ।
मिल घोर करत दस-दिसि सनाद ।।
गल परी विवृत शव-मुण्ड माल ।
तिह-रन्ध्रनु जो गुजत उताल ।।
कृत-किंकिन झन झन झनत्कार ।
अरु वायु-वेग लगि लगि अपार ।।
करि जोर सोर चहुँ सरसरात ।
यह उच्च पताका फरफरात ।।४।।

(घूमकर और चारो ओर देखकर)

अरे, यहा तो कुछ पुराने नीम के तेल मे भुने हुए लहसन की-सी वास चिता के धुए से आ रही है। यही पास ही श्मशान है। यह राह वही जाती है, वस यह समीप ही कराला देवी का मठ दिखलाई पडता है। मेरे गुरु अघोरघंट ने मुझे आज्ञा दी है कि अपनी मंत्र-सिद्धि को पूर्ण करने के लिए, वे वही आज इस देवी की विशेष रूप से पूजा करेंगे, इसलिए पूजा की सामग्री चलकर एकत्र करना उचित है। श्रीमुख से यह भी आदेश दिया है कि मत्र-साधन के पहले उन्होने भगवती कराला देवी को एक स्त्री रत्न की वलि वोली थी, वैसी ही एक वाला जो इस नगर मे विदित हो, लानी चाहिए। (कौतुक के साथ देखकर) गंभीर एवं मधुर आकृति वाला, घुघराले वालो का जूडा वाधे, हाथ मे खडग लिये श्मशान की ओर यह कौन आ रहा है, यह तो पास ही आन पहुचा—

कुवलय-दल सो श्याम, तदपि अंग कछु पीयरो ।
चन्द वदन अभिराम, मन्द मन्द भुवि डग धरत ।।
वायें कर नर-मास, लिये श्रवत शोणित सन्यो ।
यासो होत प्रकास, यहि साहस औ धीरता ।।५।।

(देखकर) अरे, यह तो कामदकी के मित्र का पुत्र माधव ही इस समय महामांस वेच रहा है। रहने दो, मुझे क्या प्रयोजन। वह चाहे सो करे, यहा तो अपने काम से काम। देखो, संध्या वीत चुकी। क्योकि—

तम-वेलि नवेलि तमालनु-माल सी धाइ अकास लो छाइ रही।
गहि छोर नये जल-सिन्धु मनो तरुनी-धरनी को डुबाइ रही।

अति वायु के वेग बढ्यो चहुँ चक्रित धूम घनौ घुमडाइ रही।
वन आवत आवत ही रजनी निज श्यामलता तरुणाइ रही ।।६।।

(जाती है)

इति विष्कम्भक

(उपरोक्त भेष में माधव आता है)

माधव : (सांस भरकर)

सरस प्रेम रस सो परम, प्रनय परस सो पाग।
परिचय लहि जिन मे भयो, उदय प्रौढ अनुराग ।।
अस स्वभाव ही सो मधुर, हावऽरुभाव अनूप।
विलसहि मो दिसि पुनि कबहुँ मुग्ध-नयन रति रूप ।।
केवल यहि अभिलाष सो, उमगत हृदय अथाह।
ललक हिलोरे खात चहुँ उदधि आनन्द उछाह ।।
इन्द्रिय और अन्तःकरण अस तन्मय तिह माहि।
अपने अपने विषय हू गहिवे समरथ नाहि ।।७।।

सजि फूल वसंती लगाये सुहावन मौलसिरी को अनुपम हार है।
जिहि धारि निरन्तर मजु बढै नित जाके उरोज की दूनी बहार है।
भुज मे मेलि उमग भरी अँग अगनि सो वह प्यारी अपार है।
निरसक ह्वै कौन दिना लगि है मम अंक सो काम-कला-
अवतार है ।।८।।

अथवा यह बात बहुत दूर हो तो बस इतना ही मागना चाहिए कि—

नित हेरत ही सुख पुजन सो सुठि सीचि घनौ सरसावन जी कौ।
अरु नैनन को जनु कौमुदी चारु अपारु बढावन मजु रती कौ।
मनभावन सार सुहावन सौ निचुरयो नव इन्दुकला अवली कौ।
अभिराम अनंग-सुमगल-धाम लखौ फिरहि तिह आनन
नीकौ ।।९।।

मैं तो समझता हू कि इस समय भी प्यारी को देख ही रहा हू— उसे देखने न देखने की अवस्था मे कुछ भी भेद प्रतीत नही होता। उस समय उसका थोडी देर का भी दर्शन चित्त मे ऐसा चुभ खुभ गया है कि उसका ध्यान अब भी अपने-आप निरंतर उठा ही करता है। इस प्रकार उस संस्कार (जीवन) के जाग्रत रहने से प्यारी की स्मृति-धारा इतनी प्रबल हो गई है

कि न तो उसका प्रवाह दूसरी बातो द्वारा रोके रुकता है और न उसके मार्ग मे कोई विषयांतर का विचार (बाध) बाधा पहुचा सकता है। बात तो यह है कि उसके अविराम-स्मरण होने से मेरे अतःकरण की वृत्ति तदा-(प्रियतमा-)कार हो गई है—भीतर बाहर जहा देखो वहां प्राणप्यारी का प्यारा रूप ही रूप अनूप दृष्टिगोचर होने लगा है। बस इसी ही ज्ञान-ध्यान ने मुझे तन-(प्रियतमा-)मय बना दिया है।

लीन किधौ प्रतिबिम्बित चित्रित ऊँची उभारि कें खोदि दई है।
थापित, बज्जर लेप सो वा चिपकाइ, धौ बीज समान बई है।
कै चित पाँचहुँ बानन सो जडि सुन्दर काम ने ठीक ठई है।
सोच निरन्तर तन्तु के जाल सिईं बुनि कै वह प्रेम मई है ॥१०॥

(नेपथ्य मे कोलाहल होता है)

(सुनकर) ओह, इधर-उधर फिरते हुए इन पिशाचो की भीड़-भाड से श्मशान की भयकरता कितनी बढ गई है, यहा तो—

सघन भीषण घिरि-घिरि तम-पुंज,
छाइ रह्यो यह कैसो सब ओर।
चिता के बिच-बिच चमकै ज्योति,
कढें तिन सो प्रकाश की कोर।
बिकट कट-पूतनादि, भय दैन,
निरन्तर नृत्यत नृत्य अपार।
किलकिला-रव सो यह उत्पन्न,
करैं कोलाहल चहुँ अनिवार ॥११॥

अच्छा तो जोर से पुकारूं।

(पुकारता है)

अरे श्मशान के निवासी डाकिनी साकिनी पिशाच तथा भूतगण हो—

बेचत डोलत हो महामाँस आओ लेउ लेउ सब कोई।
शस्त्र लगाये बिन यह काट्यो,
पूजा-जोग, पुरुष को छांट्यो,
जामे नही कपट की आँस, आओ लेउ-लेउ सब कोई।
बेचत डोलत हो ॥१२॥

(नेपथ्य मे फिर कोलाहल होता है)

ओह, मेरा चिल्लाना सुनकर चारो ओर बड़े जोर-जोर से

कोलाहल करते हुए उतावले-बावले प्रगटीभूत-भूतो से यह सकीर्ण श्मशान कैसा काप उठा है ! बडा आश्चर्य है !!

जिन फटे कान लो मुख कराल, निकसैं बहु तिन सो ज्वाल माल ।
निज चमचमात दष्ट्रा-किनोर, उचकें मचकें चलि सकल ओर ॥
पिंगल विद्युत-आभा समान, दृग केस मुच्छ भ्रू भासमान ।
कछु दीसत अनदीसत असेस, अति शुष्क दीर्घ बपु मलिन-भेस ॥
अस उलका-मुख करि मुख विकास, चाहत लीलन मानहुँ अकास ॥१३॥

और वह देखो—

यह सामुही लखि परत डाकिनि साकिनी की पाँति ।
जो करत 'चीची' घोर चक्राकार मे बहु भाँति ॥
भूखी महा नर माँस भक्षति शीघ्रता सो ग्रस्त ।
गिर परति जूंठिन, खात ताको बृक श्रृगाल समस्त ॥
अरु जिन खजूर समान जघा असित चर्म विशेष ।
नस-ग्रन्थि घन सो मढि रह्यो बस अस्थि पिंजर-शेष ॥
चिरकाल जीवन सो जरा-जीरण महा इन गात ।
अति ही भयकर सूखि जो कंकाल रूप लखात ॥१४॥

(सामने देखकर तथा हसकर)

अरे, पिशाचो का रूप-रंग भी तो देखो !

दग्ध पुराने चन्दन-द्रुमकी जनु अनुहारी ।
इनकी देह विशीर्न शुष्क कारी कजरारी ॥
कोटर से मुख-गर्त भयंकर जब ये फारें ।
चचल दीरघ अजगर-सी रसना विसतारे ॥१५॥

(घूमकर और चारो ओर देखकर) अरे, अगाडी तो बडा घिनौना दृश्य है !

उतनि-उतनि चाम फेरि ताहि काढत हैं,
लोथि को उठाइ भखे ऐसे बे-अतक है ।
सरयो मास कधा जाँघ पीठ औ नितम्बनु कौ,
सुलभ चबाइ लेत रुचि सो निसक है ।
रौथि डारैं नाडी नेत्र आँत औ निकारैं दाँत,
लिथरे शरीर जिन शोणित की पक है ।
अस्थिनु पैं ऊँचौ नीचौ और तिन बीचहू कौ,
धीरे-धीरे कैसे मास खात प्रेत रक है ॥१६॥

और वहां—

अति ताप ते अस्थि-पसीजन सो कढे मेद की वुन्दनु जो टपकावैं ।
तिन धूम-धूमारिनु लोथिनिकों ये पिशाच, चितानु सो खेंचि के लावें ।।
ढिलियाइ खस्यो तचि मांस सबै, जिहि सों जुग सन्धिहु भिन्न दिखावैं ।
अस जंघ-नली-गत मज्जामिली सद पी चरवी परवी सी मनावैं ।।१७।।

(हंसकर) रात को आया जानकर ये पिशाचिनी आनंद मे कैसी मस्त हो रही हैं ।

कर मगल-काकन आंतनि को हृत-पद्म के हार हिय मे सुहाये ।
रक्तोत्पल से तिय-हाथनु के सुठि कानन कों अवतंस बनाये ।
और शोणित-पक सोई जनु कुकुम-लेप पिशाचिनु अग लगाये ।
पिय-संग मे मज्जा-सुरा भरि कें छकें प्याले कपालनु के मन भाये ।।१८।।

(घूमकर, "वेचत डोलत हो महामांस आओ लेउ-लेउ सब कोई" को गा-गाकर) अरे, इनका विकृत भेप तथा भापण तो दूसरो के दिल को भी दहलाने वाला है । फिर ये पिशाच मेरा बोल सुनकर इतनी जल्दी क्यो भाग गए । जान लिया, ये सबके सब बडे डग्पोक हैं । (दुख के साथ) श्मशान की राह सारी की सारी छान डाली, अव मैं इसके बिलकुल सिरे पर आ गया हूं । (देखकर) यह आगे वही तो है—

यहि वेलि वृच्छ पुज कुजनु कुटीर माहि,
घोरत उलूक भीर अति परचंड है ।
जासु धुनि सुनि करैं जम्बुक-जमाति मिलि,
कर्णकटु क्रन्दन-प्रतिध्वनि उदंड है ।
दोउ तीर भीपण गंभीर नीर मध्य वहै ।
नर अस्थि-पिंजर कपाल कृत-खड है ।
रुकि कहुँ टकरात समसान-नदी जात,
घर घर घोर रव करति अखंड है ।।१९।।

(नेपथ्य में)

हाय, निर्दय पिता, जिसे भेंट देकर तुम महाराज को प्रसन्न

करने वाले थे, वह तुम्हारी बेटी अब विपत्ति में पडी है।

(अभिप्राय जानने की इच्छा से सुनकर)

विह्वल कुररी-कूक सम, नेह भरे ये बैन।
परिचित से चित बस करन, मधुर श्रवन सुख दैन ॥
इनहिं सुनत क्यो फटत हिय, अग अग अकुलात।
डिगिमिगात पग भुवि धरत, तन काँपत अनवात।
यही कराला की भवन, सकल अनर्थ-निकेत।
जहँ सो आवत दुख भर्यो, यह रोदन-सकेत ॥२०-२१॥

(माधव जाता है)

[स्थान—कराला का मंदिर]

(कराला के भवन पर अघोरघट और कपालकुडला दोनों देवी के ध्यान में मग्न बैठे है और मालती, जिसके बदन पर बलि-प्रदान के समस्त चिह्न धारण कराए गए हैं, बलिदान होने को खड़ी है।)

मालती : हाय, निर्दय पिता, जिसे भेट देकर तुम महाराज को प्रसन्न करने वाले थे, वह तुम्हारी बेटी विपत्ति मे पडी है। मेरी ममतामयी मा, दैव ने तुम्हारा सर्वनाश किया। हाय, मालती तुमको प्राणो से भी अधिक प्यारी थी पर अब क्या। मेरा कल्याण करने के लिए दिन-रात यत्न करने वाली भगवती कामंदकी, तुम्हे ससारी दु:ख से प्रयोजन ही क्या था पर अब तक जो तुम मेरा लाड़-चाव करती रही वह तुम्हे दु.ख के सागर मे डुबावेगा। हाय प्यारी सखी लवगिका, इस जन्म मे तो तू मुझे देखने से रही, यदि हो सका तो मेरा-तेरा मिलना स्वप्न मे होगा।

माधव : हा, अब तो मेरा रहा-सहा संदेह भी जाता रहा। इस पर भी इसका प्राण बचना संभव है—

(शीघ्रता से पहुंचता है)

कपाल०-अघोर० : (देवी से हाथ जोड़कर)

जय जयति जननी तरनि तारिनी पाप-हारनि चण्डिके।
तव रूप गुन अव्यक्त अभये सर्व-भव-भय खण्डिके ॥

लखि जिह प्रभाव निशुम्भ मोहत सदल बल बिकराल है।
यह होत अचलाहू चला जब परत पग उत्ताल है॥
लचकाइ पीठहि कूर्म कम्पत विकल भारी भार सो।
डिगिमिगात समस्त यह ब्रह्माण्ड जासु प्रहार सो॥
पाताल-व्यापी खोज गहरे लखि परें जनु स्रोत है।
गभीर सप्त-समुद्रहू के नीर लय जहँ होत हैं॥
जो भूत-भावन-मडली मे मोद-दायनि यस-भरी।
अस विभव युत लीला तवै जग-वन्दनीया ईश्वरी॥२२॥
गज-चर्म-अंचल होत चचल, चलत नख, तिन लगन सों।
शशि तन विदीरन ह्वै श्रवै जो अमृत, ताके झरन सो॥
जगि मुण्ड-माल प्रचण्ड ज्यो निज अट्टहास प्रचारही।
भयभीत जुगकर जोरि विनती भूतगन उच्चारही॥
कारे भुजग फन के वने भुज लसत बाजू-बन्द हैं।
कहुँ दवत, सो फुकारि उगिलें गरल-ज्योति अमन्द हैं॥
तिह अधिकता बस, जब पसारति बाहु दडनि जोर सो।
गिरि-कूट बहुतक टूटि भू पर गिरहि चारहुँ ओर को॥
तुव तृतीय-लोचन सो कढै जब ज्वाल की किरनावली।
पिंगल-प्रभा की परिधि सोहत ओर सब ऐसी भली॥
जिमि भ्रमत मे आलात-चक्र स्वरश्मि को छितराइकें।
चहुँ दिसि अखंडल चारु मंडल लसत मंजु बनाइकें॥
खट्वाग ऊँचो करत लागै शृंग-ध्वज आकास मे।
वहु उरझि ताकी नोक सो तारे गिरें खसि तिह समे॥
जहँ नचति डाकिनि साकिनी बेताल ताल बजावही।
जिन विकट धुनि सुनि दौरि गौरी अंक शिव के लागही॥
यह भाँति जो आनंद शकर हृदय मे पूरण भरै।
अस देवि तुव ताण्डव सबै दुख द्वन्द्व दरि मंगल करै॥२३॥

(यह पढ़कर अघोरघंट अपना अभिमन्त्रित खड्ग मालती के गले पर रखता है।)

माधव : (देखकर)

लाख के रंग मे लाल रंग पट लालहि माल हिये पहरी है।
ठाढी जो कांपति बाल मृगी सम द्वै वृक पापिनु-बीच परी है।
सो यह भूरिवसु की सुता, जिह-सीस पै नाचति काल-घरी है।
रे विधिना निरमोही महा यह तैनें कहा अनरीति
करी है॥२४॥

कपालकुडला : जो कोउ प्यारो होइ तव, करि लै सुधि तिह बाल।
आवन चहत तुरन्त ही, बस अब तेरो काल॥

मालती : हाय, प्यारे माधव, मेरा लोकांतर-वास होने पर भी तुम मुझे बिसराना मत—क्योंकि प्यारा जिसकी सुधि करता है वह मरा नही समझा जाता।

अघोरघंट : (शस्त्र उठाकर) भगवती चामुडे—

सेवा मे अर्पित रुचिर, पूजा सकल प्रकार।
ह्वै प्रसन्न याको करौ, देवी, अगीकार॥२५॥

माधव : (अचानक पहुंचकर और म्यान से खड्ग निकालकर) रे दुष्ट कपालिया, हट पीछे। खबरदार, जो आगे पैर रखा, यदि ऐसा किया तो अपने को जीता न पावेगा।

मालती : महाभाग मुझे बचाना, इन दोनो से मुझे किसी तरह बचाना—

माधव : बस, अब तुम मत डरो—

मरन समय हू तजि सकल सक, लाज, कुल-नेम।
रोइ-रोइ प्रगटचो परम, जा-हित अपनो प्रेम॥
वही तुम्हारो प्रिय सखा, प्रस्तुत आगें आइ।
ऐसी, क्यों काँपौ वृथा, निज मन मे घबराइ॥
अब यह पापी अवसिही, जान लीजियौ आज।
भोगेगो अति कठिन फल, निज करनी के काज॥२६॥

अघोरघट : अरे यह कौन पापी है, जो हमारी पूजा मे विघ्न डालता है।

कपालकुडला भगवन्, यही इसका प्यारा माधव है, जो कामदकी के मित्र का पुत्र होकर यहां मास वेचता फिरता है।

माधव : मालती, तुम यहा कैसे आईं ?

मालती : (कुछ आश्वासन पाकर) महाभाग, मैं अपने घर अटारी मे सो रही थी, जागी तो अपने को यहां पाया, बस इससे अधिक और कुछ नही जानती। तुम यहां कहां ?

माधव : (लाज से सिर नीचा करके)

तो कर-कंज परिग्रह सो किमि होइगो जन्म कृतारथ मेरो।
याही विचार के जाल फँस्यौ मन पीडित औ घबरात घनेरो॥
बेचत डोलत मानव-मास मसाननु मे करिके यहँ फेरो।
आइ गयो जब मैंने सुन्यो भय-पूरित भामिनी रोइवो तेरो॥२७॥

मालती : (आप ही आप) मेरे कारण अपनी जान को हथेली पर रख,

देखो ये कैसे घूम रहे हैं !

माधव : वाह, जिस बात की स्वप्न मे भी कल्पना नही थी वही एकाएक उपस्थित हुई, इसे ही काकतालीय न्याय कहते है ।

कसरि कहा बाकी रही, मरिबे मे तिहि बेर ।
दस्यु कराल-कृपान के, गिरिबे की बस देर ॥
जानैं का संजोग सो, आइ पर्यौ मैं धाइ ।
वा निर्दय सो तू सुमुखि ऐसें लई बचाय ॥
यथा अचानक कोउ जन, राहु-बदन को फारि ।
लेत उबारि तुरंत ही, चन्द्रकला सुकुमारि ॥
सुधि कर प्रगटत भय, करुण, विस्मय, क्रोध, उमग ।
विकल, द्रवत, छोभत, जरत, विकसत, मन इकसग ॥२८॥

अघोरघट . अरे, ब्राह्मण के छोकरे ।

मरिबे अरे कित सो यहाँ तू धूर्त पहुँच्यो आय ।
व्याघ्र घेरी मृगिहि पै जिमि मृग विमोह बढाय ॥
जा खड्ग सों याही समय बस काटि तेरो मुण्ड ।
चण्डिहि मनाऊँ रुधिर सो, फरकत रहै तव रुण्ड ॥२६॥

माधव : अरे दुरात्मा पाखंडी चाडाल—

जाके बिना संसार को चरितार्थ नाम असार ।
त्रय भुवन की जो जतन-रच्छित रतन चारु अपार ॥
जासु बिन यह लोकहू भासै विना आलोक ।
जो बन्धु जन असरन सरन औ दरन सब तिन शोक ॥
कदर्प अपुहि अदर्प मानै, जिह बिना जगमाहि ।
जाके बिना इन नयन के निमनि को फल नाहि ॥
तो ताहि हरि कें रे नराधम क्रूर मति अनुदार ।
करन चाह्यौ जगत सब को जीर्ण विपनाकार ॥३०॥

अरे पापी,

जो खेलहू मे कहूँ सहेली सरस करि उपहास ।
नव शिरस-सुम सुकुमार यहि के दयेउ पूरि हुलास ॥
अरसाइ तउ ये लटपटानी मुख गयो पियराय ।
रे नीच, तिहि तै चहत मारन खड्ग अपनो घाय ॥
बस याहि सो यम दड के, समतौल मो भुजदंड ।
अब ही परै तुव मुण्ड पै सब भाँति सो परचंड ॥३१॥

अघोरघट : दुरात्मा, ले, कर तो मेरे सिर पर प्रहार, देखू कैसे करता है। अरे देख अभी पलक मारते-मारते तेरा ढेर किए देता हू। मानो तू पृथ्वी पर हुआ ही नही।

मालती : साहसी नाथ यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो इस दुष्ट से व्यर्थ संग्राम न कर मेरी रक्षा करो। शीघ्र इस संकट से पीछा छुडाओ। एक तो यह वैसे ही दारुण है और तिस पर भी अब हताश हो गया है।

कपालकुडला : भगवन्, सभल कर इस पापी की खबर लेना—

माधव-अघोर० : **(मालती तथा कपालकुडला से)** हे भीरु प्रिये—

धरि धैर्य अपने हृदय मे तजि दीजिये आतंक।
या पातकी के मरण में कछु कीजिये ना शक ॥
गज कुभ को नख सो विदारत जो मृगेन्द्र कराल।
करि सकै ताको पराजित एक कहुँ मृग बाल ॥
गिरि-कूट अपने कुलिश सो जो नित्य कूटनहार।
ता इन्द्र को कहुँ जात खाली लख्यो बज्र-प्रहार ॥३२॥

(नेपथ्य में कोलाहल होता है)

भाई, मालती के अनुसधान करने वालो, व्यर्थ चारो ओर दौड-धूप न करो। पूर्ण योगवती भगवती कामंदकी ने अमात्य भूरिवसु का समाधान कर दिया है, उन्ही की सम्मति से वे तुम्हे आज्ञा देती है कि इस कराला देवी के भवन को घेर लो जिससे सब काम बन जाए।

तजि अघोरघटहि, जगत जन-कठोर-सिर मौर।
अस अद्भुत दारुण करम, करै न कोऊ और ॥
देवी पै वह वलि चढै, मालति रूप-ललाम।
यहि सिवाय दूजो कढै, और न कछु परिणाम ॥३३॥

कपालकुडला : भगवन्, हम लोग घिर गए।

अघोरघट : विशेष पराक्रम एवं पुरुषार्थ दिखाने का यही तो अवसर है।

मालती · हा तात, हा भगवती योगिनी !

माधव : **(आप ही आप)** इस मालती को इन आए हुए आदमियो के हाथ मे सौपकर इसके सामने ही इस दुष्ट को मारूं।

(मालती को सौपकर लौट आता है)

(अघोरघंट से प्रगट) आ जा पापी, देखता क्या है ?

माधव-अघोर० : (एक दूसरे से)

काटत कठोर अस्थि-पिंजर की ग्रन्थिनु जो,
करै झिझनीलो शब्द कड़कि कडाक सों।
नस-जाल छेदनु मे आँतनु को भेदनु मैं,
गत-श्रम होत है जो झड़कि झड़ाक सो।
निरातक विचरै जो मांस पुंज चीरन मे,
जैसे पंक-जीरन मे सडकि सडाक सों।
यह सोई खड्ग चण्ड तेरे अंग अंगनि को,
खंड खंड करै आज फड़कि फडाक सों ॥३४॥

इति श्मशान वर्णन नाम पंचमाङ्क

अंक ६

[स्थान—पद्मापुरी]

(कपालकुडला का प्रवेश)

कपालकुडला : रे पापी दुरात्मा माधव, मालती के कारण तूने मेरे गुरुदेव को मार डाला। हाय, मैंने रोकना भी चाहा पर तूने मुझे अबला समझकर झिडक दिया और यह कहकर कि स्त्री-वध का पाप कौन अपने सिर ले, मेरा घोर अपमान किया (**क्रोध से दांत पीसकर**) रे नराधम, देखना मैं क्या-क्या करती हू—

तिहि नाग-शत्रु को कहाँ चैन,
जासो सदैव निज बैर लेन।
जागति डसिवे कारी कठोर,
नागिनि, जिह तीछन दंष्ट्र-फोर ॥१॥

(**नेपथ्य में**)

गुरुजन-सुकृत-आदेश लहि कर्त्तव्य क्षत्री अनुसरैं।
श्रुति मधुर स्वर सो विप्र सब प्रारम्भ श्रुति-पाठहि करैं।
प्रिय मजु मंगल-गान कोकिल कंठ सो तिय गावही।
दुलहा-अगौनी शीघ्र, यासो सकल जन सजि जावही ॥२॥

सो भगवती कामदकी के निर्देशानुसार महामत्री की रानी महोदया की आज्ञा है कि अब विवाह का मुहूर्त पास आता जाता है, मडप मे विशेष भीड़भाड होने के पहले ही पुत्री मालती को नगर-देवी का दर्शन कर आना चाहिए जिससे यह मंगलमय कार्य निर्विघ्न समाप्त हो जाए और यहा के नातेदार एवं न्यौतहारियो को भी उचित है कि वे भी सज-धज कर चलने के लिए तैयार रहे।

कपालकुडला : अवसर अच्छा है—यहां पर तो इस विवाह के झगडे मे सिपाही इधर-उधर फिर रहे हैं, कही अन्यत्र चलकर माधव से वैर निकालने की चाल सोचू। (जाती है)

इति विष्कम्भक

(कलहंस आता है)

कलहस · मेरे स्वामी माधव तो मकरद के साथ नगर-देवी के मंदिर मे छिपे बैठे हैं और मुझे आज्ञा दी है कि यह देख आऊ कि मालती उधर जाने के लिए गृह से कब निकलती है, तो यह शुभ समाचार सुनाकर उन्हे प्रसन्न करूं कि वह देवी पूजने जा रही है। (जाता है)

(माधव-मकरद आते है)

मालति-प्रथम-दर्श-दिन सो ही अबलो बढी सवाई—
पुनि मृगनयनी-सरस भाव सो पहुंची हद लो जाई—
अस मम-मदन-बिथा की सब विधि आज अत ह्वै जावै।
नीति भगवती की देखें अब तारै किधौ, डुबावै ।।३।।

मकरद : भाई, तुम तो मुझे बड़े अधीर मालूम होते हो, भला श्री कामंदकी की निपुण नीति भी कही चूकने वाली है। यदि उनसे कार्य न हुआ तो मानना पडेगा कि ससार मे चातुर्य की इतिश्री हो चुकी और दूरदर्शियो की पूर्व सोची हुई व्यवस्था केवल भ्रम मात्र ही होती है।

(कलहस दौड़ता आता है)

कलहंस नाथ, तुम्हारा मनोरथ पूरा हो गया, श्री मालती इधर आने के लिए प्रस्थान कर चुकी हैं।

माधव : सचमुच ?

मकरंद : क्या तुम्हे इसकी बात मे विश्वास नही, जो ऐसा पूछते हो ! अजी वह केवल वहा से चली ही नही किंतु यहा मदिर के समीप ही आ पहुंची। क्योकि—

उठि मंगलीक - मृदंग - घन -गम्भीर- सहसनु-रोर।
जनु पवन बल सो उमडि गरजत घुमड़ि जलधर-घोर।।
विस्तार करि छिन मात्र मे पूरी सबै दिसि माहिं।
यहि छाँड़ि शब्दान्तर कछू बस सुनि परै अब नाहिं ।।४।।

तो इस झरोखे से झाककर देखे। (झांकते है)

कलहंस . नाथ, देखिए-देखिए खुले हुए श्वेत उज्ज्वल छाते ऐसे जान पड़ते हैं मानो आकाश-सरोवर मे खिले हुए करोड़ श्वेत कमल काप रहे है—उनकी दंडिया मृणाल की निरंतर शोभा धारण करती है। इधर-उधर ऊपर चवरो को झलते हुए देखकर ऊचे उड़ते हुए राजहसो का भ्रम होता है। उनकी पवन लगने से कदली-दल-सी पताका-पक्ति लहरो की भाति लहरा रही है। और वह देखिए, पैरो मे पैजनी पहने हुए हथनियो के ऊपर गणिकाएं जा रही है, जिनके रग-बिरगे रत्नालकार इंद्रधनुष की भाति दमक रहे है, और जिनके मुह पान-बीडो से भरे हुए हैं, इसीलिए मधुर मंगल-गान करने मे ये कभी रुक-रुक जाती है।

(माधव-मकरद बड़े चाव से देखते है)

मकरंद : वाह वाह, मंत्री भूरिवसु के ऐश्वर्य की क्या बात है, इनका नाम अपनी सत्यता को चरितार्थ कर रहा है। देखो—

कैधो चारु चचल मयूर-चन्द्रकानि-चय,
छाये नीलकंठ मनु पच्छन सँवारे हैं।
किम्बा बाँधि मण्डल अखण्डल सुरेश-चाप,
एक संग उदित अनेक-रग वारे है।
अथवा नवीन चीन देश के बने विचित्र,
भाँति भाँति-चित्रकढ़े अचल पियारे हैं।
सोहे ऐसी दिशा, जब झलकि सुमनि-माल,
ज्योति जालकरैं सब ओरनि उज्यारे है ॥५॥

कलहंस : यह क्या, जो एकाएक सिपाही, चोबदार, दास, दासी सबके सब हट गए, और सब ओर मडल-सा बाध लिया, रूपहरे सुनहरे फूल जडे हुए बेंतो से भीड़ को हटाकर, अगाडी रेखा खीचते हुए (जिससे कोई अगाडी न बढे) जहा के तहा खड़े हो गए। और वह देखो सिंदूर-शोभित, संध्या-समान ललित, सुदर सूड को घुमाती, तारो के तुल्य सुवरण सितारे जडी जजीर पहने, काली यामिनी-सी गज-कामिनी (हथिनी) पर यह कौन सवार है, जो अपनी सौदर्यकिरण के दर्शन से चारो ओर उत्कठित दर्शको के दल को प्रफुल्लित कर रही है। अहा, यह तो मनोहर नवचद्रकला-सी कमनीय कोमलागी मालती है, अनग वेदना से कैसी दुबली-पतली और पीली पड गई है। घनी भीड को चीरकर, लो, वह आगे निकल आई।

मकरंद : मित्र, देखो ।

भूपन-भूषित बाल तऊ पियराइ बढ़ी तन मे दुबराई ।
ज्यो सुमभार संभारि सकै न लता नव भीतर कीटनु-खाई ।
यद्यपि ऊपर सो रमनीय विवाह-महोच्छव की छबि पाई ।
पै उर अन्तर छाई बिथा यहि सो लगे दीन मलीन सवाई ।।६।।

क्या हथिनी बैठा दी गई ?

माधव : क्या वह उतर के भगवती कामदकी एवं लवगिका के सग इधर ही आ रही है ?

[स्थान—देवी का मदिर]

(कामदकी, लवगिका, मालती आती हैं)

कामदकी : (हर्ष से आप ही आप)

नित कामना पूरी करै विधि चारु सबै विधि मंगल कों बरसावै ।
अब जो मन लागि रही हम-आस मनोहर देवता ताहि पुजावै ।
लखि भाँवरियाँ परी दोउनि की हमहूँ इन आँखिनु कौ फल पावै ।
बिरवा यहि यत्न के फूलै फलै नित नूतन छेम लता लिपटावै ।।७।।

मालती : (आप ही आप) हाय, ऐसा भी कोई उपाय है कि मुझे मौत आ जाए और किसी प्रकार मेरा यह दुःख छूटे । हा ! मौत को भी मौत आ गई, उसका मिलना भी मुझ जैसे प्रारब्ध-हीनो के लिए दुर्लभ हो जाता है ।

लवगिका : (आप ही आप) सोच के मारे यह कैसी व्याकुल हो रही है ।

(पिटारी लिए प्रतिहारी का प्रवेश)

प्रतिहारी : भगवती, श्री मंत्री महोदय ने कहा है कि ये वस्त्राभूषण जो दुलहिन पर चढाने के लिए महाराज ने भेजने की कृपा की है, उन्हे देवता के चरणो से छुवाकर मालती को पहनवा दीजिए ।

कामंदकी : उन्होंने बडा अच्छा काम किया, यह मंगल स्थान है इसलिए दुलहिन को यही सजाना चाहिए । ला दिखा, क्या-क्या भेजा है ?

प्रतिहारी : देखिए, यह श्वेत रग की चोली है, यह लाल रेशमी साड़ी है, ये अग-अंग के अलग-अलग गहने है, यह मोतियो की माला है, यह चंदन है और यह श्वेत कुसुमो का हार है ।

कामंदकी : (आप ही आप) इन्हे पहनकर मकरंद बड़ा सुदर जचेगा (प्रगट) अच्छा, जा कह दे कि सब काम उनकी आज्ञानुसार ही किया जा रहा है।

प्रतिहारी : जो आज्ञा। (जाता है)

कामदकी : लवंगिका, तुम पुत्री मालती को मंदिर मे ले आओ।

लवगिका : और आप ?

कामंदकी : मैं भी एकात मे इन गहनो के रत्नो को शास्त्रानुसार परखूगी।

मालती : (आप ही आप) हा !

लवंगिका ही एक बस अब मेरो परिवार।
और न कोऊ तीसरो, दुःख बँटावन हार॥

लवंगिका : (प्रगट) सखी, यही तो है मदिर का द्वार। चलो भीतर चलें।

मकरद : (माधव के साथ आकर) आओ हम लोग भी इस खभे की ओट मे खडे हो जाएं।

(दोनों खड़े हो जाते है)

लवंगिका : सखि यह कुमकुमा है और यह कुसुम-माला है।

मालती : सब कुछ है, किंतु मैं क्या करूं ?

लवगिका : तुम्हारी माता ने तुम्हे बड़ी रुचि से यहा भेजा है। इस मगल-मय समय पर इन्हे लीजिए और सगुन सायत से देवी का पूजन कर दीजिए।

मालती : अरी, मैं तो वैसे ही दई निर्दयी के मारे मरी जाती हूं, बार-बार यह कहकर मुझे और क्यो मारे डालती है। देखि सखी, न तुझे दया है न मोह-माया है।

लवगिका : बहिन, तुम तो नैक ही में रूठ जाती हो, कहना क्या है सो तो बता दो।

मालती : वही, जो एक आदमी—जिसकी आशा-लता पर तुषार पड गया हो, अपने आप मे न रह कुछ का कुछ बकने लगता है। सिवाय इसके और मै क्या कहूगी ?

मकरद : कहो मित्र कुछ सुना !

माधव : सुना, किंतु हृदय स्थिर नही है।

मालती : (लवगिका को गले लगाकर)

परमार्थ-भगिनि लवगिका नित प्रेम प्रन विसतारिनी।
विश्वासभाजन परम सहृदय जनम सो हितकारिनी॥

अब अन्त के या तन्त पै अंक लगि जो माँगती।
इक विनय, करियो ताहि पूरण प्रिय सखी ! अनुरागती ॥
गिनि, निज हृदय यहि मालती-मय पुण्य यह मम लीजियो।
माधव-सरस-मुख-कमल कौ बस दरस जिय भरि कीजियो ॥

माधव . मित्र मकरद,

सीचि सनेह के जीवन सो करै सूखत हीय-प्रसून सुखारी।
इन्द्रिनि को निज तृप्ति घनी अवनीतल पै वरसावत भारी ॥
आनद के सरसायन ज्यो जग त्यो हिय काज रसायन प्यारी।
भाग बेडनि सो एतिक बैन सुधा के समान सुने हितकारी ॥८॥

मालती : परलोक मे सुनि मोहि वह दुख पाइ सोच करै नही।
तन रतन सुवरन छीन करि संताप-अग्नि जरै नही ॥
प्रिय सखी, बस जतन ऐसौ साजियो नित प्रीति सो।
जो हृदय निज हारे नही मम प्राण प्रिय या रीति सो ॥
करियो वही जग-काज वाकौ जाहि सो विगरै नही।
कछु न कछु सुधि राखि मेरी निपट मोहि विसरै नही ॥
जो जो कहूँ सब कीजियो रहि जाइ कछु त्रुटि नहि अरी।
यो आतमा मेरी कृतारथ होइगी तेरी करी ॥

मकरंद : हा विचारी को कितना दुःख है !

माधव : मेरे सग विवाह की, जाको नैक न आस।
याही सो यह मृगनयनि, चित निज चकित उदास ॥
मोह, प्रेमबस यासु सुनि अप्रिय प्रिय बिरलाप।
हृदय करुण श्रृंगार रस, उमगत अपने आप ॥६॥

लवगिका : भगवान करे, सब विघ्न टल जांय, ऐसी बात मत कहो।

मालती : सखी तुम्हे मालती की जान प्यारी है, मालती नही।

लवगिका : न जाने क्या बक रही हो ?

मालती . हां-हां, मे जो कहती हू, वही तुम चाहती हो। **(अपनी ओर सकेत कर)** मुझ अभागिनी के प्राण को, जो अभी तक तुम्हारी कोरी चिकनी-चुपड़ी बातो के भरोसे पर टिका हुआ है, जब तुम्ही लोग इस घृणित जाल-जजाल मे फसाने पर उतारू हो, तब फिर आस-फास कैसी ? बस अब यही इच्छा है, यही मनोरथ है कि जिसे हृदयासन पर विराजमान कर इष्टदेव माना है—किसी और की कही जाने का अपराध करने से पहले ही—उसी के चरण कमलो का ध्यान कर, बस इस जीवन का

त्याग कर दूं। जिसकी वस्तु उसे ही अर्पण होना चाहिए, अन्य को नही। इसलिए प्रिय सखी, मेरे इस कार्य मे बैरिन मत हो, यही अतिम प्रार्थना है।

(चरणों मे गिरना चाहती है)

मकरद : बस प्रेम की हद हो गई।

(लवगिका संकेत से माधव को बुलाती है)

मित्र जाओ, लवगिका के स्थान पर जा खडे हो।

माधव : इस समय मैं अपने बस मे नही हू।

मकरद : यही तो मनोरथ पूर्ण होने का सच्चा सगुन ह।

(माधव लवगिका की जगह जा खड़ा होता है)

मालती : सखी, अब विलंब न कर मेरी विनय मान ले।

माधव : अरी सरल, मन तजन के साहस को तजि वीर।
विरस विरह-दुख देखि तव भरत न मो मन धीर ।।१०।।

मालती . सखि, मै तो पाव पडती हूं और तू ध्यान भी नही देती।

माधव : समुझि परत नहि मोहि, कहि का अब धीरज दऊँ।
विरह जरत लखि तोहि, यह दारुण साहस करत ।।
प्यारी मन अभिराम, जैसो तू चाहत अबै।
कीजै पूरण काम, लीजै हृदय लगाइ कें ।।११।।

मालती : (सहर्ष) वाह, कैसा अनुग्रह किया। (उठकर) ले देख मैं आलिगन तो करती हू किंतु आखो मे आसू डबडबाने से मुझे दर्शन नही होता, अत. निरुपाय हो रही हू। (हृदय से लगकर) सखी, कुछ-कुछ कठोर कमल-बीज-कोष सदृश तेरे रोमाचित शरीर का स्पर्श आज मुझे कुछ अनोखे ही ढग का आनद दे रहा है। विरह ज्वाल से जलती हुई मेरी देह को, अहा! इसने कैसा ठडा कर दिया है (आंसू गिराकर) और क्या कहू, बस अनत स्नेह के साथ दोनो हाथ जोडकर उनसे यही विनय करना कि मै बडी मदभागिनी हू जो विकसित-शतपत्र की शोभा को लजाने वाले आपके निर्मल मुख-चद्र मडल का दर्शन जी भर न कर सकी, इन आंखो को सफल करने का लालच मन मे ही रहा, कोरे मनोरथो से ही अपने घबडाते हुए अधीर चित्त को सभाले रही, सखी सहेलियो को भी दुख देकर जैसे-तैसे इस देह की जलन को सहा, चद्रमा के आतप, और चदन समान शीतल

समीरादि की अनर्थ परंपरा को भी किसी प्रकार सहारा, परंतु यह सब कुछ करती हुई भी मुझ दुखिया का मन चीता न हुआ, अब मैं निरास मरती हू। प्यारी सखी, मेरा कहा सुना क्षमा करना, और मुझे भूल न जाना, क्योकि—

उन की बनी कर-कमल की अति सुखद स्वच्छ सुहावनी।
मन मुदित जो दई मोहि रुचि करि मंजु प्रिय मन भावनी॥
नित धारियो निज हृदय मे अन्तर कछू जानि जानियो।
यहि मौल-श्री की माल को, वस मालती ही मानियो॥

(अपने हाथ से माला पहनाना चाहती है किंतु माधव को पहचान कर पसीने-पसीने हो कांपती हुई एक संग पीछे हट जाती है।)

माधव : (आप ही आप)

मंजु उरोज सरोज कली सो लगी उर ज्यो भुज मे भुज लाइ।
एकहि संग, अनेक प्रकारनि प्रेम के रंग उमंग रचाइ॥
सीची मनौ मम अग-त्वचा, हिम आदि सो शीतल औ सुखदाइ।
चन्द्रक, चन्दन, चन्दरकान्त-पसेव सिवाल मृनाल मिलाइ॥१२॥

मालती : अरे लवंगिका ने मुझे बड़ा धोखा दिया—

माधव : अपनी बिथा-कथा तू भामिनी भली भाँति कहि जानै।
पीर गँभीर और काऊ की नैक न चित पहचानै॥
यासो यह उराहनो दे कें यों ही व्यर्थ लजावै।
प्रेम-जाल निज फाँसि मीन-मन अजहूँ साँच न आवै॥

अरी देख,

नित साँस ते हीय को माँस छिल्यौ, विरहानल-ताप सह्यो अनिवार।
बस तो-मिलिवे के मनोरथ मे, सब कष्ट को मान्यो प्रमोद अपार॥
"तव-नेह लता कबहूँ फलि है" यह आस रही मम प्राण-अधार।
नहि कैसे, भला कहो, जाते सहे दुख दारुन के इतने दिन भार॥१३॥

लवंगिका : सखी, सच तो कहते है, हो भी तुम इसी योग्य।

कलहंस : वाह, यह सयोग भी कैसा अच्छा है!

मकरंद : बडभागिनी मालती, जो हुआ सो ठीक ही हुआ—

तू सनेह-रस ऐनि, यह उर दृढ विश्वास करि।
ज्यो त्यो ये दिन रैनि, याने वितये विरह मे॥
प्रनय-प्रसाद-स्वरूप ककन भूषित पाणि निज।
दीजै याहि अनूप-कीजै मन-बाछा सफल॥१४॥

लवंगिका : महोदय, जो अपने हृदय मे ही स्वयवर करने का साहस ठान चुकी है वह अब ककन-फंकन का क्या विचार करैगी।

मालती : हा धिक्कार ! कुल कन्याओ के अयोग्य, मर्यादा विरुद्ध, किस कार्य के करने को यह कह रही है ?

(कामदकी आती है)

कामंदकी : पुत्री **(पुचकार कर)** कातर न हो, घबडा मत।

(मालती कांपती हुई कामदकी से लिपट जाती है।)

(मालती की ठोड़ी छूकर) मेरी रानी चुप हो। अरी देख, मत रो।

नहि कछु आज की यह बात
प्रथम मिले तव दृग सो दृग पुनि मन सो मन पुलकात।
विरह दूवरो भयो यासु-तन नेक दरद नहि खावै॥
है यह कुँवर वही, फिर क्यो नहि, सुमुखी सक भजावै।
जासो विधि की फलै चतुराई सब विधि सुखद प्रमानी।
होइ सकाम कामहू विलसै आपुहि धन्य अतिमानी॥१५॥

लवंगिका : माता, यहां एक बडे साहसी खडे है, जिन्होने कृष्ण चतुर्दसी की घनघोर काली रात्रि के समय भयानक श्मशान मे घूम-घूमकर महामांस बेचा और एक बडे पाखडी को अपने बाहुबल से नष्ट किया। इसी घटना को सोचकर यह कापने लगी है और कोई दूसरी बात न जानिये।

मकरंद : वाह ! लवंगिका वाह ! अच्छे अवसर पर स्नेह और उपकार का स्मरण कराया।

मालती : हाय तात ! हाय तात !

कामंदकी : वत्स माधव !

माधव : कहिये, क्या आज्ञा है ?

कामदकी : पुत्र, समस्त माडलिक राजगण जिसकी चरण-धूलि को मस्तक पर चढाकर अपने को धन्य मानते है उस प्रधान महामत्री

भूरिवसु की यह इकलौती पुत्री रत्न मालती उचित तथा अनुरूप जोडी मिलाने वाले भगवान मन्मथ की सहायता से तुम्हे सौपती हू ।

मकरद : आपके चरणो के प्रताप से हमारे सब मनोरथ पूरे हुए ।

माधव : माता, आपकी आखो मे आसू क्यो डबडवा रहे है ?

कामदकी (आंचल से आंसू पोंछकर) वत्स, तुम्हारे कल्याण के लिए तुमसे कुछ कहना है ।

माधव कहिये माता, वह क्या है ?

कामदकी : भली विधि विलसी दोउ सुखारी ।
निज कुल सील समान फलै तव नेह-लता नव प्यारी ।।
दोउ जने मोहि मानत रहियो, जैसी सदा चलि आई ।।
नीरस ह्वै, मति मेरे हु पीछे, करियो कबहुं लराई ।।
गुन-सदनी यह वर विधु-वदनी, कैसेउ दुख नहि पावै ।
अरु तुम काऊ कौ लखि कें, दुख शोक न मोहि सतावै ।।१६।।

(पांव पड़ने को नवना चाहती है ।)

माधव : हैं ! है ! यह आप क्या कर रही हैं और उलटा पाप चढाती हैं, हम तो आपके बाल-बच्चे हैं ।

मकरंद भगवती,

वंस प्रससित जाकौ लसै, नित दर्सन सो करै नैन सुखारी ।
नेह-निकाई सो चारु भरी, प्रिय उज्ज्वल यासु गुनावलि भारी ।
एकहु हो गुन सो ही वसीकर ये तो भला गुन-रासि पियारी ।
जाहू के ऊपर आपकी ये······
वस और कहा कहौ यासो अगारी ।।१७।।

कामदकी : पुत्र माधव !

माधव : जो आज्ञा—

कामंदकी : पुत्री !

मालती : माता, आज्ञा दीजिए—

कामंदकी : प्रियतम औ सहृदय सुहृद, सकल बंधुता-भाउ
काम अशेष विशेष धन, अथवा जीवन-चाउ
तिय कौ पति, पति की तिया, कहौ एक ही बात
तुम दोउनि को परस्पर, हौन चहिय यह ज्ञात ।।१८।।

लवगिका : माता, आपका कथन बहुत ठीक है ।

मकरद : सब कार्य आपके आज्ञानुसार होगा ।

कामदकी : पुत्र मकरंद, अब विलंब का अवसर नही, आभूषणो की इस पिटारी को ले, सज-सजाकर ऐन-मैन मालती बनकर अभी आ जाओ और मेरे सग चलकर पूर्व सकेतानुसार नदन से अपना विवाह करा लो। **(पिटारी देती है)**

मकरद : जो आज्ञा, अच्छा तो परदे की ओट मे वस्त्राभूषण पहन आऊँ। **(जाता है)**

माधव : माता, आपकी आज्ञा पर मैं आक्षेप तो नही करता, पर आप जो रचना कर रही हो उससे कही मकरद सकट मे न फस जाए।

कामदकी · मेरे होते हुए इसकी चिंता करने वाले तुम कौन हो ?

माधव : तो आप जाने।

(हसता हुआ मकरद मालती के रूप मे आता है)

मकरद : लो भाई, मैं कैसा मालती बन गया ! **(सब देखते है)**

माधव : **(हसता हुआ मकरद से मिलकर)** नदन के बड़े भाग हैं जिसे ऐसी पत्नी मिली।

कामदकी : **(मालती-माधव से)** इस मठ के पिछवाड़े एक बगीचा है। गुप्त द्वार से निकलकर इस झाडी मे होते हुए तुम दोनो चले जाओ। अवलोकिता ब्याह का सब सरजाम किये बैठी है। वही तुम्हारे ब्याह की रीति-भांति की जाएगी।

उत्कंठित-कर्नाटक-प्रौढ़ा-तीय-कपोल।
तिन सम पियरे पान की लता-कुज अनमोल ॥
झुके, फलनि सो झालरें, हरे सुपारी वृच्छ।
चुगि चुगि खग कंकोल-फल चहकत स्वर सो स्वच्छ ॥
औ नीबू-तरु झूमि तहँ प्रगटत छटा ललाम।
पावोगे आराम तहँ, दोऊ मन-अभिराम ॥१९॥

और जब तक मदयतिका मकरंद न आ जाय वही ठहरे रहना।

माधव : जब मगल होते हैं तो एक सग ही होते है।

कलहंस : वाह जी, तो एक दूसरा विवाह और भी होगा ?

कामदकी : क्या इसमे भी संदेह है ?

लवगिका . प्रिय सखी, तुमने भी कुछ सुना ?

कामदकी : **(मकरंद और लवंगिका से)** अब हम सबको शीघ्र चल देना चाहिए।

मालती : सखी, तू भी जाएगी, मुझे अकेली छोडकर मत जा।

लवगिका : (हंसकर) माधव हैं तो सही, अकेली काहे से हो, हम सब जाते हैं ।

(कामदकी, मकरद और लवगिका जाते हैं)

माधव : आहा, इस समय (मालती का हाथ अपने हाथ में लेकर)

मृदु ओर तें छोर लो जासु रोमांचित कोमलवाहु-मृनाल सुहायो ।
नव आगुरी सुदर सोई लसै दल, सीकर मंजु वसीकर छायो ॥
अस तो कर लै अपने कर मे विरहागि सो तापित मैं सुख पायो ।
रक्तोत्पल लै जिमि क्रीड़ा करै सर मे गज ग्रीसम-ताप-सतायो ॥२०॥

(मालती-माधव जाते हैं)

इति मालत्योपहारो नाम षण्ठाङ्कः ।

अंक ७

[स्थान—नदन का महल]

अथ प्रवेशक

(बुद्धरक्षिता आती है)

बुद्धरक्षिता : (आप ही आप) खूब, एक तो मकरंद का गोरा-गोरा चेहरा, दूसरे रेखे आई नही । बस फिर क्या था मालती के वस्त्राभूषण पहनकर वह तो बिलकुल मालती ही जंच गया और मत्री भूरिवसु के महल मे नंदन के साथ उसका ब्याह भी हो गया। श्री कामदकी के आदेशानुसार चलने से उसकी यह चाल कोई भी न परख सका। अब हम लोग तो नंदन के घर आ गए हैं और श्री कामंदकी नंदन को आनंद बधाई दे यहां से चली गई है।

हमने जैसा सोचा था कि नई दुलहिन के गृह-प्रवेश की धूम-धाम तथा कौमुदी-महोत्सव के कारण जब घर के दास-दासी अपने-अपने कार्य मे व्यस्त होगे, तब वह रात का समय ही हमारी चाल चलने के लिए उपयुक्त होगा। सो वही बात हुई। जब कामोन्मत्त मूर्खानद नदन नई दुलहिन से मिलने के चाउ मे उत्कठित होकर उसके पास गया और निज प्रेम-पूरित बातो द्वारा उसे प्रसन्न करने का यत्न करने लगा। सब कौशल कर छोड़े, पैरो तक पडा पर काम न चला। यह देखकर उसने अभीष्ट सिद्ध करने के लिए वरजोरी करने की ठानी। दुलहिन ने पहले तो दो-एक बार झिझकार दिया तो भी वह न माना, फिर तो बहू रानी ने उसके एक ऐसी लात जमाई कि दुलहा की आंखो मे आंसू निकल पड़े। बस फिर क्रोध का क्या ठिकाना? रो-रोकर कहने लगे···मैं तो यह पूरी तरह जानता था कि

तू बालपने से ही दुष्टा है, कुलटापन तेरी नस-नस मे भरा है और यह अमिट सिद्धात है कि कुलटा स्त्री पति को नही चाहती। मै इस कटकमय मार्ग मे कदापि पैर न रखता, परतु महाराज के अनुरोध से मुझे जान-बूझ इस काठ मे पाउ देना पडा। खैर, कुछ चिंता की बात नही है, पर इसी क्षण मे यदि मैं तुझे अपनी स्त्री कहूं या तेरे शरीर का स्पर्श करूं तो मुझे सात सौगद है। भला ऐसी खट के साथ कौन अपना संबध रखना चाहेगा।...यह कह झिझकते-झीकते हाथ-पाव पटकते खिसियाते नदन जी रगमहल से बाहर चले गए। अवसर अच्छा है। तो चलू, मदयतिका और मकरंद की भेंट करा दू।

(बाहर जाती है)

इति प्रवेशक

[स्थान—रगमहल]

(पलग पर मालती के भेष मे मकरंद लेट रहा है और पास लवगिका बैठी है)

मकरद : क्योकि श्रीकामदकी ने इस कार्य के अतिम फल की बागडोर बुद्धरक्षिता के हाथ सौपी है, इसलिए उनकी इस चाल के चूक जाने का तो सदेह नही है ?

लवगिका : भला, यह आपके कहने की बात है ? क्या इससे बढकर और प्रमाण चाहिए ? इस पायल की झनकार को सुन अनुमान होता है कि जैसा हम लोगो ने सोचा था उसी प्रकार बुद्धरक्षिता मदयतिका को साथ लिए आ रही है (सुनकर) हां ठीक ? यह उसी के पायलो की-सी आवाज है। अच्छा तो आप ऐसे न लेटिए, इस चादर को मुह पर डालकर चुपचाप पड़ रहिए, जिससे दूसरा कोई जानै कि आप सो रहे हैं। (मकरंद चादर ओढ़ लेता है)

(बुद्धरक्षिता और मदयतिका आती हैं)

मदयतिका : क्या सचमुच भैया मालती से रिस हो गए हैं ?

बुद्धरक्षिता : क्या मैं तुमसे झूठ कहती हू ?

मदयतिका : जो ऐसा हुआ तो बहुत ही बुरा हुआ। मालती बडी हठीली है ! चलो, चल के उससे कहे कि यह उसने क्या किया ?

बुद्धरक्षिता : यही तो है उनका रगमहल, चलो।

मदयतिका : लवंगिका, मालूम होता है तुम्हारी सखी सो रही हैं।

लवंगिका : आइए, परंतु धीरे-धीरे बोलिए, कहीं यह जग न जाएं। क्या करे बिचारी बड़ी देर से उदास बैठी थी, अभी हाल आंख लगी है, आइए इधर पलग पर अचक बैठ जाइए।

मदयंतिका : इनका बड़ा टेढा स्वभाव है, न जाने यह इतना रोष क्यों किया करती है! अब हठ कर-कराकर यह उदास क्यों हो गई है?

लवंगिका . भला, ऐसे सुकुमार नई बहू को रिझाने-मनाने वाले मधुर भाषी स्नेही, सरल, तथा बड़े सीधे और सौम्य आप के भाई जैसे चतुर दुलहा पाकर भी हमारी सखी अब, न उदास होगी तो फिर कब होगी!

मदयंतिका : (बुद्धरक्षिता से) देख सखी, उलटा चोर कोतवाल को डांडे! हमने न कुछ कहा न सुना और हम ही को डाट बतला रही है। वाह, वाह!

बुद्धरक्षिता . उलटा लगता ही है पर उलटा कुछ नहीं है।

मदयंतिका : सो कैसे?

बुद्धरक्षिता : लवंगिका ने कुछ झूठ भी नहीं कहा है। मालती के सिर तो यही दोष है कि वह उनका आदर न कर सकी, सो वह तो बात यह है कि जब पति स्त्री के पाव पड़े और वह लज्जावश यदि उसका आदर न कर सके तो उसके लिए वह अपराधिनी नहीं हो सकती। सखी, विचारने की बात है कि नई नवेली बहू का बिना मन लिये उसकी इच्छा के विपरीत कोई साहस करना और उससे भयभीत हो यदि बहू कुछ प्रमाद करे तो क्रुद्ध हो उसे गाली देना तुम्हारे भाई को कहां तक उचित था। इसी से तुम्हे यह बात सुननी पड़ी। और लीजिए, कामसूत्रकारों का भी यही मत है कि ऐसे प्रसंग पर यदि स्त्री से कोई प्रमाद तो एक तरफ रखिए—अपराध भी बन जाए तो भी पति उसे तदर्थ दोष न दे, क्योंकि स्त्रियां फूल-सी सुकुमार होती है। इन्हे फूल ही जानना चाहिए। धीरे-धीरे जब परतीत हो जाए, तब कहीं इनसे बोलना उचित है, अन्यथा छेड़ने से सदा के लिए इनका मन फट जाता है।

लवंगिका : (आंसू भरकर) बहिन, घर-घर पुरुष हैं, और वे बड़े-बड़े कुल की लड़कियों के साथ ब्याह भी करते है पर यह कहीं नहीं देखा कि लजवती सुकुमारी जिसने किसी का कुछ बिगाड़ा नहीं, उसका जी यह कहकर जलाया जाए कि हम तुझे मार बैठेंगे!

वस यही रस मे विष मिलाना है, इससे वढकर नई बहू की दुर्गति और क्या होगी। पति के मुख से ऐसे शब्द निकलना कोई सामान्य बात नही है। ऐसी ही बातें बाण के समान, जन्म-भर के लिए उसके मन में चुभ जाती हैं जिनकी चोट मरने तक उसके हृदय मे कसकती रहती है, और इसी कारण पतिगृह में रहने से वह उदास तथा विरक्त हो जाती है। बस इसी हेतु लडकी का होना निंदित समझा जाता है।

मदयंतिका : सखी बुद्धरक्षिता, जान पड़ता है कि मैया ने कोई न कोई बडा मर्मभेदी वाक्य कह डाला है जिससे इनका जी अत्यंत दुख गया है, तुमने भी कुछ सुना ?

बुद्धरक्षिता : बस मैंने तो उन्हे इतना ही कहते सुना है "तू बाल व्यभिचारिणी है, अब तुझसे मेरा कोई संबध नही।" यह शपथपूर्वक प्रतिज्ञा कर वह रगमहल मे चले गए हैं।

मदयंतिका : (कानो पर हाथ रखकर) बस-बस अधिक न कहो, यह तो बेल बहुत बढ गई, हाय ? इतना प्रमाद !! लवंगिका, तू सच-सच जान, इन बातो से मैं तेरे सामने मुह दिखाने लायक भी न रही, पर कहो तो कुछ मैं भी कहू, क्योकि मेरा भी तो अधिकार है।

लवंगिका : जो चाहो सो कहो, रानी ! तुम्हे रोक कौन सकता है ?

मदयंतिका : देखो बहिन, मेरा भाई कितना दुष्ट और दुःशील है, इस बात को एक किनारे रख दो, क्योकि वह कैसा ही क्यो न हो किंतु अब उसका तिरस्कार अथवा अपमान करने से कोई लाभ नही। तुम को भी यह जानना उचित है कि आखिर को वह वर है और उसके मन की होनी चाहिए। लाख बुरा होने पर भी इस मालती का मगल उसी की सेवा मे है। इसके सिवाय क्या तुम नही जानती हो कि भाई ने जो कडी बात कही, वह भी बेसिर-पैर की नही है।

लवगिका : अजी खुली-खुली बातें तो सुन रही है, भला फिर भी न जानेंगी ?

मदयंतिका : आज तो बडा गूगे का गुड खाया है। इस मालती और माधव के प्रेम का सारी दुनिया मे तो डका बज रहा है। सभी जगह यह किस्सा चल रहा है, किस-किस का मुह पकड़ें और तुम मानो कुछ जानती ही नही। सखी, यो काम न चलेगा। अब तो यह उपाय करना चाहिए कि जिससे मेरे भाई के हृदय से इस

मालती का संदेह बिल्कुल चला जाए, बस इसी में सब कुछ है, नही तो बहुत बुरा होगा। ऐसी ही स्वेच्छाचारिणी कुटिल कलहा स्त्रियो की निर्दयता से लोगो का हृदय छिदता रहता है, और उन्हे विवाह भार हो जाता है। बहिन हाथ जोड़ू कही यह न फूक देना कि मदयंतिका यो-यो कहती थी।

लवंगिका : तुम क्या बक रही हो, न जाने लोगो की बातो ने तुम्हे कैसा बहका दिया है, बस रहने दो रानी, मुझे तुम्हारे साथ सिर मारने का बूता नही।

मदयंतिका : सुनो तो, इसमे बुरा मानने की बात नही। गोल क्यो रहने दू, साफ-साफ न कहू भला छिपाने से क्या लाभ ? क्या हम यह नही जानती कि संसार भर में केवल माधव ही मालती का (दूसरा) प्राण है। कहो किसने नही देखा कि केतकी-कुसुम कोष की गर्भ-गत पंखुरी के समान सफेद पीली पड जाने से उसकी शोभा कुछ और ही बढ गई है। सारा शरीर सूखकर कांटा हो गया है। उसमे अभी तक जो प्राण की ज्योति टिम-टिमा रही है उसका श्रेय माधव के हाथ की गुथी स्नेहमयी मौलसिरी की माला को देना चाहिए। क्या दिन क्या रात उसे गले मे डाले ही रहती है, छिन भर भी दूर करना तो बड़ी दूर बात है।

माधव का भी मुखमंडल प्रभात के चंद्रमा के समान फीका-सा पड गया है। देखा नही, उनकी देह कैसी दुबली हो गई है। इसके सिवाय उस दिन कुसुमाकर उद्यान की कुज गली मे घुसते ही दोनो की चार आखें हुई, उन दोनो के नयनो के चारु चिकनोहे तारो ने कुतूहल से, उल्लास से विविध विलास से खिले—नील कमल की भांति इस विचित्रता के साथ परस्पर चाल दिखलाई थी, मानो सचमुच स्वयं भगवान काम-देव ने ही उन को यह हाव-भाव निपुणता के साथ व्यक्त करना सिखलाया है ! सरलता, चपलता, उज्ज्वलता और मधुरता का ऐसा अनुपम सयोग कदाचित ही कही देखा गया हो। क्या यह सब हाल तुम से छिपा है। क्या कहू क्या न कहूं। जैसे ही मेरे भाई के विवाह होने की भनक कान मे पडी उसी समय बढते हुए प्रबल संताप से इनकी मृदुल देहलता झुलस कर मुर्झा गई थी, इनका हृदय उखाड़े हुए कमल की भाति कुम्हिला गया था। एक क्या, ऐसी-ऐसी अनेक बाते है।

लवगिका : कौन-सी हैं उन्हे भी कह डालो।

मदयंतिका जिन उदार हृदय महानुभाव ने मुझे जीवन प्रदान किया था वह बेसुध हो गए। कुछ देर पीछे उनकी मूर्छा चली जाने और चेत लौट आने का शुभ समाचार जैसे ही मुझे इस मालती ने अपने आप सुनाया उसी समय माता कामदकी के सुचारु सकेत द्वारा चेताने पर माधव ने इन्हे अपना तन-मन-धन सब अरपन कर दिया। क्यो लवंगिका ! तुम्ही ने तो तब कहा था कि हमारी सखी आपका प्रसाद सिर आखो पर लेती है।

लवगिका : जो तुमने अभी 'महानुभाव' कहा सो वह कौन है मुझे उनका तनिक भी ध्यान नही है।

मदयतिका : मन लगाकर सोचो—उस दिन जब मैं उस कराल कालरूप शार्दूल के पजे मे फस गई थी और मुझ अनाथिनी को बचाने वाला भी कोई न था, उसी कठिन अवसर पर वह विशाल बाहु आ पहुचे, निष्कारण मुझ पर प्रेम प्रदर्शित कर, ससार के आधार अपने दुष्प्राप्य एव मनोहर शरीर को जोखिम मे डाल दिया, और मेरी जान बचाई। भरी-उभरी हुई विशाल छाती पर बिखरे गुडहर के फूलो के सदृश बाघ का कठोर दंष्ट्राघात विकटाकार एव पैने नखाग्रो का प्रहार सहते हुए अदम्य साहस के साथ उस पापी सिंह को ढेर कर दिया।

उस उद्दंड अतुलित बलशाली की ऐसी महिमा का भी जो तुम्हे ध्यान नही आता, इससे बढकर भला अचभे की बात क्या होगी ?

लवगिका : हा-हा, क्या वह मकरंद ?

मदयतिका : फिर से तो कहो सखी, तुमने क्या कहा ?

लवगिका : कहा क्या, मकरंद कहा **(मुसकराती हुई मदयतिका के शरीर पर हाथ फेरकर)**

यह मान लैहि हम मालति-माधव दोऊ।
तुम कह्यो यथा, अनुरक्त परसपर तोऊ॥
तुम सी कुलकन्या शुद्ध हृदय की भोरी।
सब भाँति उचित अज्ञात-यौवना कोरी॥
क्यो नाम सुनत भई विकल पुलकि तन सारी॥
खिलि- जाय कदम ज्यो सुनत मेघ ध्वनि प्यारी॥१॥

मदयतिका : (लज्जित होकर) सखी, इसमे हंसी करने की कौन बात है ? जिन्होने निष्कारण मेरे साथ ऐसी भलाई की कि कराल काल

रूपसिंह का ग्रास होने से मुझे बचाया, उन परमोपकारी के अतुल साहस का ध्यान आते ही और उसका नाम सुनते ही, न जाने क्यो, मेरी अंतरात्मा तल्लीन हो जाती है। अब तुम्हे उनका विशेष परिचय देना व्यर्थ है, क्योकि उनकी तत्कालीन भयावह एवं लोमहर्षण अवस्था तुम स्वय देख चुकी हो। जब वह प्रचंड व्याघ्र के नखाघातो की असह्य वेदना से मूर्छित हो गए थे और उनके सारे शरीर से रक्तयुक्त स्वेद छूट रहा था, अचेत होने से उनके दोनो नेत्र-कमल मुद गए थे और दशा मे भी जो पृथ्वी के सहारे खडी हुई तलवार का अवलंब लेकर खडे हुए थे, अब भला तुम्ही निष्पक्ष होकर बताओ कि आर्य-कुल-ललनाओ का क्या यही धर्म है कि जिन्होने उनकी प्राण-पण से रक्षा की हो उसे भुला दे।

(पसीने-पसीने होकर सात्विक भाव दरसाती है)

बुद्धरक्षिता : इस समय तुम्हारी अवस्था को देखकर यही बोध होता है कि मानो तुमने उस अतुल पराक्रमी के ऋण से मुक्त होने का पूरा निश्चय कर लिया है।

मदयंतिका : (लजाकर) चलो, दूर हो, व्यर्थ कही का सिर कही का पैर न जोडो। मैं और मालती कुछ दो हैं, जैसी तुम उनकी सहेली वैसी मेरी भी, बस यही समझकर एक तो तुमसे अपने जी की बात कही तिस पर न जाने तुम क्या की क्या ले उड़ी।

लवगिका : देखो, हम भी उडती चिडिया पहचानती है, अब बाते बनाना तो दो छोड, और साफ-साफ जी का हाल कह डालो, जैसा कि हम लोगो के बीच मे होना चाहिए। परस्पर छिपाव करना व्यर्थ और निष्फल है, भला उससे कही लाभ निकला है?

बुद्धरक्षिता : लवंगिका ने बात तो मार्के की कही है।

मदयतिका : सखी, तुम अकारण मुझे कोस रही हो।

लवगिका : हा-हा, खैर कुछ भी सही किंतु यह तो बतलाओ कि आजकल दिन कैसे कटते है?

मदयतिका : सुनो, क्या कहू सखी, बुद्धरक्षिता से उन मकरद की प्रशसा सुन-सुनकर तथा उसके कहने को सच मान, बहुत दिनो से मन मे लग रही थी कि किसी प्रकार उनके दर्शन हो। सो भगवान की कृपा से वह भी साध पूरी हुई, किंतु साथ ही साथ घबराहट भी इतनी बढी है कि दम घुटा जाता है। लगन की आग सारी देह जलाए डालती है और दारुण दुर्वार अपार मन्मथ वेदना

से मेरा जीना कठिन-सा हो गया है। यहा तक कि सखी-सहेली भी अंग-अग मे अनंग के अथाह दाह को प्रतिक्षण बढता ही देख मेरे मरने की आशंका से कभी-कभी कातर एवं उदास हो जाती है—उनकी अधीरता बढ जाती है। किंतु उसके प्रतिकूल यह बुद्धरक्षिता जो वार-बार मुझे आशा बधाती रहती है उसी से अब तक जी रही हूं। दिन-रात उनके मिलने का मनोरथ करते-करते जो कही नीद आ गई तो स्वप्न मे भी उन्हे ही देखती हू। देख सखी, वह अत्यंत विस्मय-संशय के साथ कुछ मद-मतवाले से ललित कमल नयनो को कभी चचल, कभी विकसित कर, एक-एक मुहूर्त्त भर मुझे एकटक देखते रहते है। कमल-केसर खाए हुए, कषाय-वरण कठ वाले मनहरण राजहसो के से मृदु-ललाम, गभीर धीर, अस्फुट (**सुधा सदृश**) ध्वनि से इन कर्ण कुहरो को प्रतिध्वनित करते हुए 'प्यारी मदयतिका' कह-कहकर मुझे बुलाते है। और (**न जाने से**) वह मेरे प्रकंपित पयोधरो पर उडता हुआ चादर का अचल कही झट न खीच उठे, इस भय से मुझ जैसी धडकते हुए जी वाली को और भी भयभीत करते है। और जल्दी मे विकल-सी, जैसे ही मैं चादर फेंक-फांक, कठोर कमल-दंड सी पुलकित भुजाओ से ज्यो-त्यो अपने आपको दवाकर भागना चाहती हूं, वैसे ही बुरी तरह ढीली होकर करधनी के नीचे सरक जाने से मेरी दोनो जांघे वध-सी जाती है। इस प्रकार मैं आगे जाते-जाते पीछे रुक जाती हूं। सौ-सौ बार मने करने पर भी जब वह किसी बात का सादर आग्रह करते हैं, तब मैं उसके लिए उन्हे फटकारती हूं। और यो कोई क्षण-भर मेरा हृदय कोप और दुःख से कातर प्रतीत होता है, किंतु इस पर भी, न जाने कैसे, मेरी आखों से ही मन की पहचान कर वह मुझ पर हंसने लगते है और प्रबल भुजाओ मे दुहरी जकडकर, निर्दयतापूर्वक, बलवान सिंह के नखाघात से चित्र-विचित्र अपनी सुंदर छाती से लगा, मुझ अबला को बेबस कर देते है। इस झगडे मे जैसे ही झट कुछ कोप कर मैं मुख फेरती हू वैसे ही मेरी करी-कराई चोटी खुल जाती है। इस प्रकार विखरे बालो को जब वह अपने ही हाथो इकट्ठे कर संभालते हुए बांधते हैं तो मेरा मुह कुछ ऊपर की ओर उठा-सा निश्चल हो जाता है। वस, वे रोक-टोक उसे ही देख-देखकर उनका मुखारविंद सानद खिल

जाता है। नीचे की ओर मेरे बाम कपोल पर ज्यो ही वह प्रकप सकुचित अपना अधर लगाते है, त्यो ही यह सारा बदन कुछ पुलकित प्रसन्न-सा होकर पसीने-पसीने हो जाता है, और न जाने किस भ्रम मे पड ये मेरी आखें किंकर्त्तव्य-विमूढ-सी हो कुछ देर सुस्त पड जाती है। ऐसी अवस्था मे जो कुछ वह मुझसे चाहते है उससे उनकी दुर्विनयशीलता एव धृष्टता प्रकट होती है। यह सब कुछ तो किया और देखा करती हूं किंतु जब आंख खुल जाती है तो मुझ अभागिनी को यह सारा ससार सूना उजाड-सा असार लगता है।

लवगिका : सखी, यह रहने दो ! जो बात सच हो उसे ठीक तरह से बताओ तुम्हारी आखो से प्रिय-समागम का सुख टपकता है।

मदयतिका . हटो, तुम्हारी यह बिना बात की हसी मुझे नही भाती।

बुद्धरक्षिता : सखी मदयंतिका, सावन के अंधे को सब हरा ही हरा दिखाई पड़ता है, यह उस मालती ही की सखी है न, जभी इसे ऐसी बातें बनाना आता है।

मदयतिका : मालती की यो हंसी उडाना ठीक नही है।

बुद्धरक्षिता : सखि, सच-सच बताओ तो तुमसे एक बात पूछू ?

मदयंतिका : कभी मैंने तुमसे कोई बात छिपाई है जो ऐसा कहती हो, तुमको तो मै अपना हृदय समझती हूं।

बुद्धरक्षिता : यदि इस समय वह तुम्हारे प्राणवल्लभ, नही-नही जीवन-प्रदाता मकरंद तुम्हारे सामने फिर आ जाएं तो तुम क्या करो।

मदयतिका : तो एक बार आखे खोल के एकटक दृष्टि से उनके प्रत्यंग की अपार शोभा को निहार लू, बस इससे अधिक मैं कर ही क्या सकती हूं।

बुद्धरक्षिता : इतना तो करोगी ही, पर जैसे श्री कृष्ण ने रुक्मिणी को परणीत कर लिया उसी भाति कामोद्दीपन करने वाली तुम्हे देख, कामातुर हो वह (मकरद) तुम्हे भी दुलहिन बना लें तो तुम क्या करोगी ?

मदयंतिका : (सांस लेकर) अरी क्यो झूठ-मूठ कहकर जी समझाती हो।

बुद्धरक्षिता : भला कुछ कहो तो सही।

लवगिका : अजी, तुम बड़ी अजान हो, जो कुछ कहना था, उनकी दुख भरी लबी-लबी सासो ने सब कह दिया, फिर बार-बार तुम और क्या पूछती हो ?

मदयतिका . जब से उस वीर ने जी-जान लडाकर मुझे व्याघ्र के पंजे से

छुडाया तब से ही यह शरीर उनका हो चुका है। अब फिर इसे दुबारा उन्हे अर्पित करने का मुझे क्या अधिकार है ?

लवंगिका : आप जैसी कुलवती को ऐसा ही करना चाहिए।

बुद्धरक्षिता : इस समय जो तुमने कहा है, देखना उसे भूल न जाना।

(बाहर नौबत बजती है)

मदयंतिका : अरे क्या, आधी रात हो गई, तो मैं अब जाती हूं और समझा-बुझाकर मालती के पाव पड उन्हें राजी करने के लिए भैया को उद्यत करती हूं। (उठना चाहती है)

(मकरद मुख खोलकर उसका हाथ पकड़ता है)

मदयंतिका : क्या मालती जग उठी। (देखकर हर्ष और घबराहट से) अरे यह तो कोई और है !!

मकरंद : गिनि मोहि नयो मन मे मन भामिनि कीजिये नाहिं कछु भय मेरो।
पतरी कटि सों न सहारि सकै यह कम्प उरोजनि माहिं घनेरो।
जिह-बात चलाइ रही, वह चाहत प्रेम-प्रसाद मिलै कब तेरो।
सब भाँति प्रिया रुचि राखनहार सदा मोहि मानिये आपनो चेरो॥

बुद्धरक्षिता : (मदयंतिका की ठोड़ी से हाथ लगाकर)

नित चाह्यो हजारनि चाह सो जो यह ठाड़ो वही मकरन्द कुमार।
यह रैन अँधेरी झुकी, घर के सब सोइ गये अब तो रखवार।
बस ह्वै कें कृतज्ञ सबै विधि याकी करौ मनमानी न सोच विचार।
कढि वेगि चलौ कर नूपर खोलि न हो, यहि सो इनकी झनकार॥३॥

मदयंतिका : कहा चलना होगा ?

बुद्धरक्षिता : जहां मालती गई है।

मदयंतिका : क्या मालती जो करना था सो कर चुकी।

बुद्धरक्षिता : कभी की, और तुम भूल गई जो अभी कहती थी कि अपना शरीर अर्पित करने वाली मैं कौन होती हूं। इससे यही सिद्ध होता है कि तुम अपना शरीर पहले ही अर्पित कर चुकी हो। तो अब तुम्हारे मुख से उन शब्दो के सुनने की कोई आवश्यकता नही (मकरद की ओर फिरकर) महाभाग, मेरी प्रिय सखी मदयंतिका आपको अपना शरीर अर्पित कर चुकी, ऐसा आप समझें।

मकरद : अब मनोरथपूर्ण विजै मिली।
सफल जीवन-जग-उमंग है।

करत जो कछु बन्धु संयोग में ।
विधि मिलाइ मनोज कियो गुही ।।४।।

तो चलो इस खिड़की से चटपट निकल चलें ।

(चलते हैं)

मकरंद : वाह, आधी रात को राजपथ पर चलना भी कैसा अच्छा लगता है । इस समय की मनोहरता नयनों को परमानंद दे रही है — क्या कहना है ?

सुख प्रद उच्च अटानि-झरोखे झाँकि झिझकि फिरि आवैं ।
संग उमंग भरी मदिरा की गंध-सुगन्ध उड़ावैं ।
सरस सघन घनसार हार सों अनुपम ताहि बढ़ावैं ।
तरुणी-तरुण-बिहार जतावत धीर समीर सुहावैं ।।५।।

(जाते हैं)

इति नन्दन-विप्रलम्भोनाम सप्तमोऽङ्कः

अंक ८

[स्थान—मार्ग]

अथ प्रवेशक

(अवलोकिता आती हैं)

अवलोकिता : श्री कामंदकी तो नदन के घर से लौट गईं। अब मैं मालती और माधव के पास चलूं (कुछ चलकर) लो, ये तो दोनो ग्रीष्म के सताए सध्या के समय स्नान कर बावड़ी के ऊपर शिलातल को सुशोभित कर रहे है, वही मुझे भी चलना चाहिए।

इति प्रवेशक

[स्थान—उद्यान]

(मालती-माधव बैठे हैं)

माधव . मन्मथ के वेग को सुदृढ़ करने वाली इस आधी रात पर भी कैसी जवानी चढी है, अहा !

पके सूखे ताली-परन पीरे बरन की।
जुन्हैया चन्दा की तम हरनि ऐसी चहुँ लसै।
मनो प्यारी ये केतकि कुसुम की रेनु उड़ि कें।
घनी भीनी-भीनी पवन लगि फैले गगन मे ।।१।।

(आप ही आप) यह तो बोलती तक नही, भला इनसे कैसे बस चलै। अच्छा तो अब यो कहूं (प्रगट) प्राणप्यारी मालती, स्नान करके तुम कुछ शीतल हुई हो किंतु मेरे हृदय का संताप वैसे का वैसा ही बना हुआ है—उसी को शांत करने के लिए तुमसे प्रार्थना करता हू। तुम और कुछ विचार मत करो,

देखो—

इन बारनु की तब बैनी घनी जब लौं जल बुन्दनि को टपकावैं।
अरु दोउ उरोज के बीच को ठौर प्रिया जब लो नहि सूखन पावैं।
अति कोमल अंग अनूपम ये जब लो उमँगी पुलकें दरसावैं।
तब लो निरसंक सनेह भरी मम अक लगो तन ताप नसावैं ॥२॥

बेदरदिन मालती, और हुआ सो तो हुआ मुह से तो बोलो—

बहु दृश्य विचित्र विलोकन सो भयभीत कछू कल-कम्पनु पाई।
श्रम सीकर मजु बसीकर के कनिकानु सो जासु बढी रुचिराई।
जनु इन्दु-मयूख विचुम्बित सीतल चन्द्रमनीनु को हार सुहाई।
निज ब्राहु वही मम कण्ठ मे डारि करो मनभाई प्रिया
सुखदाई ॥३॥

अच्छा यह भी न सही, अब मैं बात करने से भी गया, क्या इस कृपा के लिए भी मैं तुमको अयोग्य जचता हू, हा !

इतने दिन तन चन्द्र किरण अरु सीर समीर तचायौ।
तऊ न सुन्दरि तनिक दया करि याको अंक लगायौ।
मदमाती या कोकिल की बस कूक सुनी नहिं जावैं।
श्रवण-सुधा निज बैन क्यों न अब किन्नर-कण्ठि पियावैं ॥४॥

अवलोकिता : (आकर) बडी वेसमझ हो, जिन माधव का क्षणिक वियोग तुम्हे अत्यंत अखरता था और उसके विछोह से कातर एवं विकल हो, कुछ देर पहले मुझसे बार-बार घबराती हुई कहती थी कि आज आर्यपुत्र ने बडा विलब लगाया, अब उनके कब दर्शन होगे यह कौन जान सकता है, अब के आवें तो सब लाज-सकोच छोड गाढालिगन करने के लिए उनसे प्रार्थना करूंगी। सो अब उनकी ओर तनिक दृष्टिपात भी नही। यह सब देख मुझे तो बडा आश्चर्य होता है !

(मालती अवलोकिता को भौह चढ़ाकर देखती है)

माधव : (अपने आप) श्री कामदकी देवी की यह शिष्या बड़ी चतुर एव कार्य पटु जान पडती है क्योकि मन को चुटीला करने वाली वाणी का प्रयोग कर इसी ने इस हटीली को कुछ-कुछ सावधान किया है (**प्रकट**) प्यारी देखो यह अवलोकिता भी क्या ठीक-ठीक कह रही है।

(मालती सिर हिलाती है)

देखो, तुम्हे लवंगिका, अवलोकिता और मेरी सौगंध है जो मुंह से न बोलो। जो तुम्हारे जी मे हो उसे साफ-साफ कह डालो, इन तुम्हारे संकेतो को यहा कौन समझता है ?

मालती : मैं कुछ नही जानती···।

(इतना कहकर लजा जाती है)

माधव : इसकी अधूरी बात भी कैसी मधुर एव मनोहर है (**यकायक देखकर**) देखना, अवलोकिता यह क्या ?

यहि सुन्दर गोल कपोलनु पैं अँसुआनि की जो वह धार चली।
तिहि कारण या छिन ऐसी लसैं सुप्रवाह की रेख अनोखी रली।
अधरामृत तासु निकाई को पूरण पीवनु को करि युक्ति भली।
लहि औसर मानौ लगाई शशी तहँ मंजु मयूख मृनाल
नली ॥५॥

मालती : अरी, प्रिय सखी लवगिका के वियोग मे न जाने मुझे अभी कितने दिन और काटने हैं। हा, उसका हाल भी नही मिल सकता, किससे पूछू !

माधव : क्यो, क्या है अवलोकिता, मालूम हुआ कुछ ?

अवलोकिता : है क्या, आप ही ने इनको इतना दुख देने की कृपा की है—न आप इन्हे लवगिका की सौगंध खिलाते और न उसकी सुधि आते ही इनकी यह दशा होती।

माधव : मैं भी तो इस विषय मे निश्चित नही हूं। उधर कलहंस को मैंने अभी भेजा है कि वह नंदन के रंगमहल मे जाकर चुपके-चुपके सब हाल देख आवे (**कुछ सोचकर**) अवलोकिता, क्या तुम कह सकती हो कि बुद्धरक्षिता का प्रबल उद्योग निस्संदेह सफल होगा और मेरे मित्र मकरद को मदयतिका मिल जाएगी।

अवलोकिता : क्या इसमे भी आपको सदेह है। उसी दिन जब व्याघ्र के नखाघात से वह क्षत-विक्षत हो मूर्छित हो गए थे और थोडी देर पीछे जब वह सचेत हुए उसी समय आपको इन मालती ने जैसे वह शुभ संवाद सुनाया वैसे ही आपने भी, श्री कामंदकी देवी की आज्ञा से इन्हे अपना सब तन-मन धन अरपन कर दिया। उसी प्रकार यदि कोई मकरंद और मदयतिका के मिलने का प्रिय समाचार इसी समय सुनाकर आपको प्रसन्न करे तो आप उसे क्या पुरस्कार देंगे, सो बतलाइए ?

माधव : ठीक, मागा तो बहुत बढ़िया (**हृदय की माला पर दृष्टि**

डालकर) बस यही, जो इन मालती के प्रथम दर्शन की साक्षी-स्वरूप है और जिसमे काम-कानन के भूषण मौलसिरी के पुष्प लगे है।

वुही यह सरबस प्रेम-निसानी।
सखि के हाथ मँगाई रुचि सो मम गूंथी जिय जानी ।।
पीन पयोधर की जो, हियरा विहरि, छटा सरसाई।
लसी विलास-वैजयन्ती सी मजु परम मनभाई ।।
ब्याह-योग ज्यो जुरचो, तजी त्यो मेरी आस पियारी।
लवगिका के भरम मोहि जो सौपत गर मे डारी ।।६।।[1]

अवलोकिता : यह मौलसिरी-माला तुम्हारे मन बडी भाती है और तुम अभी सुन चुकी हो कि शुभ समाचार सुनाने वाले को यह पुरस्कार दी जाएगी। इसलिए तुमको अब सचेत हो जाना चाहिए और कुछ ऐसी युक्ति लड़ानी चाहिए कि यह किसी अन्य के हाथ न लगने पावें।

मालती : (मुसकरा कर) सखी तुमने मेरे मन की कही।

अवलोकिता : (नेपथ्य की ओर देखकर) किसी के पाव की पैंछर है।

माधव : (उसी ओर देखकर) अहा, कलहस आ पहुंचा।

मालती : मदयतिका के मिलने की बधाई है।

माधव : तुमने जो परम प्रिय सवाद मुझे सुनाया, इसलिए प्रतिज्ञानुसार तुम्हे यह पुरस्कार देता हू।

(अपने गले से माला उतारकर मालती को पहनाता है)

अवलोकिता : जान पडता है कि बुद्धरक्षिता ने श्री कामंदकी देवी के मन की बात पूरी कर दी।

मालती : (हर्ष से) ओहो, लवगिका भी दीख पडती है।

(सब उठ खड़े होते हैं)

(बुद्धरक्षिता, लवगिका, मदयंतिका, कलहंस हांफते तथा घबड़ाते आते है)

सब० : (आगे बढ़कर माधव से) महाराज, अपने मित्र की रक्षा करो। यहा से आधी-सी दूर पर चौकीदारो के साथ वह अकेले युद्ध

१ अति प्रेम सो मैंने गुही यहि सो मनभाई सखी के जो हाथ मँगाई।
कुच-कुभ-कली की, भली विधि जो हियरा पैं विराजि, छटा सरसाई।
जब व्याह को योग जुर्‌यो तब बेबस मो सग की सब आस विहाई।
सरबस-निसानी वही जो प्रिया, गिनि मोहि लवगिका, सौपी सुहाई ।।

कर रहे हैं, शीघ्र जाकर उनकी सहायता करो। जैसे कलहंस, वहा पहुचा, उन्होने उसी के साथ हमे यहां भेज दिया है।

कलहस : चौकीदार यदि थोडे होते तो चिंता करने की कोई बात न थी, किंतु हमारे कुछ इधर आगे बढ़ते ही उन लोगो का बडा कोलाहल सुन पडा, इससे अनुमान होता है कि उन लोगों की सहायता के लिए और भी लोग आ पहुचे हैं।

मालती-अव० . हा, सुख मे यह क्या दुख फट पडा ?

माधव : मदयतिका, आओ, आज तुमने हम सबको परम अनुगृहीत किया है। यहा अच्छी तरह विराजो, इस बात से कभी न घबड़ाना कि मकरद अकेले हैं। उनके सामने अनेक भी आवें, तो भी उनका बाल बाका नही कर सकते, इस कारण चिंता करने की कोई आवश्यकता नही है। पहले तो उनके लिए वही बहुत हैं, इस पर भी यदि संतोप न हो, तो (हाथ उठाकर)

दान सीकर की धार अनन चुवाय रही।
प्रगट मदोतकट जोम को अभर है।
ऐसे यूथप के सिर कोपि थाप मारे जब—
खररात जासु नख अस्थि-कुभ पर है।
अनुचित तोउ जाको विक्रम दिखायवे की—
चाट सी लगी ही रहे नेक नाहि डर है।
साहस मे साथी वर-हाथी मद ढाइवे को—
सिंह को सो होत एक वैसो वीर-कर है ॥७॥

उनकी सहायता के लिए मेरे जाने मे कुछ देर नही है, आप सब लोग धीरज रखें।

(माधव कलहंस के साथ जाता है)

अ०-ल०-बु० : मा जगदविका, इन दोनो को सकुशल लौटाना।

मालती : सखी बुद्धरक्षिता, अवलोकिता, शीघ्रता से जाओ और यह समाचार भी कामंदकी देवी से निवेदन करो। और बहिन लवगिका, आर्यपुत्र से मेरी हाथ जोड विनती करना कि जो वह मुझ पर दया करते है तो बहुत समझ-बूझकर युद्ध करें।

(अवलोकिता, बुद्धरक्षिता, लवंगिका जाती हैं)

मालती : बहिन मदयतिका, अब यह समय कैसे काटना चाहिए—चित्त ऐसा चिंतित हो रहा है कि किसी ओर लगता ही नही। लवगिका जो खबर लेने वहा गई है, उसी की बाट देख रही

हूं। अच्छा तो तुम यही बैठना, मैं उसे बाहर जाकर देखूं (आगे बढ़कर और कुछ घबड़ाकर) अरे ! मेरी दाहिनी आंख क्यों फड़क रही है—(बैठती है)

[स्थान—उद्यान]

(कपालकुडला आती है)

कपालकुडला : खडी रह, पापिन खड़ी रह ।

मालती : (भयभीत होकर) हा आ···र्य···पु···त्र ।

(इतना कहकर रुक जाती है)

कपालकुडला : (दांत पीसती हुई क्रोध से हसकर) हा पुकार, खूब पुकार—

अब बता कहाँ वह तेरो यार, वा तपसी गुरु को हनन हार।
ले जात सदा कन्यनि नसाय, जो तोहि बचावै यहाँ आय।
क्यो फरकि अर्धमिनि रही आज, ज्यो नवल चिरैया गही बाज।
इन हाथ परी का लखति मोहि, चलि खूब चखाऊँ मजा तोहि ॥८॥

चल, यहां से जरा चल तो, फिर देखना तुझे कैसा तिल-सा काट-काटकर हलाल करती हूं ।

(मालती को लेकर जाती है)

मदयंतिका : (उठकर) मैं भी तो देखू मालती कहां गई। (चलकर) मालती, मालती !

(लवगिका आती है)

लवगिका : सखी, मैं तो लवगिका हू ।

मदयतिका : क्या तुम उनसे सदेशा कह आई ?

लवंगिका : नही, मै उनके पीछे पांव उठाती चली गई, पर जैसे वह बगीचे के बाहर निकले और शत्रुओ का कोलाहल सुना वैसे ही वह उनके दल पर जा टूटे । बस यो मैं उनसे मिल न सकी । क्या करू, फिर चली आई । नगर के लोग तो उनके गुणो पर पहले ही से मुग्ध थे, इसलिए 'हा माधव, हा मकरद' कहकर घर-घर बिलख रहे हैं । महाराज ने जो मत्रिकन्याओ के हरने का हाल सुना तो बडे क्रोधित हुए । सुना है कि उन्होने स्वय प्रोत्साहित कर सैनिको को भेजा है और आप महल पर बैठे हुए युद्ध कौतूहल देख रहे है ।

मदयंतिका : हाय, तो न जाने अब क्या होगा ? मैं अभागिनी मरी ।

लवंगिका : सखी यह तो बताओ कि मालती कहा है ?

मदयंतिका : वह तो पहले ही से तुम्हारी बाट देखते-देखते कही बाहर चली गई हैं । तब से मैंने उन्हे नही देखा, कदाचित यही कही किसी कुज मे बैठी होगी ।

लवंगिका : तो चलो, उनसे मिलना चाहिए, वह बडी भीरु है । मुझे यह शक है कि कही इस भयावह भीषण उपद्रव को देख वह प्राण न तज दे । मैं सच-सच कहती हूं कि मालती यथार्थ मे मालती ही है, बस हाल कुम्हिला जाती है ।

लवं०-मद० : (इधर-उधर दौड़कर) मालती, सखी मालती ! (दोनो बाहर जाती है)

(कलहंस आता है)

कलहस : बड़ी बात, हम लोग कुशलपूर्वक उस झगड़े से निकल तो आए। बाप रे बाप ! ऐसा जान पडता है मानो मेरे सामने अब भी चादनी मे तलवारे झिलमिला रही है । मकरंद की झपट-दपट से सिपाहियो का दल ऐसा घबडाकर फिरा जैसे मदमाते भगवान संकर्षण के हल से कर्षण करने पर यमुना जी क्षुभित होकर खिची थी । माधव की न पूछो, वह तो मकरंद से भी बढकर थे । उनके वज्र से हाथो के जमते ही पहरुओ के हाथो से हथियार छूट पडे और बड़े-बडे भट, किसी का हाथ टूटा, किसी का सिर फूटा, तर ऊपर गिरते-पडते ऐसे भागे कि क्षण-भर मे रास्ता साफ हो गया । वाह, वाह, और श्री महाराजाधिराज को भी गुण की कैसी परख है ! प्रतिहारी के नीचे उतरने और कहने से कही झगडा पटा । जब दोनों कुंवर उनकी सेवा मे गए तब इनका चाद-सा मुख उन्होने बड़े प्यार से बार-बार देखा, और जब मैंने इनका कुल और नाम बतलाया तब तो बडा ही आदर किया । मंत्री जी और नंदन की क्या कहूं, उनदोनो के चेहरे मारे ईर्ष्या के स्याह काले पड़ गए थे । उनसे महाराज ने मुख फेरकर कहा, "कहिए ऐसे भुवनभूषण नवयौवन गुणाभिराम मेहमानो को पाकर आप लोग सफल-काम हुए या नही ।" फिर रंगमहल चले गए । (देखकर) वह देखो, माधव और मकरंद इधर ही आ रहे हैं, मैं भी श्री कामंदकी से सब हाल कह आऊं । (जाता है)

(माधव और मकरंद आते है)

मकरंद : मित्र, निस्संदेह आपका बाहुबल और मनुष्यो की अपेक्षा वढ-चढकर है, क्योंकि आपने—

मारि भुज दड चूर कियो गास गांस सब—
 भिभसे अरिनु-अस्थि पिंजर घनत-जात।
एक यो अनेक वीर भुवि पै बिछाये चहुँ—
 तिन शस्त्र छीड़ि छीडि वल सो हनत जात।
फरकत कटे रुण्ड मुण्डनि सो पट्यो, रण—
 उदधि उतग मानो और उफनत जात।
चित्रकी लिखी सी दोऊ और झट-भीर ठाढी—
 तिन बीच बाढी आगे गैल सी बनत जात ॥९॥

माधव : भाई इस घटना को सामान्य न समझना चाहिए,

निसि आधी लसै भरी चादनी सो फैले चहुँ दिसि मजु
 बहार है।
लगी अंक-निसक-पियारी-पिई मद सो छकि और जग्यो
 जिन प्यार है ॥
तन घायल ह्वै अब ते ही परे भुवि लागत तौ भुज-
 दड प्रहार है।
दुख गात सहै यह मानो कहै "जग कौ सबरौ सुख देखो
 असार है" ॥१०॥

कुछ भी हो, महाराज की सज्जनता ध्यान मे रखने योग्य है। हम लोग अपराधी थे पर कैसी कृपा की है मानो हमने कुछ किया ही न था। आओ चले, अब अपने बगीचे मे शीघ्र पहुंचना चाहिए। कहो भाई, तुमने मदयतिका को किस प्रकार प्राप्त किया, वह सब हाल मुझे विस्तारपूर्वक सुनना है, किंतु अभी रहने दो, मालती के सामने कहना, तभी सुनूगा, (सामने देखकर) यह स्थान सूना-सा क्यो दिखाई पड़ता है, न जाने मालती कहा गई ?

मकरंद : मित्र, हमारे वियोग सो व्याकुल मालती हू वन माहिं सिधाई।
कौतुक देखति ह्वै है इते उत धीर धरौ कहा आतुरताई।
आओ विलोकें प्रफुल्लित वृच्छनि है जहँ सौरभ की अधिकाई।
गुजत ये मतवारे मिलिन्द विमोहत श्रोननि को सुखदाई ॥

माधव : जब आदि सो लै अपनी करनी अपने मुख आप बखानि है सारी ।
अँचरा मुख मालती दै हँसि है तिरछाय सुनैन-कटाच्छ कटारी ।
तिह चोट बचाइवे लाज की ओट मे आँखि किते असहाय विचारी ।
तकि तोहि प्रफुल्लित पकज सो मुख नीचौ करै मदयतिका
नारी ॥११॥

यही तो है बगीचे का मार्ग । (दोनों जाते है)

(लवगिका-मदयतिका आती है)

लवं०-मद० : सखी मालती, (**माधव व मकरंद को सहसा देख हर्ष के साथ**)
बड़े भाग से दोनो कुवर दिखलाई पड़े ।

माधव-मक० : मालती कहा है ?

लवं०-मद० : मालती कहा है, आप लोगो के पैरो की आहट से हम लोगो ने
उन्ही को समझा था ।

माधव : जो हो सो सच-सच कहो, बिना उसे देखे मेरी सुधि-बुधि-सी
मारी गई है, न जाने क्यो मेरा हृदय अस्थिर हो रहा है—

कमल-नयनि-प्रति अशुभ-कलपना जैसे मम मन आवै ।
अंतरात्मा कंपत हृदय यह विकल मनहुँ कलपावै ।
फरकत बाम-नयन यह पुनि तव वचन महा दुखदाई ।
देखें कहा होइ अब आगे-विधि सो कछु न बसाई ॥१२॥

मदयतिका : जब आप चले तो उन्होने अवलोकिता और बुद्धरक्षिता को
श्री कामदकी देवी की सेवा मे भेजा और लवंगिका को आपके
पास दौडाया कि आर्यपुत्र से कह दो कि वह बहुत सावधानी से
युद्ध करे । मन न लगने से यही कही लवंगिका की बाट देख
रही थी । मैं जो आई तो उन्हे न देखा, हम लोग इधर-उधर
उन्हे ढूढती फिरती थी कि आप आ गए ।

माधव : प्यारी मालती—

तव मगल सोचत किन्तु कछू कछु क्यो द्विविधा मन
माहि समाई ।
बस है चुकी तेरी हँसी अब वाम, वियोग विथा ये सही
नहि जाई ।
कहा जाँचति प्रेम को स्वर्न खरो अनमोल विकै पै इती
दुचिताई ।
अति बेकल प्राण, स्वबोल सुनाइ कहाँ यह तैंने पढी
निठुराई ॥१३॥

मद०-लवं० · हा प्रिय सखी, तुम कहा गई ?

मकरद : भाई, विना जाने पूछे क्यो घवडा रहे हो ?

माधव : मित्र, बडे आश्चर्य की वात है कि तुम भी यह कहते हो। मेरे विना वह कितनी दुखी होगी, उस दारुण अवस्था मे न जाने क्या कर बैठे, कौन कह सकता है ?

मकरंद : तुम कहते हो सो तो सच है किंतु मुझे ऐसा जान पडता है कि वह श्री कामदकी देवी के पास चली गई, चलो वहा चलकर देखें।

लवं०-मद० : यह भी संभव है।

माधव : अच्छा भाई, यही करो।

मकरंद : (आप ही आप)

चिंता नही जो मालती कामंदकी के गृह गई।
गई पहुँचि किंतु यथार्थ मे यहि बात को शंका छई॥
बहुधा स्व-बान्धव-सुहृद-प्रिय-संगम जनित अभिरामिनी।
विलसै पुनीत प्रसन्नता चंचल यथा सौदामिनी॥१४॥

(सब जाते हैं।)

इति मालत्यपहारो नामाष्टकोऽङ्कः

अंक ९

[स्थान—पद्मापुरी]

अथ विष्कम्भक

(सौदामिनी आती है)

सौदामिनी : देखिए, मैं वही सौदामिनी हू जो पूज्य श्रीपर्वत से चलकर अभी-अभी पद्मावती आ पहुंची। यही माधव है, जो मालती के विरह मे ऐसा पागल हो गया है कि वह इन परिचित स्थानों को देख कोसो दूर भागता है और सब घरबार छोड़ अपने मित्र के साथ पहाडो की घाटियो, कंदराओ तथा गहन वनो मे मारा-मारा फिरता है। तो अब उसी के पास चलूं। (**इधर-उधर देखकर**) मैं, शीघ्र गति से चढकर अब इतनी ऊंची आ गई हूं कि यहा से भूमंडल के नदी नगर गिरि कानन का विविधाकार दृश्य एक ही दृष्टि मे दिखलाई पड सकता है। (**फिर देखकर**) वाह-वाह—

सरित सिन्धु अरु पारा मधि यह पद्मावती सुहावै।
सब दिसि निरमल नीर धारि निज दिव्य छटा सरसावै ॥
नभ प्रतिविम्ब परत चहुँ याके उच्च-अटा-छवि छाई।
मानहुँ गगन भेदि इन राख्यो वीचहि में अटकाई ॥१॥

इसके सिवाय वह देखो—

वलित लहरि संकुलित वही यह लवना नदी विराजै।
वरसा लागत जग-विनोद हित जो निज तट वहु साजै ॥
हरी मन हरी नव दुर्वा के वन दोउ दिसि लहरावै।
परम रुचिर जिहि चरि चरि ग्याभन गऊ निरत सुख पावै ॥२॥

(दूसरी ओर देखकर) यह सिन्धु नदी का प्रपात है जो रसातल तक फोड़े डालता है—

देखो यहि ये करत तुमुल ध्वनि सघन मंजु मतवारी।
अति गम्भीर प्रबल नूतन तन नीरद-रव अनुहारी॥
आस पास की गिरि-निकुंज अब करि निज गुंज कँपावै।
एक-रदन - गज - वदन - कंठ - घन - गरजन समता पावै॥३॥

चंपक, चंदन, अश्वकर्ण, पाटल आदि के सघन वृक्षो से भरे, बेल पकने से सुरभित ये पर्वत स्थल दंडकारण्य के पहाड़ो का स्मरण दिलाते हैं, जिनके चारों ओर फूले हुए कदव तथा जामुन के घने वन है, जो अपनी निरंतर छाया के कारण अंधेरा-सा किये रहते है, और जहा भू-धर निकुंजो को गुंजाती, गंभीर, गद्गद घोर घोषणा से दिशाओ को प्रकंपित करती गोदावरी नदी बहती है। वह देखो, मधुमती और सिंधु के संगम को भी पुनीतकारी, अपौरुषेय प्रतिष्ठित भगवान भवानीपति देव-देव सुवर्ण-बिंदुजी की पुण्य-प्रतिमा कैसी सुंदर शोभायमान है (हाथ जोड़कर)

जयति निगम-निधि देव, अखिल अभिनव वरदायक।
जयति मदन-मद-कदन ईश त्रिभुवन के नायक।
जय जय भगवान रुचिर चन्द्र-शेखर मन भावन।
जय जय पावन परम आदि गुरु शंभु सुहावन।
जयशर्व, भक्त-दुख-सर्व-हर दूरि करनु त्रिय ताप भय।
जय मृत्युंजय असरनु-सरन जय शिव शंकर जयति जय॥४॥

(कुछ चलकर)

अति ऊँचे उठे जिह शृंगनु पै घनश्याम-घटा छवि छाइ रही।
अरु मोदमयी मदमत्त मयूरी निरन्तर कूक मचाइ रही॥
खग नीड विचित्र धरें तरु पगति जी-तन शोभा बढाइ रही।
सुखमा सो सनी अस पर्वत माल मनोहर नैननि भाइ रही॥५॥

और भी—

इन खोहनि मे दल रीछनि कौ वस जोवन जोर मरोर जतावै।
गिरि गूंज के सग उमंग भर्‌यो भयकारी ध्वनि घनघोर मचावै॥
कहुँ कुंजर सो रुँदि कुन्दरू की कुचिली निज गाँठिन को दरसावै।
तिन सो सुठि सीतल और कसैली चुई रस-गन्धि चहूँ छिति छावै॥६॥

(ऊपर को देखकर) अरे ! क्या दुपहर हो गया ! ठीक इसी से—

लसै मधुपरनी के कहुँ पुंज । त माजि दल नवल-नवल सो कुंज ॥
सघन शीतलता कों ललचा । तहाँ देखी टिटीहरी जात ॥
कहूँ अतसी गाटर द्रुम-लूमि । झुके तट-ओर रहे महि चूमि ॥
तहाँ पवई निज पर को फैलाय । छाँह के लालच भाजि जाय ॥
जहाँ वंजुल की मंजुल बेलि । हरी लहराइ रही अलबेलि ॥
वही सारस चकवनु के ठाम । पख मुख ढाँकि करे विसराम ॥
कहूँ पीपल-तरु पे धरि धाम । कलित कूजें कपोत अभिराम ॥
करे नीचें तीतर-परिवार । 'पटीलों' शब्दनु की झनकार ॥७॥

इन बातो से निश्चय होता है कि दिन दोपहर चढ आया । अच्छा तो माधव और मकरद को ढूढकर उन्हें समझाऊ ।

(जाती है)

इति विष्कम्भक

[स्थान—वन]

(माधव और मकरद आते हैं)

माधव · (ठंडी सांस भरकर)

आशा और निराशा इनमें एकहु करत न आवै ।
मोह सघन घन अन्धकार मे चित यह प्रविशत जावै ॥
करत न कछु अब बनै, पशु सम उत उत डोलत मारे ।
भयो वाम-विधि जान परै यह जिन दुख इतने डारे ॥८॥

हा, प्यारी मालती, तुम कहा हो । अपने छिप जाने का कारण बिना बताए तुम कहा छिप गई—प्यारी, तुम ऐसी बेपीर क्यो हो गई हो—एक बार तो प्रसन्न होकर मेरे कंठ से लग जाओ ।

नेह जोर मोसो प्रथम, अब क्यो बनहु कठोर ।
निहचै मैं माधव वुही, लियो जासु मन चोर ॥
निज गहाइ कर सुभग सुठि, प्रिय कमनीय अपार ।
कंकन-भूषित, जनु महा, उच्छव को अवतार ॥९॥

मित्र मकरद, इस ससार मे उसके सिवा प्रेम करने वाली दूसरी कोई भी न मिलेगी ।

सरस कुसुम सम कोमल यद्यपि कृशित देह जिह सारी।
मनमथ-विथा सही तउ अविरत प्रति छिन दारुण भारी ।।
तृन सम प्रानहिं तजिवे जाने अपने जिय मे ठानी।
यासो अधिक कहा, मोहि ब्याहनु साहस कियो सयानी ।।१०।।

भाई इसके सिवाय—

मो सग व्याह हौन की आशा प्रथमहि जबै सिरानी।
हृदय विदारक विथा—विपुल सो विकल अमित अकुलानी ।।
तोउ रुदन करि नेह-निकाई दरसाई जो प्यारी।
करुणा-कम्पित-हृदय-लहरि मम, का वह मित्र विसारी ।।११।।

(घबड़ा कर) हाय ! हाय !!

प्रिय वियोग छाती फटै, आवत पै न दरार।
काया तजे न चेतनहिं, बेसुध विकल अपार ।।
जरति करति पै भसम ना, दौ लागी तन माहिं।
हृदय विदारत निरत विधि, निरदय मारत नाहिं ।।१२।।

मकरंद : मित्र, जिस प्रकार निर्दयी दई हम लोगो को सताप देता है, उसी प्रकार यह प्रचंड मार्तंड भी हमे झुलसाए डालते है। आपके शरीर की यह दशा ! चलो इस पुष्करणी के तीर, वृक्षो सघन छाया मे ही छिन भर विश्राम करें। देखो यहां पर—

नव ऊँचे उठ अरविंदनु मे मकरद की पुष्टि जो गंध वसै।
तिथि धारि अपार उमग भरचौ अंग अंगनि को सुखमा परसै।
कवहूँ जड सो बनि सीरी सलौनी तरंगनि को रस जो विलसै।
रसिया यह धीर समीर वही पुनि तो नव जीवन को
सरसै ।।१३।।

(अपने आप) अच्छा तो कुछ इधर-उधर की बातें लगाकर इनका जी बहलाना चाहिए। **(प्रगट)** प्यारे माधव,

यहिं मल्लिक जाति के हस महामृदु बोलत जोवन के मद छाय।
निज पख सो दीर्घ मृनालनु के सित कंज मनोहर मजु कँपाय।
कछ् जैसे ढरें औ नवीन भरे अंसुआनि के बीच मे औसर पाय।
इत हेरो निरन्तर शोभा-सने पद्माकर को हिय धीरज
लाय ।।१४।।

(माधव झूमता हुआ उठ खड़ा होता है)

मकरंद · (अपने आप) क्या इनका चित्त ठिकाने नही, जो मेरी बात

अनसुनी करके कही अन्यत्र को उठ दिए। (आह भरकर प्रगट) भाई, यो काम न चलेगा, धीरज बाधो, देखो सामने का दृश्य कैसा सुदर है ।

वह वेतस-वेलि-प्रसून सुवासित-कुजनि मे नदी नीर नयो ।
तट ही तट देखिये जाही-जुही कलिकानु सो जो अति मजु भयो ।
खिले कूटज फुल उमगित शैल के शृंगनु मानो प्रहास ठयो ।
तिन पै मुरवान के नाचन को वदरान-अनूप वितान छयो ॥१५॥

इधर भी,

विकसी नव वेगरी घुन्डिनु सो घनी शोभा कदम्बनु की सरसावै ।
गिरि-रम्य-तटी लगि छाइ छटा चहुँधा घनश्याम घटा लहरावै ।
सरि-श्रोत के तीर नवीन कढ़ी कलिकानु सो सुदर केतिक छावै ।
खिले लोध और छत्रक फूलनि साजि वनी रमनी मुसकाति सुहावै ॥१६॥

माधव : मैं भी सब देखता हूं, किंतु यह पर्वतीय विपिन-वसुंधरा का रमणीय दृश्य, न जाने क्यो इस समय हृदय विदारक प्रतीत होता है। यह क्या (आंसू भरकर) और क्या हो सकता है ?

अव पुष्पित साल औ अर्जुन को मद पूरव पीनहू लावन लागे ।
तिन वेग सो इन्द्रमनी सम श्यामल ये धुरवा-गन धावन लागे ।
श्रम-अम्वु सुखावन लावन की छवि मजु मिलाइ रसावन लागे ।
महकात मही नव वूदनु सो वरसा-ऋतु-वासर आवन लागे ॥१७॥

हा, मेरी मालती,

नव चारु तमाल से ये घनश्याम वने वदरा घहरान लगे ।
अरु सीर समीर सने नवनीरन के कन ये वरसान लगे ।
सूर चाप छयो मदमत्त सवै मुखा-गन वागनु गान लगे ।
परि कैसे लखो इन ओर चहूँ जव प्यारी, तवै दिसि प्रान लगे ॥१८॥

(रोता हुआ शोकाकुल होता है)

मकरद : हा, प्यारे माधव को क्या हो गया। जान पडता है कि इस समय इसकी अवस्था मे कोई परम भयानक दारुण परिवर्तन उपस्थित हो गया है। (आंसू भरकर) हाय मेरा कैसा वज्र-हृदय है जो इसकी इस करुणामयी दशा को यो देख रहा हू ! मुझ पापी ने इसका अच्छा जी वहलाया !! (लबी सांस लेकर)

क्या मेरे भाग्य में माधव के लिए हताश होना ही वदा है। (भय से देखकर) अरे यह क्या बेसुध भी हो गया (आकाश की ओर देखकर) मालती, मालती, तुम अब ऐसी कठोर और बेदरद क्यो हो गई हो—

गुरुजन हूँ की लाज तजि करि साहस उत्साह।
प्रेम-पियासी तैं कियौ, याके संग विवाह॥
असे देख्यौ तैने कहा, कहौ यासु अपराध।
जो निरदय बनि तू रही, एती चुपकी साध॥१६॥

(हाथ से टटोलकर) क्या अभी नही जागा? हा दैव! पापी ने मुझे लूट लिया!

हा, हा! प्यारे फटत हृदय यह जगत शून्य दरसावै।
तन बन्धन सब भये सिथिल से अन्तर-ज्वाल जरावै॥
तो बिन जनु डूबत जिय तम मे छिन-छिन धीरज छीजै।
मोहावृत मकरन्द सकल दिसि मन्द भाग्य कहा कीजै॥२०॥

कहा जाऊ, क्या करू—

सुहृदय-हृदय प्रमुदित करनु, प्रिय कौमुदी अपार।
मालति-नयन-चकोर को, मुग्ध चन्द्र अनुहार॥
सब प्रकार मकरन्द के, सुख-दायक-सिरताज।
मित्र शिरोमणि जगत के कितै जात तुम आज॥२१॥

सखा माधव,

गात को चन्दन रस सुखकद। नयन हित शारद पूरणचन्द॥
हृदय मेरे के नित्य अमद। रहे जो तुम अनुपम आनन्द॥
परम जो प्रकृति मधुर रमनीय। जासु कोमल कलाप कमनीय।
वही यह, हा, मम जीवन प्रान! न कोऊ निरदय काल
समान॥२२॥

(माधव की देह पर हाथ फेरकर)

विमल हँसोही दृष्टि करि, निरदय मोते बोल।
जनमत को मैं तव सखा जी की घुन्डी खोल॥२३॥

(माधव की मूर्च्छा जगती है)

(हलका-हलका मेह बरसता है)

मकरद : (माधव को सचेत होते हुए देखकर हर्ष से) नवल निर्मल नीलमणि के समान सुदर सघन यह नूतन धाराधर अपनी मंद-

मंद फुआरें बरसा-बरसा कर मेरे मित्र को जगा रहा है। अहो भाग्य, माधव सचेत हो गया। अब मेरे लिए संसार जाग उठा। जलद, इस कृपा के लिए मैं तुम्हारा बड़ा कृतज्ञ हूं।

माधव : इस अपने जी उठने का वृत्तांत अभी हाल प्यारी को सूचित करना चाहिए, नही तो उसे अपने प्राण रखना असह्य हो जाएगा, किंतु ऐसे निर्जन वन मे उसके पास यह सदेशा किसके हाथ भेजू (**सामने देखकर**) वाह, वाह—

जंबु-कुज फल पकनु सो, सोहत श्यामल रंग।
तिन-मधि-निकरत-तटिनि मे, तरलत छुद्र तरग॥
तिह उत्तर कुसुमित सघन, वन-तमाल से श्याम।
उनये गिरि-ऊपर नये, धाराधर अभिराम॥२४॥

(**शीघ्र खड़े होकर और हाथ जोड़कर**)

मन भामिनि दामिनि हे घनश्याम कहौ तुम को निज अंक लगावै।
निज मोद भर्यो गन चातक को मिलिवे तुम सो अनुरागत आवै।
मृदु दावन सो पुरवाई कहौ श्रम खोइ तिहारो प्रमोद वढावै।
तुम जात जहाँ जहाँ मजु ललाम छटा सुर-चाप तवै सरसावै॥२५॥

(**गरज सुनकर**)

आहा, निकटवर्ती गिरि-गुहाओ को प्रतिध्वनित करता हुआ, 'केहू-केहू' अलापने वाले उत्कंठित कलापियो को परमानंददायक यह मेघ अपनी गरज से मानो 'हा' कहकर मेरी बात को स्वीकार कर रहा है, तो अब इसी से क्यो न कहूं!

भगवन्!

पर कारज देस विदेस फिरौ यदि देखौ कहूँ मम मालति प्यारी।
हिय धीरज ताहि वँधाय दशा यहि माधव की कहि दीजियो सारी।
अरु देखियो आस को तन्तु न तोरियो सखियो सो मृदु मजु सँवारी।
बस वाही के एक सहारे अहो घन जीवति आयत लोचन वारी॥२६॥

(**बादल को चलता हुआ देखकर हर्ष से**) लो यह तो अब आगे बढने लगा, तो इसके पीछे-पीछे मैं भी चलू।

(**कभी इधर, कभी उधर चलता है**)

मकरद : (**घबड़ाकर**) इस समय माधव रूप निशानाथ को उन्माद के

राहु ने ग्रस लिया है। हा तात! हा मात! हा देवी कामंदकी! किसी प्रकार अब बचाओ, देखो तो आपके इस माधव की क्या दशा हो रही है।

माधव · **(चारों ओर देखकर)** मैं यह क्या प्रमाद कर रहा हू, मुझे धिक्कार है क्योकि—

नव पुष्पित लोध के वृच्छनु ने तन कोमल कान्ति लई सुकुमारी।
अरु लोचन चारु कुरगनु ने गति मत्त मतगनु ने मतवारी।
इन बेलि नवेलिनु ने मनमोहन नम्र सुभावहि की छविधारी।
यह जानि परै सबने वन मे मिलि बॉट लई मम प्राणपियारी ।।२७।।

हा, प्यारी मालती!

मकरद : मो प्राणनु-अवलम्ब नित, उज्ज्वल गुण के धाम।
बालापन के मो सखा, प्रेमी सुहृद ललाम।
प्रियजन दुस्सह विरह सो, पावत खेद अपार।
यह लखि तो मे हत-हृदय, क्यो नहिं होति दरार ।।२८।।

माधव : इस सृष्टि मे परस्पर समता रखने वाली अनेक वस्तुओ की रचना विधाता के लिए क्या कठिन है यदि वे ही देखने मे सब की सब एक-सी प्रतीत हो तो इस पर आश्चर्य करना ही आश्चर्य है। इसलिए किसी को यथार्थ ज्ञान करा देने के लिए अपनी वस्तु का पूरा-पूरा पता बतला देना अत्यत आवश्यक है। अच्छा तो अब यो कहूं **(उच्च स्वर से हाथ जोड़कर)** हे पर्वत तथा वन के रहने वाले जीव-जतुओ, आप लोगो की सेवा मे नमस्कार कर सादर एक प्रार्थना करना चाहता हू, छिन भर उसे ध्यान से सुन मुझे अनुगृहीत कीजिए।

कहूँ जो तुमने देखी होई।
है सर्वांग प्रकृति-सुन्दर वह अरु कुल कामिनि सोइ।।
अथवा कहा भयो वाको, यदि जानत, मोहि बतावौ।
ठाडे यहँ तुम, यासो पूछत अधिक न अब तरसावौ।।
बाकी बैस सुनौ, हिय लहरति पूर्ण अनंग तरंग।
किंतु तासु मृदु मुग्ध मनोहर देखत मे सब अग ।।२९।।[1]

1. कचन की वेलि सी अकेली अलवेली वैस आनन अमन्द आगे चन्द को लजामिनी।
अग-अग पूरण सुभाव ही सो रमनीय कमनीय काम की उमग सरसामिनी।
ब्याह के समै को कर ककन विराजै चारु सुन्दर सलौनी अति भोरी कुल कामिनी।
कहा भई? कित गई? यदि कहुँ देखी होय दीजियो वताइ तुम मेरी मन भामिनी।।

अरे बडा पाप है !

करि निज ऊँची शिखा शिखी यह नाचत कूक सुनावै ।
नयन चकोर नचाइ चाउ सो निज प्यारी ढिग जावै ।
औ लगूर प्रिया-कपोल सो पुहुप-पराग लगावै ।
कासो पूछौं कहुँ याचक हू खाली हार्थाहि पावै ॥३०॥

उधर भी,

अधर अरुण रंजित लसत, जासु दसन अनमोल ।
गुजन के अवतंस सम, जा के ललित कपोल ॥
पके अरुण दरकित सुभग, दाड़िम छवि सम्पन्न ।
निज तिय मुख, गहि चिवुक, कपि चुम्वत परम प्रसन्न ॥३१॥

उसी प्रकार यह मस्त हाथी भी अत्यंत सुखपूर्वक सूड को अपनी प्रिया के कधे पर रख कैसे आनद का अनुभव कर रहा है, इसे भी तो बोलने का अवसर नही है—

रदकोरनु सो सहरात जबै दृग मूंदति सोउ आनन्द जनाय ।
अरु आधी रुँथी नव शल्लकी-कोमल-कोपल सो रह्यो ताहि जियाय ।
निज कान हलाइ कछू क्रम सो तिह-प्यारी करै जनु पखा झलाय ।
यहि वन्य मतंगज के सम अन्य सकै न कोऊ निज प्यारी रिझाय ॥३२॥

(दूसरी ओर देखकर) यहां भी देखिए—

सुनि के घन की धुनि, बाढति है जिह गर्जन की घन घोर नही ।
ढिग मजु भरे पद्माकर सो कहुँ खात सिवार के कौर नही ।
अति दीन मलीन विना मदधार, विषाद सो भृंग को सोर नही ।
बस प्यारी-विछोह सिवाय कछू यहि कुंजर कौ दुख और नही ॥३३॥

अजी इस बिचारे को जाने दो, उस दूसरे को देखिए, जो मद-माते मतगो का यूथपति प्रतीत होता है । देखो ये हथिनिया उसके मधुर गंभीर कंठ की ध्वनि को कैसे चाव से सुन रही हैं । उन्ही के साथ सरोवर मे विहार कर रहा है । पुष्ट गंड स्थलो से नव कुसुमित कदब की-सी मीठी-मीठी सीतल सुगध वाले मद के निरतर बहने के कारण उस किनारे पर कुछ कीचड-सी हो गई है । विहार करते-करते जैसे वह (सूड़ से) कमलिनी

को झटककर उखाडता है वैसे ही कोमल पल्लव और मृणाल टूट-टूट जाते हैं, पुजित पराग बिखर पडता है। उसके कमनीय कानो के निरंतर फटकारने से और हिलाने से सरोवर का हृदय तरल तरंगाकुल हो जाता है, इसलिए जल मे बार-बार हिलोरें उठ रही है। उन्ही के लगने से भयभीत बिचारे कुररी सारस कैसे उडते-उडते रह जाते है। तो फिर अब इसी से बातचीत की ठहरै। महाराज मतंगराज, आपका ही यौवन प्रशसनीय है। आप अपनी प्यारी को रिझाना खूब जानते है। किंतु उस्ताद, थोड़ा-सा चूक गए क्योकि,

कौतुक सो तोरिके मृनाल पुज और नीके—
करिनी के मुख माहि मजुल खवाव तू।
फूले कज तिन सो सुवासित तडाग-नीर—
बीच-बीच करि के कलूला दौरि प्यावै तू।
लहकाइ सूँडि चारु अम्बुकन बिथुराइ—
जैसी मन चाहै वाहि वैसी ही न्हवावै तू।
सरल सुनाल वारी गहि नलिनी को पात—
नेह सो बताउ क्यो न छत्तुरी लगावै तू ॥३४॥

अरे यह तो बडी लापरवाही के साथ आगे बढा चला जा रहा है। मैं भी पागल हो गया हू जो इस वन-चर से इस प्रकार बाते करने लगा जिस प्रकार मुझे मकरद से करना चाहिए था। कहा ये पशु, कहा वह सहृदय! हा मित्र मकरंद!

बिना तेरे प्यारे जिय घरन हू को दुख लगै।
मनोहारी वस्तु अब सब वृथा ही यह भई।
तिहारे औ वा के बिन दिन कटै सो दिन कटै।
बिना तो जो पाऊँ सुखहि मृगतृष्णा बस गिनौ ॥३५॥

मकरद : इस समय उन्मत्त होने से अपने समीप रहने पर भी यह मुझे नही देख सकता, तो भी बीच-बीच मे किसी न किसी भाति मेरा स्मरण आ ही जाता है। मेरे प्रति इसके स्वाभाविक स्नेह का सस्कार जो इस दशा मे भी उदय हो आता है, उसका कारण यह प्रतीत होता है कि यह समझता है कि मैं इसके पास नही हू। तो अब मैं ही इसे स्मरण दिलाऊ **(सामने खड़े होकर)** भाई, तुम्हारे जन्म का साथी अभागा मकरंद तो तुम्हारे पास ही है।

माधव : मित्र आओ, आओ, मेरे कंठ से लगो। प्यारी मालती तो कही दीख ही नही पड़ती, अब उससे तो निराश हो गया।

(**मूर्छित होता है**)

मकरद : (**प्रसन्नता से**) अच्छा तो अब मैं इस अपने प्राणाधार को कंठ लगाऊ। (**देखकर फिर करुणा के साथ**) हा, यह घोर विपद ! मित्र मेरी भेट के लिए उत्कठित होते ही अचेत हो गया। अब इसका क्या आसरा है। बस यह निश्चय है कि मेरा मित्र··· (**रोकर**) हाय मित्र !

तब सनेह-ज्वर सो जर्‌यो, सदा रह्यो यह चित्त।
थर-थर काँप्यो जो परम, यदपि न कोउ निमित्त ।।
गिनत गिनत सब विपति तब, भयो भयाकुल घोर।
एक सग इन दुखनि सो, छूट्यो आज मम छोर ।।३६।।

हा, इससे जो क्षण बीत गए वे ही अच्छे थे, तब तुमको सचेत तो देखता था, किंतु अब तो प्रियतम—

तुम बिन यह तन भार समान।
वज्र कील सो ठुके, न जानूं, कैसे यामे प्रान ।।
सूनी सब दिसि, विफल आज सो इन्द्रिनु को व्यापार।
इन पल कटैं कल्प सम, यह अब ज्योति-हीन ससार ।।३७।।

(**सोचकर**) मित्र माधव को अस्त होते देख मेरे पामर प्राण इस अधम शरीर का क्यो परित्याग नही करते। पता नही अभी ये और किस लालसा मे फंसे हैं। जो हो, मैं तो यही समझता हूं कि अब इनका रहना निष्फल और व्यर्थ है। तो इसी पर्वत की चोटी से इस पाटलावती नदी मे कूद पड़ू, क्योकि ऐसा करने मे शीघ्र ही माधव को परलोक मे मिल सकूगा (**फिर कर करुणा के साथ देखकर**) हा !

नव नील सरोरुह सी सुठि श्यामल सोई लसै यह मूरति प्यारी।
दृढ अक लगाय मिले जिहि सो वहु बार भई नहिं तृप्ति हमारी।
अलबेली छटा जिह हेरत ही सब भाँति मनोरम मजु सँवारी।
नय नेह की लौनी निकाई भरी जिन मालती पै मन मोहनी डारी ।।३८।।

बडा आश्चर्य है कि इसके इस छोटे से शरीर मे इतने कला-

कलापों का इस अल्पावस्था मे ही कैसे समावेश हो गया। वास्तव मे यह घटना चमत्कार से भरी है। सखा माधव—

सकल कला युत चारु चन्द्र को जैसे राहु गिरासै।
बरसाऊ घुमडत बादर को पवन वेग ज्यो नासै॥
अरु रसाल फल नम्र वृच्छ को जिमि दावानल दाहै।
जगत-शिरोमणि तुर्महि मृत्यु इमि अपने बस मे चाहै॥३९॥

ऐसी दशा मे पडे हुए भी इस प्यारे मित्र को हृदय से लगा लू, इसने मुझ से कहा भी था। (**हृदय से लगाकर**) हा, विमल-विद्या-निधान, गुणाकर, मालती-जीवन सर्वस्व, देवी कामदकी तथा मकरंद के चख-चकोर-चंद्र प्रिय सखा माधव! इस जन्म मे तुमसे मेरी यह अतिम भेट है। प्यारे, अपने बिना मकरंद के पल मात्र भी जीवित रहने की आशा न करना।

सग रहे हिलि मिलि के दोउ जब सो जीवनु लीयो।
मात-पयोधर हू सो हम तुम छीर बराबर पीयो॥
अब जब देहि जलाञ्जलि तुमको बन्धु समग्र पियारे।
मो बिन ताको पियन मगन मन है नहि जोग तिहारे॥४०॥

(**करुणा से उसे छोड़कर और उसकी परिक्रमा कर**) यही तो नीचे पाटलावती बह रही है—(**हाथ जोड़कर**)

अहो! पाटलावती भगवती सब दुख-छैनी।
यह मैं याचत तोहि मातु अभिमत फल-दैनी॥
जहँ यह माधव होइ तहाँ मो वासहिं कीजो।
याके सगहि संग जनम मेरो हू दीजो॥४१॥

(**गिरना चाहता है किंतु सौदामिनी शीघ्र आकर उसे पकड़ लेती है**)

सौदामिनी : वत्स, यह क्या करते हो?

मकरद : मा, तुम कौन हो? मुझे क्यो रोकती हो?

सौदामिनी : आयुष्मन्! क्या तुम मकरद हो?

मकरद : छोड़ दो मा, मै वही अभागा मकरद हू।

सौदामिनी : तो फिर ऐसा साहस मत करो। मै तपस्विनी हू, तुम्हारे दुख का कारण मैने जान लिया है, मालती अभी तक जीती-जागती है और उसके जीवित रहने का प्रमाण भी मेरे पास है।

(**वकुल माला दिखलाती है**)

मकरंद : (लंबी सांस भरकर) क्या सचमुच अभी तक मालती जीवित है ?

सौदामिनी : और नही तो क्या, किंतु तुम्हे प्राण देने के लिए उद्यत देख, मेरा जी माधव के विषय मे शकाकुल हो कापा जाता है। भला पहले मुझे यह तो बताओ कि इस समय माधव कहा है ?

मकरद : वह रहे मा, मैं तो उन्हे नितात मूर्छित देख निराश हो छोड़ आया पर आओ अब शीघ्र उनके पास चलें। (शीघ्र लौटते हैं) (अपने आप) बड़े भाग ! मित्र को चेत हो आया।

सौदामिनी : (अपने आप) मालती ने इन दोनो के रूप का जैसा वर्णन किया था वैसा ही है।

माधव : (लंबी सांस भरकर) है ! इस समय मुझे किसने चैतन्य कर दिया। (सोचकर) ठीक-ठीक समझ गया, जान पड़ता है कि मेरी इच्छा न रहते भी नव-नीरद-जलबिंदु धारण करने वाले इस शीतल पवनदेव ने यह उद्योग किया है। हा ! मैं तो मूर्छित ही भला था, अहो पुरवाई समीर,

घुमडाइ कहू नव-नीरद को प्रिय चातक के मन मोद जगावौ।
नित पोसत हौ कुल केतकी कौ मुखानहुँ कें चित चोप चढावौ ॥
विरही जन मूर्छित ह्वै विसरै ज्यो वियोग बिथा, करुणा
चित लावौ।
तिन चेत की व्याधि लगाइ अरे, तुम चाहत का ? कछु
और बतावौ ॥४२॥

मकरंद : प्राणी मात्र को जीवन प्रदान करने वाले वायु ने इसे जो जीवित रक्खा, यह बहुत ही अच्छा किया। क्यो न हो—

कहुँ केतकि-सौरभ लै के भजे कहुँ कामिनि अग उमग भरै।
तिन चचल केस उडावन के मिस सुन्दर आनन पै विहरै।
कहुँ फूली कदम्ब-कली-रज सो लिपटे कल भृग के शब्द करै।
विरही मन यो बहु भाँतिनु सो यह पावस पौन सदा ही हरै ॥४३॥

माधव : पवन देव, तुमने जीवित किया सो भला न किया, अस्तु जो हुआ सो हुआ अब मेरी आपसे एक याचना है, उसे स्वीकार कर मुझे कृतार्थ कीजिए—

यहि फूले कदम्ब-कदम्ब-पराग के संग मो प्राणनु को प्रिय धारी।
तुम जाउ तहाँ जहँ मालती है नव चम्पक बेलि अकेलि दुखारी।

अथवा मिलि वासहिं लाउ कछू सुचि सीतल हीतल को
श्रम हारी।
अवलम्ब तुम्ही बस एक प्रभो न विलम्ब करौ दुख मेरो
निहारी ॥४४॥

(हाथ की अजली बनाकर प्रणाम करता है)

सौदामिनी . (शीघ्रता से) सहदानी (निशानी) दिखाने का यही अच्छा अवसर है।

(उसके हाथों मे माला डाल देती है)

माधव : **(आश्चर्य और हर्ष से देखकर)** अरे, यह तो मेरी ही गुही जान पडती है। भगवान कामदेव के मदिर मे पुष्पो की बनाई हुई, विजय वैजयन्ती की भाति प्रियतमा के पीन पयोधरो पर विहार करने वाली यह माला यहा अकस्मात् कैसे आ गई ? **(और देखकर)** अजी इसमे कैसा भ्रम और कैसा संशय ! यह तो मेरे ही हाथो की बनाई हुई है—

मुग्ध मनोहर चारु, वाको शशि-मुख लखत ही।
उमग्यो हृदय अपारु, काम कुतूहल प्रबल अति ॥
ताहि छिपावन हाल, कहुँ के कहुँ पोये सुमन।
विषम ग्रथित सोइ माल, लवगिका-मन-मुद-भरनि ॥४५॥

(हर्ष और उन्माद से उठकर) प्यारी मालती, कहा छिपी बैठी हो। **(कोप से)** तुम मेरी दशा नही देखती—

प्रान प्रयान करत से मानो हृदय फटत सो जावै।
धायो तम सब ओरनु सो जनु ज्वाला अंग जरावै।
प्रिये उतावलि करहु हँसी नहिं मो पै करुणा लावौ।
तरसत इन अँखियन चकोर को निज मुख चन्द दिखावौ ॥४६॥

(चारों ओर देखकर तथा खिन्न होकर) यहा मालती कहा है ? प्रिया की प्यारी माला, तैने बड़ा उपकार किया है, क्योकि—

पाइ अकेली विरह मे, दै-दै शर निज काम।
जबै सताई होइगी, मेरी भोरी बाम ॥
तब तब लगि तिह-हृदय सो, मेरे ठीक समान।
बलिहारी, प्यारी-सखी, राखे वाके प्रान ॥४७॥

(शोक से सांस भरकर)

मदन-ताप दीपत करनि, दृढ अनुराग रसाल ।
नेह निकाई एनि नित, ए सुखदाई माल ।।
मो तजि प्यारी के गरे, तिहि तजि मो गर माहि ।
कठिन आइवौ जाइवौ, तेरौ बिसरत नाहि ।।४८।।

(हृदय पर रखकर मूर्छित हो जाता है)

मकरद : **(आगे बढकर और कपड़े से पवन कर)** भाई जागो, अब व्यर्थ दुखी क्यो होते हो ?

माधव : **(सांस भरकर)** मित्र, क्या यह देखते नही हो, कि मालती की प्राणाधार यह मौलसिरी-माला न जाने अचानक मुझे कहा से मिली है। आसपास देखता हूं तो कोई दीखता नही, तव यह माला आई तो कहां से आई, कुछ समझ मे नही आता। भला आपके विचार मे यह कहा से आई होगी ?

मकरद : भाई, देखो यह एक बडी योगेश्वरी आई है। इन्ही के द्वारा तुम्हे यह मालती की निसानी मिली है।

माधव : **(नम्र भाव से हाथ जोड़कर)** माता, प्रसन्न होकर प्रथम मेरी प्रिया का शुभ समाचार कहो।

सौदामिनी : वत्स, घवडाओ मत, तुम्हारी प्यारी अभी तक जीती-जागती है। अब चिता का कोई काम नही।

माधव-मक० · माता, यह क्या बात हुई, फिर हमे भी वताना चाहिए।

सौदामिनी : जब कराला के मदिर मे नराधम अघोरघंट मालती का वलिदान कर रहा था, उसी समय माधव ने उसका वध किया।

माधव : माता, वस रहने दीजिए, सब समझ गया।

मकरद : मित्र तुम क्या समझ गए और कैसे समझ गए।

माधव : है क्या, कपालकुडला ने अपना प्रण पूरा किया इसके सिवाय और क्या होगा ?

मकरद . देवी, क्या माधव का कथन सत्य है ?

सौदामिनी : हा, वत्स ने जो कहा वही बात है।

मकरंद : हाय-हाय—

शरद चन्द्र की चन्द्रिका, दैव-योग यदि पाइ।
सरसावन रमनीय गुन, मिलै कुमुद गन आइ ।।
तिह सुन्दर संयोग मे, का विधि सोचि अजोग।
छाइ विपत्ति अकाल घन, डारचो दुसह वियोग ।।४६।।

माधव : हाय प्यारी, मेरे लिए तुम बड़े बुरे के पाले पडी हो—

आइ अचानक जब गह्यो, वा ने तोहि उताल ।
भई होइगी अस दशा, कमल-मुखी तब बाल ॥
ज्यो अकलंक मयंक की, कला प्रकास-प्रवीन ।
क्रूर केतु के बस परत, होति ज्योति-छवि-छीन ॥५०॥

भगवती कपालकुंडला,

मृदु मंजु मनोरम माधुरी मूरति देव अदेवनु के मन भावै ।
यहि सो तुव लालन पालन योग दया करि यो जनि याहि सतावै ।
नित पुष्प सुगन्धित को सब ठौर स्वभावहिं सो जग सीस चढावै ।
बनि के निरमोही न कोउ जनो तिन कों दलि पायनु के तर दावै ॥५१॥

सौदामिनी : वत्स, निष्प्रयोजन दुखी मत हो—

यदि या पापिनि कौ न मै, करती कारज व्यर्थ ।
निश्चय बिना विलम्ब के, हो तो महा अनर्थ ॥५२॥

माधव-मक० : देवी, आपने हम पर परम अनुग्रह किया है, पर यह अनुपम अनुकंपा करने वाली उदार चेता आप कौन है, सो कहिए ।

सौदामिनी : इसकी अभी कोई आवश्यकता नही है । जब समय आवेगा तब वह भी बता दिया जाएगा (**उठकर**) इस समय मैं—

गुरुसेवा तप तत्र मंत्र औ योग ।
लहि विविध यथा विधि इन सबको संयोग ।
जो सिद्ध मोहिनी माया प्रगटै प्यारी ।
अब विस्तारौ तब हेतु सुमगलकारी ॥५३॥

(**माधव के साथ जाती है**)

मकरंद : आश्चर्य है, आश्चर्य है—

परम भयानक दृश्य, मिलै तम विद्युत जानौ ।
छिन भर दृग चकाचौधि न जाने कहाँ सिरानौ ॥

(**भय के साथ देखकर**)

कहा गयो मम मित्र ? (**सोचकर**)
समझ मे हाँ अब आई ।
योगेश्वरी अपार अपनि माया प्रगटाई ॥५४॥

(**विचार कर**) अरे क्या अर्थ का अनर्थ तो नही हो गया, कही कपालकुंडला ही योगेश्वरी बनकर माधव को न उड़ा ले गई

हो, कुछ बात समझ मे नही आती ।

अचरज बड़ो जो विपति पहली विसरि मानौ सब गई ।
उत्पन्न यहि नव शंक ज्वर जर-जर दशा कैसी भई ॥
हरि जात छिन भर कबहूँ बाढत मोह-अवरण छाइकें ।
उर उदय आनद शोक कौ मिलि होत इक सग आइकें ॥५५।

तो इस गहन वन मे लवंगिका-मदयंतिका के साथ जाऊं और
श्री कामदकी देवी को ढूढकर उनसे यह सब वृत्तात कहू ।

इति सौदामिनी दर्शनो नाम नवमोऽङ्क

अंक १०

[स्थान—वन]

(कामंदकी, मदयतिका और लवंगिका आती है)

कामंदकी : (आंसू भरकर करुण स्वर से)

हा बेटी मालती, तू कहा चली गई ! हाय तेरे बिना मेरी गोद सूनी हो गई। अरी तू कहा है, उत्तर क्यो नही देती !

प्रति छिन तेरी बाल-कलोलनि डोलनि प्यारी।
बोलनि लोल अमोलनि मधुरी हिय सुखकारी ॥
तिन सुधि पल पल आइ आइ सब देह पजारै।
बिसरें विसरति नाहिं शोक सो हृदय विदारै ॥१॥

अरी बेटी,

छिनक रोवति पुनि हँसति, बिन हेतु चमकावति भली।
कोमल कली ज्यो कुन्द की कल कढ़त निज दसनावली ॥
तुतराति कहि कछु की कछू, मजुल मधुर बातें घनी।
शिशु भाव के तव कंज मुख की अजहुँ मोहक सुधि बनी ॥२॥

लवं०-मद० : (रो कर) हा प्यारी सखी, सुप्रसन्न-मुख-चंद्र-सुदरी, तुम कहां गईं ? बलिहारी है उस कुलिश कठोर हृदय वाले विधाता की, जिसने तेरे सिरस सम सरिस सुकुमार शरीर पर, तुझे अकेली असहाय पा, ऐसा कठिन वज्राघात किया ! हा माधव, अब अपने मुख-चद्रमा को आज से अस्त हुआ ही जानो !!

कामंदकी : (बड़े खेद के साथ) हा मेरे मालती-माधव—

स्वच्छ सुखद सुन्दर सरल, मृदुल परम सुख दैन।
नित नव सोहनु रागमय, मन मोहनु रस ऐन ॥

सो ऐसो संयोग तव, हन्यो दैव बिन बात।
जैसे लवलि लवंग को, विलगत झंझावात ॥३॥

लवंगिका : (बड़े उद्वेग के साथ) हे पापी हृदय, तू वज्र का है जो अभी तक नही फटा। (छाती पीटकर गिरती है)

मदयन्तिका : सखी देख इतना मत घबड़ा, छिन-भर चित्त को ढाढस दे।

लवंगिका : बहिन, क्या करूं ये अधम प्राण वज्र कील से जड़े हुए हैं जो इतना दुख पाकर भी नही निकलते है।

कामंदकी : बेटी मालती, लवंगिका तो तेरी जन्म की प्यारी थी। यह तेरे लिए मरी जा रही है, तो भी तू विचारी पर दया नही करती। अरी इसे तो देख—

दीपति लहि जो तव दरस, सनी सनेह अपार।
जाकी जग मे एक बस, तू ही प्रानाधार॥
सो तेरे बिन हाय यह, ऐसी लखै मलीन।
दीप-शिखा सो बिछुरि जिमि, बाती आभा-हीन ॥४॥

री निर्दय! इस कामदकी को क्यों त्याग रही है? जिसके अचल मे लिपट-लिपटाकर बडी हुई, क्या उसका भी तुझे स्मरण नही है?

दूध के छोडत ही सुमुखी तू, मनो गुडिया, घनी लाड़-लडाई।
खेल खिलाई सिखाई बिनै बढिबे लगी तैसेहि विद्या पढाई।
लोक मे चारु गुनी वर सुन्दर ब्याहनु मे भई मैं ही सहाई।
ऐसी न चाहिये तोहि कठोरता मैं तुव मातहुँ सो अधिकाई ॥५॥

(विकल होकर) हा चंद्रमुखी! अब तो मैं अत्यंत हताश हो गई हू—

बिन कारण मुसकात मजु मुख नीको।
पीरी सरसों को लग्यो जासु सिर टीको॥
अस सुतहिं गोद मे दूध पियावत बेटी।
लखि सकी न ताको, हाय भाग की हेटी ॥६॥

लवंगिका : मा! मेरी बात सुनकर रिस मत होना, अब मैं इन निगोडे प्राणो को छिन भर भी नही रख सकती। इसी गिरि-शिखर से कूद अब असह्य यातना से मुक्त होती हूं। मां! तुमसे अंत मे यही प्रार्थना है कि परलोक मे भी मेरा उस प्रिय सखी से मिलाप हो जाए, ऐसा आशीर्वाद दीजिए।

कामंदकी : बेटी लवंगिका, यहा से आगे मेरा भी जीना कठिन क्या असंभव ही है। उसके वियोग के कारण ये प्राण भी मुझे भारी हो गए है, मेरी घबराहट तुमसे भी अधिक बढ गई है—

जो कर्मन के खोट, बासो होहि मिलाप नहि।
तउ वियोग की चोट, प्राणहि तजें सिराइ है ॥७॥

(उठती है)

लवंगिका : जो आपकी आज्ञा।

कामदकी : (सदय देखकर) बेटी मदयंतिका।

मदयंतिका : मां, क्या परलोक मे आगे जाने के लिए मुझे आज्ञा करती हो। मैं पहले ही से सब प्रकार से उद्यत हू, चलो चलें।

लवगिका : सखी, मेरी इतनी मान, प्राण त्याग करने का साहस मत कर। अपने प्राणनाथ के साथ सुख से रहना और हम लोगों को मत भूल जाना।

मदयंतिका : (क्रोध से) चलो हटो, क्या मैं ऐसी बघुआ कर पाई हू, जो मुझे भावेगा सो करूंगी।

कामंदकी : हाय, इस दुखिया ने भी दृढ निश्चय कर लिया है, अब कैसे हो ?

मदयंतिका : मेरौ हाथ जोरि परनाम।

तुव चरननु मे प्रान पियारे प्रम दया के धाम ॥
यही निवेदन जनम-जनम मे मोहि न तुम विसरैयो।
या दासी की भवसागर मे नैया पार लगैयो ॥

लवंगिका : माता, यही तो वह शिखर है जिसके नीचे मधुमती का स्रोत बह रहा है।

कामंदकी : तो बस जो निश्चय कर लिया है उसके करने मे व्यर्थ समय नष्ट नही करना चाहिए। (सब गिरने को उद्यत होती हैं)

(नेपथ्य में)

आश्चर्य है ! आश्चर्य है !!

परम भयानक दृश्य, मिले तम विद्युत जानौ।
छिन भर दृग चकचौधि न जाने कहाँ सिरानौ ॥

कामदकी : (हर्ष के साथ) का यह मेरो लाल !

मकरद : (आता हुआ) समझ मे हाँ अब आई।
कोउ न, योगेश्वरी अपनि माया प्रगटाई ॥८॥

(नेपथ्य में)

वडी भारी भीड हो रही है—

सुनि मालति को मरन जगत सो है विरक्त मन।
जीवन हू को मोह त्यागि दुःखित अति यहि छिन।
स्वर्ण-विन्दु ढिग चिता माहि जरिवे को करि प्रन।
जात भूरिवसु, हाय जियें किहि भांति प्रजा जन ॥९॥

मद०-लवं० : हाय मालती-माधव छिन भर भी एक-दूसरे के साथ सुख न कर सके, अनर्थ हो गया।

काम०-मक० : कैसा योग मिला है! इस समय आनंद, कष्ट, आश्चर्य की भावनाएं परस्पर आकर कैसी गुफित हुई हैं।

कैधो असि पत्र-धार तीछन अखंड संग—
ये श्री खड-रस छटा-सार छिटकायो है।
दहकत अगनि-अंगार युत यह कैधो—
विन घन वसुधा पै सुधा वरसायो है।
विप सग अमृत को सुन्दर सजोग यह—
किम्वा अन्धकार औ प्रकाश संगवायो है।
आज विधि मानो यह कुलिश कठोर, और—
चारु चन्द्रकर को मिलाप करवायो है ॥१०-११॥

(नेपथ्य में)

हा तात! ठहरो, क्या करते हो। हाय मैं आपके दर्शनो के लिए घवडा रही हूं, प्रसन्न होकर मुझ से मिल तो लीजिए। हा, मेरे कारण सब ससार के मंगलाधार अतुल वैभव के आगार एव विश्व-विदित समुज्ज्वल स्वरूप आप अपने प्राण त्याग देते है। हा, मैं वडी निर्दय हू, नृशंस हूं, पाषाण-हृदया हू? मैं समझी थी कि आपको मेरा कुछ मोह नही है, चिंता नही है किंतु आपके इस सतान-स्नेह के असाधारण उदाहरण को देख यह मेरा हत-हृदय वड़ा लज्जित है। हाय, मैंने क्यो वैसा कलुपित विचार किया था।

कामदकी : हा वेटी मालती!

तोहि शशि कला समान, नयो जनम लहि तोउ पुनि।
यह अनर्थ-वलवान, राहु मनो चाहत ग्रसन ॥१२॥

लवं०-मद० : हा प्यारी सखी!

(मूर्छित मालती को संभाले हुए माधव आता है)

माधव : हाय कैसा कष्ट है—

गति करि एकहुँ विपति सो, प्यारी छूटी नाहिं।
दैव-योग सो पुनि परी, दूजी सशय माहिं ॥
या जग मे विधि हीय निज, करनु विचारत जोय।
वह सौ विधि है के रहै, सकै मिटाय न कोय ॥१३॥

मकरद : मित्र, आप खूब आए, किंतु वह योगेश्वरी कहां है।

माधव . श्री पर्वत सो अति ही उताल। हम आइ रहे तिह संग हाल ॥
सुनि वन मे करुणामय विलाप। नहिं लखी, विछुटि गई अपुहिं आप ॥१४॥

काम०-मक० : (आकाश की ओर देखकर) देवि, एक बार हमारी इस विपत्ति से रक्षा करो। आप क्यो अंतरध्यान हो रही है, अब विलब करने का समय नही है।

मद०-लव० : मालती, सखी मालती, (कांप कर) मा, रक्षा करो, बडी देर से इसके हृदय का श्वांस भी रुक गया है। हा अमात्य भूरिवसु ! हा प्यारी सखी ! तुम दोनो परस्पर एक-दूसरे की मृत्यु के कारण हुए। इसके लिए आप और आपके लिए यह इस अवस्था मे है।

कामंदकी : हाय दुलारी···

माधव : हाय प्यारी···

मकरद : हाय मालती···

(सब मूर्छित हो जाते है और फिर जागते हैं)

कामंदकी : (ऊपर देखकर) अरे, यह क्या है जो आकाश से, बादल चीरता हुआ गिरकर, रस बरसा की भाति, हमे जीवन-दान देता है।

माधव : (सांस भरकर) क्या मालती मे फिर प्राण लौट आया ?

दीरघ स्वास लैन सो कम्पत पीन पयोधर सोहे।
लहरत हृदय स्वभाव-चारुता-अयन नयन मन मोहै ॥
मूर्छा-विगत मंजुमुख मडल पुलकि प्रसन्न विराजै।
जिमि प्रभात श्री के दर्शन सो पद्म प्रफुल्लित भ्राजै ॥१५॥

(नेपथ्य में)

पर चरण नन्दन सनृप, तोऊ कही न मानि।
आतुर जरिवे अग्नि मे, अपने मन प्रण ठानि ॥

चले भूरिवसु किंतु पुनि, लौटे सुनि मम बैन।
अचरज की यह बात है, कैसे सुख की दैन ॥१६॥

माधव-मक० : (ऊपर देखकर) माता बहुत अच्छा हुआ।

प्रगटी वह योगिनी याहि बार। घन सघन पटल को
चीरि चार ॥
जाके वचनामृत जलासार। करि पान, जलद कौ जल
असार ॥१७॥

कामदकी : मेरा मन मयूर भी नाच उठा है।

मालती : मैं तो फिर जी उठी।

कामंदकी : (हर्ष से आंसू भरकर) आओ बेटी, मालती।

मालती : अरे ये तो मां कामदकी हैं। (चरणो में गिरती है)

कामदकी : (मालती को उठाकर और हृदय से लगाकर)

जीयो सदा सुख सो भरी, निज पतिहि जीवनु-दान दै।
सुहृद जन जासो तवै, सब लहे परमानंद को ॥
हिम सदृश शीतल अग सो, मिलि सखिनु मोहि जिवाइ लै ॥१८॥

माधव : मित्र मकरंद, अब यह ससार मेरे जीवित रहने योग्य हुआ। इस कारण जीते रहने की इच्छा होती है।

मकरद . (सहर्ष) भाई अपनी यथार्थ अभिलाषा अवश्य ही चरितार्थ करो।

लव०-मद० : प्यारी बहिन हम तो तुम्हारे मिलने से निराश हो चुकी थी। आओ हम लोगो मे मिल तो लो।

मालती : मेरी प्यारी बहिनो। (दोनों से मिलती है)

कामदकी : भैया यह बात क्या थी ?

माधव : माता,

अति ही कोप, कपालकुण्डला, निज उर धारी।
कियौ मालती हरण विपति अति हम पै डारी ॥
कठिन जतन करि तासो जोगेश्वरी बचाये।
भये आज कृतकृत्य तिहारे दरसनु पाये ॥१९॥

कामदकी . अच्छा, अब समझ मे आया, उस अघोरघट के वध का यह सब प्रायश्चित करना पडा है। हा तो, उस चडिका कपालकुडला ने अपने गुरु का बदला लेना चाहा था, क्यो ?

लवं०-मद० : देखो, कैसा आश्चर्य है। खेल तो सब बिगड ही चुका था किंतु अत को दैव ने अच्छा ही किया।

(सौदामिनी आती है)

सौदामिनी : भगवती कामदकी ! चिरकाल की सखी और शिष्या सौदामिनी आपके चरणकमलो मे विनीत भावपूर्वक प्रणाम करती है।

कामंदकी : आहा, प्यारी मंगलमूर्ति सौदामिनी !

माधव-मक० : हा अब ठीक-ठीक हाल खुल गया, श्री कामंदकी देवी की ये प्रथम शिष्या है, इसीलिए यह इनका इतना संग देती है !

कामंदकी :

आवौ-आवौ भूरिवसु-प्राण-दान-प्रिय दैनि।
बहु दिन मे देखी अहा, सुकृत सुमंगल ऐनि॥
मुदित भई लखि तुमहि, यह रहन देउ परनाम।
हृदय भेटि सौहृदनिधे दीजे सुख अभिराम ॥२०॥

इसके सिवाय,

वन्दनीय जग मे तुमहि, जिहि सिद्धि स्पृहनीय।
बोधसत्व हूँ सो परै जिनके गुन कमनीय॥
जो तुम रोप्यो प्रेम-प्रन-बीज प्रथम अनुकूल।
लहलहात सो अब फल्यो तरु मुद मंगल-मूल ॥२१॥

मद०-लव० : अच्छा तो यही सौदामिनी है ?

मालती : सखी, ये धन्य है। इन्होने ही मा कामदकी का पक्ष लेकर कपाल-कुंडला की यथोचित दुर्दशा की। मुझे अपने यहा लिवा ले गईं। बेटी की तरह बडे प्रेम से रखकर सब प्रकार धीरज बंधाया। मुझी से मौलसिरी की माला ली और उसी के सहारे इन्होने ही तुम सब लोगो को मरते-मरते बचाया।

मद०-लव० : अच्छा तो श्री कामदकी को बड़ी मा और इन्हे अपनी छोटी मा कहना चाहिए, देखो इस समय ये कैसी प्रसन्न हो रही हैं !

माधव-मक० : वाह वाह,

बिन चिन्ता-श्रम नहिं करै, चिन्तामनि हू काज।
सकल अचिन्तित रचि कियो, इन तौ अचरज आज ॥२२॥

सौदामिनी : (आप ही आप) ये लोग इतने अधिक सज्जन हैं कि इनके सामने मुझे भी लज्जित होना पडता है। (प्रगट) भगवती कामंदकी, पद्मावती पुरी के अधीश राज-राज महाराज चित्रसेन ने मंत्री श्री भूरिवसु के सामने और नदन की सम्मति से, यह पत्र कर-कमलो से स्वयं लिखकर चिरंजीव माधव के लिए भेजा है। इसमे जो हो, सो कृपया पढ़ लीजिए (पत्र देती है)

कामंदकी : (पत्र लेकर पढ़ती है)

स्वस्ति श्री सब जोग गुनी जन के अधिनायक।
विमल वंस अवतंस सदय सहृदय सुखदायक।
यदपि परे घन विघन, तऊ चिन्ता कछु नाहीं।
तुम जैसे महमान पाइ प्रमुदित मन माहीं।
श्री मकरन्दहिं मदयन्तिका दई तिहारी प्रीति सों।
मालति माधव तुमको पुलकि व्याही पुण्य प्रतीति सों ॥२३॥

(माधव से) भैया सुना तुमने ?

माधव : हां जी सुना, महाराज ने बड़ी कृपा की, अब हम लोग कृतकृत्य हुए।

मालती : बड़ी बात हुई, मेरे हृदय से भी भय का कांटा निकल गया।

लवंगिका : तो अब मालती-माधव के मनोरथ पूर्ण हुए।

मकरंद : (सामने देखकर) ओहो, ये तो बुद्धरक्षिता, अवलोकिता और कलहंस नाचते हुए इधर ही आ रहे हैं।

(अवलोकिता, बुद्धरक्षिता, कलहंस आते हैं)

अव०-बुद्ध०-कल० : माता कामंदकी देवी की जय हो, जिनकी कृपा से सब कार्य सिद्ध हुए। (माधव से) मकरंद-चकोर के चारु-हृदयानंद, माधव-चंद्र की जय हो।

लवंगिका : भला ऐसे अवसर पर भी कौन न नाचेगा। इस समय सबको अत्यंत हर्ष और आश्चर्य होना ही चाहिए।

कामंदकी : हां-हां, तुम्हारा कहना बड़ा ही युक्तियुक्त है। ऐसी आश्चर्यमयी घटना पहले कभी किसी ने, देखना तो दूर रहा, सुनी भी न होगी क्योंकि इस में रसों का समावेश है।

सौदामिनी : इसमें सबसे अच्छी बात तो यह हुई कि अमात्य भूरिवसु और देवरात ने जो अपने बच्चों के व्याह की प्रतिज्ञा की थी वह पूरी हो गई।

मालती : (आप ही आप) यह क्या कहता है ?

माधव-मक० : यथार्थ बात तो कुछ निराले ढंग की है किंतु श्री सौदामिनी ने उसका वर्णन भिन्न रीति से किया है।

कामंदकी : (आप ही आप) अब तो सब चिंता ही मिटी, मालती के विषय में तो पहले ही कुछ भय न था, भय था केवल नंदन का कि न जाने वह मदयंतिका के विषय में क्या कहे, सो भी अब दूर हो गया। (प्रगट) जब हम लोग कुंडनपुर महाविद्यालय में पठन-पाठन करते थे तब मेरे और इन सौदामिनी के सामने श्री भूरिवसु

और देवरात ने परस्पर समधी बनने की प्रतिज्ञा की थी। परंतु केवल महाराज की प्रसन्नता के लिए अमात्य भूरिवसु को क्या करना पड़ा, सो सब तुम जानते ही हो। अस्तु श्री सौदामिनी के कथन मे अणुमात्र भी असत्यता नही है।

मालती : कैसा छिपाया है।

माधव-मक० : बड़ो की नीति कैसी अद्भुत होती है, उनकी चालो का पता लगाना सहसा सहज कार्य नही है। उनके अंतरंग हेतु कुछ और ही होते है, और प्रगट मे वे करते कुछ और ही है। उनकी कृति, आनंद, आश्चर्य और कल्याण से ओतप्रोत होती है।

कामंदकी : वत्स माधव—

तव मजु मनोरथ पूरव ले काउ पुण्य सो फूले फले प्रिय आई।
मम शिष्य असेस कलेसनु की सब ही विधि सो विधि पार लगाई।
मकरन्द ओ तोहि मिली दुलही नव नेह लता सुखदाई।
नृप नन्दन राजी भये सबरे कहो चाहत का अब और
भलाई ॥२४॥

माधव : इससे बढकर और क्या हो सकता है, तो भी आपके प्रसाद से—

विलसहिं नित सुकृत संत, पापिनु को होइ अन्त,
राजैं नृप धर्मवत, सतत न्यायकारी ॥
सीखे उपकार करनु, सब जन निज भेद हरनु,
दारिद-दुख दोष दरनु, जीवनु संचारी ॥
बरसे घन सघन छाय, यथा समय आय आय,
जासो भुवि लहलहाय, सस्य रासि धारी ॥
सुधरें कलुषित चरित्र, उदय भाव हो पवित्र,
लहि सुराज सत्य-मित्र, हो पूजा सुखारी ॥२५॥

कामदकी : एवमस्तु।

(यवनिका पतन)

इति मालती माधवे नाम दशमोऽङ्कः

चर्पट पंजरी

समर्पण

सब भांति नाथ अजोग हौं सेवा नहीं कछु बनि परै।
मतिमद जर्जर देह नौका पार भवनिधि किमि करै॥
इक अमल आश्रय रावरो निज जानि जन करुणा करो।
यह भेंट किंचित दीन की स्वीकारि मन आनंद भरो॥

दीजिय नित आशिष निरत, सत्यनरायण दास को।
तासों तवै पद पद्म रत, मन-षट्पद मेरो रहै॥

भवदीय
चरण चंचरीक सत्यनारायण

प्रतिबिम्ब

भज गोविंदहि भज गोविंदहि,
गोविंदहि भजि मूढ अरे।
लहि समीपवरती निज मरना,
करै न रक्षा 'डुकृञ्' करना ।।भज०।।

भावार्थ

रे मूरख भजि राम कौं, राम भजे गति होइ।
मौत आइ घेरै जभी, कौन बचावै तोइ ।।

बाल अवस्था मे क्रीडागत,
ह्वै के तरुण भयौ तरुणीरत।
वृद्धपने मे चिन्ताधीना,
पारब्रह्म सों कबहुँ न लीना ।।भज०।।

लरिकाई गई खेल मे, ज्वानी जोरू संग।
बूढ भयौ सोचत रह्यो, रंग्यौ न हरि के रंग ।।२।।

पीन पयोधर जघन स्थाना,
लखि तिय माया मोह फँसाना।
यह सब मांसवसादि विकारा,
मनहि बिचारहु बारंहि बारा ।।भज०।।

उभरी छाती देखि कें, परसत जांघ सुडौल।
मोह जाल ऐसौ फँस्यौ, करत नारि सो चौल ।।
चरबी मास बढोतरी, दीसति अच्छी नारि।
बेर बेर तू सोच कें, मन मे नेंक बिचार ।।३।।

सिथिल अंग, सिर सेत घनेरी,
दशन विहीन भयो मुख तेरो।
ह्वै अति वृद्ध फिरत गहि डडहि,
तदपि न छांडत आशा पिडहि ॥भज०॥

सूखि आग मूडी हलत, मुँह मे एक न दांत।
बूढ भयो लाठी गही, तऊ न आशा जात ॥४॥

जबलौं धन सचय बल देही,
तव लौं है परिवार सनेही।
भयो जवै पुनि जरजर गाता,
कोउ न पूछत घर मे वाता ॥भज०॥

हाथ पाइँ जौलौं चलें, जौलौं टका कमाइ।
तौलौं आदर होत है, जब घर भीतर जाइ॥
हाथ पाइँ जब थकि गये, कौड़ी नही कमाइ।
बात न कोऊ पूछई, जब घर भीतर जाइ ॥५॥

निशिदिन सध्या प्रात जु धावे,
शिशिर बसंतहु पुनि पुनि आवे।
नाचत काल जु बीतत आयू,
तदपि न छांड़ति आशा-वायू ॥भज०॥

राति दिना बीतत रहैं, अब संझा तब भोर।
जाड़े गरमी होत हैं, काल बडो है चोर॥
खेलत कूदत लेत है, सिगरी उमरि चुराइ।
तबहू तो मनते नही चाह नेक हू जाइ ॥६॥

बैस गये, का काम विकारा?
जल सूखे सर की का सारा।
छीन भये धन का परिवारा?
समझे तत्त्वहि का संसारा? ॥भज०॥

उमरि घसें रसियापनो, जल सूखें का ताल!
छांडै कुटुम गरीब को, ज्ञानी जग जंजाल ॥७॥

रखहिं, मुडांहिं, उपारहिं केशा,
भगवां पट करि धरि बहु भेषा।
लखतहु पै न लखत संसारा,
करत उदर हित शोक अपारा ॥भज०॥

कोऊ जटा रखाइ कें, कोऊ मूँड़ मुडाइ ।
कोऊ बार उखारि के, भगवाँ भेख बनाइ ॥
सूझत हू अंधौ बनै, जग नहिं देखै आप ।
पेट काज रोवतु फिरै, बाँह लगाये छाप ॥८॥

मग चिथरन सों निरमित कंथहि,
धरमाधरम न जानत पंथहि ।
न मैं, न तू, अरु ना यह लोका,
तो किहि काज समेटत शोका ॥भज०॥

घूरे लत्ता बीनि कें, सियत काँथरी जोइ ।
पाप पुन्न मानें नही, जो चाहे सो होइ ॥
मैं अरु तू कोउ अमर नहिं, अमरन दुनियाँ होइ ।
तोऊ मरती बेर क्यो, देखि देत तू रोइ ॥९॥

आगें अग्नि पिछारी भानू,
निशि में करत चिबुक तर जानू ।
कर भिक्षा, तरु नीचै बासा,
तदपि न छाँडत आशा—पाशा ॥भज०॥

आगे धरि कैं आगि कौं, सूरज कौ दै पीठ ।
घोंटुन पै ठोड़ी धरै, राति कटति है नीठ ॥
हाथ पसारे भीख कों, करै पेड़ तर बास ।
या गति कों पहुँचै तऊ, नेक न छाँड़त आस ॥१०॥

को मैं ? कहँ से ? कहँ को आता ?
को मम मातु ? कौन मम ताता ?
लखि जिय सकल असार पसारा ।
तजि कै यह सब स्वप्न बिचारा ॥भज०॥

को मैं अरु आयौ कहाँ, कितते गयौ जु आइ ।
बाबा मेरौ कौन है, को है मेरी माइ ॥
ये दुनियाँ जो दीखती, फीकी सब तू जानि ।
या सबकूं तू छोडि दै, सपने की सी मानि ॥११॥

को तव पत्नी ? को तव पुत्रा ?
यह संसार अतीव बिचित्रा ॥
को का कौ ? तू को ? कित आई ?
चिन्तन करहु तत्त्व को भाई ॥भज०॥

जोरु तेरी कौन है, बेटा तेरो कौन।
अचरज की दुनियाँ बनी, जाकूँ जाने कौन ॥
को तू, है तू कौन को, कहाँ गयो तू आइ।
निह्चै बात विचारियो मन मे मेरे भाइ ॥१२॥

फिर फिर मरना फिर फिर होना,
फिर फिर मात उदर में सोना।
यह जग अगम गहन भयकारी,
कृपया तारो मोहि मुरारी ॥भज०॥
फिर फिर जीवै फिर मरै, फिर मैया के पेट।
ये जग खोटो राम मोहि, लै बचाई दुख मेट ॥१३॥

गावहु गीता सहस्रनामा,
ध्याउ सदां हरि-रूप ललामा।
सेवहु नित सतसंग सुहाता,
करहु दान दीनहि वित ताता ॥भज०॥
गीता गावहु प्रेम सो, हरि के नाम हजार।
सगत कीजे साधु की, सब छूटैं जंजार ॥
जितनो बनि तो पै परै, तितनो कीजो दान।
भूखो आवै द्वार पै, कीजो कछु सनमान ॥१४॥

भगवतगीता किंचित ध्यायो,
बुंद मात्र गंगाजल पायो।
जाने रची मुरारी अर्चा,
ताकी यमहुँ करै नहि चर्चा ॥भज०॥
गाई गीता नेंक हू, कबहूँ पूजे राम।
गंगाजल नेंकहु पियो, जम नहि राखै काम ॥१५॥

सुरसरि तट तरु मूल निवासा,
शैया भूतल मृग-पट खासा।
सकल परिग्रह भोगहिं त्यागा,
किहि न देत सुख यह वैरागा ? ॥भज०॥
गंग किनारे जाय कें, रुख तरे तू पैठ।
हिरना खाल बिछाइ कें, धरती पै तू बैठ ॥
घर के सब सुख छोड़ि कें, क्यो नहि होत अलग।
राम नाम सुख लूट लै, जीवित है जब लग ॥१६॥

परम रसायन हरि गुण गायन।
सुख दायन सबके चित चायन॥
नारायन-पद-प्रेम परायन।
भजहु निरन्तर सत्य नरायन॥भज०॥

सुन्दर चटपटी पञ्जरी, शङ्कर स्वामि प्रणीत।
सतनारायण दास सों, ता छाया वरणीत॥
कवि कोविद कछु हौ नहीं, पिंगल कौ न विचार।
सन्त हंस-गुण पथ गहहु, परिहरि बारि बिकार॥
रसना सो रस ना लियो, कृष्ण प्रेम रस स्वाद।
आय रसा पर जिन कर्यौ, केवल वृथा विवाद॥
यासो मन दृढ करि बचन, स्वामी तुलसीदास।
"रचि रचि निज निज पौरुषहिँ, मसक उडाहिँ अकास॥
हरि जस रसिक सुजान हित, किय तुकान्त पद जोर।
मीठी सीठी जो कछू, यह रचना है मोर॥
दोष लखौ जामे कछुक, लीजौ सुमति सुधार।
दीजौ आशिष दास को, कृपया बारहिं बार॥
"दत्त चित्त ह्वै सबहि विधि, करौं नागरी-नेह।
"याही बिधि सेवत रहौ" दास-विनय बस एह॥

रघुवंश

वक्तव्य

प्रातःस्मरणीय महानुभाव कवि-कुल-केशरी कालिदास की कमनीय कविता जैसी एतद्देश निवासियो की पूजनीय है, ठीक उसी प्रकार अन्य देशों मे भी अपने प्रचुर चमत्कार से सबको चकित कर आदरणीय बनी है। लगभग संसार भर की प्रसिद्ध भाषाओं मे इसका अनुवादित होना ही उत्कृष्ट प्रमाण है।

कवि ने जिस चमत्कारिणी मनोहारिणी मधुरता के साथ अपनी सरल ओजस्विनी रचना का परिचय दिया है, वह मानो उनके पद-पद पर टपका पडता है। इनके ग्रंथो का पाठ करते-करते, मन सुंदर स्वर्गीय सुखानुभव कर मुग्ध हो जाता है। हृदय मे जो गंभीर शांतिमय, आनदामृत-वर्षा होती है वह वर्णनातीत है। मधुर छंद गूथने मे कालिदास अद्वितीय हैं। जिस प्रभाव के साथ यह कवीदु हार्दिक भाव का आदर्श सरल सारगभित स्वल्पाक्षरावली मे खीचते हैं, कदाचित् उसे देखकर इनके प्रत्येक पद्य को सचित्र भाव कहने से अत्युक्ति नही होगी। कालिदास कृत कल कानन निनादिनी काव्य सुर-सरि मे एक बार पैरना सीखकर ही समग्र संस्कृत साहित्य सागर मे प्रवेश करने की शक्ति आ जाती है, और इसी से सर्वत्र इनकी कविता विशेप प्यारी है।

इन्ही कवि प्रणीत मजु मनोहर मधुर कवितामय ग्रंथो मे से परम प्रसिद्ध 'श्री रघुवंश' भी अपनी छटा का एक ही है, और इसके ऊपर कितनी ही मनो-रम सस्कृत टीकाएं हो चुकी हैं।

असस्कृतज्ञ पाठक मंडली जो कविकुलाग्रगण्य कालिदास सृष्ट अनुपम सुधारसास्वादन से वंचित है, उसकी श्रवण एवं पठन पिपासा परितृप्ति के

लिए कई नागरी रसिको ने इसका नागरी-गद्य-पद्यानुवाद करके अपना श्रम दिखाया है। अत्यंत शुभावसर मे उन अनुवादों का प्रणयन हुआ था। उसके हेतु हिंदी साहित्य प्रेमियो के वे लोग शतशः धन्यवाद भाजन है। अब रही यह बात कि ये अनुवाद कैसे है, इस पर भिन्न-भिन्न विद्वानो के भिन्न-भिन्न मता-मत भी प्रगट हो चुके है तब इस विषय मे अधिक कथन करना अनावश्यक प्रतीत होता है।

फिर भी इस अनुवाद की आवश्यकता क्यो हुई यह केवल इसके पढ़ने से ही प्रतीत हो सकेगा। माना कि पद लालित्य मूल ग्रथ के समान इन हिंदी पद्यो मे नही है परंतु यथासभव भाव को पूर्णतया प्रकट करने का प्रयत्न किया गया है।

यदि प्रेमी पाठको के चित्त विनोदार्थ अल्प सामग्री भी प्रस्तुत करने मे यह दास किंचित मात्र सफल हुआ हो, तो अपने को धन्य मानेगा।

सन् १९०५ ई०

—सत्यनारायण

दिलीप कथा

बानी-अर्थ समान मुक्त जो, जग के मा पितु जानी।
वाक्य अर्थ के बोध हेत, नित बंदो शम्भु भवानी ॥१॥

कहाँ तुच्छ मति मोर, कहाँ दुस्तर रवि वंश अपारा।
तरन चहौ, लै डोंगी, भ्रमबस, पारावारहिं पारा ॥२॥

अति मति मद सुकवि-जस चाहो, होगी लोग हँसाई।
बौना की सी, उच्च फलहिं जो, उचकत बाँह उठाई ॥३॥

किन्तु प्रथम ही जासु वंश कौ खोल्यौ कवि जन द्वारौ।
बज्र-बिधी-मनि-सूत भाँति मो जासो होय गुजारौ ॥४॥

चेरी जिनकी सिद्धि, जनम सो जो अति पावन भारी।
सिन्धु छोर लो भूप, चलत रथ जिनके स्वर्ग मँझारी ॥५॥

यथा त्रिधी रचि यज्ञ किये, जिन याची सदा अयाची।
जस अपराध दण्ड तस दीन्हौ, चौकस अवसर जाँची ॥६॥

दान दैन धन जोरि, सदा जो सत्य हेत मित भाखी।
जय संचयी सुयस हित, जिन तिय बंस चलावन राखी ॥७॥

बालापन पढि ब्रह्मचर्य सो, रमी रमणि तरुणाई।
वृद्ध समय मुनि भाँति योग करि, तजी देह हरि हथाई ॥८॥

सकत न जदपि बखान, तऊ रघुकुल कौ कहन विचारयौ।
सुनि कानन तिन-कथा चुलबुले चंचल चित को मारयौ ॥९॥

परखहिं वही सजन जाको, जो साँच असाँच प्रमानें।
जैसे आँच तपाव, कनक की सेत स्यामता मानें ॥१०॥

चतुर सिरोमनि माननीय नृप बैवस्वत मनु नामा।
छदन मे जिमि 'प्रणव' प्रथम, तिमि भयौ भूप अभिरामा ॥११॥

परम पवित्र तास कुल सुन्दर, अति पवित्र नृप-चन्द्र ।
उपज्यौ नृप दिलीप नय नागर, जिमि छीरोदधि-इन्द्र ॥१२॥

वृषभ कन्ध, बल बिपुल, हृदय भुज दीर्घ शाल अनुहारा ।
जिमि स्वधर्म पालन हित तत्पर क्षात्र-धर्म-अवतारा ॥१३॥

तेज और निज प्रबलपने सो करि सब को मद चूरी ।
बढि, सुमेर सौ, बसुन्धरा जिन करी स्वबस भरपूरी ॥१४॥

देह समान बुद्धि बल जाकौ, बुधि समान श्रुति-ज्ञाना ।
ज्ञान सरिस जा करम, करम सम जासु सिद्धि, जग जाना ॥१५॥

डरत चहत ता कहँ आश्रित जन, लखि नृप-नृप-गुन भारी ।
जिमि नर झिझकत जात सिंधु-दिसि ग्राह, सुरत्न-सँवारी ॥१६॥

धरि रथ-चाक-स्वभाव, चतुर नृप लहि, मनु मारगँवारी ।
नियम लीक नहिं डिगी, लीक भर, ताकी प्रजा पियारी ॥१७॥

सहस गुनौ रस दैन, भानु कर खैंचत, जिमि रस-सारी ।
बाने, तिमि, कर लयौ, प्रजा सो, करिवे अधिक सुखारी ॥१८॥

द्वैसो कारज सरै, सैन मरजादा रखिवे बाकी ।
शास्त्रन मे दृढ बुद्धि, चाप पै चढी प्रतिचा जाकी ॥१९॥

खुलत न कछु, ता-मुख विकार लखि, राखत गुप्त विचारा ।
पूरव संस्कार सम, जासु फलहि सब करम अपारा ॥२०॥

निर्भय तऊ करत निज रक्षा अरच्यौ धरम अकामा ।
लयो लोभ बिन धन अशक्त ह्वै, भोगे भोग ललामा ॥२१॥

जानत तउ चुप, छम्यौ वीर बनि, देत डीग नहिं मारी ।
ता गुन अगुन सग रहि, सोहत मनहुँ सहोदर भारी ॥२२॥

वेदन कौ लहि पार, विषय मे कबहु न मनहिं लगायौ ।
बिना बृद्ध वय धरम निरत रत, भूपति बडौ कहायौ ॥२३॥

शिक्षा-रक्षण-भरण आदि सो प्रजा-पिता तिहि जानौ ।
केवल जनम प्रदाता तिनके निज निज पितु को मानौ ॥२४॥

प्रजा शान्ति हित डाँड्यौ दोषिन, सुत हित कियौ बिवाहा ।
अरथ काम हू चतुर भूप के मानहुँ धरम उछाहा ॥२५॥

भूप रसा पै यज्ञ करत, बासव बरसावत बारी ।
अपु मे पलटि सम्पदा निज निज करी भुवन रखवारी ॥२६॥

पछिहारे नृप अपर, सके नहिं, प्रजापाल जस चोरी।
'चोरी' लियौ चुराय नाम निज, परधन सों मुख मोरी ॥२७॥

रोगी औषधि सम तिहिं प्यारो, शत्रु सजन जो कोई।
उरग-डसी अँगुरी सम नृप प्रिय तज्यौ जो दुरजन होई ॥२८॥

बिधि ने स्रज्यौ ताहि वाही सो, जासो तत्त्व बनाये।
तासो तिन सम, सब गुन जाके परहित हेत सुहाये ॥२९॥

उदधि तीर प्राचीर जासु दृढ, सागर सुन्दर खाई।
कर्‌यौ पुरी कौ सौ छिति शासन, इक छत नृप हुलसाई ॥३०॥

मगध-देस-नृप-सुता चतुर जो सब जग बीच कहाई।
यज्ञ-दक्षिणा सम सुदक्षिणा ताकी रानि सुहाई ॥३१॥

बहु रानिन के अछत, भूप अपुको तियवन्त विचारी।
लहि सुलक्षिणा राजलक्ष्मी, सुदक्षिणा सी नारी ॥३२॥

निज अनुरूप-प्रिया अपनी कै आत्म जन्म ललचानौ।
मिल्यौ न किन्तु मनोरथ वाको, योंही समय वितानौ ॥३३॥

सुत हित जतन करन, निज भुज सो जग-भरु भार उतार्‌यौ।
सब बिधि उचित बिचारि ताहि पुनि सचिवन ऊपर डार्‌यौ ॥३४॥

पुत्र कामना सो मनाय बिधि, दोऊ अति रुचि मानी।
गुरु बशिष्ठ आश्रम अति पावन, चले नृपति अरु रानी ॥३५॥

सजि बैठे मिलि रथ, जाकी धुनि मधुर मंजु मतवारी।
मनु बरषा घन पै ऐरावत ऐरावती-सवारी ॥३६॥

शाल-गोद गसि गन्धि गुही, तन परसि परम सुखकारी।
बन कँपाय, पूरित पराग, तिन सेवत चलै वियारी ॥३७॥

सुनि रथ धुनि घन भ्रम वश कोहकत कलकलापि किलकारी।
सुनत चले, मृदु षड़ज तुल्य किन केका द्विविधि नियारी ॥३८॥

कछु पथ सो हटि मिरग मिथुन, रथ इकटक दीठि निहारै।
तिन दृग सो निज दृग मिलाइ हँसि दोऊ करत बिहारै ॥३९॥

कहुँ सारस की श्रेनि अधर मिलि बन्दनवार बनावै।
सुनि तिन सरस गान, दोऊ कछु आनन नभहिं उठावै ॥४०॥

हौंन पवन अनुकूल मनोरथ-सिद्धि प्रगट दरसावै।
हय खुर रज उड़ि, रानि अलक, नृप मुकट छुअन नहिं पावै ॥४१॥

सरवर-लहरि लहकि, मिलि पकज-परिमल-सीत समानी।
निज उसास सम सूँघत ताको, चले नृपति अरु रानी ॥४२॥

होत चले तिन गामन है कै जो मख हेत लगाये।
होतन के अमोघ आशिष, अरु अरघ-दान तहँ पाये ॥४३॥

नव-नवनीत भेट कहुँ लाये वृद्ध गोप मन भाये।
पूछत नृप तिन सो बन-मारग-तट-तरु नाम सुहाये ॥४४॥

बिमल बेस सो चलत अहा! तिन शोभा कहत न आवै।
मनहुँ चैत मे चपल चारु मिलि चित्रा चन्द्र सुहावै ॥४५॥

लख्यौ दिखावन सकल, प्रिया को, जो जग मे मनमानी।
जाति रही, तउ गैल चतुर-चूरामनि जात न जानी ॥४६॥

थके जास मग चलत अस्व, नृप अद्वितीय जस वारौ।
पहुँच्यौ रानी सहित साँझ को, जहँ मुनि आश्रम प्यारौ ॥४७॥

जहाँ समिध बन-फल कुस लैकें मुनि गन बन सो आवे।
तिनको स्वागत लैन अलख अति अनल देव नित जावै ॥४८॥

जहाँ कुटी पै मिरग धान-तृन नित के चाखन हारे।
ठाडे द्वार रोकि मानो सुत ऋषि-पतिनिन के प्यारे ॥४९॥

सीचत सभय जहाँ मुनि कन्या पौधनि घमलन माही।
जलभरि प्यासे बिहग तिनहिं बिसवास दैन दुरि जाही ॥५०॥

राखे घाम सुखाय, धान के जहँ पै ढेर लगाई।
करत जुगार अजिर मे बैठे निरभय तहँ मृग आई ॥५१॥

आहुति-गन्धि-गुह्यो जहँ सूचक होम-अनल कौ जोई।
पवन-पुह्यौ चहुँ धूम, करै अतिथिन कौ पावन सोई ॥५२॥

"रथ घोडनि को खोल देहु" यह कहि सारथि समझायौ।
रथ सो प्रिया उतारि, आपहू उतरि भूप पुनि आयौ ॥५३॥

पूजनीय नय-करम-धरम रत जो दीनन रखवारौ।
सभ्य मुनिन रानी सह ताकौ कीन्हौ स्वागत भारौ ॥५४॥

संध्या-बिधि बीतत नृप देखे मुनि अरुन्धती सङ्गा।
मनहुँ बिराजत अग्निदेव मिलि स्वाहा सहित उमङ्गा ॥५५॥

राजा सहित मागधी रानी तिन पद बन्दन कीयौ।
तिनको गुरु गुरु-पतिनि प्रेम करि अति अशीष शुभ दीयौ ॥५६॥

ताकी सुन्दर अतिथि क्रिया करि रथ की थकनि मिटाई ।
तब पूछी ऋषि राज-ऋषी सों राजकुशल हरखाई ॥५७॥

अबसि चहिये कुशल, सकल थल, तब लो संग हमारे ।
विविध विपत सो जाकी रक्षा, जब लो हाथ तिहारे ॥५८॥

मन्त्र आपके रिपु अलक्ष्य को नष्ट करत जब आई ।
दृष्ट - लक्ष्य - भेदी मम पैने शर लौटत खिसियाई ॥५९॥

सबिधि आहुती परी अनल में तव द्वारा मुनिराई ।
बरषाभरन कृषी जो सूखत सूखा मे मुरझाई ॥६०॥

पूरी आयु पाइ मम परजा निडर निरापति मानौ ।
ताकौ हेतु प्रभो ! सब केवल ब्रह्म तेज निज जानौ ॥६१॥

यहि प्रकार सुधि लेत गुरो ! जब ब्रह्म-तनय तुम जाकी ।
काटि आपदा, बढे न कैसे, नाथ ! सम्पदा ताकी ॥६२॥

मम अनुरूप तनय, रानी के कोउ न स्वामि लखावै ।
धरा सदीपा रतन प्रसूता या सो मोहि न भावै ॥६३॥

मो पाछे, यह समझि, श्राद्ध मे 'पिण्ड दान किमि पावे ।
खात न पितर अघाय, समेटत स्वधा सदा दरसावें ॥६४॥

"पय दुरलभ मम गये" पितर अस करि विचारि निज जी मे ।
सीरे भरत उसास, अश्रु मिलि तातो जल नित पीमे ॥६५॥

भयौ देव ऋण-मुक्त यज्ञ करि, परि हा ! बिन सन्ताना ।
जानहु उज्जल अरु उदास मोहि लोकालोक समाना ॥६६॥

जप तप दानज पुण्य होत परलोकहि सदा सहाई ।
शुद्ध वश सन्तान लोक परलोकहिँ नित सुखदाई ॥६७॥

परम प्रेम करि निज कर सीच्यौ बिन फल तस अनुहारी ।
सुत बिहीन लखि मोहि, बिधाता क्यों नहिं होत दुखारी ॥६८॥

भगवन ! सहो जात नहिं मोपै यह अन्तिम ऋण भारी ।
गज सम, जो बिन न्हान, अलानहि बँधिके, होत दुखारी ॥६९॥

जासो छूटौ नाथ ! कृपा करि सोई तुरत बतावौ ।
रवि-कुल-रक्षक सदा, विपति सो अब कै मोहि बचावौ ॥७०॥

यह सब नृप सो जान, ध्यान धरि, नैन मूँदि मुनिराई ।
सर सम सोवत मीन जहाँ, छिन एक समाधि लगाई ॥७१॥

तबै योगबल सो, नृपसंतति-बाधा कारण पायो।
पूरण योगी मुनि बशिष्ठ ने ऐसो ताहि जनायो ॥७२॥

"एक समय मिलि देवराज सो, जबै धरा दिसि आयो।
बैठी छाँट कलपतरु, मग में सुरभी को तू पायो ॥७३॥

धरम-लोप-भय सो सुमिरन करि ऋतु न्हाई निज नारी।
भलो कियो नहिं भूप ! भूलि तब ता प्रदक्षिणा न्यारी ॥७४॥

श्रापो वा ने तोहि, कहत "तू करै अनादर मेरो।
पूजे बिन मो सुता चलै अब बंस कदापि न तेरो ॥७५॥

मतवारे दिग्गज चिघारे सुरसरि स्रोत मँझारी।
जासो तैने औ सारथि ने सुन्यौ सराप न भारी ॥७६॥

'तासु अनादर करन, सिद्धि में यही विघन इक भारी।
पूजनीय पूजा कौ त्यागन रोकत काज हमारौ ॥७७॥

हवि हित गई बरुण यज्ञहि सों, जो होगो चिरकाला।
उरग घिर्यौ जहँ द्वार, कठिन अति अब प्रवसन पाताला ॥७८॥

ता सुरभी की सुता प्रतिनिधी पावन तासु बनाई।
पूजहु पतिनी सहित देहि फल अवसि मोद मन पाई ॥७९॥

कथन करत ही यहि प्रकार, मुनि-आहुति-साधन हारी।
निरमल गऊ नन्दिनी आई बन सो बगदि पियारी ॥८०॥

धरें भाल सित रोम लहरिया मृदुल पटल तन वारी।
राजत रूप राशि जिमि सध्या नव चन्द्रोदय धारी ॥८१॥

अति पावन जो यज्ञ न्हान सों ताजी पय सरसावै।
ऐन भरी, निरखत निज बछरा, ताहि रसा बरसावै ॥८२॥

ताखुर सो खुदि खुदि उठि रज कन परस्यौ नृप तन जाई।
ढिग सो देत कढ़ी मनु ताको तीरथ फल अधिकाई ॥८३॥

लखि ता पावन रूप शुभाशुभ सगुनहि जानन हारे।
जानि मनोरथ सफल तासु, मुनि नृप सों वचन उचारे ॥८४॥

राजन ! जानहु शीघ्र काज सब पुरि हैं अवसि तिहारे।
क्योकि, कृपा करि यह कल्यानी आई नाम पुकारे ॥८५॥

कन्द मूल फल खाय, अनुसरहु जा गौ को मनधारी।
करहु प्रसन्न याहि तुम मानौ विद्या पढत बिचारी ॥८६॥

चलहु, चलत जाको लखिकें, तुम ठहरहु ठहरत जाके ।
बैठहु, बैठत निरखि याहि जल पीवहु, पीवत याके ॥८७॥

भक्तिमती तव सती, पूजि यहि, जासु सँग नित जावै ।
करि आवै वन निकट याहि पुनि साँझ समय लै आवै ॥८८॥

करै न जो लौ दया निरन्तर सेवहु जाहि सम्हारी ।
निज पितु सम मन मुदित पुत्र वारेन के रहहु अगारी ॥८९॥

रानी सहित प्रेम सो राजा जो सब विधि परवीनौ ।
देस काल कौ ज्ञान जाहि, धरि गुरु आयसु सिर लीनौ ॥९०॥

विधि सुत शिष्ट वशिष्ठ चतुर नृप-भाग-बड़ाई कीनी ।
कछुक राति बीतत, सोवन की ताहि रजायसु दीनी ॥९१॥

धरि तपोबल मंत्र कुशल मुनि तउ नृप व्रतहि विचारी ।
किय प्रबन्ध बन असन बसन निवसन को ता अनुसारी ॥९२॥

सवैया

लचि लौनी लता लहराइ रहीं, जहँ पर्नकुटी कुल देव बताई ।
निज प्यारी समेत बड़े सुख सो तहँ आयसु पाय रह्यौ नृप जाई ।
उठि ब्रह्ममुहूरत मे बटु-वृन्दन, वेदन की ध्वनि मंजुल गाई ।
जिय जानि प्रभात, कुसासन सो नरपाल जगे, अति ही हरखाई ॥९३॥

द्वितीय सर्ग

पूजी तबै धेनु महीप बाला ।
चढाइकैं अक्षत गन्ध माला ।
चुखाइ बच्छा नृप बाँधि लीन्हो ।
गौ को यशस्वी वन छाँड़ि दीन्हो ॥१॥

पतिव्रता नारिन अग्रनीया ।
सुदक्षिणा सुन्दर माननीया ।
गौ-खोज लागी शुचि मार्ग चाली ।
चले स्मृति ज्यो श्रुति-अर्थपाली ॥२॥

दयाध्वजा कीरति-पुंज दानी।
बिदा करी भूपति आप रानी।
राखी गऊ रूप धरा बिचारी।
नदीश चार्‌यो थन जासु भारी ॥३॥

धरापती सेवक शेष टारी।
चल्यौ व्रतै हेतु गऊ पिछारी।
न अन्य सो तासु शरीर रक्षा।
स्ववीर्य राखी मनु-बस-कक्षा ॥४॥

खुजाइ, दै कै तृण-कौर प्यारे।
बिडारि ता मच्छर डाँस मारे।
बे रोक स्वच्छन्द जु ढील दीनी।
भूपाल ह्वै तत्पर सेव कीनी ॥५॥

ठँरे गऊ ठँरत, तास चालै।
चलै, जहाँ बैठति बैठि, पालै।
स्व नेम, प्यासी जब नीर देवै।
छायेव ताको नरपाल सेवै ॥६॥

बे राज चिन्हैं परताप वारौ।
स्वतेज सो दीपत जा उजारौ।
मनौ मदोन्मत्त गजेन्द्र भारी।
चुचाति ना जा मद-वारि-धारी ॥७॥

लतानि सो केस बँधे सुहाये।
फिरै बनी, सो धनु कौं चढाये।
रखाइबे के मिस नन्दिनी के।
सुधारिबे दुष्ट पशू बनी के ॥८॥

चल्यौ बिना सेवक तोउ राजा।
लग्यौ प्रचेता सम तेज काजा।
विहग बैठे तरु गान गामै।
बिजै-ध्वनी जासु मनौ मचामै ॥९॥

बेली नवेली भरि ब्यारि प्यारी।
सप्रीति राजै ढिग मे निहारी।
प्रसून वर्षा तिहि पै जुटावै।
खीलें मनौ पौर सुता लुटावें ॥१०॥

भ्रम वनी मे धनुबान धारी।
दयाल तौऊ नृप को बिचारी।
निशंक ताको मृगदर्श कीन्हो।
बड़ी बडी आँखिन लाहु लीन्हो ॥११॥

जो वाँस के रन्ध्र भरै वियारी।
बजाइ सोई मनु बेणु धारी।
उच्चै स्वरेण यश ता सुनामैं।
निकुज बैठी वनदेवि गामैं ॥१२॥

मदी गुही सीतल-गन्धि प्यारी।
झर्ना झरे सीकर युक्त व्यारी।
सेवै लगी भूप जबै सिधार्यौ।
छाते बिना लूअन घाम मार्यौ ॥१३॥

रखाइबे ज्यो वन भूप आयौ।
सजोर निर्जोरहिं ना सतायौ।
बुझी बिना वृष्टि सबै दवागी।
विशेष बृद्धी फल पुष्प जागी ॥१४॥

दसौ दिसा को करि कै पवित्र।
विश्राम को साँझ समै विचित्र।
चली नये पल्लव रंगवारी।
सूर्य्य प्रभा ज्यो मुनि धेनु प्यारी ॥१५॥

सम्पादिनी जो सब धर्म काजा।
पाछेँ चल्यौ तासु दिलीप राजा।
सोहै तबै पावन दोउ प्रानी।
श्रद्धा स्वय जौँ सत्कार्य सानी ॥१६॥

*कढ़ै कहूँ शूकर कुड न्हाते।
स्व घोसला वृक्षहि मोर जाते।
मृगा रमे शाद्वल सोँ विशेषी।
बनी बनी श्यामल भूप देखी ॥१७॥

* लरि लोरि तडागन मे लिथरे तन सूकर के गन भाजत भारी।
जहँ रैन बसेरो करै तरु ओरन मोर चलै मुख मोर निहारी।
मृग लोल कलोल करैँ बिहरैँ चरैँ घास हरी थल काहु मँझारी।
इनसो अति चोयल चित्त चुभीलो चल्यौ बन हेरत भूप अगारी ॥१७॥

प्रयत्न सो जो थन पीन भारी।
लै स्थूल भूपाल चलै अगारी।
मंदी चलै चाल सम्हारि सोऊ।
करै बनी सोभित पंथ दोऊ ॥१८॥

लौट्यो जबै धेनु पिछार आई।
सुदक्षिणा भूप लिवान धाई।
हरी निमेषी लखि प्रेम प्यासी।
अतृप्त इच्छा अति ही प्रकासी ॥१९॥

चल्यौ मगै भूप गऊ पिछारी।
सुदक्षिणा सुन्दरता अगारी।
दोऊनि मे सो अस धेनु राजै।
ज्यो साँझ रात्री दिन बीच भ्राजै ॥२०॥

परिक्रमा तास नवाइ माथै।
रानी करी साक्षत पात्र हाथै।
विशाल जो सीगन ठौर जाकौ।
पूज्यौ मनौं द्वार स्व कामना कौ ॥२१॥

बच्छाभिलाषी चुपचाप ठाड़ी।
पूजा लई दोउन प्रीति बाढी।
स्व भक्ति मे देखत तासु प्रीति।
"करै कृपा शीघ्र" भई प्रतीति ॥२२॥

बदे सपत्नी गुरु पाद राजा।
निश्चू भयौ सो करि साध्य काजा।
दै दूध बैठी गऊ ज्यो निहारी।
त्यो ही करी सेवन की तयारी ॥२३॥

निवेदि पूजा, धरि दीन्ह दीयौ।
सस्त्रीक राजा यह काज कीयौ।
सोये पिछारी जब गाय सोई।
उठे गऊ सग प्रभात होई ॥२४॥

ऐसे ब्रतै धारि सुपुत्र काजै।
राजा सपत्नी यश रूप राजै।
सदा दुखी दीन महा बचाये।
इक्कीस तानें दिन यो बिताये ॥२५॥

वाईसवें को निज दास हीयौ।
गऊ तवै जाँचन चित्त कीयौ।
गंगा मुखी-घास घनी मँझारी।
घुसी गुफा पर्वत राज भारी ॥२६॥

न व्याघ्र जामे सक जाहि मारी।
गिरी छटा सोचि लखै पियारी।
बलात् ताको गहि सिंह लीन्हीं।
अदृष्ट मे सो नृप नाहि चीन्हीं ॥२७॥

कीन्हीं गऊ आरतनाद तासो।
प्रतिध्वनि गूंज उठी गुफा सो।
तानें लगी दृष्टि नृपाल खेंची।
जैसे हटै अश्व लगाम ऐंची ॥२८॥

गयो लख्यो व्हाँ धनु वाण धारी।
चढ्यौ गऊ पाटल सिंह भारी।
ऊँची शिखा पर्वत धातु भ्राजै।
तापै मनौं पादप लोध राजै ॥२९॥

स्वशर्णपाली तव सिंहगामी।
शत्रु विहीन औ मनु-दीप नामी।
निषग तीरै, हिय लाज आनी।
लयौ चह्यौ मारन सिंह भानी ॥३०॥

जो हाथ सूधौ सर लैन धारौ।
जम्यौ तहाँ ना उखरै उखार्‌यौ।
नख प्रभा भूषित पख सोहै।
मनौ चित्यौ चित्तर चित्त मोहै ॥३१।

जवै सक्यौ ना हनि शत्रु ठाड़ौ।
ठैरी भुजाएँ लखि क्रोध बाढौ।
जर्‌यो मनौ भीतर भूप भारौ।
मन्त्रौषधी सो विषहीन कारौ ॥३२॥

आर्याभिमानी मनुबश लाज।
सोचौ सवै अन्तर राज राज।
मनुष्य ज्यो वोलत देखि ताकों।
भयौ अचम्भौ अति और जाकों ॥३३॥

अजी महाराज रहो वृथा ये।
जा शस्त्र सों होत कहा चढाये।
जो शक्ति तौरै तरु मूल जाई।
सकै नही 'पर्वत को हिलाई ॥३४॥

जबै सवारी वृष की विचारै।
मो पीठ पै पाद पवित्र धारै।
ता शम्भु को किंकर मोहि जानौं।
कुम्भोदर मित्र-निकुम्भ मानौ ॥३५॥

ढिग जो तिहारे यह देवदारू।
गौरीश पाल्यौ सुत ज्यो विचारू।
जो हेम कुम्भस्तन सो निकास्यौ।
गणेश-मा को पय खूब चाख्यौ ॥३६॥

घिस्यो करी-वन्य कपोल जासो।
कढी कछू कोमल छाल तासो।
तबै भवानी लखि सोच पागी।
मनौ सुतै तीखन चोट लागी ॥३७॥

तबैहि मो जो गज वन्य आमे।
डरायवे काज तिन्हे गुफा मे।
महेश आदेश यहाँ सम्हारौ।
मिलै वही ता मह तोष धारौ ॥३८॥

गिरीश ये गौ बस ठीक दीन्ही।
भूखौ वडौ, मो सुधि, भेजि लीन्ही।
करौ व्रतै पारण आज जासौं।
जैसे करै राहु शशी-सुधा सौ ॥३९॥

विहाय लज्जा घर जाउ धाई।
तैंने गुरु भक्ति भली निभाई।
न शस्त्र जो बस्तु सकै रखाई।
यासो न योद्धा-यश छीनताई ॥४०॥

सुनी जबै गर्वित सिंह वानी।
नरेश त्यौं ही सब बात जानी।
शम्भू कर्यौ निष्फल वान भारी।
तजी अवज्ञा निज माहिँ सारी ॥४१॥

बिना गहे हू शर, भंग यत्न।
भयौ, दयौ ज्वाब नृपाल रत्न।
जैसे वृषा मारन बज्र लीनौं।
त्रिनैन दृष्टि कर थावि दीनौं ।।४२।।

बेकाम चेष्टा सब भाँति जा तें।
मृगेन्द्र हास्यास्पद मोर बातें।
चाहो कछू, पै अब ही बखानो।
क्यो ? आप प्रानी पढि जीय जानौं ।।४३।।

हैं पूज्य मेरे हर, देव केतु।
सृष्टि स्थिति पालन नास हेतु।
किन्तु गुरुहू धन-नास स्वामी।
न योग्य है देखन आँखि सामी ।।४४।।

सो आज लै मो यह देह सारी।
निबाहिये जीवन वृत्ति प्यारी।
है साँझ जाकी सुत प्रेम जागौ।
ऋषी गऊ को अब देव त्यागौ ।।४५।।

हँस्यो कछू डाढ प्रकास कीन्हों।
गुहान्धकारै करि दूर दीन्हो।
सो फेरि भूतेश्वर दास प्यारौ।
पृथ्वीपती सो कहि यों उचारौ ।।४६।।

तू एक छत्र जग राज छावै।
ज्वानी नई वैस-छटा चुचावै।
जो नेक काजे वहु ये बिगारै।
सूझी कहा तोहि बता गमारै ?।।४७।।

भूतानुकम्पा यदि तू बिचारै।
दै प्रान जे एक गऊ उबारै।
जीवै पिता तुल्य, घनी बिथा को।
संहारि, राखै पुनि स्व प्रजा को ।।४८।।

जो या गऊ कौ अपराधधारी।
डरै गुरु क्रोध कृशानु भारी।
अनेक गौ जो घट-ऐन वारी।
दै शान्ति की जो रिस तासु सारी ।।४९।।

प्यारे लगातार अनद चाखौ ।
बलिष्ठ तासो निज देह राखौ ।
कछु धरा-जीवन-भेद जानौ ।
न तौ स्वराज्ये पद-शक्र मानौ ॥५०॥

मृगेन्द्र ने ये कहि चुप्प साधी ।
प्रतिध्वनी तास भई अगाधी ।
गुफा-शिला पाठ यही उचारै ।
सप्रीति मानौ नृप को निवारै ॥५१॥

बारी भरे कातर नैन बारी ।
बाने गऊ सिंह-घिरी निहारी ।
दूनौ दया आर्द्रित जास हीयौ ।
ता बात राजा सुनि ज्वाब दीयौ ॥५२॥

निश्चै वही जो क्षति सों बचावै ।
शब्दार्थ 'क्षत्री' जग मे कहावै ।
का राज सो ता विपरीत चालै ?
का लाभ निन्दायुत प्रान पालै ?॥५३॥

कैसे बुझाऊँ मुनि क्रोध भारी ।
दैके गऊ और सु-दूध वारी ।
साक्षात सुर्भी तुम याहि मानौ ।
जो आप थाँमी हर तेज जानौ ॥५४॥

स्वदेह दै याहि करौ विमुक्त ।
मृगेन्द्र ! तो सों यह न्याय युक्त ।
स्वच्छंद ह्वै भोजन आप हैगौ ।
मुनि-क्रिया बिघ्न न हू परैगौ ॥५५॥

आपौ पराधीन करौ बिचार ।
सयत्न रक्षौ तुम देवदार ।
बिहाय रक्षा क्षत दास आई ।
सकै न स्वामी दिसि म्हौं दिखाई ॥५६॥

चाहौ न किम्बा यदि मोहि मारौ ।
तो ध्याल ह्वै मो यश देह धारौ ।
अवश्य ये पिण्ड बिनष्ट होवै ।
मो से न आस्था इन माँहि जोवै ॥५७॥

बातैं रचै केवल प्रम भारी।
जासो हि सम्बन्ध जुर्‌यौ हमारौ।
मो मित्र तासो बनि शम्भुदास!
पूरी करौगे यह मोर आस ॥५८॥

"तथास्तु" बानी हरि ज्यो सुनाई।
जभी भुजा नें पुनि शक्ति पाई।
निश्शस्त्र राजामिप पिंड वारी।
सिंहै समर्पी निज देह सारी ॥५९॥

तबै उरै साहस भूप धारी।
सोच्यौ, भरै सिंह छलांग भारी।
औधौ गिर्‌यौ ज्यो नृप तास आगे।
प्रसून वर्षा सुर कर्न लागे ॥६०॥

"बेटा उठौ" अमृत रूप बानी।
सुनी, उठ्‌यौ भूपति आप ज्ञानी।
क्षीर श्रवन्ती गउ मात पेखी।
आगै ठडी सिंह न सूर्ति देखी ॥६१॥

विस्मित नृपै धेनु गिरा उचारी।
माया तबै जाँचन मैं पसारी।
ऋषी बलै को सक मोहि मारे।
न काल, व्याघ्रादि कहा बिचारे ॥६२॥

तू द्याल्न मो पै गुरुभक्ति पागौ।
प्रसन्न तो सो, बर पुत्र माँगौ।
न गाय हो केवल दूध वारी।
मोको गिनौ कामदुहा सुखारी ॥६३॥

दुखी दवे: दीनहिं दान रूप।
स्वबाहुयोद्धा कर जोर भूप।
स्वबंस कर्त्ता जस रंग-राँचौ।
सुदक्षिणा के सुत एक याँचौ ॥६४॥

भूपाल इच्छा सुत-प्रेम-सानी।
तथा करी स्वीकृत धेनु मानी।
दोँना दुहौ मो पय पुत्र पीयौ।
दया भरौ तास निदेस दीयौ ॥६५॥

बच्छाऽरु यज्ञोपरि जो बिसेस।
ता दूध को पाय ऋषी निदेस।
चाहौ तऊ माय इतेक पीयो।
मनौ रखी भूमि षडास लीयो ।।६६।।

ज्योंही सुनि ऐसि महीप बानी।
दूनी गऊ तास सनेह सानी।
कढी गुफा सो तिहि सग धाई।
बिना थकी आश्रम ओर आई ।।६७।।

गुरुहि जो गाय-प्रसाद, लीनौ।
हँसी हँसी भूप निवेद दीनौ।
ता हर्ष चिन्है सबरौ बखानौ।
कह्यौ प्रिया सो दुहराय मानौ ।।६८।।

जबै सु आदेस वशिष्ठ पायौ।
बच्छाऽरु यज्ञोपरि जो बचायौ।
समूर्ति मानौ यश शुभ्र भायौ।
सो नन्दिनी दूध दिलीप पायौ ।।६९।।

पूर्वोक्त प्रात व्रत पूर्ण कीन्हौ।
चल्यौ जबै आशिरबाद दीन्हौ।
राजा स-रानी निज राजधानी।
बिदा कर्यौ हर्ष वशिष्ठ मानी ।।७०।।

बशिष्ठ-सस्त्रीक सवत्स गाय।
हुताश के हू ढिग भूप जाय।
परिक्रमा कीन्ह सहर्ष हीय।
साफल्यता युक्त स्वगौन कीय ।।७१।।

सधर्मपत्नी निर्बिघ्न रूप।
मनोरथै पारथ बैठि भूप।
ध्वनी लगै कानन जासु प्यारी।
रह्यौ-सुखी मारग जात सारी ।।७२।।

न देखिबे सो उतकंठ भारी।
प्रजा व्रती दूबर अग धारी।
सीरी करी आँखि नृपै बिशेषी।
नवीन चन्द्रोदय भाँति देखी ।।७३।।

प्रजा रच्यौ स्वागत भूप लीन्हौ ।
ध्वजा उडै, नग्र प्रवेश कीन्हौ ।
सर्पेन्द्र तुल्य भुज पै सँवार्यौ ।
पुनः धरा भार धरेन्द्र धार्यौ ॥७४॥

जम नयन निकार्यौ अत्रि द्यो तेज, भारौ ।
अरु सुरसरि शम्भू अग्नि वीर्य्य संवारौ ॥
मह दुरवह तेज लोक राजानि वारौ ।
तस नृप कुल काजै रानि ने गर्भ धारौ ॥

रघु-चरित्र

निज पितु सो लहि राज अधिक रघु मुदित महा मन मोहै ।
रवि उजास जिमि पाइ हुतासन साँझ समै अति सोहै ॥
नृप दिलीप पाछे ताको सुनि राजतिलक तत्काल ।
पहली धुँधकत ज्वाल भाल भडकी नृप उरनि कराल ॥१॥

शत धृति धवल ध्वजा सम ताके नव वैभव को देखी ।
प्रजा सप्रजा मुदित आँखि निज सीरी करी विशेषी ॥
एक संग ता गजगामी ने दोउ दावे स्वच्छन्द ।
पूर्वज राज सिंघासन भुजबल निज वैरिन को वृन्द ॥२॥

श्रीपति रानी गुप्त रूप सो तिहि भूपतिमनि जानी ।
छाया अनुमित पद्म छत्र छहरायो सिर रुचि मानी ॥
समय समय बन्दीगन ढिग मनमुदित सरसुती आन ।
पढि पढि विमल भाव जुत प्रस्तुति कर्यो तास सनमान ॥३॥

नृप मानी मनु आदि यदपि सो भोगी हिय हुलसाई ।
परि अनन्य पतिका सम अचला ताही में रति पाई ॥
यथा उचित दे दण्ड प्रजामन हरयो भूप कमनीय ।
जिमि ना शीतल ना ताती अति मलय पौन रमनीय ॥४॥

घटी प्रजा रति नृप दलीप मे लखि ता गुन अधिकाई ।
फलत आम जिमि मधुर मंजरी मजुल जाति भुलाई ॥
नीति निपुन जन जब नव नृपहि सुझायो धर्म अधर्म ।
द्वितीय पक्ष तजि चतुर सिरोमनि समझि गह्यो तब धर्म ॥५॥

पचभूत निज पुष्ट गुणनि सो अतिशय लही बडाई ।
रघु के राज समय सब वस्तुनि नित नवीनता पाई ॥
यथा चन्द्र हर्षावन सो अरु तपन धारि परताप ।
प्रजा मनोरजन सो राजा तथा लस्यो वह आप ॥६॥

कर्ण प्रान्त पर्य्यन्त विस्तरित ताके नैन विशाला ।
नेत्रवान परिकर्म प्रदर्शक शास्त्रन सो महिपाला ॥
कमल लक्षणा अमल अपर जनु राजलक्ष्मी आय ।
थिरताजुत निधरक नृप चित को दयो सरद सरसाय ॥७॥

निरस परै पतरे अति बादर मारग तजि छितराये ।
इक संग ता कर रबि प्रताप जुग दस दिसानि मे छाये ॥
घट्यो इन्द्र जब बरषा धनु रघु जय-धनु लियो उठाय ।
पारी पारी प्रजा अर्थ हित निज निज लेत चढाय ॥८॥

कमल छत्र अरु कुसुमित कास चमर धरि ऋतु सुघराई ।
रघु की होड करी, परि शोभा ताकी तबहुँ न पाई ॥
नृप-प्रसन्न आनन चमकत अरु चारु चमत्कृत चन्द ।
दोउनि निरखि नेत्र धारिनि जन लह्यो सरस आनन्द ॥९॥

राजहस श्रेणिनि तारनि कुमुदिनि सुठि सरनि सुहाई ।
जहँ देखहु तहँ कीर्ति कौमुदी जल थल सकल समाई ॥
ईख छाँह तर बैठि धान-रखबारिनि तिहि गुन गान ।
बालापन लो के यशपूरित गावति मुदित महान ॥१०॥

परम प्रशस्त अगस्त उदय सो बिमल भयौ अति पानी ।
रघु उदयत, उर तिरस्कार-मय-शका रिपुदल मानी ॥
बड़ी टाटिवारे वृष करि करि ता बिक्रम-अनुहारि ।
मदभरि डीकत सीगनि सो सरितट खोदत खुरतारि ॥११॥

मद गन्धी सापरनि पुहुप सो अपुहि तिरस्कृत धारी ।
जनु गज करि तारी सरसावत सप्त अग मद-वारी ॥
पाँझ सरित करनी हरनी मग-करदम शरद सुभाय ।
तिहि उछाह-प्रथमहि जात्रा हित करी प्रेरना आय ॥१२॥

हय पूजन विधि मधि सद् विधि सो उदित हुतासन आई ।
जनु तिहि दक्षिण लौ मिस कर लै जय-माला पहराई ॥
तज्यो न रिपु, तउ मन्दर गढ दृढ रक्षा जतन कराइ ।
बड़बिधि सैन सहित दिग जय हित चल्यो सुभग रघुराइ ॥१३॥

नगर बडी बूढी ता पै खीलन-वरषा वरसावै।
मथत उदधि जनु छहरि लहरि हरि तन जल-कल सो छावै॥
गयो पुरन्दर सम पूरब सो प्रथमहि ज्ञान निकेन।
मनहु पवन फहरात ध्वजन सो रिपुनि ताडना देत॥१४॥

भयो अकास अवनि सम अरु भई अवनि अकास समाना।
रथ रज उडति धमकि घुरवा सम धावत गजदल नाना॥
आगे तेज शब्द ता पाछै तदनन्दर फिरि धूरि।
पाछे पुनि रथ या क्रम चाली चतुरंगिनी सपूरि॥१५॥

निज बल सकल अजल थल जलमय सघन विपन तरु हीना।
तरनिन तरन जोग नदियन को पाँझ नृपति करि दीन्हा॥
लख्यौ मैन लै जात पूर्व सागर नय नागर धीर।
जनु हर जटिल जटा भव सुरसरि सँग भागीरथ वीर॥१६॥

सररर रव करि भोजपत्र मधि वाँसन सन धुनि कारी।
सुरसरि सीकर सहित पवन मग मे तिन सेवा धारी॥
छाँह देस केसर की मे बहुतक सैनक बलधाम।
बैठत-मृग मृगमदवासित सिल विरमि कियौ विसराम॥१७॥

दलि अरि दलबल, करि तिन साहस दरप विफल रघुराई।
कुंजर इव नृप-तरुन तोरि निज मग निरबिघन बनाई॥
या विधि पूरब जीति असेसनि देसनि वह रनवीर।
पहुँच्यो ताल-माल-रँग रंजित श्याम समुन्दर तीर॥१८॥

(अपूर्ण)

मुद्रा राक्षस

प्रथम अक के कुछ पद्यो का अनुवाद

को यह अति बडभागिनि, जिहि तुम सिर पै धारत ।
सुभग शशिकला, का याको यहि नाम उचारत ॥
यही नाम फिरि जान बूझि तुम क्यो बिसरायो ।
नारी को मैं पूँछि रही तुम इन्दु बतायो ॥
तो पूछि लेउ बिजयाहि सो, यदि शशि को साँचु न घरै ।
इमि गग छिपावत उमहि सो, शिव को छल रक्षा करै ॥१॥

होहु भले ही बुवन मे, मूरख महा किसानु ।
किन्तु वई सत छेत्र मे, खेती बढति महानु ।
सघन होत बस पकरि जो, काउ धान को बृच्छ ।
बीज बुवैया को न गुन, खेती गुन प्रत्यच्छ ॥३॥

कोउ मसाले को बटत, कोउ जल भरत पवित्र ।
प्रफुलित कोउ प्रसून की, माला गुहत बिचित्र ॥
जब-जब ओखलि पै गिरत, मूसल तिह तिह बार ।
पाछे पाछे सुन परत, सुखद शब्द हुँकार ॥४॥

आवो बेगि पियारी, अरी हाँ—
सब उपाय मे चतुर गुनवती काज सँवारन हारी ॥
साधति अर्थ धर्म अरु कामहि, नित गृहस्थ सुखकारी ।
घर की रीति नीति सब जानति, सोचति बात अगारी ॥५॥

नीच केतु अरु क्रूर ग्रह, इनको गठित समाज।
चारु चमत्कृत चन्द्रमा, पूर्ण मंडलहिं आज ।।
बल सो चाहत ग्रसन ये, कैसी बात अजोग।
किन्तु ताहि रच्छत सदा, सब प्रकार बुध योग ।।६।।

यह सोई कौटिल्य विलोकहु, कुटिल बुद्धि सों छायौ।
कोप अनल मे, नन्द बस जिन, हठ करि तुरत जरायौ ।।
चन्द्र ग्रहन के कहत, चन्द्र कौ नाम सुनत भरमायौ।
चन्द्रगुप्त को शत्रु ग्रसित गिनि, अतुर इत ही आयौ ।।७।।

जो द्विरद-शोणित-स्वाद चाख्यौ, धरत शोभ ललाम।
अरु अरुन-सन्ध्या-शशिकला सम पूज्य पूरन काम ।।
जमुहाइवे मुख फटत ज्यो, प्रगटत स्वतेज प्रगाढ।
अपमान करि, को चाहत काढन, सिंह की यह दाढ ।।८।।

कोपानलकारी सघन, धूमलता अनुरुप।
निधन नंद कुल को करन, काल नागिनी रूप ।।
छूटी अस मेरी शिखा, अजहुँ न बाँधन देत।
को ऐसौ पापी भयो, बधन जोग हत चेत ।।६।।

गहन नन्दकुल-वन-दहन, धूमकेतु विकराल।
अस मम कोप-प्रताप की अति प्रचंड जो ज्वाल ।।
ताहि निदरि याही समय, किंकर्त्तव्य अजान।
अपुही ते जरिबौ चहत, कौन पतिंग समान ।।१०।।

दिशि के सम शत्रु-तिया मुख चन्द ते,
कालिमा शोक धुआँ की लगाइ।
द्रुम-मन्त्रिनु पै, निज नीति के पौन सो,
मोह की छार अपार बिछाइ।
द्विज नग्र-निवासी तज्यो अस नंद के,
बंस के अकुर सारे नसाइ।
नहिं खेद सो, किन्तु न पाइ कछू,
ये गई मम क्रोध की आँच सिराइ ।।११।।

मुँह के मुँह "धिक" शब्द रह्यौ, नृप भय जिन शीश नवायौ।
आसन लखि मोहि उठ्यौ विवश, जिन जिय मे सोच समायौ।
त देखें मैं सकुल गिरायौ, नन्दहिं आसनु ऐसे।
मत्त गयन्दहिं सिंह गिरावै, शैल सिखिर सो जैसें ।।१२।।

नऊ नन्द को भुवि-हृदय शल्य समान शीघ्र उखारि।
सर-कमलिनी सम मौर्य मे नित-राजलक्ष्मी धारि।
रिपु मित्र मे निज सुदृढ चित सो उचित न्याय दिखाय।
सम बाँटि कोपऽरु प्रीति कौ फल दियौ दोउनि चखाय ॥१३॥

प्रभु की प्रभुता लखि लोग सदा,
निज स्वारथ लागि करे सिवकाई।
बिपता मे सहायक होइ वही,
जिह कै मन आस अगार की छाई।
प्रभु के परलोक गये जो रहै,
उपकार बिचारि कै, लोभ बिहाई।
है बिरले तुम सरिखे सेवक,
स्वामि सनेह रहै मन लाई ॥१४॥

कायर बुद्धि बिहीन भक्ति-युत कौन काम कौ।
बुधि-विक्रम-सम्पन्न भक्ति-बिन नहिं छदाम कौ।
जिन गुन सयुत उचित भक्ति प्रज्ञा और बिक्रम।
ते सुख दुख मे स्वामिभक्त बस और त्रिया सम ॥१५॥

जिह मत्री रहे बलवान सुजान,
सुकीर्ति लता जिन छाइ बिसेखी।
तिह जीयत नद सबंस के जो,
थिर नाहिं भई चलती अवरेखी।
वह चचला चारु अचचल ह्वै,
नृप चन्दरगुप्त के अक सुलेखी।
बस दूरि सकै करि को अब ताहि,
कहूँ छुटी चद सो चाँदनी देखी ॥२२॥

कछु जाइ मिले रिपु सो पहले,
नहि जानि परै, केहि भाव सो प्रेरी।
अब जे कछु शेष रहे, चल जाउ,
रतीक नही परवा तिन केरी।
जिनु नद कौ बस समूल नस्यौ,
शत सेनहु सो जिह शक्ति घनेरी।
सब काज की साधन हारि वही,
इक बुद्धि रहै इक साथिन मेरी ॥२५॥

एकाकी स्वच्छन्द समुज्ज्वल जासु दान की धारा।
अभिमानी मद प्रबल सदा जो मन की करत अपारा।
बाँधि बुद्धि-गुन वृषल-हाथ सो बस तिहि लावौ ऐसें।
श्रवत दान-जल मद उच्छृङ्खल वली वन्य गज जैसें ।।२६।।

रूपान्तर

(अंग्रेजी से अनूदित)

देशभक्त होरेशस

प्रमुदित अब प्रेमाश्रु बहावत अति रति मानी ।
सुनत सुनावत सफल अजहुँ यहि वीर कहानी ॥

अनुवादक
सत्यनारायण

समर्पण

देशभक्ति जिनके जीवन को लक्ष्य सुपावन
जिन पर निर्भर मानव कुल को भविष्य पावन
भेद भाव तजि जो स्वदेश-रक्षा-रँग राँचे
प्रिय आर्योचित धर्म कर्म के प्रेमी साँचे
गहि सत्य न्याय को पक्ष जो निज जीवन अर्पन करत
तिन वीर नरन के चरन में भेंट सविनय यह धरत ॥

भूमिका

ईसा के ७५३ वर्ष पूर्व इटली के देश में रोमुलस ने एक छोटा-सा नगर बसाया जिसका नाम रोम रखा गया और रोमुलस ही उसका प्रथम राजा हुआ। रोमुलस के बाद छः राजा और हुए जो कि अधिकतर आलसी और विषयलोलुप होते गए। सातवाँ राजा रोम का टारक्विनस सुपरबस हुआ जो कि और राजाओं की अपेक्षा अधिकतर अन्यायी था। इसका अन्याय दिन-दिन बढ़ता गया और प्रजा इस वंश को बलात्कार सिंहासन से अलग कर देने

का विचार करने लगी । राजकुवर सेक्सटस से जो कि अन्यायी और धोखेवाज था, प्रजा को वहुत पीडा पहुचती थी । राज्य को अपनी पैतृक संपत्ति समझकर ये लोग लोकमत की कुछ परवाह न करते थे। ईसा से ५१० वर्ष पूर्व इस राजकुंवर के अन्याय की सीमा यहा तक बढी कि इसने एक प्रतिष्ठित तथा रूपवती अबला लुक्रेशिया का सतीत्व भ्रष्ट किया । अबला इस दु:ख के कारण अपने कलेजे मे कटार मारकर मर गई । इस सती के आत्मवध ने प्रजा की कोपाग्नि मे घी का काम किया और बात की बात मे सारी प्रजा विगड़ खडी हुई और उसके वर्ष दिन पश्चात् ही टारक्विनस सुपरवस को सकुटुव रोम के बाहर निकाल दिया। रोम से बाहर होते ही ये सब पुराने राज्य को प्राप्त करने का प्रयत्न करने लगे । पहले तो इन्होने इटूरिया प्रात के विअई और टारक्विनी नगरवासियो से मिलकर एक छोटी सेना बना रोम पर धावा किया पर इसमे इन्हे सफलता न हुई और एट्रस्कन सेना को लौटना पडा। हताश हो टारक्विन क्लूजियम के राजा लार्स पोरसेना की शरण मे गया जो एटूरिया प्रात के बाहर समीपवर्ती राज्यो का मुखिया था । इसने सब प्रातो से सेना इकट्ठी कर एक बडा दल बाध रोम पर धावा किया। रोम नगर पवित्र टाइबर नदी के तट पर बसा था जिस पर कि एक लकडी का पुल था। पुल के बाहर टाइबर के इस ओर रोमन लोगो का जेनिकुलम का किला था। लार्स पोरसेना का यह विचार था कि जेनिकुलम को जीतकर सेना पुल के पार हो जाए और तब नगर के भीतर रोमन लोगो से युद्ध कर उन्हे परास्त करें। जब जेनिकुलम के किले के जीते जाने की खबर रोम मे आई तो रोमन बड़े व्याकुल हुए और इन लोगो ने देखा कि उनकी सेना दल बादल सहित बढती आती है तो नगर के पचो ने एक सभा की, और इस विचार मे थे कि क्या किया जाए, इतने मे एक वीर नागरिक जिसका नाम होरेशस था, सामने आया और उसने कहा कि मै दो साथियो को लेकर पुल के उस पार के फाटक पर शत्रु की सेना को रोकता हू । पुल की राह तग होने के कारण वे सब मिलकर मुझ पर आक्रमण न कर सकेंगे—और जो व्यक्ति मेरे सामने आएगा उसको मैं वही काट गिराऊगा, इस प्रयत्न मे यदि मेरे प्राण भी जाए तो देश और धर्म की रक्षा के लिए प्राण जाना वडे पुण्य की बात है। मैं जाकर वहा शत्रु सेना को रोकता हू । आप लोग तब तक पुल को काटकर गिरा देने का प्रबंध करें। इसने लारशस और हारमीनियस दो और वीरो को साथ लिया और इन तीनो वीरो ने जाकर पुल के फाटक पर युद्ध किया। पहले तो पोरमेना की सेना वाले इनकी धृष्टता देखकर हसे और तीन-तीन योद्धाओ को एक-एक समय मे इनसे लडने के लिए भेजा। इनको अपने जीवन का डर तो था ही नही "यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परममम" यह तो अपना जीवन देश और

धर्म के समर्पण कर ही चुके थे जो इनके सामने आया उसे उन्होंने स्वर्ग का रास्ता दिखाया। यों युद्ध हो ही रहा था कि रोमन लोगों ने पुल को तोड़ दिया। पोरसेना तथा टारक्विनस सुपरबस की कुछ न चली और रोम अन्यायियों के हाथ से बच गया। इसी वीर शिरोमणि देशभक्त होरेशस की वीरता का वर्णन लार्ड मैकोले द्वारा अंग्रेजी में किया गया है।

होरेशस

नृपति पोरसेना कलूजियम-पति रिसियाई
नौ देवन की सोंह खाइ, इमि कह्यौ सुनाई
"करत प्रतिज्ञा आज 'टारकिन' संतति भारी
नाहिं झेलिहै कष्ट अधिक अब और अगारी"
नियत दिवस करि सभा हेत सबके आवन को
भेजे चर पूरब पच्छिम उत्तर दच्छिन को
समर निमंत्रन चहुँ दिसि दूतनि दियो जनाई
गढ़ी गाम पुर धाम धाम अस भेरि बजाई
"धिक-धिक तिहि टसकन को, जो घर ठिठकत जाई
कलूजियम-नृप जबै रोम पै करत चढ़ाई"
वोलेटरी पुरी सों, जहँ बन विभव विशाला
बन्यौ पूर्व विख्यात दुर्ग दुर्गम विकराला
धनद सरिस भूपति हित यच्छनि आपु बनावा
जाहि लखत उर पटल परत अति अटल प्रभावा
पुपलोनियां नगर सों, जाके चहुँ दिसि धाई
सुभग समुदर सुंदर सुठि कोधनी सुहाई
स्वच्छ भाँति सों जासु पहरुअन को नित दरसत
सरडिनिया के शैलशिखिर हिममय नभ परसत
पीसा नगर हाट सों, सब सुख संपति सानी
पच्छिम भुअमधि-रत्नाकर की जो महारानी
मेसीलिया जहाज रहत जहँ लंगर डारे
सुबरन बरन वार बारे किंकर भरि भारे

उन देशनि सो, जहाँ बहति क्लेनस मनभावनि
द्राच्छा, अन्न, प्रसून संकुलित थल अपनावनि
टोनाक्रर करटोना, जहँ नभ चुम्बनकारी
लसति कोट कमनीय कँगूरनि कीट सँवारी
सुखद पैंठमय ठाम सुभग शोभा धामनि सो
शस्य श्याम अभिराम मनोहर बहु ग्रामनि सो
जहाँ तहाँ एपीनाइन शिखरस्थ घनेरे
गृद्धवास सम देवदारु मंडित बहु खेरे
चलि तिनहूँ सो विपुल वीर रस रंग सवाये
पैदल दल के दल सवार बल बादल छाये
दीरघ बृच्छ बलूत चारु निज फल टपकामे
तरुन तरुन-श्यामायमान औसर सरितामे
हृष्ट पुष्ट मृग मिथुन सचरत इत उत चितवत
चरत सिमिनियन-गिरि नूतन तृन सुख दिन बितवत
बहति मनोहरि क्लेटमनस कमनीय कलित सरि
गोप ग्वाल-गान परम पियारी जो सर्वोपरि
बुलसीनियन-महासर सब सो सुदर भारी
जल बनकनयुत अहेरियन मन रजनकारी
लकडहार के कुठार कौ आहट छिन-छिन मे
अब न सुनाई परै सरित-औसर-तट बन मे
बिहरत सुख स्वच्छन्द सिमिनियन हिरना सारे
जात न तहँ कोउ व्याध अहेरहिं हेरन हारे
पय सम सित बछरा क्लेटमनस सरि तट डोलत
चरत, ग्वार-बिन, छूटे बिझुकत मुदित कलोलत
बुलिसनियन सर बूडि बतक कहुँ सिरहिं उछारै
निधरक मन अब पैरत पुनि-पुनि बूडक मारै
या संवत मे एरीशियम कृषी अति नीकी
लुनहिं बृद्ध कृषिकार सुहावनि भावनि जी की
अम्बुवती अम्नो सरि अब कें बालक जैहैं
तोर करत भाजन हित भेडनि तहाँ न्हवैहै
अरु लूना-लघु कुण्डन मे खिलकत बहु बाला
आसव काढन हरषि खूँदिहै दाख रसाला
तिन कल कोमल चपल चलत चरननि-चहुँ ओरी
उठि है ललित मृदुलतर मजुल झाग अथोरी

क्यो सु, तात अरु भ्रात पोरसेना सँग धाई
उनके गये समोद रोम पै करत चढाई
गिने ज्योतिषी तीस चतुर जो सगुनी भारे
रहत पोरसेना ढिग ठाड़े साँझ सकारे
पूर्वज बुध जन लिखित पत्तिरा जिननें खोले
उलटि पलटि मुसिक्याइ एक सुर सो सब बोले
"श्रीपति युग पद पदम मधुप षटपद मतवारे
जाउ, पोरसेना ! सिधाउ अब देस-दुलारे,
जाओ जाओ नाथ ! लौटि घर सकुशल आओ
विजय वैजयन्ती -विनोद सो यहँ फहराओ
द्वादस सुवरन रोम ढाल निरभय चित लैयो
पुलकि नशिया-यज्ञकुण्ड के चहुँ लटकैयो"
करि परेट जब सिमिटे दल की करी सँभारा
पैदल अस्सी सहस, सहस दस भये सवारा
पुनि सब सेना जुरी, सट्रियम द्वार अगारी
कियो पोरसेना घमड लखि ताको भारी
ताके आगे पंक्तिवद्ध सजि सेन सुहाई
मिले देश-निष्कासित रोमन जामे जाई
अरु बहु सुहृद राज दल-बलयुत विपुल सुहायो
मेमीलियस कुमार मिलन को तामे आयो
देखि दूरि सो भीर धूरि मडराति नगर मे
भारी हलचल मची, टाइवर-तीर पुरन मे
विस्तृत बहु मैदान दूरि दूरिनु लो छाये
सिमिटि-सिमिटि तिन सो, सबरे जन रोमहि धाये
कोसनु लो तव नगर चहूँ दिसि जमघट भारी
जुरयो रोकि सब गैल ठसाठस भरि नर नारी
त्रासजनक अति घोर दृश्य की यह अधिकाई
लगातार द्वै दिन रातिनु लो दई दिखाई
वैसाखी बल चलत चकित भयभीत वृद्ध जन
सोचयुक्त अलसात गर्भवारी नारी गन
हिलकि-हिलकि मा रोइ लाल-मुखचंद निहारति
हृदय लगे मुसिकात शिशुहि चूमति पुचकारति
डारि-डारि डोलिनु मे रोगी गन को धाई
सेवक लीये जात श्रमित तन मन भय पाई

भाजे जात किसान छाँडि निज खती पाती
विडरे डोलत विकल हाथ मे लिये दराती
मदरा की अनगिन मसकनि सो लदे लदाये
खच्चर खर के पुज तहाँ चहुँ ओरन छाये
अति अपार तहँ हेड अजाकुल अरु भेडनि की
गणना को करि सकै अमित सख्या गायनि की
लदी नाज बोरनु सो कहुँ गृह-वस्तु भराई
भारी लम्बी लार तहाँ छकरनु की छाई
अतु(ट)ल बोझ सो दबी विपुल चररर चर्राती
घोर सोर युत भीर द्वार मे अडि-अडि जाती
भयबस पियरे परे नागरिक लखन लगे अब
हृदय विदारक दृश्य टार्पियन भूधर सो सब
जिन गामनि मग मे पामे अरि आगि लगामे
तिनसो कढि निशीथ मे लोहित लौ भँरामे
लखि नभ लो परकास भये मन सकल हिरासा
सोचत गये दिनराति, बँधी परि कोउ न आसा
घरी-घरी कोउ न कोऊ चर दौरत आवै
भीषण भय सो भरी खरी तहँ खबरि सुनावै
अब रिपु सेना पूरब पच्छिम लो छितरानी
कष्टुमीरियम भुवि तिन कर सो सकल नसानी
वरबेना तें ओश्टा लो सब धरनि उजारी
जेनीकुलम उडाइ सेन अस्टर सब मारी
ज्यों यह उत्कट समाचार दुखमय सुनि पायौ
मत्रि सभा मे कोउ न ऐसो वीर लखायौ
सोच-संकु की करक न जाके उर मे करकी
घर-घर जाकी धरक-धरक धुकधुकी न धरकी
उठि बैठ्यौ घबराइ कौन्सल मन भय पाई
हरबराइ सब उठे सभासद अति अकुलाई
तन झगानि लभेडि वेग सौं ह्वै इक ठौरे
धरत उतावल पॉइ कोट की दिसि को दौरे
सरित द्वार पै तुरत फुरत पहुँचे जब जाई
ठाडे-ठाडे सम्मति करि इक युक्ति उपाई
समय अल्प अत्यन्त समस्या परी कठिन की
चलै कहा तब कहो विचार विवाद करन की

खोलि कही सब सो कौन्सल ने तबै सुनाई
"उचित तोरिवौ अवसि पुलहि सब विधि अब भाई!
लग्यौ हाथ रिपु के जेनीकूलम तुम जानौ
अब न नगर-रक्षा को दीसत कोउ ठिकानौ"
एक दूत तत्काल लौटि तहँ भाजत आयौ
भय पूरित चित चकित शीघ्रता बस बौरायौ
"शस्त्र गहौ महाराज ! कसौ कटि, करन लराई
नृपति पोरसेना सेना सँग करी चढ़ाई"
सुनत दूत कै बैन कौन्सल नैनहिं फेरी
पच्छिम लघु गिरि माल हीय उत्कंठित हेरी
उमडि रही रजघटा घुमडि, घनघोर मचावत्
विकट बवडर की वादल लौ चुटिया धावत्
ज्यों-ज्यों नियरी झुकति घनी रिपु आंधी आई
गगनि गरभगत घोर रोर त्यों परी सुनाई
रनमीगा रनगीत दरप सों भरे अलापत
हय टापनु सों मिश्र कहूँ कोलाहल व्यापत
विशद भाव सो अब दल बादल दीखत आमे
चहुँ ओरनि सो छई रजमई श्याम घटा मे
झिलमटोप-दुति झिलमिलाति पल-पल चकचौधति
दामिनि सी असिमाल भयामिनि चहुँघा कौंधति
सुठि प्रकार सो दीखत सेना, ऊपर ताके
बरन बरन के द्वादस गढ के लसत पताके
उडत उच्चतम सुभग क्लूज़ियम-झंडा भारी
बड़े ठाठ सो, गौल अम्ब्रियन हिय भयकारी
लगे नागरिक अब जानन अति स्वच्छ भांति सो
प्रति रनधीरहिं हय पट कलंगी चालि ढालि सो
एरीशियम नरेश सिलनियस दीस्यौ आवत
चचल चारु सुरग तुरगहिं चतुर नचावत
ढाल चौपुटी वारौ अस्टर रन-मतवारौ
कोउ न सके सँभारि जासु कटि-तेगा भारौ
बाँधे सुठि मडील डील कौ पूरौ ज्वाना
आवत सबकी दृष्टि परयौ दुर्धर बलवाना
सबनि जनावत सुबरन पेटी सो निज आवनि
दीस्यौ टोलमनियस धारि सजधज मनभावनि

स्याह कवच तन, प्रमुदित मन हरसावत सेना
परचौ लखाई बदत बैन वर, नृप वरवेना
राजकीय फरहरा जहाँ लहकत लहरावै
तहाँ द्विरद-रद-स्यन्दन अनुपम एक सुहावै
चढ्यौ पोरसेना तापै नृप छत्तरधारी
दीस्यौ निरखत सारी सेना बढत अगारी
रथ दाहिनि दिसि बाजि नचावत सुभग अपारा
लखियत चारु चिकनियाँ मेमीलियस कुमारा
बाम ओर लखि सूरत सेक्सटस अधम कुटिले की
गगनभेदिनी उठी नगर सो ध्वनि धिक-धिक की
कोसि कोसि सब वाहि घृणा करि भारी मन मे
अटा चढी तिय थूकन लागी तासु जनम मे
दै दै गारी बाल युगल-कर मूठि उठावै
लात दिखावै तिहि दिसि दाँत निकारि बिरावै
किन्तु कौन्सल के ललाट पै चिन्ता छाई
धीमी वोली परी, गयो मुख कमल सुखाई
चिन्तातुर घबराय कबहुँ गढ-कोट निहारत
कहत सभय कबहूँ रिपु दल पै दृष्टि पसारत
"अरिदल अग्रिम भाग हमनु पै यदि चढि आवै
सुदृढ कदाचित तब लो पुल टूटन नहिं पावै
जीत लेइ जो पुलहि, शत्रु दल सबल महा है
नगर बचावन की बोलहु फिर आस कहा है"
द्वारपाल-पति तब अविचल होरेशस वीरा
अतुल प्रताप प्रचण्ड बचन बोल्यौ रनधीरा
"ग्रसति मृत्यु सब जीवनु जो भुवि पै तन धारी
द्वै दिन आगे कवहुँ कबहुँ छै दिना पिछारी
पितृ भस्म हित, जो पुनीत तिन कीरति सानी
एक मात्र सन्तोष दैनि पुरखान-निसानी,
पुण्य भूमि गौरव विस्तारक मठ देवन के
धर्म भाव सचारक उपकारक, हित तिनके,
मृदुल हृदय जननी हित जिननें गोद खिलायौ
पलना मे पौढाइ रमकि सुख नीद सुआयौ
भामिनि हित, जो करत सदा सेवा सुखकारी
वीर प्रसूता सुतहि प्याइ पय पालनहारी

अरु कुमारियनु हित, पवित्रता जिन चहुँ छाई
हवन कुण्ड की अग्नि रखत जो सतति सुहाई
परम पातकी कुटिल क्रूर निर्लज्ज अपावन
नीचे सेक्सटस सम सठ सो, तिन धरम बचावन
प्रबल शत्रु सन, रूपि स्वदेह जिन रन मे त्यागी
वीर लोक मुसिकात जात वह जन बडभागी
अब तो श्री कौसल पुलको तुम तुरत तुरावौ
जहँ तक तव बस चले शीघ्रता पूर्ण करावौ
यदि केवल द्वै योधन की सहाय मैं पावौ
तुम देखत वैरी को कैसे खेल खिलावौ
वह देखौ लखियत यहँ सो पुल पथ सकराई
कौतुक ही मे रोकि सकत सहसनु त्रय भाई
को सहाय हित दाँये बाँये अब आवेगौ
मो सँग सेतु रखाइ वीरता दरसावेगौ !!"
वीर शिरोमनि रोमन है जाके अभिमानी
कही लारशस तबै वीर रस पुलकित बानी
"लेउ, तिहारी दाँई दिसि अब ही मै आवो
तुअ संग सेतु रखाय जन्म भुवि ऋणहिं चुकावौं"
धीर धुरन्धर सुन्दर हरमीनियस सदाही,
रौरत टिटियन रुधिर जासु नस नस के माही
"यथा शक्ति करि हौ मैं हू पुल की रखवारी
तव बाँईं दिसि आइ" वीरवर गिरा उचारी
"प्यारे वीर, तथास्तु, यथा तव वचन प्रमानी"
चतुर-चारु अनुभवी कही कौसल यह बानी
विपुल साहसी निर्भय तीनो प्रफुलित मन सो
महासेन सँग लरन चले सुनि सिंह ठवनि सों
नित स्वदेश हित साहसमय प्राचीन समय मे
कियो न रोमन मोह धरा, सुत, सुवरन तिय मे
प्रिय, तन, मन, धन, धाम मुदित सब सरवस वारी
जननी जन्मभूमि की सेवा करी पियारी
पहले स्वारथ पक्षपात को सुन्यो न नामा
देशलाभ हित रच्यो सकल सुठि यत्न ललामा
करी धनी निरधनी बन्धु की सदा सहाई
लसी दीन उर धनी हेत नित नेह निकाई

सामिलात भुवि बटति रही सब ठीक ठीक तब
बिक्यो लूटि को माल धर्म सो सकल यहाँ जब
रोमन हे तब सकल मनौ मा-जाये भाई
पूर्व काल की कीर्ति कौमुदी चहुँ दिशि छाई
अब उलटौ ब्यौहार करत रोमन रोमन सो
लखत परस्पर अरिहू सो अति घृणा दृष्टि सो
जन-प्रतिनिधि सब बडे बडेनु की मोछ उखारे
पंच प्रजा के दीन दुखिन को पीसे डारें
निज के झगरेनु में कढ़ि बाहिर दुन्द मचावत
अरु लरिवे की बेर घुसत घर चुप्पी साधत
क्यो न मनुज अब लरत, लरत ज्यो रहे सदा सों,
विकसित करि इतिहास-कमल यस अमल प्रभा सो
ठीक ठीक कसि रहे जबै कवचनु वे तीन्हो
सब सो पहले निज कुठार कर कौसल लीन्हो
भेदभाव सब भूलि मिले तब पंच प्रजा के
पिले सेतु दिसि अस्त्रनि गहि तोरन हित ताके
काटि काटि ऊपर के तखता सकल ढहाये
नीचे के अवलम्ब खम्भ, दै चोट, हलाये
ताही खन चतुरंग चमू टसकन की भारी
निरखत मे चटकीली सज धज सो मतवारी
टीक दुपहरी दुतिसम दमकति चमकति आई
पंक्तिबद्ध जनु सुबरन जलनिधि लहरि सुहाई
ज्यो रिपु सेना बढी उठावति कदम अगारी
करी चार सौ रनसीगनु धुनि गगन बिदारी
हाथ सिरोही सब वीरन के चिलकि सुहावे
फरफरात सुठि विविध फरहरा लचि लहरावें
उदधि-ऊर्मि सी उठत विपुल पुल ओरहि बाढे
वीर केसरी जहाँ अभय चित तीनो ठाढे
अविकल अविचल लखत तिन्है निज दिसि, गरवाई
गिनि मन मे अति तुच्छ शत्रु दल हँस्यौ ठठाई
पुनि अथाह तिहि दल सो छटि त्रय सूर सुहाये
एड लगावत हयनु कुदावत आगे आये
निज निज हय सो कूदि खेचि असि ढाल सँवारी
सकरौ पुल-पथ जीतन आये रिस उर धारी

द्राच्छावन संकुलित टिफरनम देस पहारी
तहँसो आयो आपु भूप औनस बलधारी
अरु सीझस जिहि दास आठ सौ दुख के मारे
काम करत खाननु मे पियरे परे बिचारे
अरु पैंकस जो सन्धि और विग्रह मे मन सो
रह्यौ क्लूजियम कौ अधीन नृप बहु दिवसन सो
सेत सिला सो लाइ अम्म्रियन सेन, सिधायो
जहाँ नीक्वीनम बुरजदार दृढ दुर्ग सुहायो
नार-निम्नगा नदी नीर निरमल के माही
झिलमिलाति दरसाति तासु धौरी परछाही
नीचे धारा मे अति बल सो तिहि दिसि ठेली
दियो लारशस जोमदार औनसहि ढकेली
कियो वार सीअस पै हरमीनियस कराला
खोलि दसन लो दियो तासु सिर रुनि करवाला
विक्रम सो असि खेंचि वीर होरेशस लीनी
झपटि वेग सो झट कसिकें पैंकस कें दीनी
विकट अम्म्रियन दिव्य कवच गिरि धरनि मँझारी
रुधिर सन्यौ, रजमाँहि, करी झन झन धुनि भारी
तवै ओकनस विदित वीर उनकी दिसि धायो
लोस्यूलस समुद्र को डाँकू पाछे आयो
तुल्सीनियस नरेस अरन्सहु चल्यो छबीलो
जिन वराह बरहेलू मारयो मन गरवीलो
कुसा-मूज-पूजनि मे जाने भाटि बनाई
अलविनिया-तट-खेत नासि, नर मारे धाई
लियो अरन्सहि तत्छिन हरमीनियस गिराई
दियो लारशस ओकनसहि नीचो दिखराई
लच्छ धार होरेशस ने करि फुरती भारी
लोस्यूलस के हृदय माँहि असि एक प्रहारी
उचित घृणा करि वीर कही तब ताहि सुनाई
"वही डरयो रहि नीच ! अरे डॉकू अन्याई !
नास-कारिनी तव नौका की चिन्तित मन सो
कोउ न जोहहि वाट ओस्चा की भीतन सो
मृग लखि तव भय भरयो पाल अति डरपत मन मे
नाहि भाजि हैं अब पटपरसो वन खोहन मे"

दहलि गयो चित अरिमण्डल को अब भय खाई
अट्टहास धुनि तिहि दिसि सो नहिं परी सुनाई
भय पूरित रिसभरी खरी कल कल धुनि भारी
उठी चहूँ दिसि रिपु दल-अग्रिम गोल मझारी
सेतु द्वार सों छै - बरछी - दूरी पर सेना
अति अथाह गाढी ठाढी पुल ओर बढे ना
नही धरयो तहँ सो आगे काऊ ने इक पग
जीतन को तिहि समय सेतु को सँकरौ मारग
"अस्टर अस्टर" सब किलकारत अस्टर आवै
लेउ ! तासु हित चमू चिरी इत उत छितरावै
बड़ी बड़ी डग धरत, धरत छवि परम अनूपम
धरा कँपावत आवत वह ल्यूनाधिप दुर्गम
वृषभ कंध पै छई चौतई ढाल सुहावत
खन-खन झन-झन करत परत घनघोर मचावत
बदलि पैंतरा उछरि बेग सो तेग फिरावै
सकै न जिहि काउ साधि ताहि वह भानत आवै
तीनौ वीरनि निरखि हँस्यौ वह हँसी सुहावनि
वीर भाव सरसावनि पै उर की दहलावनि
रन सों झिझकति विपुल सेन टसकन की जानी
घृणा दृष्टि सो हेरि ताहि बोल्यो वर बानी
"हिय हतास निज वैरिनु पै ये वृकनी[1] जाये
चोट करन उद्यत, दबियाने घात लगाये
मारग के सब विघ्न हरै यदि अस्टर भारी
पीछे पीछे आवन छाती परै तिहारी ?"
वह अलबेली ज्वान पटा के हाथ निकारत
दोउ कर सों ऊँचो उठाय निज तेग सँवारत
अति असीम पूरन बल सो रन मद में छायौ
धायौ होरेशस पै अपनो वार चलायौ
युद्ध कुशल होरेशस करि फुरती चतुराई
चपल पैंतरा बदलि, वार की चोट चुकाई

१ कहते है कि रोमन लोगो के पूर्वज रोमस और रोम्यूलस बाल्यावस्था मे, लिरनिया का दूध पीकर पले थे। यहा उसी पर कटाक्ष है, इससे अस्टर की रोमनो के प्रति घृणा व्यजित होती है।

यदपि [illegible]
जाइ विदारी जांघ तासु तजि सीस मुकट को
डगमगात जनु गिरचो धरत पग व्याकुल भारी
रह्यौ ठाढ छिन भर लहि हरमीनियस सहारी
ततारोस मे घायनु लखि वेसुधि खिसियायौ
सिंह सुवन सो झपटि उछरि अस्टर पै आयौ
बड़े वेग सो तेग दई ताके सिर जाई
झिलम टोप को भेदि दसन लो जाइ समाई
धमकि धसी सो तेग लगी अस्टर के आछे
निकरी एक बिलस्त नोंक तिह मस्तक पाछे
तिह प्रहार सो गिरचो वीर ल्यूनेश धरनि पै
मनहु तड़ित-ताड़ित बलूत अलवरनश गिरि पै
दूर दूर लो कुचलि विपिन पौधन को भारी
अरर राय के गिर्यो शाख भुज युगल पसारी
अरु जिमि सगुनी देखि गिरचौ तरु तरुण विशाला
गुनगुनात अपसगुन सोच भय बस तिह काला
तिमि लखि अस्टर-पतन धरनि पै टसकन सेना
चित्रलिखी सी लखति चकित कछु कहत बने ना
तासु कठ होरेशस धरि निज पॉउ दबायो
लग्यो उखारन दै दै झटका तेग समायो
सात बेर लो पच्यो जोर सब करि करि भारी
तब कहुँ तेगा धस्यो, कण्ठ सो सक्यो निकारी
व्यग भरी रनधीर उचारी तब यह बानी
"आओ ! कैसी करत यहाँ तुम्हारी मिहमानी
अब के को सरदार आइ पुजवै अभिलाखैं
मजुल मधुर, मलूक स्वाद स्वागत को चाखैं"
सुनत चिनौती तीखन तिहि खन ताके मुख सो
उठ्यो कुलाहल रोस लाज भय मय रिपुदल सो
विविध शस्त्र-दुति दमदमात छत्री जहँ आये
बल अकूत युत वीर धीर रजपूत सुहाये
क्यो सु भीर पूरन इट्रूरियन नरपति केरी
ठाडी ढिग तिह काल सेतु के चहुँ दिसि घेरी
देखि मृतक भुवि परे, और पुल मग मे ठाढ़े
अभय विपुल रन रग रँगे तीनो चित गाढे

सबरी टसकन-सुभट सेन जिय मे घबरानी
परी न छाती प्रविसन, साहस जोति सिरानी
मन बाढ़े ठाढ़े तीनो रोमनहिं निहारी
सेतु द्वार सो झिझकि हटे सब उर भय धारी
जिमि मिलि के बहुबाल कलोलत डोलत बन मे,
खरहा खेदन-कौतुक सो प्रमुदित अति मन मे
खोजत खोजत ताहि अचानक जो वहँ आई,
विकट भिटे के द्वारहिं झाँकत करि चपलाई;
लखि हौलें गुर्रात रीछ जहँ हृदय कँपावन;
बैठ्यौ हाडनु माहिं रुधिर सनि परम भयावन;
झिझकत पाछें हटत उतावल करि डर भारौ,
परत प्रान के लाले कौतुक करत किनारौ
तिमि तिन-विक्रम निरखि सभय रिपुदल विस्मित मन
बढ्यो न आगे कोउ करन परचण्ड आक्रमन
'आगे आगे बढहु' पिछारी जन किलकारत
'पाछे पाछे हटहु' अगारी पुरुष पुकारत
कबहूँ पाछे हटत कबहुँ आगे बढि जाई
उठत हिलोरत उदधि लहरि सम सेन सुहाई
तरलित समुद तेग-धारिनु को, ऊपर ताके
बरन बरन के लेत लपेटा लहरि पताके
विजय घोष धुनि रनसीगन की चढि अधिकाई
गिरी खरी अति मन्दपरी पुनि गई नसाई
तदपि सेन सो निकरि एक जन आय अगारी
छिन भर ठाडो भयो वीरत्रय परिचित भारी
करि अभिवादन टेरि कह्यो उन लखि ता हियगत
"आउ सेक्सटस भवन तिहारौ स्वागत स्वागत !
क्यो बगदत क्यो सकत कहा तब जीय ठनी है
रोम जान हित देखो सूधी सडक बनी है"
तीन बेर बाने गढ पैं निज दृष्टि पसारी
तीन बेर निज निकट परे हत नरनु निहारी
तीन बेर क्रोधित ह्वै आगे बढिकें आयौ
तीन बेर भय सो पाछें निज पाँउ हटायौ
भय बस पीरो पर्यौ घृणा तिह मुख पैं छाई
कछुक काल लो लखी विपुल पुल पथ-सकराई

जहाँ वीरवर टसकन रन सर रुधिर नहाये
इक कायर के हेतु व्यर्थ प्रिय प्रान गमाये
किन्तु जबै लो हनि गदहा ले और कुठारी
बन्ध बन्ध किय सिथिल सेतु के, करि वल भारी
लगत गिरयो अब डग डग हालत पुल सब भाँती
सरि ऊपर जो बहति जोर करि भरि उफनाती
"लौटि आउ बस लौटि आउ होरेशस प्यारे !"
पुलकि टेर सब पच प्रवर वर वचन उचारे
"अहो लारशस हरमीनियसहु क्यो बगदे ना
भाजि आउ जौ लौ पुल ढाँचो ढाइ गिरै ना"
तीर वेग सो वीर लारशस तट दिस आयौ
और बगदि तिह पाछें हरमीनियसहु धायौ
ज्योही आये जानि परी पगतर तिह खन की
चरचरानि तरकनि दरकनि सरकनि तखतन की
परली पार अकेले होरेशस को देखी
बगदि जान इक वार चह्यो पुनि दोउ विशेषी
विज्जु पतन सम इतने मे धुनि करि अरराई
उसिले सरदल सकल गिरे पुल के भैराई
ठीक धार के आर पार रोकत जल माला
गिरयो लार की लार सेतु, जनु बाँध कराला
पीत फेन-कन उचटि पार करि परम उचाई
परे रोम-कल-कोट कँगूरनि पै ज्यो धाई
त्यो प्राकार-स्थित नर नारी गगन विदारी
करी विजय धुनि तुमुल मुदित मंजुल मतवारी
जिमि चंचल अनफिरी बछेरी चारु सुहावै
प्रथमहिं लगत लगाम, करत चट्ठी, चकरावै
मचलि वाग को तोर जोर करि, जात तुराई
दौरत चहुँ स्वाधीन होन, केसनु विथुराई
प्रवल वेग सो सरित जोम करि तिमि अति भारी
तरलित ग्रीव-कचावलि सी निज लहरि सँवारी
तोरतारि सब बाँध उफनि करि घोर अथोरी
ठेलि भग्नपुल चली सरित-पति दिसि रस बोरी
छाई नब्बे सहस शत्रु की सेन अगारी
तरल तरंगनि झूमि महानद नदत पिछारी

केवल ठाड़ो होरेशस जहाँ धीर धुरन्धर
पै निसक अविकल अविचल मन वीर पुरन्दर
सूखे मुख मुसिकाइ सेक्सटस कायर टेरो
कही "डुबाओ याहि करी क्यो इतनी देरी"
नृपति पोरसेना वीरोचित सबद उचारे
"अभय दान हम देत हमारी सरनहिं आ रे"
अति अनुचित मन जानि कुटिल कायर दल निरखन
फेरि लई सो पीठि घृणा सो निरभय तिहि खन
नृपति पोरसेना सो एकहु सबद न बोल्यौ
न सेक्सटस ही सो बानें अपनौ मुख खोल्यौ
परि पैलेटीनस गिरि ऊपर पुलकि सुहावनि
निज मन्दिर की सेत पौरि निरखी मन भावनि
पुनि सनेह कर जोरि जुगल विनई निरझरनी
रोम कोट लगि बहति निरत जो कलिमल हरनी
"अहो टाइवर, मात टाइवर, पातक-छैनी
देवि, रोमजन सेवि, सकल मुद मंगल दैनी
सौपत निज तन, शस्त्र, तोहि मा ! सरनहिं दीजो
जननि, दया करि आज स्वजन की रक्षा कीजो"
इतनी कहि असि म्यानकरी कटि मे लटकाई
कवच सहित सो कूद परचो धारा मे धाई
दोऊ तट सो चकित सकल जन दृश्य निहारे
हरष शोक की कैसीहू नहिं साँस निकारे
मूक, अचम्भित, भौचक, मुख फारे सब ठाढे
चितवत ही रह गये चित्र जनु कागद काढे
डूब्यौ जहँ होरेशस, तहँ टकटकी लगाये
निज तन दशा बिसारि लखत हरि सो लौ लाये
इतने ही मे तरल तरंगनि पै लखि ताको
झिलम टोप उछरात हिलोरत जल सरिता को
उल्लासित सब रोम निवासिनु रोर मचायो
रिपु दलहू रह सक्यौ न, अपनों हरष जनायो
इक तो पावस सरित उमडि भरि चली उतराई
और तासु तन रकत धार निसरत दुखदाई
सकवच, दूजे लरत भयो बल शिथिल हृदय गुनि
यद्यपि सकल निरास तदपि उछरचौ वह पुनि पुनि

कोउ न पैरा कवहुँ न ऐसी बुरी दशा मे
जीवत पारहिं लग्यौ कूदि ऐसी सरिता मे
धीर प्रकृति केवल ताकौ प्रत्यंग सहारचौ
आपु चिबुक गहि मात टाइवर ताहि उवारचो
कुटिल क्रूर अति नीच सेक्सटस बोलन लाग्यौ
"बुरौ होइ जाकौ, नहिं डूव्यौ हाय अभागौ
जो न डारतो अधम विघन हमरे मग आई
लेते नगरहिं लूटि साझ सो पहले जाई"
नृपति पोरसेना वोल्यौ वर वीर सुजाना
"सकुशल जाको पार पठावहिं श्री भगवाना
अस अनुपम दृष्टान्त वीरता को जग निरमल
देख्यो गयो न कवहूँ पहिले अधिक समुज्ज्वल"
नदधारा मे टिकन लगे अब पाँव वीर के
देखत सवके आय गयौ वह निकट तीर के
मन्त्रि सभा के पच परम उर आनद छाये
पुलकि प्रेम सो हाथ मिलावन चहुँ घिरि आये
घायनि सो लोहूलुहान तिहि हृदय लगाई
करतल ध्वनि करत "जयति" घनघोर मचाई
टपकावत प्रेमाश्रु मगन मन सब नर नारी
सरित द्वार सो गये साजि ताकी असवारी
ह्वै कृतज्ञ सब ताहि कियो सम्मानित भारी
इक ज्वारे की दीनी जुतऊ भुवि सरकारी
तिह स्वदेश-उपकार हेत उत्साह वढाई
मजु मनोरम मूर्ति एक ताकी ढरवाई
ऊँचे से आसन पै ठाड़ी सुन्दर सोहति
अजहूँ जन जो लखन जात तिनको मन मोहति
सार्वजनिक जो सभा भवन जहँ सवही आवत
निरखन हित तहँ भई तासु प्रतिमा संस्थापित
उमगत उर अपार जव होरेशसहि निहारै
सकवच घोटू एक टेकि वीरासन मारै
सब वृत्तान्त लिखि रह्यौ मूर्तितर स्वर्ण बरन मे
जिहि विधि राख्यौ सेतु शत्रु सो पूर्व समय मे
अजहुँ विलच्छन स्वच्छ नाम जाको सुमिरत मे
वीर वह्नि वरि उठै रोम-जन की नसनस मे

जनु रनसींगा ध्वनि उत्तेजति तिनहिं सबाई
बोलशियन चिर शत्रु जाति पै करन चढाई
महिला मृदु वाणी सो ज्यूनो अवहु मनावैं
"देवरानि ! वर देहू वीर बालक हम पावै
होरेशस सौ, धवलधीर गम्भीर लरन मे
जिन स्वेदशहित पुल राख्यौ प्राचीन समय मे
जबै झुकति हेमन्त-राति कारी कजरारी
अरु उत्तर की सीरी सीरी, चलति बियारी
बरफीले ठौरनु सो करकस कठोर आई,
उठि लिरियन को रुदन देर लौ परत सुनाई,
जबै इकोसी परी झोपरी के चहुँ ओरी,
सनसनाति आँधी आँजर पाँजर झकझोरी
जरत पहारिनु-लट्ठनि की धुनि चटचटानि अति
सुनत देत ना कछू सोर सो श्रोनहिं फोरति;
जबै महोच्छव औसर पै करबे मिहमानी
काढत पीपहिं खोलि नसीली सुरा पुरानी
धरत उजेरे काज बडो सो लम्प उजारी
करत भूँजि अखरोट विविध भोजन तय्यारी,
जबै घेरि अगिह्राने को मिलि सबरे बैठत,
बूढेनु सो बतरात ज्वान निज मोछ उमेठत,
बुनत बोइया और टुकनियाँ जबै कुमारी
युवक बनावत धनुही जीय चुरावनहारी
जबै कान्त कोउ क्रीट कलगी कवच सुधारै
कुल कामिनि कातत रहँटा प्रमोद उर धारै;
प्रमुदित अरु प्रेमाश्रु बहावत अति रुचिमानी,
सुनत सुनावत सकल अजहुँ यहि वीर कहानी,
सत्य धीर होरेशस जिहि विधि बल दरसाई
लियो विमल प्राचीन समय मे सेतु रखाई
श्रम अरु निज कर्तव्य धार मुदमगल दैनी
जबै भारती नेह मिलत, तब बहति त्रिवैनी
जामे जब कोउ जाति करति मज्जन अरु पाना
होत अभ्युदय तासु कहत इतिहास पुराना
प्रजा राज-प्रिय राज प्रजा-प्रिय निरमल राजै
शत्रु नसत अपु सो अपु सुखमय शान्ति बिराजै

स्वर्गादपि गरीयसी अनुपम प्राण पियारी
मन्द मन्द मुसिकात चन्द मुख करि उजियारी
मंजु माधुरी मूर्ति सदय उर नित सर्वानी
देति दरस संत स्वतंत्रता जग जननि भवानी ॥

उक्त सुमज्जन पान अवसि सज्जन जन कीजै ।
जग दुरलभ अनमोल मनुज जीवन फल लीजै ॥

सहृदय प्यारी !
'मृत्यु पराजित होत प्रेम सो' निश्चय जानन हारी ।।
वीरासन ह्वै भूपति पति को लै भुज-लता सहारे ।
व्रण सो विष चूस्यौ लगाय जिन मधुराधर अरुणारे ।
कलित कोकनद कलिका कोमल नवल छटा छिटकावै ।
जिमि वसत मे 'सत' सौरभ सो गरल ताप विनसावै ।।
(टेनीसन)

ईनोक आरडिन

(सुप्रसिद्ध अंग्रेजी कवि टेनीसन रचित ईनोक आरडिन के
कुछ पद्यो का अनुवाद)

अंग्रेजी साहित्य मे उक्त नाम की छोटी-सी काव्यात्मक पुस्तिका परम प्रसिद्ध है। इसकी मधुर एवं सरल रचना से बडे-बडे सहृदय विद्वान् भी मुग्ध होते है। इसका प्रकृति-सौंदर्य, मानवी स्वभाव का मनोहारी वर्णन तथा परमात्मा का प्रगाढ प्रेम अत्यानंद देने वाला है।

प्रारंभ करते ही समुद्र तट के पर्वतीय दृश्य का चित्र इस भाति खीचा गया है—

लम्बी शैल-श्रेनि खडित जहँ घाटी सोहत ।
समुद फैन अरु पीत बालुकन तहँ मन मोहत ।।
दरसत सकरो घाट सट्यो बहु सदन सुहावन ।
तासो चलि कछु परें जीर्न गिरिजागृह पावन ।।

पनचक्की दिसि जान तहाँ ऊपर पथ भ्राजत।
परे कछुक नभ ओर धवल टीलो पुनि राजत।।
तहँ देनिस समसान सघन सुन्दर हरियल वन।
नरियल बीनन सदा सरद मे जहँ आवत जन।।
नीचे से मे लहलहात धरि छटा अथोरी।
ललित हरित रंगभरी धरी जनु कलित कटोरी।।

समुद्र के किनारे रेत से घर बनाते हुए बच्चो का कैसा अच्छा स्वाभाविक वर्णन है—

रचत रेत-मय मजु मन्दरनि मोद मनावत।
उदधि उतग तरंग उठत जब, तिनहि बहावत।।
भजत तासु पाछें, जब आवत धावत आगें।
लघु पद-चिह्ननि धुअन नित्य सो तट पर त्यागें।।

निराशा घनघोर घटा मे आशा की प्यारी प्रभा किस प्रकार प्रकाश करती है, उसका भी रहस्य सुनिए—

यदपि अचानक आइ छाइ कुदिशा मँडरानी।
सुदिन लखन की आस तासु हिय तउ न सिरानी।।
जिमि कोऊ जन जाय निकट तट ,लखत समुन्दर।
तरल तोय रवि किरन परसि चिलकत अति सुन्दर।।
घिरत वदरिया होत कछुक उज्जल जल तम मय।
नसत नाहि परि दूर जास-परकास-भास-चय।।

परदेश जाता हुआ पति ईनोक अपनी अर्धांगी 'एनी' को उपदेश दे रहा है और वह चुपचाप किंकर्त्तव्यविमूढ हो खडी है, उसका तत्कालीन चित्र देखिए—

जिमि कोउ जाइ तडाग उड़ावति गागरि गोरी।
मन लागी नित भरन हार रसिया सो डोरी।।
मुखलो सो भरिजात बहत जल बबलत ता धुनि।
प्रिय सनेह बस परितिय सुनत न सकल सबद सुनि।।

पूर्व देशीय प्राकृतिक छटा का कैसा विशद वर्णन है—

हरी घास सो घिरँ तुग टीले नभ चुम्बत।
तिनमे सूधी सरल सरग दिसि डगर उलबत।।
नव नरियल साखन की टुक सीसो झुक झमकनि।
कीट पखेरुन की दामिनि ज्यों दमकनि रमकनि।।

लिपटनि ललित लतनि की द्रुमसो परम सुहावनि ।
बढ़ि बढ़ि लहरत सुभग समुद के तल लो आवनि ।।

एक जगह इस कविता का नायक ईनोक ईश्वर की प्रार्थना करते-करते तन्मय हो गया है। उसकी भी चासनी चखिए—

करन प्रार्थना लग्यौ हृदय भरि प्रेम रसायन ।
द्वैत भाव तजि जहाँ मिलत नित नर-नारायन ।।

प्रार्थना का लाभ भी सुन लीजिए—

यदपि रह्यौ अति दुखी तबहुँ सो उर नहिं हारी ।
तासु अचल प्रण दियौ ताहि अति सुभग सहारी ।।
तदुपरि दृढ विश्वास, ईश-गुन-गान-प्रतापा ।
हृदय पटल सो उमगि उमगि, नित आपुहिं आपा ।।
समुद उपर गत रुचिर, मधुर जल स्रोत समाना ।
जगत बिपति मधि रख्यौ, ताहि तउ प्रफुलित प्राना ।।

धन्य कविरत्न टेनीसन ! धन्य तुम्हारा कविता कलाप !!

ईनोक आरडिन की कुछ अन्य पक्तियों का भी अनुवाद यहा दिया जाता है—

भये बरस सत यहाँ समुद तट निकट जु दरसत ।
त्रिय वंशज त्रियबाल परस्पर आनँद परसत ।।
पिकबैनी मृगशावकनैनी मिलि सुख दैनी ।
नगर बिमोहनि मृदु रस ऐनी मंजुल 'एनी' ।।
अपर "फिलिप रे" पनचक्की-पति-सुवन-अकेलौ ।
सुन्दर सरल सुभाउ सरस हिय अति अलबेलौ ।।
अरु गमार केवट सुत अबिचल अक्षतार्जन ।
जो अनाथ अति सीत काल मे पोत नसन सन ।।

(१०वी पक्ति से १५वी पंक्ति तक)

कबहुँ कबहुँ परि सात दिना लो बनि अधिकारी ।
कहत तऊ ईनोक उलटि निज आँखि निकारी ।।
"यह मेरो घर अरु यह मेरी नवला नारी" ।
"मेरी हू" कह फिलिप "लेहु वँट निज-निज बारी" ।।
जब अनबन मे बनत प्रबल तहँ ईनोक अधिपति ।
नील नयन भरि नीर रोष बस फिलिप निबल अति ।।
उठत कबहु चिल्लाय "चिढत अति ईनोक तुमसो" ।
तबै सरल करुणामयि बाला बिनबति उनसों ।।

"मो पाछैं जनि झगरौ करहु निहोरैं भारी।
थोरी थोरी बनहुँ दोउन की प्राण पियारी" ।।
परि ज्योंही भोरी शिशुता की झलक सिरानी।
उदय अतन तन भयौ चिलकि जागी तिन ज्वानी ।।
वा वरुणी के प्रेम पगे त्योंही दोऊ जन।
ईनोक ने खुलि कही सकल हिय बात मुदित मन ।।

(२६वी पक्ति से ४०वी पक्ति तक)

ईनोक ने हिय करयौ सदृढ संकलप सुहावन।
जहँ तक निज वस चलै कमाई नित्य बचावन ।।
मोल लैन इक सुघर नाव अरु घरहि बनावन।
मंजुलता मे मन भावन 'एनी' को लावन ।।

(४४वी पंक्ति से ४८वी पक्ति तक)

भोगि घने दिन कठिन रोग की साँसति नाना।
प्राण पखेरू तजि तन पिंजर कियौ पयाना ।।

(२६८-२६९)

तहाँ फिलिप छिन ठहरि, हहरि इमि गिरा उचारी।
"एनी आयौ इतै आज तव दया भिखारी" ।।

(२८३-२८४)

वही चुकावैं अवसि अवसि लागति तव सारी।
धन चाहे चुकि सकत दया नहिं चुके तिहारी ।।

(३१९-३२०)

नर आनन नहिं कहूँ तहाँ अँखियन को दरसत।
मन मिलताऊ प्रेम भरी वतियन को तरसत ।।

(५७७-५७८)

इक दिन ता कानन मे ताके कानन आई।
धीमी धीमी हरख भरी परि दूर पठाई ।।
निज गिरिजागृह बिजय-घण्ट धुनि परी सुनाई।
उछरि भयौ मूर्छित ताको सुनि सो घबराई ।।
कछुक काल गो बीत जबै चित चेत जगायौ।
परम ललित परि घृणित द्वीप मधि निज तन पायौ ।।
लग्यौ न होतो तास प्रेम भय जो पटपद-मन।
जन प्रतिपालक प्रति थल व्यापक प्रभुपद पद्मन ।।

तौ अकेल नित रहन, जनित भय सागर माँही।
मरि जातौ सों अवसि तहाँ कछु संशय नाही ॥

(६०९-६१७)

ईनोक तहँ नहि एक शब्द काहू सों भाखत।
पर घर को, घर ? का घर !! का वह घर हू राखत ?

(६६३-६६४)

पिछवारै की ओर दूरि सों परम सुहाई।
टिमटिमाति इक जोति रुचिर तहँ परी दिखाई ॥
मरन काज सो भयौ ताहि लखि मन मे मोहित।
जिमि निज पथ सो भटकि पखेरु कोउ हारचौ चित ॥
निरखि प्रकाश-प्रकाश-थम्भ कौ ललित ललामा।
धरत लालसा हृदय करन की तहँ बिसरामा ॥
जौं लगि जानत नाहि अभागौ अपन मूढपन।
तजै न तौ लगि तहाँ हाय टकराय श्रमित तन ॥

(७२२-७२६)

शशिमुखि ! भवन गवन अब कीजै।
गहन ग्रहन बेला नगिचानी सजनी रजनी भीजै।
प्रबल बेग सो राहु केतु मिलि चन्द्र ग्रसन को आवै।
मुख मयक अकलक निरखि कहुँ तिहि तजि तव दिस धावै ॥

मेरा पड़ोसी कौन है?

('हू इज माइ नेवर ?' का अनुवाद)

वही पडौसी तेरा, जिसकी तू सहाय कर सकता है।
तन से धन से जिसके मन मे प्रसन्नता भर सकता है॥
जिसका हृदय व्यथित अति भारी तप्त ताप से माथ।
परम प्रेम से, परस बँधाने धीरज तेरा हाथ॥१॥

वही पड़ौसी तेरा, जो अति दीन मूर्छित पड़ा हुआ।
क्षुधा-जनित निर्बलता वस जिसकी आँखो मे धुन्ध हुआ॥
अधम पेट जिसको भेजे है वार वार प्रति द्वार।
जाओ करो सहारा देकर उसका बेडा पार॥२॥

वही पडौसी तेरा, जो अति दुर्बल-सा थकने वाला।
सारी आयु बिताकर जो थोडे दिन मे मरने वाला॥
चिन्ता पीड़ा कठिन रोग से, जिसका झुका शरीर।
जाओ करि उत्साहित उसको, मित्र! बँधाओ धीर॥३॥

वही पडौसी तेरा, जिसके उर वियोग पीड़ा भारी।
गँवा सकल प्रिय वस्तु जगत की, जो थी मंजुल मनहारी॥
निस्सहाय विधवा अरु बालक मात पिता से हीन।
जाओ शरणागत-वत्सल हो उनके, परम प्रवीन॥४॥

वही पडौसी तेरा, जो, खो स्वतंत्रता, श्रम करता है।
अग अंग जिसके निर्बल, जी मे निराश हो, डरता है॥
होने की निज पूर्ण लालसा मरण काल पर्य्यन्त।
नही भरोसा जिसे, छुड़ा धन देकर उसे निचन्त॥५॥

जहाँ कही जब कभी मित्र ! तुम किसी आदमी को पाओ।
जो तुम सा नहि भागवान, उसके कुभाग को चमकाओ॥
ध्यान रखो वह भी है तव प्रतिवासी कीट पतंग।
जैसे भ्राता पुत्र आदि सब और आप के अंग॥६॥

हा ! अपने अल्हड़पन मे आ, उसे त्यागकर, मत जाओ।
शोकातुर का शोक निवारण करने तुम प्रियवर ! धाओ॥
घटै कदाचित उस दुखिया की हृदय बिथा, लखि तव अनुराग।
जाओ, कंठ लगाओ उसको, बाँटो अपना भाग॥७॥

स्वदेश अनुराग

अस मन मार्यो कहूँ रहै कोऊ जन ?
कवहुँ न जानै कह्यो सोचि अपने मन ।।
"है मेरी यह स्वयं जन्म की प्रिय-थल" ।
उमग्यो ना यह समझि जासु हिय इक पल ।।
जैसे पलटत घरहिं कवहुँ निज पामन ।
भ्रमत भ्रमत परदेसन सो तहँ आमन ।।
यदि कोऊ अस, ताहि लखौ भल जाकर ।
ता हित गाव न कोई प्रेम मे आ कर ।।
यद्यपि पदवी वडी नाम वड़ ताकें ।
इच्छापूर्वक वहु असीम घन जाकें ।।
तदुपरान्त पदवी, घन, बल एकत्रित ।
करत रहत नित अघम तऊ सव निज हित ।।
जीवत हू शुभ यश कों नाश करावहि ।
भोगहि दुगनी मृत्यु अघोगति पावहि ।।
मिलहि तुच्छ रज माँहि जहाँ सो आयो ।
अनरोदित अरु अनादरित अनगायो ।।

(स्काट)

△△△